भाग-1

ज्योतिष पितामह
महर्षि पराशर प्रोक्तं

बृहत् पाराशर होरा शास्त्रम्

BRIHAT PARASARA HORA SASTRAM

व्याख्याकार :
डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र
ज्योतिषाचार्य

भारतीय ज्योतिष का
सर्वोच्च निर्णायक ग्रन्थ

ग्रन्थ-परिचय

ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों में महर्षि पराशर का सर्वोच्च स्थान है। *पाराशर होराशास्त्र* भारतीय ज्योतिष में सर्वोपरि माना जाता है। वास्तव में पाराशर सिद्धान्तों का विस्तार ही सम्पूर्ण ज्योतिष है। पाराशर नियमों के बिना ज्योतिष की कल्पना मात्र भी सम्भव नहीं है। इन्हीं सब पाराशर सिद्धान्तों का प्रतिपादक ग्रन्थ ***बृहत् पाराशर होराशास्त्र*** है।

विभिन्न संस्करणों में परस्पर विरोधी बातों का समन्वय करते हुए दाक्षिणात्य व उत्तर भारतीय रूपों व मान्यताओं का समाहार करके विद्वान व्याख्याकार ने विस्तृत व्याख्या भी दी है। दक्षिण भारत की कई प्रकाशित व अप्रकाशित पुस्तकों से भी इस संस्करण में सहयोग लिया गया है। शताध्यायी होरा के रूप में प्रसिद्ध यह ग्रन्थ शास्त्र के संदर्भ में ***सर्वोच्च न्यायालय की तरह अंतिम निर्णय देता है।***

प्रत्येक गुत्थी को सुलझाते हुए यह समालोचनात्मक संस्करण वास्तविक व निःसन्दिग्ध अर्थ से ओत-प्रोत है। भारतीय ज्योतिष की आत्मा ***पाराशर होराशास्त्र में ही बसती है।***

सुविस्तृत, कपोल कल्पना व मिलावट से रहित, सर्वतोभावेन अर्थबोधक व्याख्या से युक्त एक प्रामाणिक संस्करण जो स्वयं एक पुस्तकीय पुस्तकालय भी है।

दो भागों में सम्पूर्ण, 101 अध्याय, 4500 श्लोक

सर्वप्रथम प्रामाणिक संस्करण

महर्षि पराशर की कालजयी रचना

महर्षिपराशरप्रोक्तं

बृहत् पाराशर होराशास्त्रम्

(प्रणवाक्षरव्याख्योपेतम्)

(BRIHAT PARASARA HORA SASTRAM)

(खण्ड – 1)

सम्पादक व्याख्याकार

डा॰ सुरेश चन्द्र मिश्र

ज्योतिषाचार्य, एम॰ए॰ पी॰ एच॰ डी॰



धार्मिक, इण्डस्ट्रीयल, ज्योतिष आदि पुस्तकों के लिए

डी. पी. बी. पब्लिकेशन्स

110, चावड़ी बाजार,चौंक बडशाहबुला,दिल्ली- 6

पोस्ट बाक्स - 2037, फोन 3273220

प्रकाशक :
रंजन पब्लिकेशन्स
16, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
फोन : 3278835

मूल्य : 200 रु॰

प्रथम संस्करण : 1996

लेजर टाइप सैटिंग : वर्द्धमान एन्टरप्राइजिज, दिल्ली
मुद्रक : ए॰ पी॰ ऑफसैट, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032

एक दृष्टि में

भारतीय ज्योतिष के समस्त विषय ।
अनेक स्थल अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ ।
अप्रकाश ग्रहों का भी सम्पूर्ण फल ।
समस्त वर्गों का विस्तृत विवेचन ।
राशि, ग्रह, नक्षत्र का सर्वविध प्रदर्शन ।
नक्षत्र जातक नूतन व प्रामाणिक ।
अनेक दशापद्धतियों का सोदाहरण विवेचन ।
राशियों व ग्रहों की दृष्टि के भेद ।
पद, उपपद, अर्गला व कारकांश ।
कारक व कारकांश का विस्तृत प्रदर्शन ।
सुदर्शन चक्र द्वारा अमोघ फल ।
व्यवसाय निर्णय की आर्ष विधि ।
योगकारक व कारक ग्रहों का निर्णय ।
नाभस व सौर चान्द्र योग ।
दशा–अन्तर्दशा प्रत्यन्तर सूक्ष्मदशा ।
प्राण दशा का प्रामाणिक फल ।
ग्रहों की अवस्थाओं का सम्पूर्ण फल ।
काल चक्रदशा का विशेष खुलासा ।
चरादि जैमिनीय दशाओं का फल ।
अष्टकवर्ग : समग्र प्रस्तुति ।
रश्मि विचार : फल निर्णय ।
मुहूर्त के फुटकर विषय ।
नष्ट जातक : शरीर लक्षण तिलविचार ।
पूर्वशाप फल व निवारण
ग्रह शान्ति, दोष शान्तिः सम्पूर्ण ।

। । मंगलाचरणम् । ।

नमस्तस्मै गणेशाय यच्छुण्ड उत्प्लवायते ।
होराशास्त्राम्बुधेः पारं मेऽल्पज्ञस्य यियासतः । ।1 । ।
स जयति तिग्मदीधितिर्विश्वात्मा कालपालको हंसः ।
निजखरतरकंरस्पर्शाज्जाड्यं विद्राव्यते येन । ।2 । ।
तमीशानं महाकालं शश्वदानन्ददायिनम् ।
विश्वरूपं विरूपाक्षं भवं भव्याय संश्रये । ।3 । ।
सा जयति परावाणी मूलं सकलवाङ्मयप्रपंचस्य ।
चतुर्दशत्वमवाप्ता व्याप्ता स्यान्मे हृदयविवरे । । 4 । ।
मार्तण्डोऽत्र पराक्रमं कुमुदिनीनाथः कृतौ संस्थितिं,
धैर्यं हश्च निरन्तरं सुविमलां मेधां श्रविष्ठाभवः ।
वाचं वाक्पतिरास्फुजि विशदतां दृष्टेः प्रभाभास्वरां,
सौख्यं वासरनाथजः समुदयं लग्नं च पुष्णातु नः । । 5 । ।
ब्रह्मनारदवशिष्ठकश्यपमनुसूर्यशौनकव्यासान् ।
यवनं च्यवनं गर्गं नौमि मुनीन् पराशरप्रमुखान् । । 6 । ।
पाराशर इति विदिते विशयविषव्याधिव्याकुले शास्त्रे ।
क्रियते तत्त्वनिदानं निर्भ्रान्तं सुरेशमिश्रेण । ।7 । ।
शंकरं शंकराचार्यं भाष्यकारं पतंजलिम् ।
नौमि होरागमज्ञांश्च जलधिर्गोष्पदायताम् । । 8 । ।

भूमिका

भारतीय ज्योतिष के प्रवर्तकों में महर्षि पराशर अग्रगण्य हैं। महर्षि प्रोक्त ग्रन्थों में केवल इन्हीं का सम्पूर्ण ग्रन्थ बृहत्पाराशर होराशास्त्र नाम से उपलब्ध हैं। अन्य प्रवर्तक ऋषियों के वचन तो इतस्ततः मिलते हैं, लेकिन किसी सम्पूर्ण ग्रन्थ के अद्यावधि दर्शन नहीं होते हैं। यह बात पराशर के मत की सर्व व्यापकता व सार्वभौमिकता का एक पुष्कल प्रमाण हैं। पाराशरहोराशास्त्र की गुणग्राहिता व सम्पूर्णता के कारण ही इनकी यह रचना सर्वत्र प्रचलित हैं। ज्योतिष शास्त्र के सभी ग्रन्थों पर यदि दृष्टि डाली जाए तो अनुभव होता है कि परवर्ती आचार्यो के मन्तव्यों की मूल भित्ति पाराशरीय विचार ही हैं। एक प्रकार से पराशर के ज्योतिषीय विचारों का प्रस्तार ही अवान्तर ग्रन्थों में न्यूनाधिक रुप से देखने में आता हैं। अतः भारतीय ज्योतिष का सर्वमान्य, आम्नायवत् पवित्र व आदरणीय, सर्वव्यापक, इदमित्थंतया तत्व विवेक करने वाला यह एकमात्र ग्रन्थ रत्न है। फलित ज्योतिष के प्रत्येक पहलू पर निर्विवाद निर्णय देने वाला यह ग्रन्थ स्वयं प्रमाण है। जिस प्रकार वेदों का स्वयं प्रमाण स्वतः सिद्ध है, तीर्थ का जल व अग्नि स्वयं शुद्ध हैं, उन्हें शुद्ध करने, प्रमाणित करने व ग्राह्य बनाने के लिए किसी पवित्रीकरण की आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार पराशर के वचनों को प्रमाण रुप में उद्धृत करने की सर्वत्र परिपाटी है। पाराशरीय कथनों व निर्णयों को प्रमाणित करने के लिए किसी अन्य ऋषि वाक्यों की आवश्यकता अकिंचित्कर ही है।

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।। (भवभूति)

इतने लम्बे समय तक इसका अक्षुण्ण बना रहना ज्योतिर्विदों के घरों में इसकी हस्तलिखित प्रतियां विद्यमान रहना इसकी दीर्घायु का एकमात्र प्रमाण है। ऋषि होते रहे, ग्रन्थ कहे जाते रहे, लेकिन समय ने केवल पाराशरहोरा को ही अखण्ड रुप में सुरक्षित रखा।

सिद्धान्त या सम्प्रदाय तभी बनता है, जब उसके मानने वाले उसकी घोषणाओं, धारणाओं व मन्तव्यों का अनुपालन करने वाले होते रहें। यदि किसी विचारधारा के साथ ऐसा नहीं हो पाता तो वह केंवल विचार या मत ही रह जाता है। इस दृष्टि से पाराशर मत के पोषक बहुत हैं। इसी

कारण पाराशर सम्प्रदाय या पाराशरीय विचारधारा, विचारों की उस गंगा के समान है, जो समस्त भारत भूमि को अपने अमृत से आप्लावित करती हुई अपनी चरम गति या मंजिल पर पहुँचती है और अवान्तर अनेक विचारधारा रुपी नदियोंको भी अपने भीतर समेटती चलती है। अतः पाराशर मत गंगानद है तो अन्य विचारधाराएं या मत नदियाँ ही हैं। यह एक अविच्छिन्न रुप से बहने वाली, सदानीरा नदी है। इस दृष्टि से देखने पर पराशर महर्षि का स्थान जैमिनि मुनि से ऊँचा ही सिद्ध होता है। जैमिनीय मत के पोषण की परम्परा हमें अवान्तर काल में अटूट रुप में नहीं मिलती है।

जैमिनीयमत की सभी बातें पाराशर सम्प्रदाय में सर्वतोभावेन समाहित हो गई हैं, इसका आभास पाराशरहोरा को देखने से मिल जाता है।

वराहमिहिर जैसे आचार्य भी पराशर के सिद्धान्तों के सामने नतमस्तक हैं। वे अपने ग्रन्थों में बहुत पाराशर मत का उल्लेख करके उसका अंगीकरण करते है। अतः पाराशर सम्प्रदाय सम्पूर्ण भारत में चतुर्दिक, पुष्पित व पल्लवित होता रहा है तथा ज्योतिष के विषय में यह अन्तिम निर्णायक ग्रन्थ माना जाता है। पराशर फलित ज्योतिष के आधार स्तम्भ हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।

पाराशरी होरा शताध्यायी के नाम से प्रसिद्ध ह। अतः इसमें 100 अध्याय हैं, ऐसा आभास मिलता है। पाराशरहोराशास्त्र के कई संस्करण सम्प्रति प्रचलित हैं। उनमें किसी संस्करण में होराशास्त्र से बाह्य कुछ अटपटे विषय भी रख दिये गये है। उस संस्करण विशेष में प्रोक्त विषय यदि होराशास्त्र के होते तो बाद के आचार्यो ने कहीं पर कुछ तो उनका संकेत किया होता, लेकिन ऐसा हमें देखने में नहीं आता है। होराशास्त्र के विषयों की जो सूची अन्यत्र दी गई है, उनमें वर्षचर्यादि अनेक बातें देखने में नहीं आती है। अन्य संस्करणों में कुछेक विषय स्वकल्पित भी दे दिये गए है। जिस बात को पाराशर प्रथित होने का आशय प्रकट करके अपने संस्करण में समाहित कर दिया गया है, वे बाद के कमलाकर भट्ट आदि आचार्यो ने कही हैं। यथा – ज्योतिषीय फलादेश भूकेन्द्रिक लग्न से करना चाहिये, उदय लग्न से नहीं इत्यादि बातें अप्रामाणिक हैं तथा इनकी अप्रामाणिकता संस्करण प्रस्तुतकर्ता महोदय ने बाद में अन्यत्र स्वयं स्वीकार कर ली थी।

प्रस्तुत संस्करण का पाठ हमने यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है। इसकी प्रामाणिकता का प्रमाण यही है कि इसमें उल्लिखित पाठ प्रचलित संस्करणों में भी थोडे बहुत पाठ भेद से पाया जाता है। कुछ विषय यथावत् बाद के ग्रन्थों में पराशर के नाम से मिलते हैं। कुछ दक्षिणभारत में प्रचलित पराशरीय

विषयों का समावेश भी हमने इसमें किया है। हमारा संस्करण सम्पूर्ण 100 अध्यायों वाला है तथा अन्य संस्करणों में 100 अध्याय नहीं मिलते हैं। पाराशरीयहोरा का सम्पूर्ण प्रचलित व प्रामाणिक पाठ हमनें यहां देने का प्रयास किया है। अन्त में कुछ श्लोकों का संग्रह अन्यतः किया है। साथ ही कुछ प्रामाणिक श्लोक ऐसे भी हैं जो किसी भी संस्करण में प्राप्त नहीं होंगे। फलस्वरुप हमारे संस्करण में सर्वाधिक श्लोक संख्या है।

पराशर का काल महाभारत काल के लगभग होना अनुमित है। कलियुग नामक कालखण्ड (युग) के प्रारम्भ में होने के कारण उत्तरोत्तर बलीयस्त्व के सिद्धान्त से कलियुग में पाराशर मत की सर्वोपरि मान्यता स्पष्ट है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के एक या दो स्थानों पर ऐसा आभास मिलता है कि उस समय वशिष्ठ व पितामह सिद्धान्त का प्रचार था। अतः नारद, वशिष्ठ, पितामहादि ज्योतिष प्रवर्तकों के पश्चात् पराशर का समय मानने से परम्परया इनका अस्तित्व कलियुग के आदि में प्रतीत होता है। पराशर का सृष्टि तत्त्व निरुपण सूर्य सिद्धान्त के तदीय प्रकरण से मेल खाता है। अतः पौराणिक काल में आधुनिक मत से पाणिनि से पहले, चाणक्य से भी पहले, वैदिक रचना काल के बाद, पुराण युग में, महाभारत युद्ध की घटना के आसपास पराशर विद्यमान थे, ऐसा अनुमान है। अर्थशास्त्र में पराशर का नामोल्लेख पाया जाता है। गरुड़ पुराण में पराशरस्मृति के श्लोकों का संग्रह किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् व तैत्तिरीयारण्यक में व्यास व पराशर के नाम आते हैं। यास्क ने अपने निरुक्त में पराशर के मूल का भी उल्लेख किया है। ये कृष्णद्वैपायन व्यास के पिता थे तथा इनके पिता का नाम 'शक्ति' था। वराह ने पराशर को शक्ति पुत्र या शक्ति पूर्व कहा है। अग्निपुराण में स्पष्टतया इन्हें शक्ति का पुत्र ही कहा है। यही पराशर मत्स्यगन्धा सत्यवती पर मोहित हुए थे तथा सत्यवती के गर्भ से पराशर पुत्र व्यास उत्पन हुए थे, यह सुविदित ही है। इन्हीं पराशर ने कलियुग में व्यवस्था बनाए रखने के लिए 'पराशर स्मृति' या द्वादशाध्यायी धर्मसंहिता की रचना की थी।

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शंखलिखितः कलौ पाराशरः स्मृतः।।

व्यास जी जब कुछ मुनियों को बदरिकाश्रम (आधुनिक बदरीनाथ तीर्थ) में स्थित अपने पिता पराशर के पास ले गये थे तब पराशर ने उन्हें वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था परक ज्ञान दिया था। वराह ने इन्हीं शक्तिपुत्र पराशर को होराशास्त्र का प्रवक्ता भी माना है। हमारे पास वराह के इस मन्तव्य को निराधार सिद्ध करने का कोई प्रमाण भी नहीं है। इन 'स्मृति धर्म होरा'

शास्त्रकार पाराशर का समय ईसा से पूर्व ही कभी रहा होगा । यदि स्मृतिकार पराशर से होरा शास्त्रकार को भिन्न भी मान लिया जाए तो भी इनका समय वराह से पहले तो रहेगा ही । वराहमिहिर पांचवी सदी में हुए हैं, ऐसा माना जाता है । अतः प्रत्येक परिस्थिति में आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व पाराशर के समय की निचली सीमा है । पाराशरहोरा का व्याख्यान मैत्रेय के सामने किया गया था । ये मैत्रेय कौन थे ? प्रथम तो मैत्रेय भगवान बुद्ध को भी कहते है, लेकिन यह बात यहां अप्रासंगिक ही होगी । 'मित्रयु' के वंश या गोत्र में उत्पन्न सन्तति भी मैत्रेय होती है । अतः मैत्रेय गोत्र नाम हो सकता है । मित्रयु दिवोदास के वंशजों में ब्रह्मर्षि पद प्राप्त राजा थे । उन्हीं के वंशजों को बाद में मैत्रेय कहा गया है । यह बात हरिवंशपुराण में आती है । मैत्रेय द्वारा पठित उपनिषत् का नाम मैत्रेयी उपनिषत् प्रसिद्ध ही है । श्रीमद् भागवत में एक स्थान पर विदुर व मैत्रेय का वार्तालाप उल्लिखित है । इससे भी मैत्रेय, पराशर व महाभारत की कड़ियां मिलती प्रतीत होती है । मैत्रेय को होराशास्त्र बताने वाले महर्षि पराशर महाभारत काल में वृद्धावस्था या चतुर्थाश्रम प्राप्त ऋषि थे, यह हमें निश्चय से प्रतीत होता है । महाभारत का समय परम्परया कम से कम 3 हजार वर्ष पूर्व माना जाता है । अतः पराशर दो तीन सहस्राब्दियों पूर्व भारत में हुए थे ।

ज्योतिष सम्बन्धी पराशरोक्त ग्रन्थ तीन कहे जाते है । बृहत्पाराशर होराशास्त्र नाम बाद में दिया गया प्रतीत होता है । मूलतः इसका नाम होराशास्त्र ही रहा होगा । पराशरोक्त होने से बाद में लोगों ने इसे पाराशर होरा, पाराशर्य होरा, पाराशरी या बृहत्पाराशरी नाम दिये होंगे । बृहत् विशेषण इसकी विशालकायता का ही संकेत करता है । पराशर तन्त्र का उल्लेख भट्टोत्पल ने अनेक स्थानों पर किया है । उन्होनें बृहज्जातक की टीका में पाराशरी संहिता देखने व पढने की बात स्वीकार की है । पाराशर तन्त्र नाम से जो उद्धरण दिये गये हैं: उनका विषय तन्त्र अर्थात सिद्धान्त ज्योतिष से कम व संहिता से अधिक मेल खाता है । अतः पाराशरहोरा शास्त्र व पाराशर संहिता ये ग्रन्थ निर्विवाद ही पराशरप्रोक्त हैं । पराशर तन्त्र नाम से ज्योतिष की सिद्धान्त शाखा पर भी इनका कोई ग्रन्थ रहा होगा इस विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है ।

बृहत्पाराशरहोराशास्त्र श्रुत परम्परा से प्राप्त ग्रन्थ था । गुरुशिष्य परम्परा से यह ग्रन्थ आज तक प्राप्त है । उस काल में जब प्रेस या छापाखाने नहीं थे, लोग सुन सुनकर ही याद करके, विषय को अगली पीढ़ी के शिष्यों में स्थानान्तरित करते जाते थे, यह बात किसी से छिपी नहीं है । इसी कारण से पाठान्तर होना, पाठ का न्यूनाधिक होना तथा यहां दिया गया पाठ ही सम्पूर्ण या कुल पाठ है, ऐसा आग्रह करना दुराग्रह ही होगा ।

पुनश्च होराशास्त्र को व्यवस्थित, परिमार्जित, शुद्ध व संगत ढंग से प्रस्तुत करने के लिए हमने इसके पाठ की खोज में प्रयासहीनता नहीं दिखाई है, यह विश्वास दिलाते हैं।

बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के परिष्कृत सम्पूर्ण पाठ सहित हिन्दी व्याख्या युक्त इस संस्करण को यथापूर्व रंजन पब्लिकेशन्स, दरियागंज दिल्ली ने प्रकाशित करने की सहमति दी है। एतदर्थ वे धन्यवादार्ह हैं।

प्रस्तुत संस्करण से पाठकों को व्यवस्थित व परम्परया प्राप्त होरा शास्त्र का रसास्वाद करने का अवसर मिलेगा, यह आशा है। अन्त में अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुए, देवद्विजगुरुचरणों में प्रणामपूर्वक यह ग्रन्थ रत्न पाठकों को समर्पित करता हूँ। शुभमस्तु।

विद्वदाश्रवः

संकष्ट चतुर्थी
(20-01-1995 ई०)

सुरेश चन्द्र मिश्र
समन्तभद्र महाविद्यालय, दरियागंज दिल्ली

।।विषयानुक्रम ।।

नष्ट जातकम्

यदि आपको अपना जन्म-समय, तिथि, जन्म-स्थान आदि कुछ भी ज्ञात नहीं है तो ज्योतिष-शास्त्र के मनीषियों ने ऐसी पद्धतियों का अन्वेषण किया है जिनकी सहायता से नष्ट जन्मपत्री को शुद्धता से जाना जा सकता है। इसे **नष्ट जातकम्** नामक इस पुस्तक में स्व॰ **आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'** ने विभिन्न आकर ग्रन्थों से संग्रह कर जिज्ञासुओं के लाभार्थ प्रस्तुत किया है। आचार्य वराह मिहिर, कल्याण वर्मा आदि के मतों का निचोड़ लेकर विद्वान् ग्रन्थकार ने विषय को सरल एवं प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया है। इस विषय की केरलीय पद्धति तथा बारह प्रकार से नष्ट जन्मपत्री बनाने की रीतियों तथा अन्य सभी आवश्यक विषयों का ज्ञान केवल इस एक पुस्तक से ही हो सकता है। नष्ट जन्मपत्री निर्माण के कठिन विषय को **विद्वान् टीकाकार पं॰ शुकदेव चतुर्वेदी** ने बहुत सरल ढंग से समझाया है। **मूल्य : 40 रुपये**

प्रसव चिन्तामणि

आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' कृत

पुत्र होगा या पुत्री? गर्भ में दो या उससे भी अधिक भ्रूणों की स्थिति का ज्ञान, पैदा होने से पहले ही आने वाले शिशु का भाग्य, वह कितना मान, धन, यश एवं सुख पाएगा अथवा सामान्य मनुष्य के रूप में ही जीवन यापन करेगा? प्रस्तुत ग्रन्थ से इन प्रश्नों का सटीक और वैज्ञानिक ढंग से उत्तर मिलेगा।

प्रसव का समय, प्रसव का प्रकार, प्रसवोपरान्त स्थिति, माता-पिता के साथ जायमान बालक का भाग्य सम्बन्ध आदि बातों का समाधान पाकर आप दांतों तले अंगुली दबाएंगे।

अछूते विषय पर अधिकृत ढंग से लेखनी उठाई है ज्योतिष जगत के अभिनव वराह मिहिर **आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'** ने। **मूल्य : 40 रुपये**

फलित विकास

(पं॰ रामयत्न ओझा), सम्पादन–डॉ॰ सुरेशचन्द्र मिश्र

पं॰ ओझा काशी विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वान थे। हिन्दी भाषा में लिखी यह दुर्लभ पुस्तक अब नये आकर्षक रूप में प्रस्तुत है।

फलित के लिये कुछ अनोखे परन्तु
सत्य की कसौटी पर खरे उतरते सूत्र

मूल्य : 80 रुपये

दक्षिण भारत का अमूल्य ग्रंथ

प्रश्न मार्ग

(भाषा टीका सहित)

(सम्पूर्ण दो खण्ड)

32 अध्याया का यह सम्पूर्ण मानक ग्रन्थ मलयालम लिपि से पहली बार हिन्दी व्याख्या सहित प्रकाशित हुआ है। ज्योतिष जगत् में इसकी प्रतिष्ठा वराहमिहिर के ग्रन्थों के समान है। देवनागरी लिपि में मूल संस्कृत के श्लोकों का सम्पूर्ण प्रामाणिक पाठ, विस्तृत हिन्दी व्याख्या अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी।

इसमें दैनिक जीवनोपयोगी अनेक विषयो का विवेचन जैसे–रोग, आयु, विवाह, मृत्यु, यात्रा, प्रेम; जय-पराजय, गोचर, अष्टकवर्ग के साथ-साथ विस्तार से शकुन का विचार भी किया गया है।

विषय का गौरव देखकर आप इसे संहिता ग्रन्थ कहना पसन्द करेंगे।

प्रश्न, जन्म, गोचर से फल कथन की सभी प्रणालियों की उपलब्धि तो यहां होगी ही, साथ ही त्रिस्फुट व आरूढ़ आदि के विचार से भविष्य कथन करने की प्रामाणिक किन्तु अनुपलब्ध प्रणालियां भी इसमें बताई गई हैं।

अष्ट मंगल साधनपूर्वक प्रश्नानुष्ठान की पद्धति आपको निश्चय ही मोहित कर लेगी। रोग की अवधि व रोग समाप्ति का समय आदि जानना तो आपको अन्यत्र भी मिल सकता है; किन्तु ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोग का सटीक उपचार आपको इस ग्रन्थ रत्न में ही मिलेगा।

सुविधा की दृष्टि से 2 खण्डों में प्रकाशित यह ग्रन्थ वास्तव में चमत्कारपूर्ण फलादेश कहने की शक्ति तो देगा ही, साथ ही दुर्लभ ग्रन्थ के संग्राहक की प्रतिष्ठा भी निश्चित रूप से मिलेगी।

अष्टकूट का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन और सन्तान, विवाह व रोग का अनेक दृष्टिकोणों से ज्योतिष शास्त्रीय अध्ययन करने का अवसर इसमें मिलेगा। नष्ट-जातक विचार व कर्मविपाक (अर्थात् पूर्व जन्म के किस पाप या पुण्य के कारण हमें यह शुभाशुभ फल मिला है) का भी विस्तृत विचार देकर ग्रन्थकार ने इसे सर्वोपयोगी बना दिया है।

होरा, मुहूर्त, प्रश्न व शकुन इन सबका अनोखा मेल देखने के लिए अवश्य पढ़ें। आपकी सन्तुष्टि निश्चित है।

मूल्य : सम्पूर्ण सैट 250 रुपये

नष्ट जातकम्

यदि आपको अपना जन्म-समय, तिथि, जन्म-स्थान आदि कुछ भी ज्ञात नहीं है तो ज्योतिप-शास्त्र के मनीपियों ने ऐसी पद्धतियों का अन्वेषण किया है जिनकी सहायता से नष्ट जन्मपत्री को शुद्धता से जाना जा सकता है। इसे **नष्ट जातकम्** नामक इस पुस्तक में स्व॰ **आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'** ने विभिन्न आकर ग्रन्थों से संग्रह कर जिज्ञासुओं के लाभार्थ प्रस्तुत किया है। आचार्य वराह मिहिर, कल्याण वर्मा आदि के मतों का निचोड़ लेकर विद्वान् ग्रन्थकार ने विपय को सरल एवं प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया है। इस विपय की केरलीय पद्धति तथा बारह प्रकार से नष्ट जन्मपत्री बनाने की रीतियों तथा अन्य सभी आवश्यक विपयों का ज्ञान केवल इस एक पुस्तक से ही हो सकता है। नष्ट जन्मपत्री निर्माण के कठिन विपय को **विद्वान् टीकाकार पं॰ शुकदेव चतुर्वेदी** ने वहुत सरल ढंग से समझाया है। **मूल्य : 40 रुपये**

प्रसव चिन्तामणि

आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' कृत

पुत्र होगा या पुत्री? गर्भ में दो या उससे भी अधिक भ्रूणों की स्थिति का ज्ञान, पैदा होने से पहले ही आने वाले शिशु का भाग्य, वह कितना मान, धन, यश एवं सुख पाएगा अथवा सामान्य मनुष्य के रूप में ही जीवन यापन करेगा? प्रस्तुत ग्रन्थ से इन प्रश्नों का सटीक और वैज्ञानिक ढंग से उत्तर मिलेगा।

प्रसव का समय, प्रसव का प्रकार, प्रसवोपरान्त स्थिति, माता-पिता के साथ जायमान बालक का भाग्य सम्बन्ध आदि वातों का समाधान पाकर आप दांतों तले अंगुली दबाएंगे।

अछूते विपय पर अधिकृत ढंग से लेखनी उठाई है ज्योतिष जगत के अभिनव वराह मिहिर **आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'** ने। **मूल्य : 40 रुपये**

फलित विकास

(पं॰ रामयत्न ओझा), सम्पादन-डॉ॰ सुरेशचन्द्र मिश्र

पं॰ ओझा काशी विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वान थे। हिन्दी भापा में लिखी यह दुर्लभ पुस्तक अव नये आकर्पक रूप में प्रस्तुत है।

फलित के लिये कुछ अनोखे परन्तु
सत्य की कसौटी पर खरे उतरते सूत्र

मूल्य : 80 रुपये

दक्षिण भारत का अमूल्य ग्रंथ

प्रश्न मार्ग

(भाषा टीका सहित)

(सम्पूर्ण दो खण्ड)

32 अध्याया का यह सम्पूर्ण मानक ग्रन्थ मलयालम लिपि से पहली बार हिन्दी व्याख्या सहित प्रकाशित हुआ है। ज्योतिष जगत् में इसकी प्रतिष्ठा वराहमिहिर के ग्रन्थों के समान है। देवनागरी लिपि में मूल संस्कृत के श्लोकों का सम्पूर्ण प्रामाणिक पाठ, विस्तृत हिन्दी व्याख्या अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी।

इसमें दैनिक जीवनोपयोगी अनेक विषयो का विवेचन जैसे–रोग, आयु, विवाह, मृत्यु, यात्रा, प्रेम, जय-पराजय, गोचर, अष्टकवर्ग के साथ-साथ विस्तार से शकुन का विचार भी किया गया है।

विषय का गौरव देखकर आप इसे संहिता ग्रन्थ कहना पसन्द करेंगे।

प्रश्न, जन्म, गोचर से फल कथन की सभी प्रणालियों की उपलब्धि तो यहां होगी ही, साथ ही त्रिस्फुट व आरूढ़ आदि के विचार से भविष्य कथन करने की प्रामाणिक किन्तु अनुपलब्ध प्रणालियां भी इसमें बताई गई हैं।

अष्ट मंगल साधनपूर्वक प्रश्नानुष्ठान की पद्धति आपको निश्चय ही मोहित कर लेगी। रोग की अवधि व रोग समाप्ति का समय आदि जानना तो आपको अन्यत्र भी मिल सकता है; किन्तु ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोग का सटीक उपचार आपको इस ग्रन्थ रत्न में ही मिलेगा।

सुविधा की दृष्टि से 2 खण्डों में प्रकाशित यह ग्रन्थ वास्तव में चमत्कारपूर्ण फलादेश कहने की शक्ति तो देगा ही, साथ ही दुर्लभ ग्रन्थ के संग्राहक की प्रतिष्ठा भी निश्चित रूप से मिलेगी।

अष्टकूट का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन और सन्तान, विवाह व रोग का अनेक दृष्टिकोणों से ज्योतिष शास्त्रीय अध्ययन करने का अवसर इसमें मिलेगा। नष्ट-जातक विचार व कर्मविपाक (अर्थात् पूर्व जन्म के किस पाप या पुण्य के कारण हमें यह शुभाशुभ फल मिला है) का भी विस्तृत विचार देकर ग्रन्थकार ने इसे सर्वोपयोगी बना दिया है।

होरा, मुहूर्त, प्रश्न व शकुन इन सबका अनोखा मेल देखने के लिए अवश्य पढ़ें। आपकी सन्तुष्टि निश्चित है।

मूल्य : सम्पूर्ण सैट 250 रुपये

1

।।अथ सृष्टिक्रमकथनाध्यायः।।

शास्त्रावतरण :–

अथैकदा मुनिश्रेष्ठं त्रिकालज्ञं पराशरम्।

पप्रच्छोपेत्य मैत्रेयः प्रणिपत्य कृतांजलिः।। 1।।

किसी समय मैत्रेय मुनि ने, तीनों कालों की गति को जानने वाले मुनिप्रवर पराशर जी के पास जाकर, प्रणाम करके, हाथ जोड़कर पूछा।

भगवन्! परमं पुण्यं गुह्यं वेदाङ्गमुत्तमम्।

त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं होरागणितं संहितेति च।। 2।।

एतेष्वपि त्रिषु श्रेष्ठा होरेति श्रूयते मुने!।

त्वत्तस्तां श्रोतुमिच्छामि कृपया वद मे प्रभो!।। 3।।

कथं सृष्टिरियं जाता जगतश्च लयः कथम्!।

खस्थानां भूस्थितानां च सम्बन्धं वद विस्तरात्!।। 4।।

मैत्रेय बोले– हे भगवन्! सभी वेदांगों में श्रेष्ठ ज्योतिष शास्त्र परम पवित्र, पुण्यप्रद व गुप्त है। इसके गणित, होरा व संहिता ये तीन स्कन्ध कहे जाते हैं।

इन तीनों में भी होरा स्कन्ध अधिक आदरणीय है, इसी कारण आपके मुख से मैं होरा स्कन्ध के विषय में सुनना चाहता हूँ। कृपया आप मुझे बताएँ। यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ व कैसे इसका लय होता है! आकाश में स्थित पिण्डों, ग्रहों, नक्षत्र तारादिकों का भूमि पर स्थित प्राणियों से क्या सम्बन्ध है? इत्यादि प्रश्नों को मुझे विस्तार से बताएँ।

साधु पृष्टं त्वया विप्र! लोकानुग्रहकारिणा।

अथाहं परमं ब्रह्म तच्छक्तिं भारतीं पुनः।।5।।

सूर्यं नत्वा ग्रहपतिं जगदुत्पत्तिकारणम्।

वक्ष्यामि वेदनयनं यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्।। 6।।

पराशर ऋषि ने कहा– विप्रवर! आपने संसार की हित कामना से बहुत अच्छी बात पूछी है। एतदर्थ अब मैं परम ब्रह्म, ब्रह्म शक्ति सरस्वती देवी को एवं समस्त संसार की उत्पत्ति के कारण रूप भगवान् ग्रहपति सूर्य

को प्रणाम करके ज्योतिष शास्त्र को यथावत् कहता हूँ, जैसा मैंने पूर्वकाल में ब्रह्मा जी के मुखारविन्द से सुना था।

ज्योतिष के अधिकारी :–

शान्ताय गुरुभक्ताय सर्वदा सत्यवादिने।
आस्तिकाय प्रदातव्यं ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यति।।7।।
न देयं परशिष्याय नास्तिकाय शठाय वा।
दत्ते प्रतिदिनं दुःखं जायते नात्र संशयः।।8।।

शान्त चित्त वाले, गुरु के प्रति भक्तिभाव से युक्त, सदैव सत्य बोलने वाले, ईश्वर में विश्वास रखने वाले शिष्य को ही यह शास्त्र सिखाना चाहिए, इसी से कल्याण होता है।

दूसरे के शिष्य, नास्तिक, शठ (कुटिल विचार वाले) शिष्य को इस शास्त्र का ज्ञान देने से सदैव दुःख ही प्राप्त होता है।

सृष्टिक्रम :–

एकोऽव्यक्तात्मकोविष्णुरनादिःप्रभुरीश्वरः।
शुद्धसत्त्वो जगत्स्वामी निर्गुणस्त्रिगुणान्वितः।।9।।
संसारकारकः श्रीमान्निमित्तात्मा प्रतापवान्।
एकांशेन जगत्सर्वं सृजत्यवति लीलया।।10।।
त्रिपादं तस्य देवस्य ह्यमृतं तत्त्वदर्शिनः।
विंदन्ति तत्प्रमाणं च सप्रधानं तथैकपात्।।11।।

एक, अव्यक्त, आत्मा, अनादि, प्रभु, ईश्वर, शुद्ध सत्त्व युक्त, संसार का स्वामी, निर्गुण लेकिन सत्त्व, रजः तम इन तीन गुणों से युक्त, समस्त संसार का रचयिता, परम प्रतापी, श्रीमान् भगवान् विष्णु अपने एक चौथाई अंश से संसार को निर्मित करके, अपनी लीला (इच्छा मात्र से, प्रयत्नपूर्वक नहीं) से इसका पालन पोषण भी करता है। इन्हीं व्यक्ताव्यक्त, समस्तगुण–गणभूषित भगवान् विष्णु के शेष त्रिपाद अंश (तीन चौथाई) अमृत रूप से अव्यक्त परब्रह्म रूप से स्थित है, जिसे तत्त्वदर्शी लोग ही जानते हैं।

व्यक्तोऽव्यक्तात्मकोविष्णुर्वासुदेवस्तुगीयते।
यदव्यक्तात्मको विष्णुः शक्तिद्वयसमन्वितः।।12।।
व्यक्तात्मकस्त्रिभिर्युक्तःकथ्यतेऽनन्तशक्तिमान्।
सत्त्वप्रधाना श्रीशक्ति भूशक्तिश्च रजोगुणा।।13।।

शक्तिस्तृतीयायाप्रोक्तानीलाख्याध्वान्तरूपिणी ।

वासुदेवश्चतुर्थो ऽ भूच्छीशक्त्या प्रेरित यदा ।। 14 ।।

वासुदेवश्च प्रद्युम्नोऽनिरुद्ध इति मूर्तिधृक् ।

तमःशक्त्याऽन्वितो विष्णुर्देवः सङ्कर्षणाभिधः ।। 15 ।।

प्रद्युम्नो रजसा शक्त्याऽनिरुद्धः सत्त्वया युतः ।

उन्हीं भगवान् विष्णु के एक चतुर्थांश व्यक्त रूप से तथा शेष तीन चौथाई अंश अव्यक्त रूप से स्थित रहता है। उन्हीं को वासुदेव भी कहते हैं। अव्यक्त रूप विष्णु की दो शक्तियाँ तथा व्यक्त रूप विष्णु की तीन शक्तियाँ हैं। पुनश्च अनन्तवीर्य या शक्ति से सम्पन्न कहे जाते हैं।

इन शक्तियों में सत्त्वगुण प्रधान शक्ति स्वयं श्री है, रजोगुण प्रधान शक्ति 'भूशक्ति' है। तमोगुण प्रधाना 'नील शक्ति' कहलाती है।

इस प्रकार श्रीशक्ति की प्रेरणा से विष्णु या वासुदव के चार रूप हो जाते हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न व अनिरुदध्र इन रूपों को धारण कर लेते हैं। इनमें तमःप्रधाना नीलशक्ति सम्पन्न रहने पर संकर्षण (बलराम), रजोगुणी शक्ति भू से युक्त होने पर प्रद्युम्न (कामदेव या पुराणों में प्रसिद्ध श्रीकृष्ण पुत्र) एवं सत्त्वगुण शक्ति से युक्त होने पर अनिरुद्ध रूप से तीन तथा चतुर्थ स्वयं वासुदेव, इस तरह चतुर्धा मूर्ति सम्पन्न होते हैं।

इस प्रसंग में विराट्, अव्यक्त, परात्पर, निर्गुण रूप भगवान् विष्णु (सर्वव्यापक, सर्वगत) को, संसार का मूल स्रोत कहा गया है। वही विष्णु अपने सम्पूर्ण रूप में चतुर्थांश 25% से समस्त दृश्यमान जगत् का निर्माणादि करके शेष त्रिपाद रूप में अमृत या अजर, अमर, निर्विकार रहते हैं। पुरुष सूक्त में इस बात को स्पष्ट कहा है–

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यमृतं दिवि ।' (यजुर्वेद)

शेष विषय–यहाँ पर 'लोकवस्तु लीलाकैवल्यम्' इत्यादि ब्रह्मसूत्रों के आधार पर बताया गया है। व्यवहारतः 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या' के कथनानुसार जल ही सर्वप्रथम सृष्टि है। समस्त संसार (पृथ्वी) का तीन चौथाई भाग नामरूपादि से रहित निरुपाधि जल रूप व शेष एक चौथाई में भूगोल विविध रूपों से दृश्य होकर विद्यमान ही है। 'अमृत' शब्द का अर्थ जल भी है। 'पयःकीलालममृतं' इत्यादि अमरकोष में कहा ही गया है। पुनश्च नारायण की व्युत्पत्ति भी 'नारो आप इति प्रोक्तः' के मतानुसार मूलतः जलरूप होकर जल में ही निवास (अयन) है जिनका, वह नारायण ही सृष्टि का मूल हेतु है। वे ही षड्विध ऐश्वर्य रूप लक्ष्मी के पति हैं। अव्यक्त रूप से विष्णु या वासुदेव की दो शक्तियाँ कही ही गई हैं–

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'

सर्वव्यापक होने से विष्णु अर्थात् 'विशति सर्वभूतानि विशन्ति सर्वभूतानि अत्र' उसी से उत्पन्न होकर उसी में समाना है, अतः विष्णु नाम सार्थक है। मत्स्य पुराण में पूर्वोक्त अन्य नामों का हेतु भी दिया गया है। सभी के निवास स्थान होने के कारण वासुदेव हैं–

वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये।
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तदुच्यसे।।
संकर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः।
ततः संकर्षणः प्रोक्तस्तत्त्वज्ञानविशारदैः।।
प्रत्यूहेन न तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः।
प्रतिद्युः सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यते।
निरोधो विद्यते यस्मात् न ते भूतेषु कश्चन।
अनिरूद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः।। (मत्स्य पुराण)

अतः भूशक्ति या रजोगुण से युक्त प्रद्युम्न स्वयं स्थितिकारक, पालनकर्त्ता हैं। कल्पान्त में सर्वप्राणियों को संकर्षण करने के कारण तमोगुण युक्त भगवान् संहारकर्त्ता हैं। अतः वासुदेव विष्णु, संकर्षण प्रभृति नाम पुरुषोत्तम, पुरुष रूप से वर्णित आदि पुरुष के वाचक हैं।

महान् संकर्षणाज्जातः प्रद्युम्नादहंकृतिः।। 16।।
अनिरुद्धात् स्वयं जातो ब्रह्माहंकारमूर्तिधृक्।
सर्वेषु सर्वशक्तिश्च स्वशक्त्याऽधिकया युतः।। 17।।

सांख्य मत से अब सृष्टितत्त्व बताते हैं। संकर्षण से महत्तत्त्व (बुद्धि) प्रद्युम्न से (अहंकार) तथा अनिरुद्ध से स्वयं ब्रह्म का शरीर उत्पन्न हुआ। इन सब में सभी शक्तियाँ रहती हैं, लेकिन अपनी शक्ति प्रधान रूप से तथा अन्य शक्तियाँ गौण रूप से रहती हैं।

अहंकारस्त्रिधा भूत्वा सर्वमेतदविस्तरात्।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेदहंकृतिः।। 18।।
देवावैकारिकाज्जातास्तैजसादिन्द्रियाणि च।
तामसाच्चैव भूतानि खादीनि स्व–स्वशक्तिभिः।। 19।।

यही अहंकार तीन रूपों (सात्विक, राजस व तामस) में विभक्त होकर स्थित होता है। सात्त्विक अहंकार से देवता, तामसिक अहंकार से सभी प्राणी आकाशादि पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश) एवं तेजस् या राजस् अहंकार से सभी इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई।

श्रीशक्त्या सहितो विष्णुः सदा पाति जगत्त्रयम् ।

भूशक्त्या सृजते ब्रह्मा नीलशक्त्या शिवोऽत्ति हि ।। 20 ।।

इस प्रकार सब प्राणियों का पालन करते समय एक ही पुरुषोत्तम वासुदेव विष्णु नाम से श्रीशक्ति युक्त होते हैं। भू शक्ति से युक्त ब्रह्मा संसार का निर्माण करते हैं तथा नीलशक्ति से युक्त होकर शिव संहारक कहलाते हैं। वास्तव में वह एक ही है।

सर्वेषु चैव जीवेषु परमात्मा विराजते ।

सर्वं हि तदिदं ब्रह्मन् ! स्थितं हि परमात्मनि ।। 21 ।।

सर्वेषु चैव जीवेषु स्थितं ह्यंशद्वयं क्वचित् ।

जीवांशो ह्यधिकस्तद्वत् परमात्मांशकः किल ।। 22 ।।

सूर्यादयो ग्रहाः सर्वे ब्रह्मकामद्विपादयः ।

एते चान्ये च बहवः परमात्मांशकाधिकाः ।। 23 ।।

शक्तयश्च तथैतेषामधिकांशाः श्रियादयः ।

स्वस्वशक्तिषु चान्यासु ज्ञेया जीवांशकाधिकाः ।। 24 ।।

हे विप्र मैत्रेय ! सब जीवों में परमात्मा विद्यमान है। समस्त चराचर जगत् भी परमात्मा में ही स्थित है। सब जीवो में से किसी किसी में जीवांश अर्थात् मायोपहित चैतन्य अथवा अज्ञानांश अधिक होता है। वे सब साधारण पुरुष हैं तथा किन्हीं में परमात्मांश अर्थात् शुद्ध, बुद्ध, सत्त्व, स्वयं प्रकाश अंश की अधिकता होती है।

सूर्य आदि ग्रहों में, ब्रह्मा व शिवादि में भी परमात्मांश अधिक रहता है। इसी प्रकार से और भी बहुत से परमात्मांश प्रधान अवतार हुए हैं। इसी तरह इनकी शक्तियाँ भी तत्तत् श्री आदि के अधिकांश से युक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त देवों व मानुषादि जीवों में जीवांश अधिक होता है।

आशय यह है कि ज्ञान या परा विद्या की अधिकता वाले प्राणी अवतार श्रेणी में एवं अविद्या या दार्शनिक अज्ञान से अधिकतया युक्त प्राणी साधारण श्रेणी में आते हैं। पुनश्च 'सर्व विष्णुमयं जगत्' कहने से सभी में परमात्मा का निवास रहने से सभी अवतार न होकर ईश्वरीय गुणों की युक्तता के आधार पर प्राधान्याप्राधान्येन अवतारादि निर्देश करना योग्य है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां सृष्टिक्रम कथनाध्यायः प्रथमः ।। 1 ।।

2

।। अथ अवतारकथनाध्यायः ।।

रामकृष्णादयो ये ये ह्यवतारा रमापतेः ।

तेऽपि जीवांशसंयुक्ताः किं वा ब्रूहि मुनीश्वर ! ।। 1 ।।

मैत्रेय ने पूछा—भगवन् ! मुनिराज ! राम, कृष्ण आदि का शास्त्रों में विष्णु के अवतार रूप में वर्णन हुआ है, क्या आप उन्हें भी जीवांश युक्त समझते हैं ?

रामः कृष्णश्च भो विप्र ! नृसिंहः सूकरस्तथा ।

एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः ।। 2 ।।

पराशर बोले—राम, कृष्ण, वराह व नृसिंह रूप में पूर्णावतार अर्थात् सम्पूर्ण परमात्मा से युक्त हैं, जबकि इनके अतिरिक्त शेष प्रसिद्ध अवतारों में जीवांश भी विद्यमान हैं ।

अवताराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः ।

जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः ।। 3 ।।

दैत्यानां बलनाशाय देवानां बलवृद्धये ।

धर्मसंस्थापनार्थाय ग्रहाज्जाताः शुभाः क्रमात् ।। 4 ।।

यद्यपि अजन्मा (अज) भगवान् वासुदेव के अनेक अवतार हैं, लेकिन सभी प्राणियों को कर्मफल देने वाले ग्रहरूप अवतार मुख्य हैं । दैत्यों के बल का नाश करने के लिए, देवों के बल को बढ़ाने के लिए, धर्म संस्थापनार्थ ग्रहों से रामादि मुख्य अवतार हुए हैं ।

रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः ।

नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुधः सोमसुतस्य च ।। 5 ।।

वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च ।

कूर्मो भास्करपुत्रस्य सैंहिकेयस्य सूकरः ।। 6 ।।

केतोर्मीनावतारश्च ये चान्ये तेऽपि खेटजाः ।

परात्मांशोऽधिको येषु ते सर्वे खेचराभिधाः ।। 7 ।।

सूर्य से रामावतार, चन्द्रमा से कृष्णावतार, मंगल से नरसिंहावतार, बुध से बुद्धावतार, गुरु से वामनावतार, शुक्र से परशुरामावतार, शनि से कूर्मावतार, राहु से वराहावतार, केतु से मत्स्यवातार हुए हैं । अन्य अवतार

भी ग्रहों से ही हुए हैं तथा उनमें परमात्मांश की अधिकता है। परमात्मांश के आधिक्य के कारण ही इनका नाम 'खेचर' आकाशचारी मुख्य ग्रहों के अतिरिक्त अन्य नक्षत्र, तारे उपग्रह आदि पड़ा है।

जीवांशो ह्यधिको येषु जीवास्ते वै प्रकीर्तिताः।
सूर्यादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च परमात्मांशनिःसृताः।। 8।।
रामकृष्णादयः सर्वे ह्यवतारा भवन्ति वै।
तत्रैव ते विलीयन्ते पुनः कार्योत्तरे सदा।। 9।।
जीवांशनिःसृतास्तेषां तेभ्यो जाता नरादयः।
तेऽपि तत्रैव लीयन्ते तेऽव्यक्ते समयन्ति हि।। 10।।
इदं ते कथितं विप्र ! सर्वं यस्मिन् भवेदिति।
भूतान्यपि भविष्यन्ति तत्तज्जानन्ति तद्विदः।। 11।।
विना तज्ज्यौतिषं नान्योज्ञातुं शक्नोति कर्हिचित्।
तस्मादवश्यमध्येयं ब्राह्मणैश्च विशेषतः।। 12।।
यो नरः शास्त्रमज्ञात्वा ज्यौतिषं खलु निन्दति।
रौरवं नरकं भुक्त्वा चान्धत्वं चान्यजन्मनि।। 13।।

जिनमें जीवांश की अधिकता होती है, वे 'जीव' कहलाते हैं। सूर्यादि ग्रहों के अधिकांश से रामकृष्णादि अवतार जिस प्रकार हुए हैं, उसी तरह से ग्रहों के अल्पांश से मनुष्यादि प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। जीव या परमात्मभूत सभी अन्ततोगत्वा अपना कार्य समाप्त कर पुनः उन्हीं ग्रहेन्द्रों में समा जाते हैं। प्रलय काल में समस्त ग्रहादि भी अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। अव्यक्त से उत्पन्न इस सृष्टि या सर्ग का रहस्य हमने तुम्हें बताया है, इसे जान लेने से भूत व भविष्य का ज्ञान सुकर है।

प्रलय के विषय में परमात्मभूत अवतार तो स्वयं ही जानते हैं, लेकिन शेष जीवांश प्रधान मनुष्यादि ज्योतिषशास्त्र की सहायता के बिना किसी भी प्रकार से भूत या भविष्यत् संसार के परिणाम नहीं जान सकते।

इसीलिए सब को (विशेषतया ब्राह्मणों को) ज्योतिशास्त्र का विधिवत् अध्ययन करना चाहिए।

जो मनुष्य शास्त्र को बिना जाने व पढ़े, इसकी निन्दा करता है, वह रोग व नरक भोगकर पुनः जन्म होने पर अन्धा होता है।

राम, कृष्ण, नृसिंह व व वराह को सम्पूर्ण अवतार कहकर तथा इनका सम्बन्ध सूर्य, चन्द्रमा, मंगल व राहु से जोड़कर फलित में विशेषतया अस्तित्व, अरिष्ट या मृत्यु में इन ग्रहों का विचार करने का निर्देश किया गया है। अव्यक्त या 'विष्णु' स्वयं 12 आदित्यों में से एक हैं। आदित्य

अर्थात् अदिति के पुत्र (देवता) व दैत्य अर्थात् दिति पुत्र राक्षस या दैत्य हैं। देव या आदित्य प्रकाश रूप एवं दैत्य अंधकार या छाया रूप हैं। अतः दैत्यों (तम) के बलनाश के लिए, देवताओं के बलवर्धन के लिए इत्यादि प्रयोजन ग्रहावतारों का कहना ठीक ही है। अव्यक्त या सूर्य रूप ग्रहेन्द्र से सारे ग्रह प्रकाशित होते हैं, इसका संकेत भी यहाँ किया गया है। इस तरह महर्षि ने यहाँ कर्मफल देने वाले, सर्व प्राणियों के नियामक होने के कारण नौ ग्रह माने हैं। स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिष में प्रयुक्त 'ग्रह' शब्द विशिष्ट अर्थ रखता है। प्राणियों को फल देने के लिए ग्रहण करने वाले, ग्रह कहलाते हैं। अतः समस्त संसार मुख्यतया इन 9 ग्रहों के अधीन है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामवतारकथनाध्यायो द्वितीयः ।।2।।

3

।।अथ ग्रहगुणस्वरूपाध्यायः।।

कथितं भवता प्रेम्णा ग्रहावतारणं मुने !।
तेषां गुणस्वरूपाद्यं कृपया कथ्यतां पुनः ।।1।।

मैत्रेय बोले–हे मुने ! आपने प्रेमपूर्वक मुझे ग्रहों के अवतारों के विषय में बताया है, कृपया अब ग्रहों के गुणों व स्वरूपों के विषय में कहें।

नक्षत्र परिभाषा :–

श्रृणु विप्र ! प्रवक्ष्यामि भग्रहाणां परिस्थितिम्।
आकाशे यानि दृश्यन्ते ज्योतिर्बिम्बान्यनेकशः ।।2।।
तेषु नक्षत्रसंज्ञानि ग्रहसंज्ञानि कानिचित्।
तानि नक्षत्रनामानि स्थिरस्थानानि यानि वै ।।3।।

पराशर बोले–विप्रवर ! अब मैं आकाश में नक्षत्रों व ग्रहों की स्थितियों को बताता हूं। आकाश में जितने ज्योतिः बिम्ब (तारे आदि) दिखते हैं उनमें से कुछ का नाम नक्षत्र है तथा कुछ को ग्रह कहते हैं।

जिनके स्थान सदैव स्थिर हैं अर्थात् जिन तारों में परस्पर अन्तर सदैव समान रहता है, उन्हें नक्षत्र कहते हैं।

ग्रह व लग्न परिभाषा :–

गच्छन्तो भानि गृह्णन्ति सततं ये तु ते ग्रहाः।
भचक्रस्य नगाश्व्यंशा अश्विन्यादि–समाह्वयाः ।।4।।
तद्द्वादशविभागास्तु तुल्या मेषादि संज्ञकाः।
प्रसिद्धा राशयः सन्ति ग्रहास्त्वर्कादिसंज्ञकाः ।।5।।

राशीनामुदयो लग्नं तद्वशादेव जन्मिनाम् ।

ग्रहयोग–वियोगाभ्यां फलं चिन्त्यं शुभाशुभम् ।। 6 ।।

जो ज्योतिः पिण्ड आकाश में सदैव परिक्रमण करते हुए उक्त तारों या नक्षत्रों को पार करते हुए जाते हैं, वे ग्रह कहलाते हैं ।

भचक्र अर्थात् नक्षत्र चक्र या राशि चक्र का 27 वाँ भाग $\frac{360^0}{27} = 13^0.20'$ एक नक्षत्र है । उन भागों का नाम क्रमशः अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र हैं ।

यदि उक्त भचक्र के समान 12 भाग कर दिए जाएँ अर्थात् 30^0 के तुल्य एक भाग क्रमशः मेषादि राशियाँ कहलाती हैं ।

सूर्यादि नौ ग्रह प्रसिद्ध ही हैं । राशियों का उदय होना ही लग्न है । उसी उदय लग्न में स्थित ग्रह स्थिति (योगायोग) का विचार करके मनुष्यों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए ।

संज्ञा नक्षत्रवृन्दानां ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः ।

एतच्छास्त्रानुसारेण राशि–खेटफलं ब्रुवे ।। 7 ।।

उक्त अश्विनी आदि नक्षत्रों के नाम अन्य प्रसिद्ध प्रारम्भिक ग्रन्थों से जान लेने चाहिएं । पुनश्च नक्षत्रों की चर, स्थिर, उग्र आदि संज्ञाएं भी शास्त्रान्तर से जानना ठीक है । अब राशि व ग्रहों की स्थिति से फल कथन बता रहा हूँ ।

दृग्गणित से ग्रह शुद्धि–

यस्मिन् काले यतः खेटा यान्ति दृग्गणितैक्यताम् ।

तत एव स्फुटाः कार्याः दिक्कालौ स्फुटौ विदा ।। 8 ।।

भूकेन्द्रदृग्भवैः साध्यं लग्नं राश्युदयैः स्फुटम् ।

अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं भबिम्बीयै बुधैः सदा ।। 9 ।।

लग्नं दृष्टफलार्थं तु स्वस्थानीयैर्भवृत्तजैः ।

अथादौ वच्मि खेटानां जातिरूपगुणानहम् ।। 10 ।।

जिस पद्धति, करण या सिद्धान्त से दृग्गणितैक्य युक्त वेध सिद्ध ग्रह प्राप्त हो, उसी का अवलम्बन करना चाहिए । उसी कारण से स्पष्ट दिशा व स्पष्ट काल का साधन करना चाहिए ।

अदृष्ट फल अर्थात् कुण्डली से फलादेशार्थ स्थानीय पूर्वक्षितिज पर उदित राशि को लग्न न मानकर भू केन्द्रीय अक्षांशों से साधित लग्न से फलादेश करना चाहिए ।

दृष्टपदार्थ अर्थात् ग्रहणादि के ज्ञानार्थ ही स्थानीय उदय लग्न को लग्न मानना चाहिए ।

इसके बाद अब मैं प्रारम्भ में ग्रहों की जाति, वर्ण, रूप, गुणादि का स्पष्टीकरण करता हूँ।

होराफल कहने में ग्रहों का वेधसिद्ध होना अर्थात् गणित द्वारा साधित ग्रह स्पष्ट एवं वास्तविक आकाशीय ग्रह स्थिति में समानता दिखाना आवश्यक है, इसमें कोई विवाद नहीं है। आचार्यो व ऋषियों ने समय समय पर गणित व प्रत्यक्ष दर्शन में समन्वय स्थापित करने के लिए बीज संस्कार (CORRECTIONS) बताए ही हैं, लेकिन पहले 'राशीनामुदयो लग्नम्' कहकर बताया था कि राशि चक्र की जो राशि अभीष्ट समय में पूर्वीय क्षितिज पर दिखाई दे, वही राशि लग्न होता है। अब यह उदय क्षितिज सर्वत्र पृथक् पृथक् देश भेद से भिन्न हुआ करता है। जिस प्रकार विभिन्न अक्षांशों पर सूर्योदय काल भिन्न होता है, तद्वत् राशियों का उदय भी भिन्न समय पर हुआ करता है। अतः भूमध्य के अक्षांशों पर लग्न साधित करके भूमण्डल पर कहीं भी उत्पन्न सभी व्यक्तियों का फलादेश करना चाहिए, यह बात पं० सीताराम झा जी के संस्करण में ही अधिक है। हमारे विचार से स्थानीय उदय लग्न ही लग्न है, इसमें कोई विवाद नहीं है। यह क्लिष्ट कल्पना पं० झा जी की निजी उड़ान है, जिसका संशोधन वे बाद में स्वयं अप्रत्यक्ष रूप से कर चुके थे। कमलाकर आदि आचार्यो का प्रमाण देकर जो बात झा जी ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया था, वह अव्यावहारिक व शास्त्रविरुद्ध ही है। इस विषय में हम 'उलझे प्रश्न सुलझे उत्तर' में भी लिख चुके हैं। इस प्रसंग के ये श्लोक झा जी के स्वनिर्मित प्रतीत होते हैं।

ग्रहों के नाम –

अथ खेटा रविश्चन्द्रो मंगलश्च बुधस्तथा।
गुरुः शुक्रः शनी राहुः केतुश्चैते यथाक्रमम्।। 11।।
तत्रार्क–शनि–भूपुत्राः क्षीणेन्दु–राहु–केतवः।
क्रूराः, शेषग्रहा सौम्याः, क्रूरः क्रूर–युतो बुधः।।12।।

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु व केतु ये क्रमशः 9 ग्रह होते हैं। इनमें से सूर्य, शनि व मंगल तथा क्षीण चन्द्र, राहु एवं केतु पापग्रह या क्रूर ग्रह हैं तथा शेष ग्रह गुरु, शुक्र एवं वर्धमान चन्द्रमा तथा पाप संग रहित बुध शुभ हैं। पापग्रह के साथ स्थित रहने पर बुध क्रूर ही होता है।

ग्रहों का आत्मादि विभाग :–

सर्वात्मा च दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः।
सत्त्वं कुजो बुधैः प्रोक्तो बुधो वाणीप्रदायकः।। 13।।

देवेज्यो ज्ञानसुखदो भृगुर्वीर्यप्रदायकः ।

ऋषिभिः प्राक्तनैः प्रोक्तश्छायासूनुश्च दुःखदः ।। 14 ।।

रविचन्द्रौ तु राजानौ नेता ज्ञेयो धरात्मजः ।

बुधो राजकुमारश्च सचिवौ गुरुभार्गवौ ।। 15 ।।

प्रेष्यको रविपुत्रश्च सेना स्वर्भानुपुच्छकौ ।

एवं क्रमेण वै विप्र ! सूर्यादीन् प्रविचिन्तयेत् ।। 16 ।।

सूर्य समस्त चराचर जगत् की आत्मा एवं चन्द्रमा मन का प्रतिनिधि है । मंगल सत्त्व (पराक्रम या मनोबल), बुध वाणी देने वाला है ।

बृहस्पति ज्ञान व सुख का प्रतिनिधि है तथा शुक्र वीर्यदाता, काम–सुख का प्रतिनिधि है । प्राचीन ऋषियों ने शनि को दुःख का दाता माना है । इनमें भी सूर्य व चन्द्रमा राजा, मंगल सेनापति, बुध राजकुमार, गुरु व शुक्र मन्त्री तथा शनि प्रेष्टा (दास) है । राहु व केतु सेना के प्रतिनिधि हैं । इस प्रकार सूर्यादि ग्रहों के बलाबल से फल–योग्यता का विचार करना चाहिए ।

ग्रहों का वर्ण :–

रक्तश्यामो दिवाधीशो गौरगात्रो निशाकरः ।

नात्युच्चांगः कुजो रक्तो दूर्वाश्यामो बुधस्तथा ।। 17 ।।

गौरगात्रो गुरुर्ज्ञेयः शुक्रः श्यावस्तथैव च ।

कृष्णदेहो रवेः पुत्रो ज्ञायते द्विजसत्तम ! ।। 18 ।।

सूर्य का रंग लाल मिश्रित साँवला अर्थात् लाख के समान है । चन्द्रमा गौरवर्ण, मंगल मध्यम कद वाला एवं लाल रंग से युक्त है । बुध का रंग घास के समान साँवलापन लिए हुए हरी रंगत से युक्त है । गुरु गौर वर्ण तथा शुक्र का चितकबरा वर्ण है । सूर्यपुत्र शनि काले रंग का है ।

ग्रहों के देवता :–

वह्न्यम्बुशिखिजा विष्णुविडौजःशचिका द्विज ! ।

सूर्यादीनां खगानां च देवा ज्ञेयाः क्रमेण च ।। 19 ।।

अग्नि, जल कार्त्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्मा ये सात क्रमशः सूर्यादि सात ग्रहों के देवता हैं ।

ग्रहों का पुं–स्त्री–नपुंसकत्व :–

क्लीबौ द्वौ सौम्यसौरी च युवतीन्दुभृगू द्विज ! ।

नराः शेषाश्च विज्ञेया भानुर्भौमो गुरुस्तथा ।। 20 ।।

अग्नि भूमिनभस्तोयवायवः क्रमतो द्विज ! ।

भौमादीनां ग्रहाणां च तत्त्वानीति यथाक्रमम् ।। 21 ।।

बुध व शनि नपुंसक, चन्द्रमा व शुक्र युवती हैं । शेष सूर्य, मंगल, गुरु पुरुष ग्रह हैं ।

अग्नि, भूमि, आकाश, जल, वायु ये क्रमशः मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के तत्त्व (पंचतत्त्व) हैं ।

यहाँ सूर्य व चन्द्रमा के क्रमशः अग्नि व जल तत्त्व समझने योग्य हैं । पिछले श्लोक में महर्षि ने 'वह्न्यम्बु' कहकर इसे स्पष्ट किया है ।

ग्रहों के वर्ण व सत्त्वादि गुण :–

गुरुशुक्रौ विप्रवर्णौ कुजार्कौ क्षत्रियौ द्विज ! ।

शशिसौम्यौ वैश्यवर्णौ शनिः शूद्रो द्विजोत्तम ! ।। 22 ।।

जीवसूर्येन्दवः सत्त्वं बुधशुक्रौ रजस्तथा ।

सूर्यपुत्रधरापुत्रौ तमःप्रकृतिकौ द्विज ! ।। 23 ।।

गुरु व शुक्र ब्राह्मण, मंगल व सूर्य क्षत्रिय, चन्द्रमा व बुध वैश्य, एवं शनि शूद्र वर्ण है ।

गुरु, सूर्य, चन्द्रमा सत्त्वगुणी, बुध व शुक्र रजोगुणी तथा शनि मंगल तमोगुणी ग्रह हैं ।

यहाँ शुक्र को मध्यम श्रेणी ब्राह्मण, गुरु को उत्तम श्रोत्रीय ब्राह्मण, सूर्य को राजपदाधिष्ठित क्षत्रिय, मंगल को मध्यम क्षत्रिय, चन्द्रमा को उदार वैश्य, बुध को पक्का व्यापारी वैश्य समझना चाहिए । शनि, राहु व केतु सभी शूद्र, अन्त्यज तथा संकरवर्ण के अधिपति हैं ।

ग्रहों का स्वरूप :–

मधुपिंगलदृक्सूर्यश्चतुरस्रः शुचिर्द्विज ! ।

पित्तप्रकृतिको धीमान् पुमानल्पकचो द्विज ! ।। 24 ।।

बहुवातकफः प्राज्ञश्चन्द्रोवृत्ततनुः द्विज ! ।

शुभदृङ्मधुवाक्यश्च चंचलो मदनातुरः ।। 25 ।।

क्रूरो रक्तेक्षणो भौमश्चपलो दारमूर्तिकः ।

पित्तप्रकृतिः क्रोधी कृशमध्यतनुर्द्विज ! ।। 26 ।।

वपुःश्रेठः श्लिष्टवाक् च ह्यतिहास्यरुचिर्बुधः ।

पित्तवान् कफवान् विप्र ! मारुतप्रकृतिस्तथा ।।27 ।।

सूर्य शहद के समान भूरी आँखों वाला, चौकोर अर्थात् समान लम्बाई–चौड़ाई युक्त शरीर वाला, पवित्राचरण करने वाला, पित्त प्रधान प्रकृति, बुद्धिमान्, पुरुष तथा कम बालों वाला है।

चन्द्रमा बहुत वात कफ वाला, बुद्धिमान, चंचल स्वभाव, कामातुर, गोलमटोल शरीर वाला, शुभदृष्टि, मधुर वाणी बोलने वाला है।

मंगल क्रूर स्वभाव वाला, आक्रामक, लाल आँखों वाला, उतावला, उदार स्वभाव या आकार वाला, पित्तप्रकृति, क्रोधी, पतली कमर वाला होता है।

बुध सुन्दर आकर्षक शरीर वाला, गूढ अर्थ से युक्त वाक्य बोलने वाला, हास्य को समझने वाला तथा स्वयं हास्यप्रिय वात, पित्त व कफ मिश्रित प्रकृति वाला होता है।

बृहद्गात्रो गुरुश्चैव पिंगलो मूर्द्धजेक्षणैः।
कफप्रकृतिको धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः।। 28।।
सुखी कान्तवपुः श्रेष्ठः सुनेत्रश्च भृगोः सुतः।।
काव्यकर्ता कफाधिक्योऽनिलात्मा वक्रमूर्धजः।।29।।
कृशदीर्घतनुः सौरिः पिंगदृगनिलात्मकः।
स्थूलदन्तोऽलसः पङ्गुः खररोमकचो द्विज!।। 30।।
धूम्राकारो नीलतनुर्वनस्थोऽपि भयंकरः।
वातप्रकृतिको धीमान् स्वर्भानुस्तत्समः शिखी।। 31।।

बृहस्पति बड़े लम्बे चौड़े शरीर वाला, भूरे बालों वाला, भूरी आँखों वाला, कफ प्रधान प्रकृति, बुद्धिमान् व शास्त्रों को जानने वाला होता हे।

शुक्र सुन्दर शरीर वाला, सुन्दर आँखों वाला, सुखी, श्रेष्ठ, कवित्त्व शक्ति युक्त, कफ प्रधान प्रकृति, घुँघराले बालों वाला, वातयुक्त शरीर वाला होता है। शनि कफ प्रकृति, लम्बा व पतला शरीर, विकृत दृष्टि वाला, वायुप्रधान, मोटे दाँतों वाला, आलसी, शरीर संचालन में विकार युक्त, मोटे रूखे बालों व रोमों वाला होता है।

धुएँ के समान साँवले शरीर वाला, वनवासी, भयंकर आकार–प्रकार वाला, वायु प्रधान प्रकृति, बुद्धिमान्, यह राहु का स्वरूप है। केतु का स्वरूप भी राहु के समान ही है।

जन्म समय में सर्वबली ग्रह या लग्नेश, लग्न नवांशेश चन्द्रमा के शरीर आदि से मनुष्य का शील, आकार व स्वभाव का निर्णय करते समय उक्त बातों का प्रयोग करना चाहिए।

ग्रहों की धातु, स्थान, रस आदि :–

अस्थि रक्तस्तथा मज्जा त्वग् वसा वीर्यमेव च ।
स्नायुरेषामधीशाश्च क्रमात् सूर्यादयो द्विज ! । । 32 । ।
देवालयजलं वह्निक्रीडादीनां तथैव च ।
कोशशय्योत्कराणां तु नाथाः सूर्यादयः क्रमात् । । 33 । ।
अयनक्षणवारर्तुमासपक्षसमा द्विज ! ।
सूर्यादीनां क्रमाज्ज्ञेया निर्विशंकं द्विजोत्तम ! । । 34 । ।
कटु–क्षार–तिक्त–मिश्र–मधुराम्ल–कषायकाः ।
क्रमेण सर्वे विज्ञेयाः सूर्यादीनां रसा इति । । 35 । ।

हड्डी, खून, मज्जा, त्वचा, चर्बी, वीर्य, स्नायु ये सूर्यादि ग्रहों की सात धातुएँ हैं ।

देवालय, जलस्थान, अग्निस्थान, क्रीड़ा स्थान, कोषागार, शयनागार, एवं उत्कर (कूड़ा–करकट डालने का स्थान) मैला स्थान ये क्रमशः सूर्य से शनि पर्यन्त ग्रहों के स्थान हैं ।

अयन (छह मास) क्षण, वार (एक दिन–रात) ऋतु (दो मास) पक्ष (पन्द्रह दिन) एवं वर्ष ये सूर्यादि ग्रहों के कालखण्ड हैं ।

कटु, नमकीन, तीखा मसालेदार, मिलाजुला, अर्थात् खटटा मीठा, कषैला ये सूर्यादि ग्रहों के रस हैं ।

बलवान् ग्रह से शरीर की सम्बन्धित धातु पुष्ट होती है तथा निर्बल से धातु निर्बल ही रहती है । ग्रहों के स्थान से प्रसव स्थान, प्रश्न में सम्बन्धित स्थान समझना चाहिए ।

ग्रहों के काल का प्रयोग प्रश्न समय में कार्य सिद्धि की अवधि जानने के लिए होता है । लग्नेश नवांश या लग्नगत नवांशेश से अयन, क्षणादि काल जानना योग्य है ।

ग्रहों का दिग्बल, काल, चेष्टा निसर्ग बल :–

बुधेज्यौ बलिनौ पूर्वे रवि–भौमौ च दक्षिणे ।
पश्चिमे सूर्यपुत्रश्च सित–चन्द्रौ तथोत्तरे । । 36 । ।
निशायां बलिनश्चन्द्र–कुज–सौरा भवन्ति हि ।
सर्वदा ज्ञो बली ज्ञेयो दिने शेषा द्विजोत्तम ! । । 37 । ।
कृष्णे च बलिनः क्रूराः सौम्या वीर्ययुताः सिते ।
सौम्यायने सौम्यखेटो बली याम्यायनेऽपरः । । 38 । ।

वर्षमासाहहोराणां पतयो बलिनस्तथा ।

शमंबुगुशुचंराद्या वृद्धितो वीर्यवत्तराः । । 39 । ।

बुध व गुरु पूर्व दिशा या लग्न में, सूर्य मंगल दक्षिण दिशा या दशम राशि भाव में, शनि पश्चिम दिशा या सप्तम लग्न में, शुक्र व चन्द्रमा उत्तर दिशा या चतुर्थ लग्न में बलवान् होते हैं। यह ग्रहों का दिग्बल है ।

चन्द्रमा, मंगल व शनि रात में बलवान् अर्थात् रात्रि बली होते हैं । बुध सदैव बलवान् है तथा शेष सूर्य, गुरु, शुक्र दिन में बली होते हैं ।

सभी क्रूर ग्रह कृष्ण पक्ष में तथा शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष में बली होते हैं । शुभ ग्रह उत्तरायण में एवं क्रूर ग्रह दक्षिणायन में बली होते हैं ।

वर्षेश सारे वर्ष में, मासेश सारे मास में, वारेश अपने वार में, होरेश अपनी होरा में बलवान् होता है । यह काल बल है ।

शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा व सूर्य क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक निसर्गबली होते हैं । यह निसर्गबल है ।

ग्रहों के वृक्ष :–

सूर्यो जनयति स्थूलान् दुर्भगान् सूर्यपुत्रकः ।

क्षीरोपेतांश्तथा चन्द्रः कटुकाद्यान् धरासुतः । । 40 । ।

पुष्पवृक्षं भृगोः पुत्रो गुरुर्ज्ञौ सफलाफलौ ।

नीरसान् सूर्यपुत्रश्च एवं ज्ञेयाः खगा द्विज ! । । 41 । ।

सूर्य स्थूल अर्थात् सारयुक्त मजबूत इमारती उपयोग वाले वृक्षों को, शनि दूषित व निन्दित, देखने में खराब लगने वाले, मन को प्रसन्नता न देने वाले वृक्षों को, चन्द्रमा दुग्धयुक्त वृक्षों को अर्थात् जिनके भीतर जल, रस आदि रहता हो जैसे नारियल, रबर, वट आदि को तथा मंगल कडुवे नीम आदि अथवा विशेषतया तीखे यथा सरसों, राई, मिर्च आदि वृक्षों को उत्पन्न करता है । अर्थात् इन वृक्षों पर इन ग्रहों का आधिपत्य रहता है ।

शुक्र फूलदार वृक्षों को, गुरु फलदार वृक्षों को, बुध फलरहित लेकिन शुभ चन्दनादि वृक्षों को, शनि सूखे रसरहित वृक्षों को उत्पन्न करता है ।

राहु केतु के विषय में ध्यातव्य है कि ये जैसे ग्रह के साथ स्थित हों या जिस ग्रह की राशि में हों, उसी ग्रह के वृक्षों के अधिपति होते हैं । अथवा जहरीले, अभक्ष्य, निन्दित फल वाले वृक्षों के अधिपति राहु केतु हैं ।

कहा गया है––

विषवृक्षाण्यभोज्यानि दुर्भगानि फलानि च ।
उपेतग्रहतुल्यानि राहोरौद्भिदमीरितम् ।।

ग्रहों के वस्त्रादि :–

शिखि स्वर्भानुमन्दानां वल्मीकं स्थानमुच्यते ।
चित्रकन्था फणीन्द्रस्य केतोश्छिद्रयुतो द्विज ।। 42 ।।
सीसं राहोर्नीलमणिः केतोर्ज्ञेयो द्विजोत्तम ।
गुरोः पीताम्बरं विप्र ! भृगोः क्षौमं तथैव च ।। 43 ।।
रक्तक्षौमं भास्करस्य इन्दोः क्षौमं सितं द्विज ।
बुधस्य कृष्णक्षौमं तु रक्तवस्त्रं कुजस्य च ।।
वस्त्रं चित्रं शनेर्विप्र ! पट्टवस्त्रं तथैव च ।। 44 ।।

शनि, राहु व केतु का स्थान वल्मीक अर्थात्, बिल, बाँबी, गूढ़ स्थान, भूमिगत स्थान, गुफा, गड्ढा आदि समझना चाहिए ।

राहु का वस्त्र अनेक रंगों से युक्त कन्था (गुदड़ी), केतु का वस्त्र छेदयुक्त होता है ।

राहु की धातु सीसा, केतु की नीलमणि, नीला पत्थर, फिरोजा, कटैला आदि हैं ।

गुरु का वस्त्र पीला, शुक्र का रेशमी कोमल वस्त्र, सूर्य का लाल व रेशमी वस्त्र, चन्द्रमा का सफेद या उज्ज्वल रेशमी वस्त्र, बुध का काला या नीला रेशम, मंगल का साधारण लाल वस्त्र, शनि का मोटा रेशम अथवा चितकबरा कपड़ा होता है ।

मूल में 'क्षौम' शब्द का प्रयोग किया गया है । इसका अर्थ रेशमी कपड़ा अथवा बारीक, मुलायम, चमकीला, महीन मलमल आदि भी हो सकता है ।

ग्रहों की ऋतुएँ :–

भगोर्ऋतुवसन्तश्च कुजभान्वोश्च ग्रीष्मकः ।
चन्द्रस्य वर्षा विज्ञेया शरच्चैव तथा विदः ।। 45 ।।
हेमन्तोऽपिगुरोर्ज्ञेयः शनेस्तु शिशिरो द्विज ! ।
अष्टौ सामाश्च स्वर्भानोः केतोर्मासत्रयं द्विज ! ।। 46 ।।

शुक्र की वसन्त ऋतु, मंगल व सूर्य की ग्रीष्म, चन्द्रमा की वर्षा, बुध की शरत्, गुरु की हेमन्त व शनि की शिशिर ऋतु होती है । राहु वर्ष में 8 मास व केतु तीन मास तक प्रभावी रहता है ।

सूर्यादि ग्रहों की ऋतुएँ उक्त प्रकार से ही प्रसिद्ध हैं, लेकिन राहु केतु वर्ष के कौन से मास से प्रभावी होते हैं, यह स्पष्ट नहीं है । पुनश्च 8 व 3 कुल 11 मास हुए तब बारहवाँ महीना कहाँ लगेगा ? इत्यादि

ग्रहों की धातु मूल जीव संज्ञा :–

राह्वार पंगुचन्द्राश्च विज्ञेया धातुखेचराः ।
मूलग्रहौ सूर्यशुक्रौ अपरा जीवसंज्ञकाः ।। 47 ।।
ग्रहेषु मन्दो वृद्धोऽस्ति आयुर्वृद्धिप्रदायकः ।
नैसर्गिके बहुसमान् ददाति द्विजसत्तम ।। 48 ।।

राहु, मंगल, शनि व चन्द्र ये धातुसंज्ञक ग्रह हैं । सूर्य व शुक्र मूल संज्ञक तथा शेष बुध, गुरु, केतु जीवसंज्ञक ग्रह हैं ।

सभी ग्रहों में शनि सबसे वृद्ध है, अतः निसर्ग आयु संग में सबसे अधिक वर्ष देता है । सामान्यतः यह आयुष्यवर्धक ग्रह है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर वर्तमान संस्कृत व्याकारण के नियमों का पालन नहीं दिखता है । अतः रामायणादि की तरह प्राप्त होने वाले अपाणिनीय प्रयोगों को 'आर्ष' समझकर इसकी प्राचीनता का निश्चय हो जाता है ।

ग्रहों के उच्चनीच स्थान :–

मेषो वृषो मृगः कन्या कर्को मीनस्तथा तुला ।
सूर्यादीनां क्रमादेते कथिता उच्चराशयः ।। 49 ।।
भागादशत्रयोऽष्टाश्व्य स्तिथ्योऽक्षाभमिता नखाः ।।
उच्चात् सप्तमभं नीचं तैरेवांशैः प्रकीर्तितम् ।। 50 ।।

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, व तुला ये राशियाँ क्रमशः सूर्य से शनि पर्यन्त उच्च राशियाँ हैं । 10.3.28.15.5.27.20 ये इन राशियों में परमोच्च अंश हैं ।

उच्चराशि से सातवीं राशि में उक्त अंशों में ही ग्रहों के परमनीच स्थान होते हैं ।

मूलत्रिकोण निर्णय :–

रवेः सिंहे नखांशाश्च त्रिकोणमपरे गृहम् ।
उच्चमिन्दोर्वृषे त्र्यंशास्त्रिकोणमपरेऽशकाः । । 51 । ।
मेषेऽर्कांशास्तु भौमस्य त्रिकोणमपरे स्वभम् ।
उच्चं बुधस्य कन्यायामुक्तं पंचदशांशकाःम् । । 52 । ।
ततः पंचांशकाः प्रोक्तं त्रिकोणमपरे गृहम् ।
चापे दशांशाः जीवस्य त्रिकोणांशाः परे मताः । । 53 । ।
तुले शुक्रस्य तिथ्यंशा स्त्रिकोणमपरे गृहम् ।
शनेः कुम्भे नखांशाश्च त्रिकोणमपरे स्वभम् । । 54 । ।

सिंह राशि में 0-20^0 अंश तक सूर्य मूलत्रिकोण तथा शेष अंशों में स्वक्षेत्र होता है ।

वृषराशि में चन्द्रमा तीन अंशों तक उच्च तथा आगे शेष अंशों में मूलत्रिकोणी रहता है ।

मंगल का मेषराशि में 12 अंश तक मूल त्रिकोण व तत्पश्चात् स्वक्षेत्र होता है ।

बुध का कन्या राशि में 15^0 अंश तक उच्च, 16^0–20^0 तक मूलत्रिकोण एवं 21^0–30^0 तक स्वगृह होता है ।

बृहस्पति धनुराशि में 10^0 अंश तक मूलत्रिकोण तत्पश्चात् स्वगृही होता है ।

तुला राशि में शुक्र 15^0 अंशों तक त्रिकोणी तथा तत्पश्चात् स्वक्षेत्री होता है । कुम्भ राशि में शनि 20 अंश तक मूलत्रिकोणी तथा शेष अंशों में स्वगृही होता है ।

ग्रहों की निसर्ग मैत्री :–

रवेः समोज्ञः सितसूर्यपुत्रावरी परे तु सुह्रदो भवेयुः ।
चन्द्रस्य नारी रविचन्द्रपुत्रौ मित्रे समाः शेष नभश्चराः स्युः । । 55 । ।
समौ सितार्की शशिजश्च शत्रुर्मित्राणि शेषाः पृथिवीसुतस्य ।
शत्रुः शशी सूर्यसितौ च मित्रे समाः ,परे स्युः शशिनन्दनस्य । । 56 । ।
गुरोर्ज्ञशुक्रौ रिपुसंज्ञकौ तु शंनिः समोऽन्ये सुह्रदो भवन्ति ।
शुक्रस्य मित्रे बुधसूर्यपुत्रौ समौ कुजार्यावितरावरी तौ । । 57 । ।
शनेः समो वाक्पतिरिन्दुसूनुशुक्रौ च मित्रे रिपवः परेऽपि ।
ध्रुवं ग्रहाणां चतुराननेन शत्रुत्वमित्रत्वसमत्वमुक्तम् । । 58 । ।

ब्रह्माजी ने ग्रहों की परस्पर मैत्री, शत्रुता व समता इसी प्रकार कही है, जैसा कि चक्र में स्पष्ट किया गया है–

ग्रह	मित्र	शत्रु	सम
सूर्य	चन्द्र, मंगल, गुरु	शुक्र,शनि	बुध
चन्द्र	सूर्य, बुध	–	शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि
मंगल	सूर्य, चन्द्र, गुरु	बुध	शुक्र,शनि
बुध	सूर्य,शुक्र	चन्द्र	मंगल, गुरु, शनि
गुरु	सूर्य, चन्द्र, मंगल	बुध,शुक्र	शनि
शुक्र	बुध, शनि	सूर्य,चन्द्र	मंगल, गुरु
शनि	बुध,शुक्र	सूर्य, चन्द्र, मंगल	गुरु

मूल त्रिकोण राशियों से 2.4.8.12.5.9 तथा उच्च राशीश मित्र होते हैं। शेष ग्रह शत्रु हैं। यदि किसी ग्रह की एक राशि मित्रवर्ग में व दूसरी राशि शत्रु वर्ग में आ जाए तो वह सम कहलाता है। यह सत्याचार्य द्वारा समर्थित मैत्री कही जाती है। इस विषय में विस्तृत विवेचन **'बृहज्जातक प्रणवाख्या'** में देखें।

ग्रहों की तात्कालिक मैत्री :–

दशायबन्धुसहज स्वान्त्यस्थास्ते परस्परम्।

तत्काले सुहृदोऽन्यत्र संस्थिताः रिपवो मताः।। 59।।

ग्रह जिस राशि में स्थित हो, उससे 2.3.4 एवं 10.11.12 भावों में स्थित तत्काल मित्र ग्रह होते हैं। अन्य स्थानों में व ग्रह के साथ स्थित ग्रह तत्काल शत्रु होते हैं। यह तात्कालिक मैत्री होती है।

पंचधा मैत्री :–

तत्काले च निसर्गे च मित्रं स्यादधिमित्रकम्।

मित्रं मित्रसमत्वेतु शत्रुः शत्रुसमत्वके।। 60।।

समो मित्ररिपुत्वे तूभयत्राधिरिपू रिपौ।

एवं विविच्य दैवज्ञो जातकस्य फलं वदेत्।। 61।।

जो ग्रह निसर्ग व तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हो तो 'अतिमित्र'। दोनों प्रकार से शत्रु हो तो 'अतिशत्रु' होता है। यदि एक स्थान पर मित्र व अन्यत्र सम हो तो 'मित्र' तथा एकत्र शत्रु व अन्यत्र सम हो तो 'शत्रु होगा। एकत्र शत्रु व अन्यत्र मित्र हो तो 'सम' होता है। इस प्रकार मित्रामित्र विचार करके दैवज्ञों को फल कहना चाहिए।

ग्रहों का स्थान बल :–

स्वोच्चे शुभं बलं पूर्ण त्रिकोणे पादवर्जितम्।
स्वर्क्षेऽर्ध मित्रगेहे तु पादमात्रं प्रकीर्तितम्।। 62।।
पादार्ध समभे प्रोक्तं शून्यं नीचास्त शत्रुभे।
तद्वद् दुष्टफलं ब्रूयाद् व्यत्ययेन विचक्षणः।। 63।।

उच्चस्थ ग्रह शुभ फल 60′ अर्थात् $\frac{1}{1}$, मूलत्रिकोण में चतुर्थांश रहित अर्थात् 45′, स्वक्षेत्र में आधा 30′ कला, मित्रक्षेत्र में चौथाई 15′ कला, समक्षेत्र में $\frac{1}{8}$ अर्थात् 7′.30″ कला तथा शत्रुक्षेत्री या अस्तंगत ग्रह 0 फल देता है। अशुम फल विपरीत क्रम से समझना चाहिए।

।। स्थान बल चक्र।।

	उच्च	मू. त्रि.	स्वगृह	मित्र	सम	नीच शत्रु
शुभ फल	60′	45′	30′	15′	7′.30″	0
अशुभ फल	0	7.30′	15′	30′	45′	60′

अप्रकाशक ग्रहों का स्पष्टीकरण :–

चत्वारो राशयो भानौ सत्रिभागास्त्रयोदश।
युक्त्वा धूमो महादोषः सर्वकर्मविनाशकः।। 64।।
धूमो मण्डलतः शुद्धो व्यतिपातोऽत्र दोषदः।
सषड्भोऽत्र व्यतीपातो परिवेषस्तु दोषकृत्।। 65।।
परिवेषश्च्युतश्चक्रादिन्द्रचापस्तुदोषदः।
वित्र्यंशात्यष्टिभागाढ्यश्चापः केतुः खगोऽशुभः।। 66।।

एकराशियुतः केतुः सूर्यतुल्यः प्रजायते ।

अप्रकाशग्रहाश्चैते पापा दोषप्रदाः स्मृताः ।। 67 ।।

सूर्येन्दुलग्नगेष्वेषु वंशायुर्ज्ञाननाशनम् ।

इति धूमादि दोषाणां स्थितिः पद्मासनोदिता ।। 68 ।।

तात्कालिक स्पष्ट सूर्य में $4.13^{0}.20'$ जोड़ने से 'धूम स्पष्ट' होता है। यह महादोष है तथा सब कार्यो को नष्ट करता है।

धूम स्पष्ट को 12 रशि में से घटाने पर शेष 'व्यतिपात स्पष्ट' होता है। व्यतिपात स्पष्ट में छह राशि जोड़ने से 'परिवेष स्पष्ट' होता है। 12 राशियों में से परिवेष को घटाने पर 'इन्द्र चाप स्पष्ट' होता है। इन्द्रचाप स्पष्ट में $16^{0}.40'$ जोडने से 'उपकेतु स्पष्ट' होता है। उपकेतु स्पष्ट में एक राशि जोड़ने से पुनः पूर्ववत् तात्कालिक स्पष्ट सूर्य होता है।

ये सब अप्रकाशक ग्रह हैं, अर्थात् आकाश में इनका भौतिक पिण्ड नहीं दिखता, लेकिन ये महान् दोष कारक पापिष्ठ उपग्रह होते हैं।

यदि ये धूमादि ग्रह लग्न, चन्द्र के साथ पड़ें तो वंश, आयु व ज्ञान का नाश करते हैं। यह फल ब्रह्मा जी ने कहा है।

उदाहरणार्थ सूर्य स्पष्ट $9.11^{0}.15' + 4.13^{0}.20 = 1.24^{0}.35'$ धूम स्पष्ट है।

$12.0.0 - 1.24^{0}.35' = 10.5^{0}.25'$ 'व्यतिपात स्पष्ट' है। व्यतिपात + 6 राशि करने से $4.5^{0}.25'$ 'परिवेष स्पष्ट' है। $12.0.0 - 4.5^{0}.25 = 7.24^{0}.35'$ 'इन्द्रचाप'हुआ।

$7.24^{0}.35' + 0.16^{0}.40' = 8.11^{0}.15'$ उपकेतु है। उपकेतु में एक राशि जोड़ने से $9.11^{0}.15'$ पुनः स्पष्ट सूर्य हुआ। ये पाँच सूर्य के महादोष कहे जाते हैं।

गुलिक कालवेला, मृत्यु, यमघण्टादि ज्ञान :-

रविवारादि शन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते ।

दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद् गणयेद् क्रमात् ।। 69 ।।

अष्टमोऽशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ।

रात्रिमप्यष्टधाकृत्वा वारेशात्पंचमादितः ।। 70 ।।

गणयेदष्टमः खण्डो निरीशः परिकीर्तितः ।

शन्यंशो गुलिकः प्रोक्तो रव्यंशः कालसंज्ञकः ।। 71 ।।

भौमांशो मृत्युरादिष्टो गुर्वंशो यमघण्टकः ।

सौम्यांशोऽर्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः ।। 72 ।।

रविवार से शनिवार तक गुलिक खण्ड एवं अन्य यमघण्टादि का निरूपण किया जा रहा है। गुलिक साधन के लिए इष्ट दिन का दिनमान समान आठ भागों में विभाजित कर लें। दिन में वार क्रम से इष्ट दिन में जो वार हो वहीं से गणना करने पर क्रमशः सात खण्डों में सातों वारेशों का आधिपत्य आ जाता है। आठवें अंश का कोई स्वामी नहीं होता है। इस प्रकार गणना करने पर दिनमान के जिस अष्टमांश का स्वामी शनि पड़े, वही शनि का अष्टमांश 'गुलिक' कहलाता है।

रात्रि में भी रात्रिमान को 8 से भाग देकर वार क्रम से गणना करें। लेकिन रात्रि के प्रथम अष्टम खण्ड का स्वामी वारेश से पाचवाँ ग्रह होता है, अतः वारेश से पाँचवें ग्रह से शुरू कर क्रमशः सातों वारेशों के खण्ड होंगे। वहाँ भी शनि का अंश गुलिक एवं अष्टम अंश पति रहित होता है।

जिस प्रकार शनि का अष्टमांश गुलिक होता है, उसी तरह सूर्य का अंश 'काल' मंगल का अंश 'मृत्यु', गुरु का अंश 'यमघण्ट' बुध का अंश 'अर्धप्रहर' कहलाता है। ये सब यथा नाम तथा गुण होते हैं, अथवा मनुष्यों के कर्मफल का स्पष्ट संकेत करते हैं।

गुलिक लग्न साधन :–

गुलिकारम्भकाले यत् स्फुटं यज्जन्मकालिकम्।
गुलिकं प्रोच्यते तस्माज्जातकस्य फलं वदेत्।
नामान्तरं तु तस्यैव मान्दिरित्यभिधीयते।। 73।।

पूर्व प्रकार से साधित गुलिकारम्भ काल से सूर्योदायादिष्ट जानकर स्पष्ट लग्न साधन करने पर 'गुलिक लग्न स्पष्ट' हो जाता है। इसी गुलिक का दूसरा नाम 'मान्दि' भी है।

उदाहरणार्थ किसी दिन दिनमान 26.23 घड़ी है। इसे 8 से भाग दिया तो 3.18 अष्टमांश हुआ। उस दिन बुधवार तथा इष्ट घटी 25.18 हैं, 3.18 का एक खण्ड बुध का, 3.18 x 2 = 6.36 तक गुरु खण्ड, 6.36 + 3.18 = 9.54 तक शुक्र खण्ड, 13.12 तक शनि खण्ड गुलिक हुआ। अतः 9.54 इष्ट से 13.12 तक गुलिक काल रहने से 9.54 इष्ट पर उदित लग्न गुलिक लग्न है। अथवा उस दिन सूर्योदय 7.17 IST पर है। अष्टमांश 3.18 घड़ी के घंटा मिनट 1.19 हुए। अतः 7.17 + 1.19 = 8.36 बजे तक बुध खण्ड अर्ध प्रहर, 8.36 + 1.19 = 9.55 बजे तक गुरु खण्ड यमघंटक, तत्पश्चात् 9.55 + 1.19 = 11.14 बजे तक शुक्र का खण्ड तथा 11.14 + 1.19 = 12.33 बजे तक गुलिक है। उस समय मेष लग्न उदित है। अतः गुलिक लग्न मेष हुआ या लग्न में मेष राशि में गुलिक स्थित हुआ।

प्राणपद परिभाषा :–

भांशपादसमैः प्राणैश्चराद्यर्कत्रिकोणभात् ।
उदयादिष्टकालान्तं यद्भं प्राणपदं हि तत् ।। 74 ।।
स्वेष्टकालं पलीकृत्य तिथ्याप्तं भादिकं च यत् ।
चरागद्विभगे भागे भानौ युङ् नवमे सुते ।। 75 ।।
स्फुटं प्राणपदाख्यं तल्लग्नं ज्ञेयं द्विजोत्तम ।
लग्नाद् द्विकोणे तुर्ये च राज्ये प्राणपदं तदा ।। 76 ।।
शुभं जन्म विजानीयात् तथैवैकादशेऽपि च ।
अन्य स्थाने स्थितं चेत् स्यात् तदा जन्माशुभं वदेत् ।। 77 ।।

360 अंशों के चौथाई 90 प्राणों का एक प्राणपद होता है । 'षडभिःप्राणैर्विनाडी स्यात्, इस सिद्धान्तोक्त नियम से 6 प्राण = 1 पल । अतः 90 प्राण = 15 पल का प्राणपद अर्थात् घड़ी की चौथाई के बराबर एक राशि प्राणपद काल होता है । इष्टकालीन प्राणपद राशि जानकर, यदि सूर्य चर राशि में हो तो उसे स्पष्ट सूर्य में ही जोड़ें 1 यदि स्थिर राशि में सूर्य हो तो सूर्य से नवीं राशि में व द्विस्वभाव राशि में सूर्य हो तो सूर्य से पंचम राशि में प्राण राशि जोड़ने से स्पष्ट प्राणपद लग्न होता है ।

अपने इष्टकाल के पल बनाकर, उनमें 15 से भाग देकर जो लब्धि हो वही राशि अंश आदि सूर्य के विचार से सूर्य से 1.9.5 राशि में जोड़ने से भी स्पष्ट प्राणपद होता है ।

उदाहरणार्थ किसी दिन 5.10 सायं पर जन्म हुआ तथा उस दिन सूर्योदय 7.17 पर है । $17.10 - 7.17 = 9.53$ घंटे $\times \frac{5}{2} = 24.42$ इष्ट काल हुआ । इसके पल $1482 \div 15 = 98$ राशि तथा 24 अंश या 2.24^0 मिला । सूर्य $9.11^0.15'$ चर राशि में है । अतः $9.11^015' + 2.40^0.0' = 0.5^0.15'$ स्पष्ट प्राणपद हुआ ।

प्राणपद साधन की द्वितीय विधि :–

घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्च पलैर्युता ।
दिनकरेणापहृतं शेषं प्राणपदं स्मृतम् ।। 78 ।।
शेषात्पलान्ताद् द्विगुणीविधाय राश्यंशसूर्यर्क्षनियोजिताय ।
तत्रापि तद्राशिचरान् क्रमेण लग्नांश प्राणांश पदैक्यता स्यात् ।। 79 ।।

जन्मेष्ट की घड़ियों को 4 से गुणा करके एकत्र स्थापित कर लें । पलों में 15 का भाग देकर लब्धि को पूर्वत्र जोड़ लें । यह राशि है । शेष बचे हुए पलों को 2 से गुणा करने पर अंश होते हैं । इन राश्यंशों को

पूर्ववत् सूर्य चर राशि में हो तो सूर्य में, सूर्य स्थिर राशि में हो नवम राशि में तथा द्विस्वभाव राशि में हो तो पंचम राशि में जोड़ने से स्पष्ट प्राणपद होता है। जन्म लग्न व स्पष्ट प्राणपद के अंशों में समानता रहती है।

इष्ट 24.42 है। 24 घड़ी x 4 = 96 एक स्थान पर रख लिया। 42 ÷ 15 = 2 राशि लब्धि को 96 में जोड़ा तो 98 राशि तथा शेष पल 12 को दुगुना करने से 24 अंश हुए। 98 ÷ 12 = लब्धि 8 शेष 2 राशि 24 अंश को सूर्य में जोड़ने से $0.5^{0}.15'$ स्पष्ट प्राणपद हुआ।

बहुत से संस्करणों में प्राणपद से लग्न की शुद्धि लिखी हुई है। लेकिन प्रस्तुत उदाहरण में इस इष्ट पर दिल्ली में कर्कलग्न के 5 अंश आते हैं। ये अंश प्राणपद के तुल्य नहीं हैं। अंशों में समानता स्थापित करने हेतु इष्ट में शोधन करना चाहिए, यह एक मत है, जिसे हम स्वीकार नहीं करते। हमारी स्पष्ट धारणा है कि प्राणपद द्वारा लग्न शुद्धि करना दूर की कौड़ी है। दूसरी बात यह है कि सभी लग्नों की प्रवृत्ति सूर्योदय व स्पष्ट सूर्य पर आधारित होती है। तब चर, द्विस्वभाव स्थिर राशि में सूर्य रहने से 1.9.5 राशियाँ जोड़कर सूर्य स्पष्ट में जोड़ना क्योंकर युक्त होगा? हमारे विचार से प्राणपद भी एक विशेष लग्न है तथा इसका साधन करने में सर्वत्र सूर्य स्पष्ट में ही मध्यम प्राणांशों को जोड़ना चाहिए। आगे पाराशर में प्राणपद का द्वादश भावों में फल लिखा गया है। अतः प्राणपद से त्रिकोण राशियों 1.5.9 में मनुष्य का जन्मलग्न होता है, ऐसा कहना बिल्कुल असंगत है। प्रस्तुत उदाहरण में ही प्राणपद मिथुन राशि से जन्म लग्न कर्क दूसरा पड़ता है। तब मनुष्य जन्म कैसे सिद्ध होगा। जबकि ये बिल्कुल दो हाथ पैर वाले, पढ़े लिखे साक्षात् व्यक्ति हैं। अतः यह विचार करना हमें बिल्कुल भी युक्त प्रतीत नहीं होता है। अप्रकाशक ग्रहों की तरह कालवेला, अर्धप्रहर, गुलिक, उपकेतु, धूमादि से भी प्राणपद की तरह तब लग्न शुद्धि क्यों न की जाए ? ध्यान रहे, प्राणपद से शुद्ध लग्न मानने पर जन्म लग्न वास्तव में पूर्वीय क्षितिज पर उदीयमान राशि न होकर एक बिल्कुल कल्पित वस्तु हो जाएगा। इष्टशोधन की अन्य अनेक विधियाँ हैं, उनका आश्रय लेना चाहिए।

निषेक लग्न (द्वितीय विधि) :–

यदैतत् जन्म लग्नं वै तन्निषेकस्य चन्द्रमाः।
जन्मचन्द्रस्य राश्यादि तल्लग्नं वै निषेकजम्।।80।।
इति सिद्धं विजानीयात् यथा शुभं प्रणोदितम्।
जन्मलग्नस्य घटिकाः भक्ता वसुशतैरिह।।81।।

लब्धमाधानगतभं जन्मपूर्वकं मासकम् ।

शिष्टा संख्यातु विप्रेन्द्र ! खरसघ्ना तु भाजिता । । 82 । ।

खशून्य वसुभिश्चैव ह्याधानसमकालकम् ।

पराशर बोले–

जन्म लग्न व गर्भाधान कालीन चन्द्रमा स्पष्ट प्रायः तुल्य होते हैं । जन्म कालीन चन्द्रमा के राश्यादि आधान लग्न के तुल्य होते हैं, यह निश्चय से जानना चाहिए, ऐसा शिवजी ने कहा है ।

जन्म लग्न को कला–विकलात्मक बनाकर, उन्हीं कलाओं को पलादि मानकर 800 से भाग दें । लब्धि गर्भाधान कालीन गत नक्षत्र की संख्या होती है । जन्म से 9 मास पूर्व इस नक्षत्र, चन्द्रमा आदि की संगति देखनी चाहिए । शेष संख्या को 60 से गुणा कर 800 का भाग देने से आधान कालीन नक्षत्र का बीता भाग (भयात) आ जाता है ।

यस्मिन् काले भयुक्तं तन्मध्यमेष्टं तदेव हि । । 83 । ।

तस्मात् प्रसाधयेत् सूर्य भोग्यकालं ततो नयेत् । ।

जन्मचन्द्रस्य भुक्तं वै कालमानीय यत्नतः । । 84 । ।

जन्मकालीन चन्द्रस्तु गर्भलग्नं विदुर्बुधाः ।

उक्त भयात जिस दिन, जिस समय (जन्म से 9 मास पूर्व) प्राप्त हो, वही मध्यम आधान समय है । इस इष्ट से सूर्य स्पष्ट करके तथा चन्द्रमा के नक्षत्र का भुक्त जानकर, दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए, गर्भकालीन लग्न का निर्णय करना चाहिए ।

इस विषय को उदाहरण द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं । यह एक वास्तविक उदाहरण है ।

जन्म लग्न

5 गु.
3 चं.
6
4
2 के.
7
1
मं. श. 8
सू. बु.
रा.
10
12
9
शु. 11

ग्रह स्पष्ट

सूर्य– 9.11°.15′	जन्म नक्षत्र आर्द्रा
चन्द्र–2.11°.21′	वार–बुध
मंगल–7.14°.12′	दशमस्पष्ट–11.24°.
बुध– 9.15.53	पौष शुक्ल
गुरु– 4.6.00	त्रयोदशी सं० 2012
शुक्र–10.16.25	स्थान–दिल्ली
शनि– 7.7.45	जन्म समय
राहु– 7.23.20	5.10 p.m. IST
लग्न– 3.2.48	

(i) जन्म कालीन चन्द्रमा 2.11^{0}.21′ के आसन्न गर्भाधान के समय लग्न होना चाहिए तथा जन्म कालीन लग्न 3.2.48 के आसन्न गर्भाधान के समय चन्द्रमा रहना चाहिए, यह विचारणीय विषय हुआ। जहाँ दोनों तत्त्वों का समन्वय होगा, वही आधान काल है।

(ii) लग्न स्पष्ट 3.2.48 की कलाएँ 5568 ÷ 800 = लब्धि 6, शेष 768 है। अतः अश्विनी आदि क्रम से 6 नक्षत्र आधान के समय गत थे तथा सातवाँ पुनर्वसु नक्षत्र विद्यमान था। शेष 768 x 60 करके पुनः 800 का भाग दिया तो लब्धि 57.30 घड़ी पुनर्वसु का भयात आया। अतः आधान के समय चन्द्रमा पुनर्वसु के प्रथम चरण, कर्क राशि में रहेगा।

(iii) जन्ममास जनवरी से 9 मास पीछे चले तो 28 अप्रैल 1955 को पुनर्वसु नक्षत्र में चन्द्रमा है। उस दिन 3.2^{0}.48′ स्पष्ट चन्द्र के समय या 57.30 पुनर्वसु बींतने पर आधान का समय आता है। उस दिन प्रातः 5.30 बजे चन्द्र स्पष्ट 2.28^{0}.36′ तथा दैनिक गतिं 13^{0}.47′ है। अतः दोपहर 12.45 पर जन्म लग्न स्पष्ट के आसन्न चन्द्रमा होता है। यह ठीक प्रतीत होता है।

(iv) इस समय में लग्न स्पष्ट 3.24.33 होता है। यह जन्मकालीन चन्द्रमा 2.11^{0}.21′ से 1.13^{0}.12′ आगे है।

लग्नस्पष्टं ततः कुर्यात् सुविचार्य तपोधन ! । । 85 । ।

अस्य लग्नस्य राश्यादि जन्मेन्दोश्च तथैव हि ।

मैत्रेय ! सुमहाप्राज्ञ ! समासन्नगतं भवेत् । । 86 । ।

उक्त प्रकार से काल साधन करके तदनुसार लग्न स्पष्ट करें। यह लग्न स्पष्ट, जन्मकालीन चन्द्र के प्रायः तुल्य होता है।

आधान चन्द्रस्पष्टं च जन्मलग्न समं भवेत् ।

एवं संसाधनीयं च गर्भजन्म भवं फलम् । । 87 । ।

यावत् साम्यं भवेदेतत् तावत्कुर्यादतन्द्रितः ।

इष्टशोधनमेतत्तु यथा शम्भुप्रणोदितम् । ।

साधारणं सुसम्प्रोक्तं ज्ञेयं विस्तरमन्यतः । । 88 । ।

आधानकालीन चन्द्रमा के समान जन्म लग्न होता है। इस तरह गर्भ व जन्म लग्न का जब तक समन्वय न हो तब तक संशोधन करना चाहिए। यह इष्ट शोधन की विधि शिवजी ने कही है। यहाँ सामान्यतया विषय बताया गया है, विस्तारपूर्वक अन्य ग्रन्थों से समझना चाहिए।

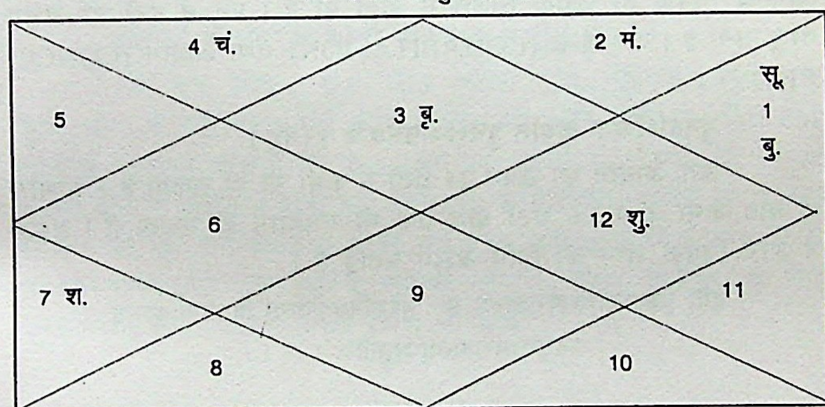
इष्ट शोधन का यह प्रसंग कुछ आधार अवश्य रखता है। लेकिन पहले कहा कि जन्म व आधान के चन्द्रादि आसपास हो सकते हैं, आगे कहा गया है कि जब तक समानता न हो तब तक संशोधन करना चाहिए। यह विरुद्ध है।

पुनरपि पराशर जैसे महर्षि के युग में स्वयं पराशर कहें कि यह हमने संक्षेप में कह दिया है, विस्तार कहीं और से (कहां से ? क्या पराशर से बढ़कर भी उस समय कोई था ?) जान लें। अस्तु, बात में कुछ सार है, चाहे बाद में ही क्यों न जोड़ी गई हो।

हमारे उदाहरण में आधान लग्न व जन्म चन्द्र की तुल्यता लगभग 3 घंटे 20 मिनट पीछे बैठेगी। अस्तु, आसपास हो सकते हैं, यह बात उचित प्रतीत होती है। बिल्कुल अंशादि जब तक समान न हो जाएँ, तब तक घटा बढ़ी करते रहें, यह बात अनुचित है।

उदाहरण से सम्बद्ध गर्भाधान दिवस पर दिल्ली में मिथुन लग्न लगभग 8.30 बजे प्रातः से 11.45 दोपहर तक प्रायः रहता है। इस अवधि में चन्द्रमा भी पुनर्वसु के प्रथम चरण में ही सिद्ध होता है। अतः गर्भ कुण्डली इस प्रकार रहेगी। मिथुन में छठा या अन्तिम नवांश मानने से सारी बातें यथावत् प्रायः मिल जाती हैं।

।। गर्भाधान कुण्डली ।।



समय 10.45 से 11.45 के बीच

आइए, इससे फल विचार करते हैं। लग्न में द्विस्वभाव राशि व नवांश है। चन्द्र व शुक्र दोनों ही सम राशि में हैं। बुध, गुरु, लग्न विषम राशियों में हैं। मंगल मिथुन नवांश में स्थित हैं। ये सारी बातें जुड़वाँ गर्भाधान को द्योतित करती हैं (देखें बृहज्जातक, निषेक)। यही वास्तविकता भी है।

लग्न का अन्तिम नवांश होने से तथा लग्न में दिनबली राशि व नवांश रहने से सायं सन्ध्या समय से थोड़ा पहले जन्म सम्भव होगा। यही वास्तविकता भी है।

हमारे विचार से लगभग आसपास राश्यादि रहना ही युक्तिसंगत है। बिल्कुल राश्यादि समान करने के फेर में असकृत् क्रिया (बार–बार–घटा बढ़ी) नहीं करनी चाहिए।

यह आधान शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त है, यह बात चिन्तनीय है। संस्कृत में इस सम्बन्ध में निषेक व आधान ये दो शब्द प्रचलित हैं। इन दोनों को समानार्थक मान लेने की प्रथा है। लेकिन वास्तव में निषेक अर्थात् निषेचन, निक्षेप, रखना, फेंकना, छिड़कना आदि अर्थ को द्योतित करता है। यह स्त्री पुरुष के समागम काल को द्योतित करता है। कुलूकभट्ट ने निषेककाल 'वीर्यपात काल' कहा है । 'निषिच्यत इति निषेकं रेतश्चोत्सृजेत्'। इसके अलावा आधान शब्द का अर्थ है स्थापित करना, धारण करना, अधिगम इत्यादि। इससे वास्तविक गर्भाधान अर्थात् शुक्ररजः संयोग, डिम्बशुक्राणु मिलन अर्थात् वास्तविक सफल गर्भाधान संकेतित है। निषेक का प्रयोजन जब गर्भाधान हो तब उस स्त्रीसंग का नाम गर्भाधान संस्कार कहा है, अन्यथा सामान्य निषेक तो प्रत्येक मिलन में होता ही है। मनु ने इन्हें दो अलग वस्तु माना है। दार क्रिया (COHABITATION) तथा आधान (CONCEPTION)।

पुनर्दारक्रियां कुर्यात् पुनराधानमेव च। (मनुः)

अतः आधान का समय 24 घंटों में कभी भी हो सकता है। सम्भोग के बाद कभी कभी 5-6 घंटों बाद तक भी गर्भाधान हो सकता है। महर्षि ने आगे निषेक लग्न की विधि अलग बताई है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
ग्रहगुणस्वरूपाध्यायस्तृतीयः ।।3।।

4

।।अथ राशिस्वरूपाध्यायः।।

पराशर उवाच–

यदव्यक्तात्मको विष्णुः कालरूपोजनार्दनः।
तस्याङ्गानि निबोध त्वं क्रमान्मेषादिराशयः।।1।।

विराट रूप भगवान् विष्णु जो स्वयं काल रूप या काल पुरुष हैं, उसी के विविध अंगों के रूप में मेषादि बारह राशियों को समझना चाहिए।

अहोरात्रस्य पूर्वान्त्यलोपाद् होरेति प्रोच्यते ।

तस्य विज्ञानमात्रेण जातकर्मफलं वदेत् ।। 2 ।।

अहोरात्र शब्द के प्रथम व अन्तिम अक्षर को छोड़ देने से शेष 'होरा शब्द निष्पन्न होता है । इसी होरा के विशेष ज्ञान से जातक शास्त्र में समस्त फल कहना चाहिए ।

इस विषय में सभी एक मत हैं । अहोरात्र कालवाधक होने से काल या समय की ईकाई भूत 'होरा' या लग्न पर आधारित होने से होराशास्त्र नाम पड़ा है । इससे यह बात स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है कि दिन–रात के परिवर्तन या सूर्योदयादि से साधित उदित राशि खण्ड ही लग्न या होरा है, तथा उसी से फलविचार करना चाहिए । शंकुच्छाया या पलभा या इष्टकालादि साधित लग्न उदय लग्न (RISING SIGN) ही होता है ।

मेषो वृषश्च मिथुनः कर्कसिंह कुमारिकाः ।

तुलाली च धनुर्नक्रे कुम्भो मीनस्ततः परम् ।। 3 ।।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, ये राशियाँ क्रमशः उदय क्षितिज पर बारी–बारी से उदित होती रहती हैं । बारहों राशियों का कुल उदय एक अरोहात्र 60 घड़ी या 24 घंटे में पूर्ण होने से अरोहात्र शब्द का अवयवभूत लग्न (होरा) सर्वथा उदय लग्न ही है । जो कि इष्ट काल व स्पष्ट सूर्य द्वारा साधित प्रसिद्ध लग्न ही है, न कि प्राणपदादि द्वारा शुद्ध कल्पित लग्न । विशेष विवेचन के लिए बृहज्जातक की हमारी अभिनव टीका भी देखें ।

राशियों का अंगविभाग :–

शीर्षाननौ तथा बाहू हृत्क्रोडकटिबस्तयः ।

गुह्योरुजानुयुग्मे वै युगले जंघके तथा ।। 4 ।।

चरणौ द्वौ तथा लग्नाज्ज्ञेया शीर्षादयः क्रमात् ।।

मेषादि बारह राशियाँ कालपुरुष अव्यक्त विष्णु के क्रमशः सिर, मुख, भुजा, हृदय, पेट, कटि, बस्ति, गुप्तांग, जाँघें, घुटने, पिण्डलियाँ व पैर हैं ।

जन्म लग्न से भी इसी प्रकार सिर आदि अंग विभाग जानना चाहिए । अर्थात् सिर लग्न, द्वितीय भाव मुख, तृतीय भाव भुजा, चतुर्थ भाव हृदय, पंचम भाव पेट, षष्ठ भाव कटि, सप्तम भाव बस्ति, अष्टम भाव गुप्तांग, नवम भाव जाँघें, दशम भाव घुटने, एकादश भाव पिण्डलियाँ व द्वादश भाव पैर हैं ।

चरस्थिरद्विस्वभावाःक्रूराक्रूरौनरस्त्रियौ ।।5।।

ये राशियाँ क्रमशः चर, स्थिर, द्विस्वभाव संज्ञक होती हैं । अर्थात् मेष कर्क, तुला, मकर चर, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ स्थिर व मिथुन, कन्या धनु मीन द्विस्वभाव हैं ।

इनमें क्रमशः क्रूरसौम्य संज्ञक व पुरुष स्त्री संज्ञा भी समझनी चाहिए । अर्थात् मेष राशि क्रूर व पुरुष तथा वृष राशि सौम्य व स्त्री है । इसी तरह सभी विषम राशियाँ क्रूर व पुरुष संज्ञक तथा सम राशियाँ स्त्री व सौम्य संज्ञक होती हैं ।

पित्तानिलत्रिधा त्वैक्यं श्लेष्मिकाश्च क्रियादयः ।।$5\frac{1}{2}$।।

मेष पित्तात्मक, वृष वातात्मक, मिथुन त्रिधात्मक अर्थात् वात–पित्त–कफ मिश्रित तथा कर्क कफात्मक है । इसी तरह 1.5.9 राशियाँ पित्तात्मक, 2.6.10 वातात्मक, 3.7.11 त्रिदोषात्मक तथा 4.8.12 कफात्मक होती हैं ।

राशियों का विस्तृत स्वरूप :–

रक्तवर्णो बृहद्गात्रश्चतुष्पाद् रात्रि विक्रमी ।।6।।
पूर्ववासी नृपज्ञातिः शैलचारी रजोगुणी ।
पृष्ठोदयी पावकी च मेषराशिः कुजाधिपः ।। 7 ।।

मेषराशि का लाल रंग, बड़ा शरीर, चतुष्पद स्वरूप (चौपाया), रात्रि बली पूर्व दिशा में निवास, राजा जाति अर्थात् क्षत्रिय वर्ण, पर्वत पर वास, रजोगुण की प्रधानता, पृष्ठोदय, अग्नि तत्त्व व मंगल स्वामी है ।

राशियों की उक्त संज्ञाएँ व विस्तृत स्वरूप वराहमिहिर, सत्याचार्य, यवनाचार्यो द्वारा समर्थित है । सन्दर्भ स्पष्टीकरणार्थ वृहद्यवनजातक व वृहज्जातक का राशि स्वरुप प्रकरण भी देखना चाहिए ।

श्वेतः शुक्राधिपो दीर्घः चतुष्पाच्छर्वरी बली ।
याम्येट् ग्राम्यो वणिग्भूमिः रजी पृष्ठोदयी वृषः ।। 8 ।।

वृष राशि का श्वेत वर्ण, स्वामी शुक्र, लम्बा शरीर, चौपाया रूप, रात्रिबली, दक्षिण दिशा का स्वामी, ग्रामवासी, वैश्य वर्ण, रजोगुण व पृष्ठोदयी स्वरूपहै ।

शीर्षोदयी नृमिथुनं सगदं च सवीणकम् ।
प्रत्यक्स्वामिद्विपादरात्रिबलीग्रामव्रजोऽनिली ।।9।।
समगात्रो हरिद्वर्णो मिथुनाख्यो बुधाधिपः ।

मिथुन राशि, शीर्षोदय, स्त्री पुरुष का जोड़ा, पुरुष के हाथ में गदा, स्त्री के हाथ में वीणा, पश्चिम दिशा का स्वामी, द्विपद (मनुष्य) राशि, रात्रि बली, गाँव में रहने वाली, वायु प्रकृति, चौरस वर्गाकार सा शरीर, हरा रंग, बुध स्वामी यह स्वरूप है ।

पाटलो वनचारी च ब्राह्मणो निशिवीर्यवान् ।। 10 ।।

बहुपदुतरः स्थौल्यतनुः सत्त्वगुणी जली ।

पृष्ठोदयी कर्कराशिर्मृगांकाधिपतिः स्मृतः ।। 11 ।।

कर्क राशि का स्वरूप इस प्रकार है–पाटल (हल्का लाल गुलाबी) रंग, वन में निवास, ब्राह्मण वर्ण, रात्रिबली, अति चतुर स्वभाव, शरीर में स्थूलता की प्रवृत्ति, सत्त्वगुण, जलतत्त्व, पृष्ठोदयी, उत्तर दिशा, चन्द्रमा स्वामी है ।

सिंहः सूर्याधिपः सत्त्वी चतुष्पात्क्षत्रियो बली ।

शीर्षोदयी बृहद्गात्रः पाण्डु पूर्वेड् द्युवीर्यवान् ।। 12 ।।

सिंह राशि का स्वामी सूर्य, सत्त्वगुण, चतुष्पद रूप, क्षत्रिय वर्ण, वनचारी ताकतवर शरीर, शीर्षोदयी रूप, बड़ा शरीर, पाण्डु (हल्का पीला) रंग, पूर्व दिशा, दिन बली, यह स्वरूप है ।

पार्वतीयोथकन्याख्यो राशिर्दिनबलान्वितः ।

शीर्षोदयश्च मध्यमांगो द्विपाद्याम्य चरः स्मृतः ।। 13 ।।

ससस्यदहना वैश्या चित्रवर्णा प्रभंजिनी ।

कुमारी तमसा युक्ता बालभावा बुधाधिपः ।। 14 ।।

कन्या राशि का स्वरूप ऐसा है– एक कन्या, अनेक रंगों वाली, वायु प्रकृति, तमोगुणी, आग व अन्न पास में रखे हुए हैं । कन्या राशि पर्वतवासी, दिन बली, शीर्षोदयी, मध्यम शरीर, द्विपद स्वरूप, दक्षिण दिशा व बुध स्वामी है ।

शीर्षोदयी द्युवीर्याढ्यस्तुलः शूद्रो रजोगुणी ।

पश्चिमेट् भूचरः शुक्राधिपो मध्यतनुर्द्विपात् ।। 15 ।।

तुला राशि शीर्षोदयी, दिन बली, शूद्र (काला) वर्ण, रजोगुणी, पश्चिम दिशा की अधीश, भूमिचारी, मँझला शरीर, द्विपद स्वरूप, शुक्र स्वामी, ऐसा स्वरूप है ।

शीर्षोदयोऽथ स्वल्पांगो बहुपाद ब्राह्मणो बिली ।

सौम्यस्थो दिनवीर्याढ्यः पिशंगो जलभूचरः ।। 16 ।।

रोमस्वाढ्योऽतितीक्ष्णांगो वृश्चिकश्च कुजाधिपः ।

वृश्चिक राशि शीर्षोदयी, छोटा शरीर, अनेक पैरों वाला स्वरूप, ब्राह्मण वर्ण, बिल, गुप्त प्रदेशों में रहने वाली, उत्तर दिशा की अधीश, दिन बली, पिशंग अर्थात् भूरा रंग, जलचर व थलचर, रोमयुक्त शरीर वाली, तीखे अंग (डंक) वाली, मंगल स्वामी है ।

पृष्ठोदयोऽश्वजङ्घोऽथ गुर्वीशः सात्त्विको धनुः ।।17 ।।

पिंगलो निशीवीर्याढ्यः पावकः क्षत्रियो द्विपात् ।
आदावन्ते चतुष्पादः समगात्रो धनुर्धरः ।। 18 ।।
पूर्वस्थो वसुधाचारी तेजस्वी ब्रह्मणा कृतः ।

धनु राशि पृष्ठोदयी, घोड़े के समान पिण्डलियों वाला, गुरु का आधिपत्य, सात्विक, पिंगल (थोड़ा पीला) रात्रि बली, अग्नि तत्त्व, क्षत्रिय वर्ण, द्विपदरूप अर्थात् मनुष्य यह पूर्वार्ध का रूप है ।

उत्तरार्ध में चतुष्पाद अर्थात् चौपाया रूप, समान लम्बाई चौड़ाई वाला शरीर, धनुर्धारी रूप यह उत्तरार्ध का स्वरूप है ।

यह पूर्व दिशा का वासी, पृथ्वीचारी, तेजस्वी रुप वाला है, ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ।

मन्दाधिपस्तमी भौमी याम्येट् च निशि वीर्यवान् ।। 19 ।।
पृष्ठोदयी वृहदगात्रः मकरो जलेभूचरः ।
आदौ चतुष्पदोऽन्ते तू विपदो जलगो मतः ।। 20 ।।

मकर राशि का स्वामी शनि, तमोगुणी स्वभाव, दक्षिण दिशा की अधिपति, रात्रि में बलवान, पृष्ठोदयी, बड़े शरीर वाली, मगरमच्छ की आकृति वाली, जल व थलचारी, अग्रभागं में चौपाया रूप (हिरणवत्) पृष्ट में पैर रहित, जलचारी मकर स्वरूप वाली है ।

कुम्भः कुम्भी नरो बभ्रुवर्णो मध्यतनु द्विपात् ।
द्युवीर्यो जलमध्यस्थो वातशीर्षोदयी तमः ।। 21 ।।
शूद्रः पश्चिमदेशस्य स्वामी दैवाकरिः स्मृतः ।

हाथ में घड़ा लिए पुरुष, नेवले या ऊँट जैसा भूरा रंग, मध्यम शरीर, द्विपद मनुष्य रूप, दिनबली, जल मध्य (जल प्रदेश) में स्थित, वायु प्रकृति, शीर्षोदयी, तमोगुणी, शूद्र वर्ण, पश्चिम दिशेश, शनि की राशि, ऐसा कुम्भ राशि का स्वरूप है ।

मीनौ पुच्छास्य संलग्नौ मीनराशिर्दिवाबली ।। 22 ।।
जली सत्त्वगुणाढ्यश्च स्वस्थो जलचरो द्विजः ।
अपदो मध्यदेही च सौम्यस्थो ह्युभयोदयी ।। 23 ।।
सुराचार्याधिपश्चास्य राशीनां गदिता गुणाः ।
त्रिंशद्भागात्मकानां च स्थूलसूक्ष्मफलाय च ।। 24 ।।

दो मछलियाँ एक दूसरे से मुंह व पूँछ मिलाए हुए, दिनबली, जलचारी, सतोगुणी, स्वस्थ, द्विज अर्थात् ब्राह्मणवर्ण, पैर रहित, मध्यम शरीर वाली, उत्तर दिशा, में निवास करने वाली, उभयोदयी, बृहस्पति स्वामी, यह मीन राशि का स्वरूप है ।

इस प्रकार मैंने (पराशर ने) राशियों के गुण धर्म स्वरूप बताए हैं, इनके आधार पर जातक में स्थूल व सूक्ष्म फलादेश करना चाहिए ।

दिवा शीर्षोदयश्चैव सन्ध्यायामुभयोदयाः ।
नक्तं पृष्ठोदयाश्चैव बलाधिक्या उदीरिताः ।। 25 ।।

शीर्षोदय राशियाँ दिन में, उमयोदय राशियाँ सन्ध्या में एवं पृष्ठोदयी राशियां रात्रि में बलवान् होती हैं।

गर्भाधान (निषेक) लग्न ज्ञान :–

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्व मुनिपुंगव।

जन्मलग्नं च संशोध्य निषेकं परिशोधयेत्।। 26।।

तदहं संप्रवक्ष्यामि मैत्रेय त्वं विधारय।

जन्म लग्नत् परिज्ञानं निषेकं सर्वं जन्तुषु।। 27।।

पराशर बोले–हे मुनिश्रेष्ठ मैत्रेय ! अब जन्म लग्न शोधन (Rectification) करने के बाद निषेक या गर्भाधान लग्न का संशोधन करना चाहिए। उसी को यहाँ कह रहा हूँ। तुम ध्यान से सुनो। जन्म लग्न से ही निषेक लग्न का ज्ञान सभी प्राणियों के प्रसंग में सम्भव है।

यस्मिन्भावे स्थितो मन्दस्तस्य मान्देर्यदन्तरम्।

लग्नभाग्यान्तरं योज्यं यच्च राश्यादि जायते।। 28।।

मासादि स्तन्मितं ज्ञेयं जन्मतः प्राक् निषेकजम्।

क्ष्यदृश्यदलेऽंगेशस्तदेन्दोर्भुक्तभागयुक्।। 29।।

तत्काले साधयेल्लग्नं शोधयेत्पूर्ववत् तनुम्।

शनि जिस भाव में हो तथा मान्दि (गुलिक) के अधिष्ठित भाव (गुलिक लग्न) का अन्तर करें। अब लग्न व भाग्य (नवम) भावों का परस्पर अन्तर करके पूर्वप्राप्त में जोड़ दें। इस प्रकार प्राप्त फल राश्यादि होगा। अर्थात् यह सूत्र काम में लें।

(मान्दि लग्न – शनि स्थित भाव) + (नवम स्पष्ट – लग्न स्पष्ट) = राश्यादि फल।

पूर्व प्रकार से प्राप्त राश्यादि लब्धि को मास, दिन, घटी, पल मान लें। जन्म समय से पूर्व उतने ही समय में निषेक हुआ था।

यदि जन्म लग्नेश अदृश्य चक्रार्ध (लग्न से सप्तम के मध्य) में हो तो पूर्वप्राप्त मासादि में चन्द्रमा स्पष्ट को जोड़कर तब मासादि काल जानना चाहिए। इस समय पर उदित लग्न निषेक लग्न होता है।

तस्मात्लग्नात्फलं वाच्यं गर्भस्थस्य विशेषतः।। 30।।

शुभाशुभं वदेत् पित्रोर्जीवनं मरणं तथा।

एवं निषेकलग्नेन सम्यक् ज्ञेयं स्वकल्पनात्।। 31।।

इस निषेक लग्न से गर्भस्थ शिशु का तथा माता–पिता का शुभाशुभ स्वविवेक से बताना चाहिए।

पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में इस बात का विचार करते हैं।

उपग्रह स्पष्ट (क्रमिक उदाहरण)

			इष्टकाल	स्पष्ट
धूम–	$1.24^{0}.35'$	अर्धप्रहर	7.17. IST	$9.12^{0}.7'$
व्यतिपात–	$10.5^{0}.25'$	यमघंटक	8.36 बजे	$10.5^{0}.47'$
परिवेष–	$4.5^{0}.25'$	गुलिक	11.14 बजे	$0.0^{0}.37'$
इन्द्रचाप–	$7.24^{0}.35'$	काल	12.33 बजे	$0.25^{0}.19'$
उपकेतु–	$8.11^{0}.15'$	मृत्यु	15.11 बजे	$2.6^{0}.33'$
प्राणपद–	$0.5^{0}.15'$			

।। द्वादश भाव स्पष्ट ।।

	भाव	सन्धि		भाव	सन्धि
I	3.2.48.00	3.16.20.50	VII	9.2.48.00	9.16.20.50
II	3.29.53.40	4.13.26.30	VIII	9.29.53.40	10.13.26.30
III	4.26.59.20	5.10.32.10	IX	10.26.59.20	11.10.32.10
IV	6.24.5.0	6.10.32.10	X	11.24.5.00	0.10.32.10
V	6.26.59.20	7.13.26.30	XI	0.26.59.20	1.13.26.30
VI	7.29.53.40	8.16.20.30	XII	1.29.53.40	2.16.20.30

गुलिक स्पष्ट 0.0.37.00 – शनि स्थित भाव 6.26.59.20 = $5.3^{0}.38'.40''$ है। नवम स्पष्ट $10.26^{0}.59'.20'' - 3.2^{0}.48'.0''$ लग्न = $7.24^{0}.8'.20''$ है। लग्नेश अदृश्यार्ध में नहीं है, अतः इन दोनों का योग किया तो 12.27.47.00 यह संख्या मिली। इसका आशय हुआ कि जन्म से 12 मास 27 दिन 47 घड़ी पूर्व निषेक हुआ था। यह पूर्वोक्त विधि से विरुद्ध है। वहाँ निश्चय से 9 मास पूर्व आधानादि कहा था। अतः 'मासादि तन्मित ज्ञेयं' से प्राप्त समय विचार्य हो सकता है।

हमारे विचार से गुलिक, भाव स्पष्ट व शनि आदि की राशि को छोड़कर शेष अंशादि यथावत् लेने चाहिए, उसके ऊपर 8 संख्या रखकर जन्म तिथि में से घटा दें। प्राप्त संख्या निषेक से लेकर गर्भवास काल की द्योतक होगी। अथवा 9 मास से अधिक समय आने पर निश्चित 9 मास तथा कम आने पर यथावत् ग्रहण कर सकते हैं।

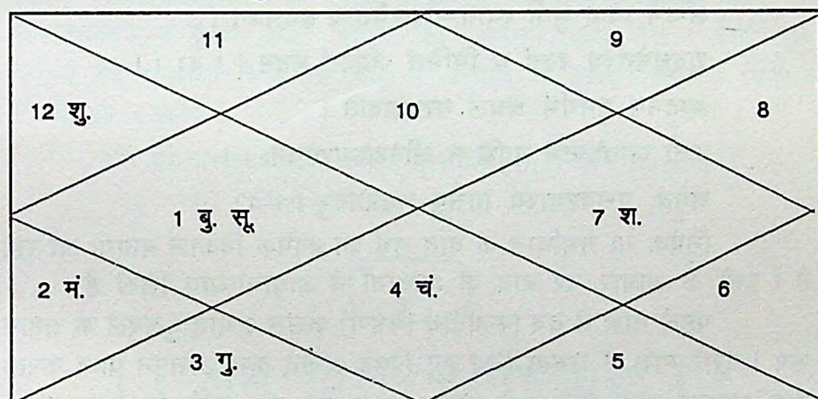
पूर्वोक्त उदाहरण में पहले आधान काल 28 अप्रैल 1955 प्रातः 11 बजे के लगभग आया था।

यहाँ 12 संख्या (राशि) रहित 27.47.00 के पहले 8 रखा तो 8.27.47 मासादि कुल गर्भकाल हुआ। जन्मतिथि 25.1.1956 में से 8.27.47 या 8.28.00 मांसादि घटाया।

	वर्ष	मास	दिन
जन्म तिथि	1956	1	25
–गर्भकाल	0	8	28
	1955	4	27

इस प्रकार निषेक काल 27 अप्रैल 1955 को 47 घड़ी इष्ट पर कभी निषेक हुआ था। यह तिथि पीछे प्राप्त आधान दिन से पिछली रात ही है। अर्थात् सूर्योदय 7.17 पर होने से सूर्योदय से 5 घंटे 12 मिनट पूर्व निषेक हुआ था। यह समय 27 अप्रैल की रात्रि 02.5 A.M. अर्थात् कैलेंडर तिथि 28 अप्रैल 2.5 A.M. पर निषेक व 28 अप्रैल को ही 11.00 A.M. के आसन्न गर्भाधान या भ्रूणस्थापन हुआ था। इस प्रकार नियम प्रामाणिक प्रतीत होता है। बहुत से उदाहरणों पर घटित करके परीक्षा करनी चाहिए।

निषेक कुण्डली (उदाहरण) चन्द्र स्पष्ट $2.26^0.52'$



यहाँ भी मकर का अन्तिम नवांश द्विस्वभाव है, शेष पूर्ववत् ग्रहस्थिति है ही। अतः युगल जन्म प्रमाणित होता है।

गर्भ का क्रमिक विकास :–

द्रवत्वं प्रथमे मासि कललाख्यं प्रजायते।
द्वितीये तु घनः पिण्डः पेशीप्रच्छन्नबुद्बुदः।। 32।।
पुंस्त्री नपुंसकानां हि प्रागवस्थाः क्रमादिमाः।
तृतीये त्वङ् कुराद्यंगकरांघ्रि शिरसो मतम्।। 33।।
अंग प्रत्यंगभागाश्च सूक्ष्मा स्युर्युगपत्तथा।
चतुर्थे व्यक्तता तेषां भागानामपि जायते।। 34।।
पुंसो शौर्यादयो भावा भीरुत्वाद्यास्तु योषिताम्।
नपुंसकाना संकीर्णा भवन्तीति प्रचक्षते।। 35।।

मातृजान् चास्य हृदयं विषयानतिकांक्षति ।
अतोमातुर्मनोऽभीष्टं कुर्याद् गर्भसमृद्धये ।। 36 ।।
मातुश्चेद् विषयालाभस्तदार्तो जायते सुतः ।
प्रबुद्धं पंचमे चित्तं मासि शोणितं पुष्टता ।। 37 ।।
षष्ठेऽस्थिस्नायुनखरकेशो रोमविविक्तता ।
बलवर्णौ चोपचितौ सप्तमे त्वंगपूर्णता ।। 38 ।।
आद्यो मुख स्वहस्ताभ्यां श्रोतृरन्ध्रे पिधाय स्वः ।
उद्विग्नो गर्भसंवासादास्ते गर्भालयान्वितः ।। 39 ।।
स्मरन्पूर्वानुभूतान्स नानायातानुयातनात् ।
मोक्षोपायमपि ध्यायन्वर्ततेऽभ्यासतत्परः ।। 40 ।।
अष्टमे त्वक् श्रुती स्यातामोजश्चैतन्य हृद्भवम् ।
शुद्धमेतच्च रक्तं च निमित्तं जीवितं मतम् ।। 41 ।।
अष्टमेन पुनर्गर्भं चंचलं तत्प्रधावति ।
अतो जातोऽष्टमे मासि न जीवेद्योऽथशोभनः ।।
समयः प्रसवश्चास्य मासेषु नवमादिषु ।। 42 ।।

निषेक या गर्भाधान के बाद गर्भ का क्रमिक विकास बताया जा रहा है। इसी के आधार पर बाद के आचार्यो ने आधानाध्याय लिखे हैं।

पहले मास में द्रव (रजोवीर्य मिश्रण) कलल अर्थात् बुलबुले के समान रूप। दूसरे मास में घनता लिए हुए पिण्ड अर्थात् कुछ ठोसपन प्राप्त करता हुआ आकार होता है। इसी द्वितीय मास में पुरुष, स्त्री या नपुंसक का निर्णय प्रतीत होने लगता है।

तृतीय मास में अंकुर रूप में शरीर के प्रत्यंग निकलने लगते हैं। हाथ पैर व सिर का विभाग प्रकट होने लगता है।

चौथे मास में अंगों की स्पष्टता हो जाती है। इसी मास में पुरुष भ्रूण में शूरतादि पुरुषोचित गुण व स्त्री भ्रूण में भीरुतादि स्त्रियोचित गुण तथा नपुंसक भ्रूण में दोनों गुणों का मिश्रण पूर्वावस्था में संक्रमित हो जाता है। इसी मास में माता के हृदय में पैदा होने वाली इच्छाओं (दोहद) का अनुभव भ्रूण भी करता है। अतः माता की जो जो इच्छाएँ हों, उन्हें प्रयत्न पूर्वक पूरी करनी चाहिएं। यदि गर्भेच्छा पूरी न हो तो बालक पर मानसिक कुप्रभाव पड़ता है।

पाँचवें मास में भ्रूण का चित्त प्रबुद्ध होता है, तथा रक्त पुष्ट होने लगता है। छठे मास में हड्डी, स्नायु, नख व बाल, रोम आदि प्रकट होने

लगते हैं। सातवें मास में बल, रंगत बढ़ती है तथा सारे अंग पूर्ण बन जाते हैं। इसी मास में अपने हाथों से कान व मुख को दबाकर बच्चा गर्भाशय में निवास से उद्विग्न होकर विविध यातनाओं को याद करता हुआ, लगातार बाहर निकलने के लिए उपाय खोजता है।

आठवें मास में त्वचा, कान, शरीर का ओज, हृदय की समुचित मात्रा में चेतनता, शुद्ध रक्त आदि सम्पूर्ण होकर पूरा शिशु हो जाता है। इस महीने में बच्चा बहुत चंचलता दिखाता है। यदि आठवें मास में प्रसव हो जाए तो यह शुभ नहीं है। तब बालक के जीवन की सम्भावनाएँ क्षीण होती हैं।

अतः समुचित प्रसव समय 9-10 मास में अर्थात् नवें मास से आगे होना ही है।

विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारा वृहज्जातक अभिनव भाष्य का आधानाध्याय व वृद्ध यवन जातक का सम्बद्ध भाग देखें। इन्हीं मूल श्लोकों को आचार्यो ने अपनी मेधा व अनुभव के द्वारा वैज्ञानिक विवेचन का आधार बनाया है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
राशिस्वरूपाध्यायश्चतुर्थः ।।4।।

5

।। अथ विशेषलग्नाध्यायः ।।

अथ वक्ष्याम्यहं विप्र ! कल्पनात्मकलग्नकान् ।
भावहोराघटीसंज्ञः प्रभृतीति यथाक्रम् ।।1।।

हे विप्र मैत्रेय ! अब मैं भाव, होरा, घटी प्रभृति विशिष्ट लग्नों को क्रमशः बता रहा हूँ। ये कल्पित लग्न हैं। इनका समन्वय उदित लग्न से सर्वत्र नहीं होता। अतः कल्पित लग्न कहा है।

भाव लग्न ज्ञान :–

सूर्योदयात्समारभ्य घटीपंच प्रमाणतः ।
जन्मेष्टकालपर्यन्तं गणनीयं प्रयत्नतः ।।2।।
इष्टं घट्यादिकं यत्तु पंचभिर्भादिकं फलम् ।
योज्यमौदयिके सूर्ये भावलग्नं स्फुटं तदा ।।3।।

सूर्योदय से प्रारम्भ करके 5-5 घड़ी अर्थात् 2 घंटे का एक-एक लग्न 24 घंटों में व्यतीत होकर सम्पूर्ण राशि चक्र समाप्त हो जाता है। अतः सूर्योदय से प्रारम्भ करके इष्ट समय तक दो-दो घंटों के जितने खण्ड बीत गए हों, उन्हें सावधानी से सूक्ष्मता पूर्वक जान लिया जाए।

एतदर्थ अपनी इष्टघट्यादि को 5 से भाग देकर (अथवा इष्ट घंटों को 2 से भाग देकर) जो फल मिले वह राश्यादि होता है। इसमें औदयिक अर्थात् उस दिन का प्रातःकालीन स्पष्ट सूर्य जोड़ देने से भाव लग्न स्पष्ट आ जाता है।

सभी लग्नों की प्रवृत्ति सूर्योदय व सूर्य की राशि से होती है। अतः औदयिक सूर्य से जोड़ना बिल्कुल सही है। कई प्रतियों में कहा है कि विषम राशि लग्न हो तो सूर्य में व समराशि लग्न हो तो जन्म लग्न में जोड़ना चाहिए, यह त्रुटिपूर्ण है। इस विषय में अपने 'उलझे प्रश्न सुलझे उत्तर' पुस्तक में तथा 'ज्योतिष सर्वस्व' में स्पष्टतया लिख चुके हैं।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरणों में जन्म समय सायं 5.10 बजे तथा सूर्योदय 7.17 बजे हैं। अतः 17.10 – 7.17 = 9.53 घंटात्मक इष्ट काल हुआ। इसे 2 से भाग दिया। घंटों की आधी राशि व मिनटों की चौथाई अंश कलादि ले लें। यह सीधा प्रकार है। अतः 4.15^0 राशि तथा $13^0.15'$ कुल $4.28^0.15'$ मिला। इसे उस दिन के सूर्य $9.11^0.15'$ में जोड़ने से $2.9^0.30'$ भाव लग्न स्पष्ट हुआ।

होरालग्न साधन :–

होरालग्नं प्रवक्ष्येऽहं श्रृणु त्वं द्विजपुंगव !।
सार्धद्विघटिका तुल्यं तथासूर्योदयात् सदा ।। 4 ।।
प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ।।
इष्ट घट्यादिकं द्विघ्नं पंचाप्तं भादिकं फलम् ।।
योज्यमौदयिके सूर्ये होरा लग्नं स्फुटं भवेत् ।। 5 ।।

हे द्विजश्रेष्ठ मैत्रेय ! अब मैं होरा लग्न का साधन बताता हूँ। सूर्योदय से आरम्भ करके $2\frac{1}{2}$ घड़ी अर्थात् 1 घंटा काल का होरा लग्न क्रमशः उदित होता है। इसी लग्न का नाम 'होरा' है। यह षड्वर्गो में पठित होरा नहीं है।

अपनी इष्ट घटी को 2 से गुणा कर 5 का भाग देने से लब्धि को उदयकालिक सूर्य में जोड़ने से होरालग्न स्पष्ट होता है।

इष्ट घंटा मिनट में जितने घंटे हों, वे होरा राशि हैं। मिनटों के आधे अंश होते हैं। अतः हमारे उदाहरण में 9.53 घंटात्मक इष्ट है। इसमें 9 राशि व 26°.30′ अंश को सूर्य स्पष्ट 9.11.15 में जोड़ा तो 7.7°.45′ होरा लग्न स्पष्ट है।

घटी लग्न साधन –

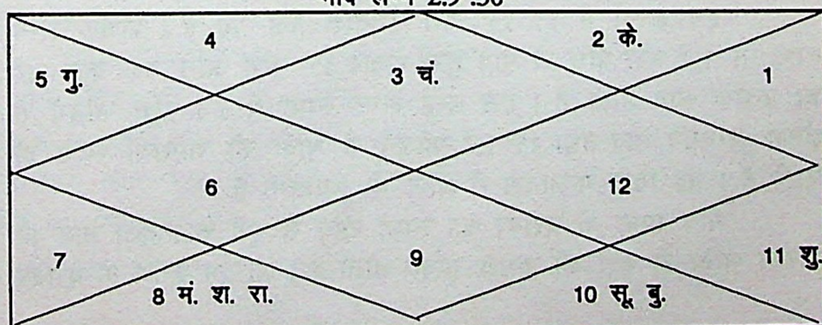
कथयामि घटी लग्नं श्रृणु त्वं द्विजसत्तम !।
सूर्योदयात्समारभ्य जन्मकालावधिक्रमात् ।।6।।
एकैकघटिकामानं लग्नं यद्याति भादिकम्।
तदेव घटिकालग्नं कथितं नारदादिभिः ।। 7 ।।
राशयस्तु घटी तुल्याः पलार्धप्रमितांशकाः।
योज्यमौदयिके भानौ घटीलग्नं स्फुटं हि तत् ।। 8 ।।
क्रमादेषां हि लग्नानां भावकोष्ठं पृथक् लिखेत्।
ये ग्रहा यत्र भे तत्र स्थाप्या वै गणितागताः ।। 9 ।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! अब आपको घटी लग्न का साधन बता रहा हूँ। सूर्योदय से आरम्भ करके जन्मेष्ट तक एक–एक घड़ी अर्थात् 24-24 मिनट का एक घटी लग्न होता है। इसी को नारदादि ऋषियों ने घटी लग्न कहा है। इष्ट की घड़ियों के बराबर राशि व पलों के बराबर अंश लेकर सूर्य में जोड़ने से घटी लग्न स्पष्ट होता है।

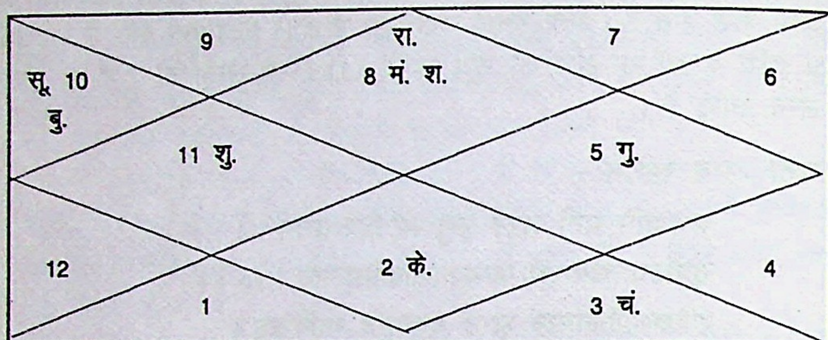
इन सब लग्नों का चक्र राशिचक्र के समान बनाकर उनमें ग्रहों को उनकी गणितागत राशियों में स्थापित करने से लग्न चक्र बन जाते हैं।

हमारा पूर्वोक्त इष्ट 9.53 घंटात्मक है। इसकी मिनट बनाई तो 593 मिनट मिलीं। इसे 24 से भाग दिया तो 24 राशियाँ मिलीं। इसे 0 राशि समझना होगा। शेष 17 मिनट हैं। इसके अंश 21°.15′ हुए। अतः सूर्य स्पष्ट 0.21°.15′ + 9.11°.15′ = 10.2°.30′ घटी लग्न स्पष्ट हुआ।

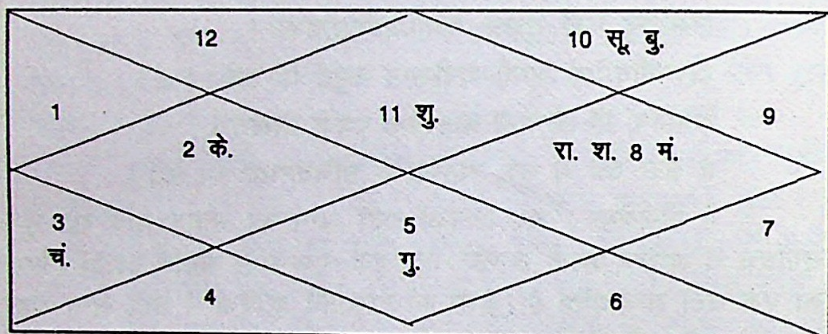
भाव लग्न 2.9°.30′



होरा लग्न 7.7°.45′



घटी लग्न 10.2°.30′



भावस्पष्ट की विधि :–

उक्ता लग्नादिभावानां दीप्तांशास्तिथिसम्मिताः ।
तस्माद् भावात् पुरः पृष्ठे तिथ्यंशैस्तत्फलं स्मृतम् ।। 10 ।।
लग्नात् तिथ्यंशतः पूर्वं भावारम्भः प्रजायते ।
तिथ्यंशैः परतस्तस्य पूर्तिसन्धी च तौ स्मृतौ ।। 11 ।।
भावारम्भो फलारम्भो पूर्णं भावसमे ग्रहे ।
फलं शून्यं च भावान्ते ज्ञेयं मध्येऽनुपाततः ।। 12 ।।

इन लग्नों में 15°-15° अंश दीप्तांश कहे गए हैं। प्रत्येक लग्न स्पष्ट से 15° अंश पीछे से भाव शुरू होकर 15° अंश आगे तक कुल 30° का प्रत्येक भाव होता है। इस तरह लग्न स्पष्ट में 1-1 रशि जोड़ने से क्रमशः लग्नादि भाव तथा 15°-15° जोड़ने से भावों की सन्धियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। यह विधि फलादेश में आज भी उपयोगी है।

भाव स्पष्ट के बराबर ग्रह स्पष्ट रहने से पूर्ण फल तथा भाव की आरम्भ सन्धि से फल की क्रमशः वृद्धि होती है। अन्तिम सन्धि के बराबर

ग्रह रहने से वह निष्फल रहता है। यदि बीच में ग्रह स्पष्ट पड़े तो अनुपात करना चहिए।

भाव विचार की सामान्य विधि :–

लग्नादिव्ययपर्यन्तं भावाः संज्ञानुरूपतः।
फलदाः शुभसंदृष्टा युक्ता वा शोभनप्रदाः।। 13।।
पापदृष्टयुता भावाः कल्याणेतरदायकाः।
नितरां शत्रुनीचस्थैर्न मित्रोपगतैश्च तैः।।
सौम्यैर्दृष्टयुताभावा ग्रहवीर्यात्फलप्रदाः।। 14।।

बारहो भावों में जो जो भाव शुभग्रहों से युक्त दृष्ट होंगे उनका शुभ फल व पापयुक्त दृष्ट का अशुभ फल होगा। जिस भाव में अति शत्रु की राशि गत, नीच या मित्रग्रहों से रहित अर्थात् शत्रुयुक्त ग्रह होंगे, उस भाव की भी हानि होगी। इसके विपरीत शुभ दृष्ट युक्त भाव द्रष्टा या स्थित ग्रह के बलानुसार फल देंगे।

भाव स्पष्ट की अन्य विधि :–

लग्नं सुखात् सुखं कामात् कामं खात् खं च लग्नतः।
त्र्यंशमेकद्विगुणितं युंज्याल्लग्नादिषु क्रमात्।। 15।।
पूर्वापरयुतेरूर्ध्वं सन्धिः स्याद् भावयोर्द्वयोः।
एवं द्वादशभावाः स्युर्भवन्ति हि ससन्धयः।। 16।।

लग्न स्पष्ट में से दशम भाव को, चतुर्थ में से लग्न को, सप्तम में से चतुर्थ को, दशम में से सप्तम को, लग्न में से दशम को घटा लें। अथवा प्रचलित विधि से लग्न में से दशम को घटाकर शेष का छठा भाग षष्ठांश क्रमशः जोड़ते जाने से बारह भाव व बारह संधियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

यह विधि आजकल सर्वत्र प्रचलित है। याम्योत्तर वृत्तीय दशम भाव साधन करके दशम + 6 राशि = चतुर्थ भाव तथा लग्न + 6 राशि = सप्तम भाव होता है।

ऊपर बताए गए प्रकार से किसी भी केन्द्र भाव से आप जोड़ना शुरू करें, फल समान ही होगा। पाराशर होरा के संग्रह के समय ये विधियाँ चलन में आ चुकी थीं। भावस्पष्ट सम्बन्धी ये श्लोक हमें एक प्राचीन ग्रन्थ में 'पाराशर होरा' नाम से मिले थे। पुनश्च इसका समर्थन किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थ से नहीं होता हैं।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां विशेष–
लग्नाध्यायः पंचमः।। 5।।

6

।। अथ वर्णददशाध्यायः ।।

वर्णद दशा :–

वर्णदाख्य दशां भानां कथयामि तवाग्रतः ।
यस्या विज्ञानमात्रेण ज्ञेयमायुर्भवं फलम् ।। 1 ।।
ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत् क्रमात् ।
समलग्न प्रसूतानां मीनादेरपसव्यतः ।। 2 ।।
मेषमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत् सुधीः ।
तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः क्रमात् ।। 3 ।।
ओजत्वेन समत्वेन सजातीये उभे यदि ।
तर्हि संख्ये योजनीये वैजात्येतु वियोजयेत् ।। 4 ।।
मेषमीनादितः पश्चाद्यो राशिः स तु वर्णदः ।

हे मैत्रेय ! अब मैं तुम्हें राशियों की वर्णदशा कहता हूँ । इस वर्ण दशा से मनुष्य की आयुर्दाय का फल स्पष्ट हो जाता है ।

यदि लग्न राशि विषम हो तो मेष वृष, मिथुन आदि राशि क्रम से गिनें । यदि लग्न राशि सम हो तो मीन, कुम्भ, मकर आदि विपरीत क्रम से गिनें ।

इस प्रकार क्रम व व्युत्क्रम से यथावसर जन्मलग्न तक गिनें । इसी तरह होरा लग्न तक भी गिनें ।

यदि होरा लग्न व जन्म लग्न दोनों विषम या दोनों सम हों तो प्राप्त राशियों को जोड़ें । यदि एक सम व एक विषम हो तो दोनों का परस्पर अन्तर करें ।

इस प्रकार योग या अन्तर करने से जो संख्या मिले, वह संख्या विषम राशि हो तो मेषादि क्रम से तथा सम हो तो मीनादि उत्क्रम से गिनें । इस तरह प्राप्त राशि 'वर्णद' कहलाती है ।

हमारे उदाहरण में जन्म लग्न स्पष्ट $3.2^0.48'$ सम राशि है । अतः मीन से उल्टे क्रम से गिनने पर 9 संख्या मिली । होरा लग्न स्पष्ट $7.7^0.45'$ भी सम है । अतः मीन से गिनने पर 5 संख्या मिली । दोनों संख्याएँ विषम हैं । अतः दोनों का योग 14 मिला । यह संख्या सम है । अतः मीन से उल्टे क्रम से गिनने पर 14वीं राशि 'कुम्भ' वर्णद राशि हुई ।

इस लग्न को स्पष्ट करने के लिए भी यही विधि अपनाएँ । लग्न विषम हो तो वही तथा सम हो तो 12 में से घटाकर शेष को ग्रहण करें । पूर्ववत् सम–विषम होने से योग या अन्तर करने पर राश्यादि स्पष्ट वर्णद होता है । लग्न व होरा सम हैं । अतः 12 – लग्न 3.2.48 = 8.27°.12′ मिली । 12 राशि–होरा 7.7°.45′ = 4.22°.15′ मिला । दोनों ही विषम हैं । अतः दोनों का योग 1.19°.27′ है । यह सम होने से इसे 12 में से घटाने पर 10.10°.33′ वर्णद लग्न स्पष्ट है ।

एक सरल प्रकार :–

(i) जन्म लग्न व होरा लग्न स्पष्ट को जोड़ लें । यदि यह विषम योगफल है तो यही 'वर्णद स्पष्ट' हैं ।

(ii) यदि उक्त योगफल सम हो तो योगफल को 12 में से घटाकर शेष 'वर्णद स्पष्ट' होगा ।

जन्म लग्न 3.2°.48′ + होरा लग्न 7.7°.45′ = 10.10°.33′ मिला । यह योगफल स्वयं ही विषम (कुम्भ राशि) है, अतः यही 'वर्णद लग्न स्पष्ट' है । पहले प्रकार से भी लम्बी प्रक्रिया से यही फल मिला था ।

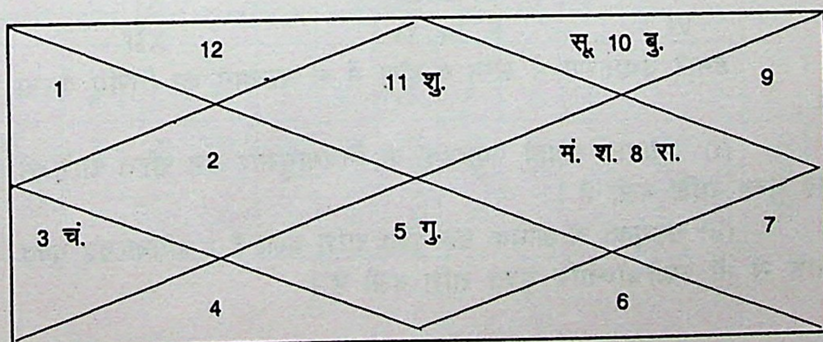
ध्यान रखिए, वर्णद लग्न सदैव विषम राशि होता है । यदि यह सम आए तो 12 में से घटाकर इसे विषम ही बनाया जाता है ।

(iii) इस प्रकार से प्राप्त वर्णद, लग्न का वर्णद होता है । अन्य भाव स्पष्टों के आधार पर अन्य भावों का वर्णद भी जाना जा सकता है ।

(iv) इसी वर्णद लग्न के आधार पर वर्णद दशा की गणना होती है ।

उदाहरणार्थ जन्म लग्न से द्वितीय भाव स्पष्ट (लग्न स्पष्ट + 1 राशि) तथा होरा लग्न से द्वितीय भाव स्पष्ट का योग करके पूर्वोक्त प्रकार से धनभाव का वर्णद जाना जा सकेगा ।

।। वर्णद लग्न ।। 10.10°.33′



वर्णद का प्रयोजन :–

एतत्प्रयोजनं वक्ष्ये श्रृणु त्वं द्विजपुंगव ! ।
होरालग्नभयोर्नेया सबलाद् वर्णदा दशा ।। 5 ।।
यत्संख्यो वर्णदो लग्नात् तत्संख्याक्रमेण तु ।
क्रमव्युत्क्रमभेदेनदशास्यादोजयुग्मयोः ।।6 ।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं वर्णद का प्रयोजन कहता हूँ। होरा व लग्न में जो बलवान् हो उसी से गिनकर वर्णद दशा जानी जाती है। लग्न से वर्णद राशि जितनी संख्या आगे या पीछे (सम–विषम भेद से क्रम व व्युत्क्रम गणना) पड़े, उतने ही वर्ण लग्न की 'वर्षद दशा' होती है। 'सबलात्' के स्थान पर 'दुर्बलात्' पाठ भी मिलता है।

अन्य भावों की दशा भी तत्तत् वर्णदों से जानी जा सकती है। वर्णद में भाव स्पष्ट 2-2 राशि आगे बढ़ते हैं। अतः लग्न वर्णद स्पष्ट में 2-2 राशि जोड़ने से अन्य भावों के भी वर्णद स्पष्ट हो जाते हैं। 'वर्णदान्ताः समाः' ऐसा जैमिनि मुनि ने कहा है, अतः भाव राशि से वर्णद राशि तक क्रम व्युत्क्रम से गिनकर जितनी संख्या मिले, उतने ही वर्ष उस राशि की दशा होती है। वर्ण दशा राशियों की होती है, ग्रहों की नहीं। विशेष विवरण हमने अपने 'जैमिनि सूत्रम्, शान्तिप्रिय भाष्य में भी दिया है।

हमारे उदाहरण में वर्णद स्पष्ट $10.10^0.33'$ है। इसमें 2-2 राशि जोड़ते जाने से अन्य भावों के भी वर्णद मिल जाएँगे।

।। द्वादश भाव वर्णद स्पष्ट ।।

I	$10 . 10^0 . 33'$	VII
II	0 . 10 . 33	VIII
III	2 . 10 . 33	IX
IV	4 . 10 . 33	X
V	6 . 10 . 33	XI
VI	8 . 10 . 33	XII

हमारे उदाहरण में लग्न व होरा में से बलवान् का निर्णय करना है।

(i) 'अग्रहात् सग्रहो ज्यायान्' के नियमानुसार ग्रह रहित राशि से ग्रह युक्त राशि बली है।

(ii) ग्रहयुक्त से अधिक ग्रह युक्त राशि बली है। अधिक ग्रह युक्त राशि से भी स्वक्षेत्रोच्चादि युक्त राशि बली है।

(iii) यदि तब भी निर्णय न हो तो राशियों का निसर्ग बल देखें। चर स्थिर व द्विस्वभाव राशियाँ क्रमशः उत्तरोत्तराधिक निसर्ग बली होती हैं।

हमारे उदाहरणों में लग्न व होरा लग्न में, होरा बली है। उसमें कई ग्रह हैं तथा लग्न में कोई ग्रह नहीं है। अतः होरा लग्न की राशि वृश्चिक से व्युत्क्रम से राशियों की दशाएँ होंगीं।

दशा वर्ष जानने के लिए होरा राशि वृश्चिक से वर्णद राशि कुम्भ तक विपरीत क्रम से गिना तो 9 वर्ष मिले। अतः वृश्चिक दशा 9 वर्ष की होगी।

ततः तुला राशि का दशा काल जाना। विषम तुला राशि होरा लग्न में द्वादशस्थ है। अतः द्वादश वर्णद धनु तक गिनने पर तीन वर्ष मिले।

कन्या राशि से एकादशस्थ वर्णद तुला है। व्युत्क्रम से 12 वर्ष मिले। सिंह राशि से दशमस्थ वर्णद सिंह ही है। अतः 19 वर्ष मिले। कर्क राशि नवमस्थ वर्णद मिथुन है। व्युत्क्रम से 12 वर्ष मिले। मिथुन राशि से अष्टमस्थ वर्णद मेष तक 11 वर्ष हैं। वृष राशि से सप्तमस्थ वर्णद कुम्भ गिनकर 4 वर्ष मिले। मेष राशि से षष्ठस्थ वर्णद धनु तक 9 वर्ष, मीन राशि से पंचम वर्णद तुला तक 6 वर्ष, कुम्भ राशि से चतुर्थस्थ वर्णद सिंह तक 7 वर्ष, मकर राशि से तृतीयस्थ वर्णद मिथुन तक 8 वर्ष, धनु राशि से द्वितीयस्थ वर्णद मेष तक 5 वर्ष मिले। इनका दशाचक्र बना लिया।

।। वर्णद दशाचक्र ।। (उदाहरण)

दशेश	वृश्चि	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथु.	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु
वर्ष	9	3	12	1	12	11	4	9	6	7	8	5
तिथि 25.1.56	25.1.1965	25.1.1968	25.1.1980	25.1.1981	25.1.1993	25.1.2004	25.1.2008	25.1.2017	25.1.2023	25.1.2030	25.1.2038	25.1.2043

फल विचार के नियम—

पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके ।
यदि स्यात् तर्हि तद्राशीपर्यन्तं तस्य जीवनम् ।। 7 ।।
रुद्रशूलेयथैवायुर्मरणादिर्निरूप्यते ।
तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसंगमे ।। 8 ।।
वर्णदात् सप्तमाद्राशेः कलत्रायुर्विचिन्तयेत् ।
एकादशादग्रजस्य तृतीयात्तु यवीयसः ।। 9 ।।
सुतस्य पंचमे विद्यान्मातुश्च तुर्यभावतः ।।
पितुश्च नवमाद्भावादायुरेवं विचिन्तयेत् ।। 10 ।।
शूलराशिदशायां वै प्रबलायामरिष्टकम् ।

वर्णद लग्न से त्रिकोणों में पापग्रहों का योग या दृष्टि अशुभ होती है। यदि ऐसा हो तो वर्णद से त्रिकोण राशि की दशा तक ही मनुष्य का जीवन होता है। जिस प्रकार रुद्रग्रह की शूल दशा से आयु व मरण का विचार होता है उसी तरह वर्णद दशा से भी करना चाहिए। अर्थात् वर्णद त्रिकोण में पापग्रह रहने पर त्रिकोण राशि दशा तक ही जीवन होता है।

वर्णद लग्न के सप्तम भाव से पत्नी की, ग्यारहवें भाव से बड़े भाई की, तीसरे भाव से छोटे भाई की, पुत्र की पंचम भाव से, माता की चतुर्थ से, पिता की नवें भाव से आयु देखनी चहिए।

प्रबल शूल राशि की दशा में विशेष अरिष्ट समझना चाहिए।

जिन भावों से त्रिकोण में पापग्रह की दृष्टि या योग पड़े, उस भाव से द्योतित सम्बन्धी को उस त्रिकोण राशि की दशा में कष्ट या मरण समझना चाहिए। रुद्रग्रह व शूल दशादि पारिभाषिक शब्द जैमिनि मत से लिए गए हैं। जैमिनि ने पराशर से विचार लिया या पराशर ने जैमिनि से यह कहना कठिन है, लेकिन दोनों ही महर्षि ज्योतिष के शिरोमणि हैं। शूल दशा के विषय में आगे दशा भेद में बताया जाएगा। 'पितृलाभभावेशप्राणी रुद्रः' इस परिभाषा से 1.7 भावों से अष्टम राशि देखनी चाहिए। दोनों में जो बलवान् हो, उस राशि का स्वामी रुद्रग्रह होता है। लेकिन जन्म लग्न सम हो तो व्युत्क्रम से अष्टमेश द्वितीयेश अर्थात् 6.12 भावेश तथा लग्न विषम हो तो 2.8 भावेशों को देखना होगा।

प्रस्तुत उदाहरण में वर्णद राशि व त्रिकोणों में पापग्रह नहीं है। अतः अनिष्ट नहीं है। दृष्टि विचार में राशि दृष्टि ही ली जाएगी, ग्रहों की दृष्टि नहीं। राशि दृष्टि में सभी चर राशियाँ द्वितीयस्थ स्थिर को छोड़कर शेष तीनों स्थिरों को, स्थिर राशि द्वादशस्थ चर को छोड़कर शेष चारों को व द्विस्वभाव स्वयं को छोड़कर शेष द्विस्वभावों को देखती है तथा इन राशियों में स्थित ग्रह भी तब इस प्रसंग में इसी प्रकार देखते हैं। इस विधि से मंगल शनि की पंचम पर दृष्टि सिद्ध नहीं होती है।

जातक की पत्नी की आयु का विचार करते हैं। सप्तम से त्रिकोणों में वर्णद लग्न में पापग्रह नहीं है। लेकिन सप्तम से त्रिकोण मेष राशि पर शनि व मंगल की दृष्टि है। अतः मेष दशा में पत्नी को कष्ट होगा।

इसी प्रकार अन्य सम्बन्धियों का भी विचार करना चाहिए। नवम से त्रिकोणों में पापदृष्टि व पापयोग नहीं है। अतः पिता का साया लम्बे समय तक रहेगा। पुनश्च हमारे विचार से जातक का ही विचार यहाँ मुख्यतः होना चाहिए।

वर्णद दशा में अन्तर्दशा :–

एवं तन्वादिभावानां कर्त्तव्या वर्णदा दशा।
पूर्ववच्च फलं ज्ञेयं देहिनां च शुभाशुभम्।। 11।।
ग्रहाणां वर्णदा नैव राशीनां वर्णदादशा।
कृत्वाऽर्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद् वदेत्।। 12।।
एवमन्तर्दशादिं च कृत्वा तेन फलं वदेत्।
क्रमव्युत्क्रमभेदेनलिखेदन्तर्दशामपि। 13।।

इसी विधि से द्वादश भावों की वर्णद दशा जाननी चाहिए। उस दशा से प्राणियों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए। वर्णद दशा ग्रहों की नहीं होती, केवल राशियों की होती है।

सम्पूर्ण दशामान को 12 से भाग देने पर अन्तर्दशा का मान आ जाता है। इस अन्तर्दशा चक्र को भी पूर्वोक्त दशा क्रमानुसार लिखकर फल बताना चाहिए। विशेष विचार के लिए हमारा जैमिनिसूत्र शान्तिप्रिय भाष्य पृ० 25-31 भी देखें।

उदाहरण में वर्तमान में मिथुन राशि की दशा है। इसका मान 11 है।

अतः 11 ÷ 12 = 330 दिन या 11 मास की एक अन्तर्दशा रहेगी।

।।मिथुनान्तर्दशा चक्र ।।

	मि.	वृ.	मे.	मी.	कु.	म.	धनु.	वृश्चि.	तुला	क.	सिं.	कर्क
मास	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11
25.1.93	25.12.93	25.11.94	25.10.95	25.9.96	25.8.97	25.7.98	25.6.99	25.5.2000	25.4.2001	25.3.2002	25.2.2003	25.1.2004

वर्णद लग्न में जो राशि बलवान् हो, शुभयुक्त हो, शुभ दृष्ट हो या निसर्ग शुभ ग्रह की राशि हो तथा जिससे 5.9 में भी उक्त प्रकार से शुभयोग दृष्टि आदि बने, उस राशि की दशान्तर्दशा में जन्म लग्न में उस राशि से द्योतित भाव सम्बन्धी बातों की वृद्धि होगी । अन्यथा भाव हानि समझनी चाहिए ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां वर्णददशाध्यायः षष्ठः ।। 6 ।।

7

।। अथ षोडशवर्गाध्यायः ।।

वर्गान् षोडश यानाह ब्रह्मालोक पितामहः ।
तानहं सम्प्रवक्ष्यामि मैत्रेय ! श्रूयतामिति ।। 1 ।।
क्षेत्रं होरा च द्रेष्काणस्तुर्यांशः सप्तमांशकः ।
नवांशो दशमांशश्च सूर्यांशः षोडशांशकः ।। 2 ।।
विशांशो वेद बाह्वंशो भांशस्त्रिशांशकस्ततः ।
खवेदांशोऽक्षवेदांशः षष्ठ्यंशश्च ततः परम् ।। 3 ।।

हे मैत्रेय ! ब्रह्माजी ने पहले जो 16 वर्गो का उल्लेख किया है, अब मैं, उन्हें कहता हूँ, ध्यान से सुनो ।

राशि (क्षेत्र) होरा, द्रेष्काण, चतुर्थांश, सप्तमांश, नवांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, विंशांश, चतुर्विंशत्यंश, सप्तविंशांश, त्रिंशांश, खवेदांश, अक्षवेदांश षष्ठ्यंश ये 16 वर्ग होते हैं ।

क्षेत्र व होरा विवेक :–

> **तत्क्षेत्रं तस्य खेटस्य राशेर्यो यस्य नायकः ।**
> **सूर्योन्द्वोर्विषमे राशौ समे तद्विपरीतकम् ।। 4 ।।**
> **पितरश्चन्द्रहोरेशा देवा सूर्यस्य कीर्तिताः ।**
> **राशेरर्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृता ।। 5 ।।**
> **मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ।।**

जो ग्रह राशि का स्वामी है, वही उस ग्रह का क्षेत्र या ग्रह कहलाता है ।

विषम राशियों में पूर्वार्ध 15^0 तक सूर्य की तथा आगे 16^0 से30^0 तक चन्द्रमा की होरा होती है । सम राशियों में पहले अर्ध भाग में चन्द्रमा की तथा शेष उत्तरार्ध में सूर्य की होरा होती है । चन्द्र होरा के स्वामी पितर तथा सूर्य होरा के स्वामी देवता होते हैं ।

राशि का अर्धभाग होरा कहलाता है । इस प्रकार बारह राशियों में कुल 24 होरा होती हैं । सभी राशियों में मेष से आरम्भ करके दो बार सम्पूर्ण राशि चक्र की आवृत्ति हो जाती है ।

श्लोक संख्या 5 जैमिनि मत की वृद्ध कारिकाओं में भी यथावत् मिलता है । इसी आधार पर यहाँ प्रोक्त मत परस्पर विरोधी प्रतीत होता है । पहले सूर्य व चन्द्र की होरा कहकर, बाद में मेषादि राशियों की होरा कह दी है । इसका आशय जैमिनीय मत में तो यही लिया जाता है कि– मेष में पहली होरा मेष की, दूसरी होरा वृष की, वृष में पहली होरा मिथुन की तथा दूसरी होरा कर्क की इत्यादि प्रकार से होराएँ होती हैं ।

प्रचलित मतानुसार विषम राशियों में पहली होरा सूर्य की समझ कर 5 राशि लिख दी जाती हैं तथा उत्तरार्ध में 4 राशि लिखकर सब ग्रहों को स्थापित कर दिया जाता है । हमारे विचार से इसमें कोई रहस्य अवश्य है । वराहमिहिर ने भी 'होरेशर्क्षदलाश्रिते शुभकरो' इत्यादि में जो कहा है, उससे सिंह व कर्क की ही होरा हो, यह आशय नहीं निकलता है । लेकिन 'मार्त्तण्डेन्द्वोरयुति समये चन्द्रभान्वोश्च होरे" में वराह ने स्पष्टतया प्रचलित मत का ही उल्लेख किया है । इस विषय में हम कई स्थानों पर विस्तार से लिख चुके हैं । अस्तु प्रचलित मत का समादर करते हुए यहाँ प्रचलित मत से ही विचार किया जा रहा है ।

।।होरा चक्र ।।

	मेष	वृ.	मि.	कर्क	सिं.	क.	तु.	वृश्चि	धनु	म.	कु.	मी.
$0\text{-}15^0$	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4
$16^0\text{-}30^0$	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5

पूर्वार्ध में पड़ने से चन्द्र होरा में रहा है। इसके स्वामी पितर होंगे। सब ग्रहों को भी उनकी होराओं में स्थापित करने से निम्नोक्त चक्र तैयार हुआ।

द्रेष्काण विवेक :–

राशित्रिभागाद्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः ।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत् ।।6।।
स्वपंचनवमानां च राशीनां क्रमशश्च ते ।
नारदागस्तिदुर्वासा द्रेष्काणेशाश्चरादिषु ।।7।।

राशि का तीसरा भाग (10^0) द्रेष्काण कहलाता है। ये सम्पूर्ण राशि चक्र में 36 होते हैं। इनमें मेषादि बारह राशियों की क्रमशः तीन आवृत्तियाँ पूरी हो जाती हैं। यह एक मत है। इसका प्रयोग जैमिनीय मत में हुआ है तथा किसी प्राचीन मत की ओर इंगित करता है। अगले श्लोक में प्रचलित मत का विवरण दिया गया है।

सभी राशियों में पहला द्रेष्काण उसी राशि का, दूसरा द्रेष्काण उससे पंचम का व तीसरा द्रेष्काण नवम राशि का होता है। इन द्रेष्काणों के स्वामी क्रमशः नारद, अगस्त्य व दुर्वासा होते हैं।

।।द्रेष्काण विभाग ।।

	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
$0\text{-}10^0$ नारद	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
$11^0\text{-}20^0$ अगस्त्य	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4
$21^0\text{-}30$ दुर्वासा	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8

हमारे उदाहरणों में लग्न स्पष्ट पहले दस अंशों के भीतर रहने से कर्क का ही द्रेष्काण सिद्ध हुआ।

होरा चक्र

शुक्र
4
मंगल
शनि

राहु सूर्य चन्द्र
5
गुरु बुध

द्रेष्काणचक्र

5 गु.
3 शु.
6
4 रा.
2 सू. बु.
7 चं.
1
8 श.
10 के.
12 मं.
9
11

चतुर्थांश विचार :–

स्वर्क्षादिकेन्द्रपतयस्तुर्यांशेशाःक्रियादिषु ।
सनकश्च सनन्दश्च कुमारश्च सनातनः ।। 8 ।।

राशि के चतुर्थ भाग का नाम चतुर्थांश है । अतः $7^0.30'$ का एक चतुर्थांश हुआ । प्रथम चतुर्थांश उसी राशि का, दूसरा उससे चतुर्थ राशि का, तीसरा सप्तम राशि का व चौथा दशम राशि का होता है ।

।। चतुर्थांश प्रदर्शन ।।

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
$7^0.30'$ सनक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
$15^0.00'$ सनन्द	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3
$22^\circ.30'$ कुमार	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6
30° सनातन	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9

हमारा लग्न स्पष्ट $7^0.30'$ अंशों के भीतर होने से पहला चतुर्थांश उसी राशि कर्क का है तथा स्वामी सनक है ।

सप्तमांश विचार :–

सप्तांश पास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः ।
युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षादि नायकात् ।। 9 ।।
क्षारक्षीरौ च दध्याज्यौ तथैक्षुरससम्भवः ।
मद्यशुद्धजलावोजे समे शुद्धजलादिकाः ।। 10 ।।

सप्तमांश राशि का सातवाँ भाग होता है। विषम राशियों में उसी राशि से तथा सम राशि में सातवीं राशि से गिनकर सप्तमांश जाने जा सकते हैं। $4^0.17'$ के तुल्य एक सप्तमांश होता है।

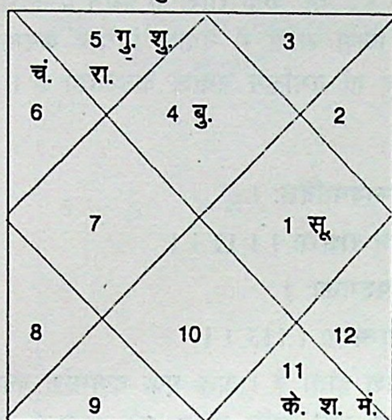
विषम राशियों में क्रमशः क्षार, क्षीर, दधि, घी, इक्षुरस, मद्य व शुद्ध-जल ये नाम हैं। सम राशियों में उल्टा क्रम अर्थात् शुद्धजल, मद्य, इक्षुरस, घी, दधि, क्षीर, क्षार होते हैं।

।। सप्तमांश चक्र ।।

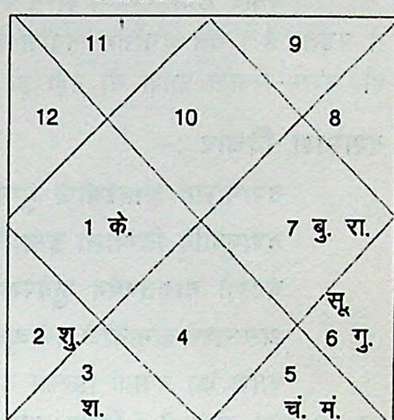
	विषम राशि							सम राशि						
	मे.	मि.	सि.	तु.	ध.	कु.	स्वामी	स्वामी	वृ.	क.	कन्या	वृ.	म.	मी.
4.17	1	3	5	7	9	11	क्षार	शुद्ध जल	8	10	12	2	4	6
8.34	2	4	6	8	10	12	क्षीर	मद्य	9	11	1	3	5	7
12.51	3	5	7	9	11	1	दधि	इक्षु रस	10	12	2	4	6	8
17.8	4	6	8	10	12	2	घृत	घृत	11	1	3	5	7	9
21.25	5	7	9	11	1	3	इक्षु रस	दधि	12	2	4	6	8	10
25.42	6	8	10	12	2	4	मद्य	क्षीर	1	3	5	7	9	11
30.00	7	9	11	1	3	5	शुद्ध जल	क्षार	2	4	6	8	10	12

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट $3.2^{\circ}.48'$ सम राशि के प्रथम सप्तमांश में पड़ता है। अतः सप्तमांश कुण्डली में प्रथम भाव राशि मकर रहेगी तथा स्वामी शुद्धजल होगा।

चतुर्थांश चक्र



सप्तमांशचक्र



नवांश कथन :–

नवांशेशाश्चरे तस्मात् स्थिरे तन्नवमादितः ।

उभये तत्पंचमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणैः ।

देवा नृराक्षसाश्चैव चरादिषु गृहेषु च ।। 11 ।।

राशि का नवम भाग अर्थात $30^0 \div 9 = 3^0.2'$ यह एक नवांश का मान है । चर राशियों में उसी राशि से, स्थिर में नवम राशि से व द्विस्वभाव में पंचम राशि से नवांश गणना होती है ।

चर राशि में देव, मनुष्य, राक्षस; स्थिर में मनुष्य, राक्षस, देव तथा द्विस्वभाव में राक्षस, देव, मनुष्य अधिपति होते हैं ।

।।नवांश चक्र ।।

	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
3.20	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10	7	4
	देव	मनु	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.
6.40	2	.11	8	5	2	11	8	5	2	11	8	5
	मनु.	राक्ष	देव	मनु.	राक्ष	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव
10.00	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12	9	6
	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष	देव	मनु.
13.20	4	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10	7
	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष	देव	मनु.	राक्ष.
16.40	5	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11	8
	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव
20	6	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12	9
	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.
23.20	7	4	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10
	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.
26.40	8	5	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11
	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव
30	9	6	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12
	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3.2°.48′ कर्क राशि के प्रथम द्रेष्काण में पड़ता है। यह वर्गोत्तम नवांश है। जिस राशि में नवांश विचार करना हो, उसमें नवांश राशि भी वही हो जाए तो वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।

दशमांश विचार :–

दशमांशाः स्वतश्चौजे युग्मे तन्नवमादितः।
दशपूर्वादि दिग्पाला इन्द्राग्नियम राक्षसा।। 12।।
वरुणो मारुतश्चैव कुबेरेशान पद्मजाः।
अनन्तश्च क्रमादोजे समे व्युत्क्रमान्मताः।।13।।

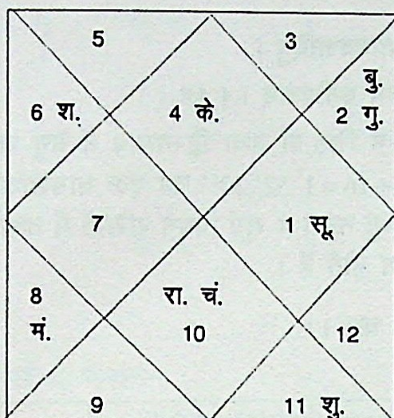
राशि का दसवाँ हिस्सा दशमांश होता है। अतः एक दशमांश का मान 3 अंश होता है। विषम राशियों में उसी राशि से व सम राशियों में नवम राशि से दशमांश गिने जाते हैं। इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त ये दस दिग्पाल विषम राशियों में क्रम से तथा सम राशियों में व्युत्क्रम से स्वामी होते हैं।

।। दशमांश चक्र।।

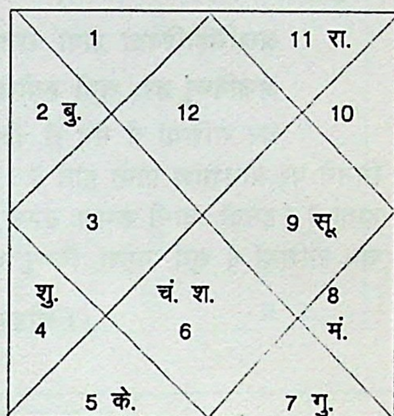
विषम राशि								सम राशि						
अंश	मे.	मि.	सि.	तु.	ध.	कु.	स्वामी	स्वामी	वृ.	क.	कन्या	वृ.	म.	मी.
3	1	3	5	7	9	11	इन्द्र	अनन्त	10	12	2	4	6	8
6	2	4	6	8	10	12	अग्नि	ब्रह्मा	11	1	3	5	7	9
9	3	5	7	9	11	1	यम	ईशान	12	2	4	6	8	10
12	4	6	8	10	12	2	राक्ष.	कुबेर	1	3	5	7	9	11
15	5	7	9	11	1	3	वरुण	वायु	2	4	6	8	10	12
18	6	8	10	12	2	4	वायु	वरुण	3	5	7	9	11	1
21	7	9	11	1	3	5	कुबेर	राक्ष.	4	6	8	10	12	2
24	8	10	12	2	4	6	ईशान	यम	5	7	9	11	1	3
27	9	11	1	3	5	7	ब्रह्मा	अग्नि	6	8	10	12	2	4
30	10	12	2	4	6	8	अनन्त	इन्द्र	7	9	11	1	3	5

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट तीन अंशों के भीतर रहने से सम राशि में मीन का दशमांश होगा तथा अनन्त (नाग) स्वामी रहेगा ।

नवांश कुण्डली



दशमांश कुण्डली



द्वादशांश विवेक :–

द्वादशांशस्य गणना तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत् ।

तेषामधीशाः क्रमशो गणेशाश्वियमाह्वयः ।।14 ।।

राशि का बारहवाँ भाग अर्थात् $2^0.30'$ अंश का एक द्वादशांश होता है । इसकी गणना सभी राशियों में, विचारणीय राशि से ही होती है । गणेश, अश्विनी कुमार, यम, सर्प ये क्रमशः इनके स्वामी होते हैं ।

।।द्वादशांश चक्र ।।

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3.2°.48′ दूसरे द्वादशांश में है। अतः द्वादशांश राशि सिंह व स्वामी अश्विनी कुमार है।

षोडशांश निर्णय :–

अजसिंहाश्वितो ज्ञेया षोडशांशाश्चरादिषु।
अजविष्णू हरः सूर्यो ह्योजे युग्मे प्रतीपकम्।। 15।।

चर राशियों में मेष से, स्थिर में सिंह से तथा द्विस्वभाव में धनु से गिनने पर षोडशांश प्राप्त होते हैं। 30°÷16=1°.52′.30″ का एक षोडशांश होता है। इनके स्वामी क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु महेश व सूर्य विषम रशियों में तथा सम राशियों में सूर्य, महेश, विष्णु, ब्रह्मा होते हैं।

।। षोडशाशं चक्र।।

विषम स्वामी	मेष कर्क तुला मकर	वृष सिहं वृश्चि. कुम्भ	मिथुन कन्या धनु मीन	सम स्वामी	अंश
ब्रह्मा	1	5	9	सूर्य	1.52.30
विष्णु	2	6	10	महेश	3.45.00
महेश	3	7	11	विष्णु	5.37.30
सूर्य	4	8	12	ब्रह्मा	7.30.00
ब्रह्मा	5	9	1	सूर्य	9.22.30
विष्णु	6	10	2	महेश	11.15.00
महेश	7	11	3	विष्णु	13.7.30
सूर्य	8	12	4	ब्रह्मा	15.0.00
ब्रह्मा	9	1	5	सूर्य	16.52.30
विष्णु	10	2	6	महेश	18.45.00
महेश	11	3	7	विष्णु	20.37.30
सूर्य	12	4	8	ब्रह्मा	22.30.00
ब्रह्मा	1	5	9	सूर्य	24.22.30
विष्णु	2	6	10	महेश	26.15.00
महेश	3	7	11	विष्णु	28.7.30
सूर्य	4	8	12	ब्रह्मा	30.0.00

द्वादशांश कुण्डली

6 — 4 बु. — 7 चं. गु. — 5 शु. रा. — 3 — 8 — 2 सू. — 9 — 11 श. के. — 1 मं. — 10 — 12

षोडशांश कुण्डली

3 चं. — 1 शु. — 4 — 2 — 12 मं. — 5 रा. — 11 के. — 6 सू. — 8 गु. — 10 — 9 श. बु. — 7

विंशांश कथन–

अथ विंशतिभागानामधिपा ब्रह्मणोदिताः ।
क्रियाच्चरे स्थिरे चापान् मृगेन्द्राद् द्विस्वभावके ।। 16 ।।
कालीगौरी जयालक्ष्मीर्विजया विमला सती ।
तारा ज्वालामुखी श्वेता ललिता बगलामुखी ।। 17 ।।
प्रत्यंगिरा शची रौद्री भवानी वरदा जया ।
त्रिपुरा सुमुखी चेति विषमे परिचिन्तयेत् ।। 18 ।।
समराशौ दयामेधा छिन्नशीर्षा पिशाचिनी ।
धूमावती च मातंगी बाला भद्रारुणा नला ।। 19 ।।
पिंगला छुच्छुका घोरा वाराही वैष्णवी सिता ।
भुवनेशी भैरवी च मंगला ह्यपराजिता ।। 20 ।।

विशांश के अधिपति जैसे पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने कहे हैं, वे कहता हूँ। चर राशियों में मेष से, स्थिर में धनु से व द्विस्वभाव में सिंह से गणना करने पर विंशांश ज्ञात होते हैं। 1°.30′ अंश के बराबर एक विंशांश होता है।

विषम राशियों में, काली, गौरी, जया, लक्ष्मी, विजया, विमला, सती, तारा, ज्वालामुखी, श्वेता, ललिता, बगलामुखी, प्रत्यंगिरा, शची, रुद्राणी, भवानी, वरदा, जया, त्रिपुरा व सुमुखी ये अधिष्ठात्री देवियां हैं।

सम राशियों में दया, मेघा, छिन्नशीर्षा, पिशाचिनी, धूमावती, मातंगी, बाला, भद्रा, अरुणा अनला, पिंगला, छुच्छुका, घोरा, वाराही, वैष्णवी, सिता, भुवनेश्वरी, भैरवी, मंगला, व अपराजिता हैं।

हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट 3.2°.48′ सम व चर राशि में है। अतः दूसरा विंशांश वृष राशि का तथा देवी मेधा सिद्ध होती है।

।। विंशांश चक्र।।

	विषम राशि				सम राशि			
अंश	चर मे. तु.	स्थिर सि. कु.	द्विस्वभाव मि. ध.	स्वामी	स्वामी	चर क. म.	स्थिर वृ. वृश्चि.	द्विस्वभाव क. मी.
1.30	1	9	5	काली	दया	1	9	5
3.0	2	10	6	गौरी	मेघा	2	10	6
4.30	3	11	7	जया	छिन्नशीर्षा	3	11	7
6.0	4	12	8	लक्ष्मी	पिशाची	4	12	8
7.30	5	1	9	विजया	धूमावती	5	1	9
9.0	6	2	10	विमला	मातंगी	6	2	10
10.30	7	3	11	सती	बाला	7	3	11
12.0	8	4	12	तारा	भद्रा	8	4	12
13.30	9	5	1	ज्वालामुखी	अरुणा	9	5	1
15.0	10	6	2	श्वेता	अबला	10	6	2
16.30	11	7	3	ललिता	पिंगला	11	7	3
18.00	12	8	4	बगला	छुच्छुका	12	8	4
19.30	1	9	5	प्रत्यंगिरा	घोरा	1	9	5
21.0	2	10	6	शची	वाराही	2	10	6
22.30	3	11	7	रुद्राणी	वैष्णवी	3	11	7
24.0	4	12	8	भवानी	सिता	4	12	8
25.30	5	1	9	वरदा	भुवनेशी	5	1	9
27.00	6	2	10	जया	भैरवी	6	2	10
28.30	7	3	11	त्रिपुरा	मंगला	7	3	11
30.00	8	4	12	सुमुखी	अपराजिता	8	4	12

चतुर्विंशांश विचार :–

सिंहाशकानामधिपाः सिंहादोजभगे ग्रहे ।
कर्काद्युग्मभगे खेटे स्कन्दः पर्शुधरोऽनलः ।। 21 ।।
विश्वकर्मा भगो मित्रो मयोऽन्तकवृषध्वजाः ।
गोविन्दो मदनो भीमः सिंहादौ विषमे क्रमात् ।।
कर्कादौ समभे भीमाद् विलोमत् परिचिन्तयेत् ।। 22 ।।

विषमराशियों में सिंहादि क्रम से तथा सम राशियों में कर्कादि क्रम से चतुर्विंशांश गिने जाते हैं । एक चतुर्विंशांश का मान 30÷24 = $1^{\circ}.15'$ है । विषम राशियों में, स्कन्द, पर्शुधर (परशुधर), अग्नि, विश्वकर्मा, भग, मित्र, मय, अन्तक, वृषध्वज, गोविन्द, मदन, भीम तथा पुनः स्कन्द, परशुधर आदि क्रमशः दूसरी आवृत्ति करने पर अधिदेव हैं । सम राशियों में विपरीत क्रम से भीम, मदन, गोविन्द आदि अधिदेव होते हैं ।

हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट $3.2^{0}.48'$ सम राशि में तीसरा भाग पड़ता है । अतः कर्क से गिनने पर कन्या चतुर्विंशांश तथा अधिदेव गोविन्द होगा ।

सप्तविंशांश विचार –

भांशाधिपाःक्रमाद्दस्रयमवह्निपितामहाः ।
चन्द्रेशादिति जीवाहि पितरो भगसंज्ञिताः ।। 23 ।।
अर्यमार्कत्वष्ट्रमरुच्छकाग्निमित्रवासवाः ।
निरृत्युदकविश्वेऽजगोविन्दवसवोऽम्बुपः ।।24 ।।
ततोऽजपादहिर्बुध्न्यः पूषा चैव प्रकीर्तिताः ।
नक्षत्रेशास्तु भांशेशा मेषादि चरभक्रमात् ।। 25 ।।

भांश अर्थात् सप्तविंशांश एक राशि में 27 होते हैं । इनकी गणना सभी चर राशियों से अर्थात् मेष में मेष से, वृष में कर्क से, मिथुन में तुला से व कर्क में मकर से होती है । पुनः सिंह व धनु में भी 1.4.7.10 राशियों से गणना होती है । $1^{\circ}.6'.40''$ के तुल्य एक सप्तविंशांश होता है ।

नक्षत्रों के स्वामी ही भांशेश भी होते हैं । अश्विनी कुमार, यम, अग्नि, पितामह, चन्द्रमा, ईश, अदिति, गुरु, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, वायु (मरुत) इन्द्राग्नी, मित्र, इन्द्र, राक्षस, जल, विश्वेदेव, विष्णु, वसु, वरुण, अजैकपाद, अहिर्बध्न्य, पूषा ये इनके स्वामी हैं ।

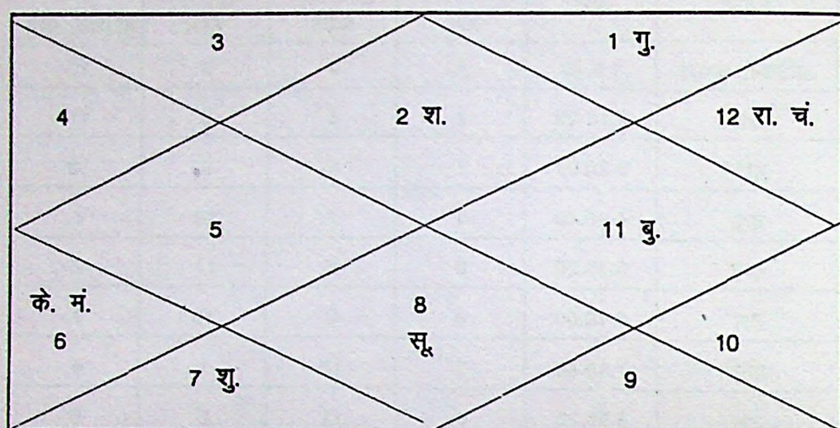
।। चतुर्विंशांश चक्रम् ।।

विषम राशि	विषम स्वामी	सम स्वामी	सम राशि	अंश
1.3.5.7.9.11	←	→	2.4.6.8.10.12	
5	स्कन्द	भीम	4	1.15
6	परशुधर	मदन	5	2.30
7	अनल	गोविन्द	6	3.45
8	विश्वकर्मा	वृषध्वज	7	5.00
9	भग	अन्तक	8	6.15
10	मित्र	भय	9	7.30
11	भय	मित्र	10	8.45
12	अन्तक	भग	11	10.00
1	वृषध्वज	विश्वकर्मा	12	11.15
2	गोविन्द	अनल	1	12.30
3	मदन	परशुधर	2	13.45
4	भीम	स्कन्ध	3	15.00
5	स्कन्ध	भीम	4	16.15
6	परशुधर	मदन	5	17.30
7	अनल	गोविन्द	6	18.45
8	विश्वकर्मा	वृषध्वज	7	20.00
9	भग	अन्तक	8	21.15
10	मित्र	भय	9	22.30
11	भय	मित्र	10	23.45
12	अन्तक	भग	11	25.00
1	वृषध्वज	विश्वकर्मा	12	26.15
2	गोविन्द	अनल	1	27.30
3	मदन	परशुधर	2	28.45
4	भीम	स्कन्ध	3	30.00

।। भांश चक्रम् ।।

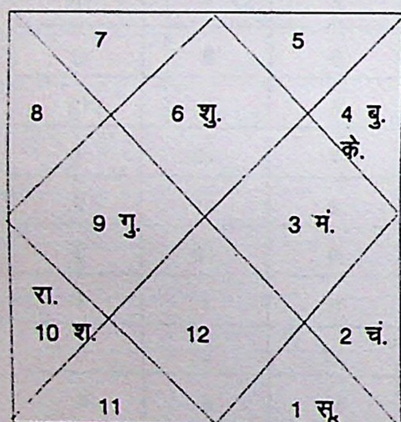
स्वामी	अंश	मेष सिहं धनु	वृष कन्या मकर	मिथुन तुला कुम्भ	कर्क वृश्चिक मीन
अश्विनी कुमार	1.6.40	1	4	7	10
यम	2.13.20	2	5	8	11
अग्नि	3.20.00	3	6	9	12
ब्रह्म	4.26.40	4	7	10	1
चन्द्र	5.33.20	5	8	11	2
ईश	6.40.00	6	9	12	3
अदिति	7.46.40	7	10	1	4
गुरू	8.53.20	8	11	2	5
सूर्य	10.00.00	9	12	3	6
पित्तर	11.6.40	10	1	4	7
भग	12.13.20	11	2	5	8
अर्यमा	13.20.00	12	3	6	9
सूर्य	14.26.40	1	4	7	10
त्वष्टा	15.33.20	2	5	8	11
वायु	16.40.00	3	6	9	12
इन्द्राग्नी	17.46.00	4	7	10	1
मित्र	18.53.20	5	8	11	2
इन्द्र	20.00.00	6	9	12	3
राक्षस	21.6.40	7	10	1	4
जल	22.23.20	8	11	2	5
विश्वदेव	23.20.00	9	12	3	6
विष्णु	24.26.40	10	1	4	7
वसु	25.33.20	11	2	5	8
वरूण	26.40.00	12	3	6	9
अजैकयाद	27.40.00	1	4	7	10
अहिर्बुधक	28.53.20	2	5	8	11
पूषा	30.00.00	3	6	9	12

।। विंशांश कुण्डली ।।

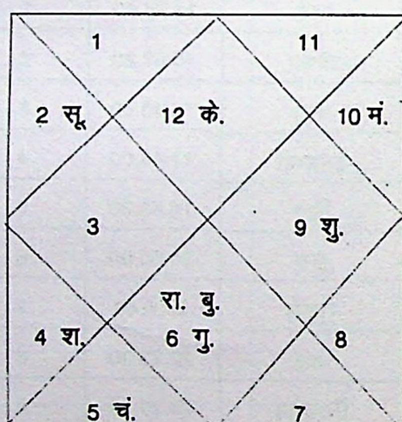


हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट 3.2°.48′ तीसरे कृत्तिका भांश में पड़ता है। अतः मीन राशि व अग्नि देवता सिद्ध हुआ।

।। चतुर्विंशांश कुण्डली ।।



।। भांश कुण्डली ।।



त्रिशांश विचार –

त्रिशांशेशाश्च विषमे कुजार्कीज्यज्ञभार्गवाः ।
पंचपंचाष्टसप्ताक्षभागा व्यत्ययतः समे ।। 26 ।।
वह्निसमीरशक्रौ च धनदो जलदस्तथा ।
विषमेषु क्रमाज्ज्ञेयाः समराशौ विपर्ययात् ।। 27 ।।

समी विषम राशियों में 5.5.8.7.5 अंशों में क्रमशः मंगल, शनि, गुरु, बुध, शुक्र के त्रिंशांश होते हैं। सम राशियों में 5.7.8.5.5 अंशों में क्रमशः शुक्र, बुध, गुरु, शनि, मंगल के त्रिंशांश होते हैं। विषम में इन ग्रहों की विषम राशि व सम में सम राशि ली जाती है।

अग्नि, वायु, इन्द्र, कुबेर, या मेघ, विषम राशियों में तथा मेघ, कुबेर, इन्द्र, वायु, अग्नि ये सम राशियों में अधिपति या अधिदेव होते हैं।

।।त्रिंशांश चक्र।।

अंश	विषम राशि 1.3.5.7.9.11	स्वामी	स्वामी	समराशि 2.4.6.8.10.12	अंश
0-5°	1	अग्नि	मेघ	2	0-5°
6°-10°	11	वायु	कुबेर	6	6°-12°
11°-18°	9	इन्द्र	इन्द्र	12	13°-20°
19°-25°	3	कुबेर	वायु	10	21°-25°
26°–30°	7	मेघ	अग्नि	8	26°-30′

हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट 3.2°.48′ सम राशि के पहले त्रिंशांश में है। अतः वृष-राशि का त्रिंशांश हुआ, जिसके अधिदेव मेघ हैं।

यहाँ पर त्रिंशांश अर्थात् तीसवाँ अंश, यह नाम युक्तिसंगत नहीं लगता है। अंश भेद से पाँच ही भाग हुए हैं। इसीलिए सर्वत्र नामतुल्य विभाग करते हुए भी यहाँ पर यह विषम परिपाटी क्यों अपनाई, यह स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों ने त्रिंशांश विभाजन की यह प्रणाली यवनों द्वारा प्रवर्तित मानी है तथा इसे पंचमांश नाम दिया है। (देखें, फलित विकास)। होरा, द्रेष्काण, त्रिंशांश में भेद है, शेष आर्ष प्रणालीवत् ही हैं।

खवेदांश विचार –

चत्वारिंशद् विभागानामधिपा विषमे क्रियात् ।
समभे तुलतो ज्ञेयाः स्वस्वाधिपसमन्विताः ।। 28 ।।
विष्णुश्चन्द्रो मरीचिश्च त्वष्टा धाता शिवो रविः ।
यमो यक्षश्च गन्धर्वः कालो वरुण एव च ।। 29 ।।

राशि का 40 वाँ अंश अर्थात् $30^\circ \div 40 = 0.45'$ का एक चत्वारिंशांश या खवेदांश होता है । विषम राशियों में मेष से व सम राशियो में तुला से गणना करनी चाहिए ।

विष्णु, चन्द्र, मरीचि, त्वष्टा, धाता, शिव, रवि, यम, यक्ष, गन्धर्व, काल व वरुण ये बारी–बारी से अधिपति होते हैं ।

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट $3.2^0.48'$ है । $0^0.45'$ का एक भाग मानने से चौथा खवेदांश उदित है । सम राशि होने से तुला से गिना तो मकर राशि का खवेदांश तथा त्वष्टा अधिपति हुआ ।

।। त्रिशांश कुण्डली ।।

3
1
बु.
4
2
12 मं.
5
11 गु.
सू.
श. 6
8
के.
10 रा.
7
9 शु. चं.

।। खवेदांश कुण्डली ।।

11
9 सू. गु.
12
10 शु.
8 के.
1 मं.
7
2 रा.
4 चं. बु.
6
3
5 श.

अक्षवेदांश विचार :–

तथाक्षवेदभागानामधिपाश्चरभेक्रियात् ।
स्थिरे सिंहाद् द्विभे चापात् विधीशविष्णवश्चरे ।। 30 ।।

स्वामी	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	अंशदि
विष्णु	1	7	1	7	1	7	1	7	1	7	1	7	0.45
चन्द्र मशीचे	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	1.30 2.15
त्वष्ठा धाता	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	3.00 3.45
शिव रवि	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	4.30 5.15
यम यक्ष	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	6.00 6.45
गन्धर्व काल	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	7.30 8.15
वरुण विष्णु	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	9.00 9.45
चन्द्र मरीचि	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	10.30 11.15
म्वष्ठा धाता	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	12.00 12.45
शिव रवि	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	13.30 14.15
यम यक्ष	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	15.00 15.45
गन्धर्व काल	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	16.30 17.15
वरुण विष्णु	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	18.00 18.45
त्वष्ठा मरीचि	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	19.30 20.15
शिव रवि	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	21.00 21.45
यम यक्ष	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12. 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	22.30 23.15
गन्धर्व काल	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	24.00 24.45
वरुण विष्णु	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	25.30 26.15
चन्द्र मरीचि	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	27.00 27.45
चन्द्व मरीचि	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	28.30 29.15
त्वष्टा	4	10	4	10	4	10	4	10	4	10	4	10	30.00

ईशाच्युतसुरज्येष्ठा विष्णुकेशाः स्थिरे द्विभे ।
देवाः पंचदशावृत्या विज्ञेया सुरसत्तम ।। 31 ।।

सभी राशियों में राशि का 45वाँ भाग अक्षवेदांश कहलाता है । 30 अंश ÷ 45 = 0.40′ अंशादि एक चत्वारिंशांश सिद्ध होता है । सभी चर राशियों में मेष से, स्थिर राशियों में सिंह से तथा द्विस्वभाव राशियों में धनु से गणना करनी चाहिए ।

इनमें ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इस क्रम से चर राशियों में, शिव, विष्णु, ब्रह्मा इस क्रम से स्थिर में एवं द्विस्वभाव में विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इत्यादि क्रम से 15-15 आवृत्ति करने से अधिदेव होते हैं ।

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3.2°.48′ पाँचवें अक्षवेदांश में पड़ा । वहाँ पर चर राशियों में मेषादि गणना वशात् सिंह का भाग निश्चित हुआ । ब्रह्मा, शिव, विष्णु इस क्रम से शिव अधिदेव हुए ।

षष्ट्यंश विचार :–

राशीन् विहाय खेटस्य द्विघ्नमंशाद्यमर्कहृत् ।
शेषं सैकं च तद्राशेर्भपाः षष्ट्यंशपाः स्मृताः ।। 32 ।।
घोरश्चराक्षसो देवः कुबेरो यक्षकिन्नरौ ।
भ्रष्टः कुलघ्नो गरलो वह्निर्माया पुरीषकः ।। 33 ।।
अपाम्पतिर्मरुत्वांश्च कालः सर्पामृतेन्दुकाः ।
मृदुः कोमलहेरम्बब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।। 34 ।।
देवादौ कलिनाशश्च क्षितीशकमलाकरौ ।
गुलिको मृत्युकालश्च दावाग्निर्घोरसंज्ञकः ।। 35 ।।
यमश्चकण्टकसुधाऽमृतौ पूर्णनिशाकरः ।
विषदग्धकुलान्तश्च मुख्यो वंशक्षयस्तथा ।। 36 ।।
उत्पातकालसौम्याख्याः कोमलः शीतलाभिधः ।
करालदंष्ट्रचन्द्रास्यौ प्रवीणः कालपावकः ।। 37 ।।
दण्डभृन् निर्मलः सौम्यः क्रूरोऽतिशीतलोऽमृतः ।
पयोधिभ्रमणाख्यौ च चन्द्ररेखा त्वयुग्मपाः ।। 38 ।।
समभेव्यत्ययाज्ज्ञेयाः षष्ट्यंशेशाः प्रकीर्तिताः ।
षष्ट्यंशस्वामिनस्त्वोजे तदीशात्व्यत्ययः समे ।। 39 ।।

शुभषष्ट्यंशसंयुक्ता ग्रहा शुभफलप्रदाः ।
क्रूरषष्ट्यंशसंयुक्ता नाशयन्ति खचारिणः ।। 40 ।।

जिस ग्रह या लग्न का षष्ट्यंश देखना हो, उसके स्पष्ट राश्यादि में से अंश, कला, विकलाओं (राशि छोड़ दें) को 2 से गुणा करें। उन अंशों को 12 से भाग देकर जो शेष बचे, ग्रह की अधिष्ठित राशि से उतने ही षष्ट्यंश बीत चुके हैं। पूर्व शेष में एक जोड़ने से वर्तमान षष्ट्यंश मिल जाता है।

एक राशि में 60 षष्ट्यंश होने से राशि का साठवाँ हिस्सा (30′) एक षष्ट्यंश का मान है। सब राशियों में उसी राशि से गणना होती है। विषम राशियों में घोर, राक्षस आदि क्रम से तथा सम राशियों में विपरीत क्रम अर्थात् चन्द्ररेखा, भ्रमण आदि क्रम से अधिपति होते हैं। जो ग्रह शुभ षष्ट्यंश (शुभ नाम वाले) में पड़ें, वे शुभ तथा अशुभ षष्ट्यंश (भयंकर अशुभ नाम वाले) में पड़ें तो उनका फल नष्ट हो जाता है।

यहीं पर महर्षि ने इन स्वामियों के प्रयोजन का निरूपण कर दिया है। ये सभी स्वामी नामतुल्य फल देने वाले होते हैं। अधिदेवता की जैसी प्रकृति, गुण, शील, स्वभाव हो, वैसा ही मनुष्य का भी होगा। यह लग्नगत वर्ग से देखा जाएगा। शेष ग्रह जैसे भागों में पडें, तदनुसार ही उस ग्रह का फल समझना चाहिए। उस ग्रह से संकेतित भाव का भी फल तदनुसार समझना चाहिए। संकेतित देवतादि की उपासना से शान्ति होगी। उसकी दशा में शुभ रहने पर लाभ, अशुभ रहने पर हानि होगी। इस प्रकार भावानुसार देखना चाहिए।

हमारे उदाहरण में 3.2°.48′ लग्न स्पष्ट है। 2°.48′ अंशादि को 2 से गुणा किया तो 4°.96′ मिला। 96′ को अंश बनाया तो 5°.36′ मिला। पाँचवाँ षष्ट्यंश गत व छठा वर्तमान है। कर्क से गिनने पर धनु वर्तमान षष्टयंश मिला। स्वामी 'क्रूर' है। यदि 2°.48′ की कला 168′÷30′ करें तो 5 लब्धि रहने से पाँचवाँ षष्ट्यंश गत व षष्ठ वर्तमान मिला।

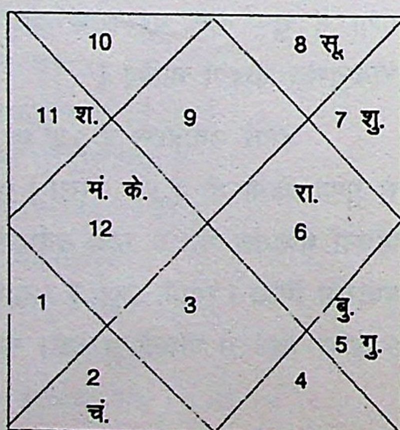
।।अक्षवेदांश सारिणी ।।

।। अक्षवेदांश सारिणी ।।

चर	स्थिर	द्विस्वभाव	अंश	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	अंश
1.4.7.10	2.5.8.11	3.6.9.12					
1	5	9	0.40	12 1	4 5	8 9	16.0 16.40
2 3	6 7	10 11	1.20 2.0	2 3	6 7	10 11	17.20 18.0
4 5	8 9	12 1	2.40 3.20	4 5	8 9	12 1	18.40 19.20
6 7	10 11	2 3	4.0 4.40	6 7	10 11	2 3	20.0 20.40
8 9	12 1	4 5	5.20 6.0	8 9	12 1	4 5	21.20 22.0
10 11	2 3	6 7	6.40 7.20	10 11	2 3	6 7	22.40 23.20
12 1	4 5	8 9	8.0 8.40	12 1	4 5	8 9	24.0 24.40
2 3	6 7	10 11	9.20 10.0	2 3	6 7	10 11	25.20 26.0
4 5	8 9	12 1	10.40 11.20	4 5	8 9	12 1	26.40 27.20
6 7	10 11	2 3	12.0 12.40	6 7	10 11	2 3	28.0 28.40
8 9	12 1	4 5	13.20 14.0	8 9	12 1	4 5	29.20 30.00
ब्रह्मा शिव विष्णु	शिव विष्णु ब्रह्मा	विष्णु ब्रह्मा शिव	14.40 15.20	ब्रह्मा शिव विष्णु	शिव विष्णु ब्रह्मा	विष्णु ब्रह्मा शिव	

।। अक्षवेदांश कुण्डली ।। षष्ट्यंश कुण्डली ।।





।। षष्ट्यंश बोधक चक्र ।।

विषम-देवतांश	सं.	मे.	वृ.	मि.	क	सि.	के.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अंश	सम-देवतांश
घोर	1	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	0।30	इन्दुरेखा
राक्षस	2	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	1।0	भ्रमण
देव	3	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	1।30	पयोधि
कुबेर	4	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	2।0	सुधा
यक्ष	5	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	2।30	अतिशीतल
किन्नर	6	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	3।0	क्रूर
भ्रष्ट	7	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	3।30	सौम्य
कुलघ्न	8	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	4।0	निर्मल
गरल	9	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	4।30	दण्डायुध
अग्नि	10	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	5।0	कालाग्नि
माया	11	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	5।30	प्रवीण
प्रेतपुरीष	12	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	6।0	इन्दुमुख
अपांपति	13	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	6।30	दंष्ट्राकराल
देवगणेश	14	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	7।0	शीतल
काल	15	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	7।30	मृदु
अहिभाग	16	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	8।0	सौम्य
अमृत	17	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	8।30	कालरूप
चन्द्र	18	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	9।0	पातक
मृद्वंश	19	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	9।30	वंशक्षय
कोमल	20	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	10।0	कुलनाश
हेरम्ब	21	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	10।30	विषप्रदग्ध
ब्रह्मा	22	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	11।0	पूर्णचन्द्र
विष्णु	23	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11।30	अमृत
महेश्वर	24	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12।0	सुधा
देव	25	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	12।30	कपटक
आर्द्र	26	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	13।0	यम
कलिनाश	27	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	13।30	घोर
क्षितीश्वर	28	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	14।0	दावाग्नि
कमलाकर	29	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	14।30	काल
मान्दी	30	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	15।0	मृत्यु

।। षष्ट्यंश बोधक चक्र ।।

विषम-देवतांश	सं.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	के.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अंश	सम-देवतांश
मृत्यु	31	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	15I30	मान्दी
काल	32	8		10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	16I0	कमलाकर
दावाग्नि	33	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	16I30	क्षितिश्वर
घोर	34	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	17I0	कलिनाश
यम	35	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	17I30	आर्द्र
कपटक	36	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	18I0	देव
सुधा	37	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	18I30	महेश्वर
अमृत	38	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	19I0	विष्णु
पूर्णचन्द्र	39	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	19I30	ब्रह्मा
विषप्रदग्ध	40	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	20I0	हेराम्ब
कुलनाश	41	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	20I30	कोमल
वंशक्षय	42	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	21I0	मृंद्वश
पातक	43	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	21I30	चन्द्र
कालरूप	44	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	22I0	अमृत
सौम्य	45	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	22I30	अहिभाग
मृदु	46	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	23I0	काल
शीतल	47	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	23I30	देवगणेश
दंष्ट्राकराल	48	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	24I0	अपांपति
इन्दुमुख	49	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	24I30	प्रेतपुरिष
प्रवीण	50	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	25I0	माया
कालाग्नि	51	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	25I30	अग्नि
दण्डायुध	52	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	26I0	गरल
निर्मल	53	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	26I30	कुलघ्न
सौम्य	54	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	27I0	भ्रष्ट
क्रूर	55	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	27I30	किन्नर
अतिशीतल	56	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	28I0	यक्ष
सुधा	57	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	28I30	कुबेर
पयोधि	58	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	29I0	देव
भ्रमण	59	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	29I30	राक्षस
इन्दुरेखा	60	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	30I0	घोर

वर्गभेद कथनः–

वर्गभेदानहं वक्ष्ये मैत्रेय ! त्वं विधारय ।
षड्वर्गाः सप्तवर्गाश्च दिग्वर्गा नृपवर्गकाः ।। 41 ।।
भवन्ति वर्गसंयोगे षड्वर्गे किंशुकादयः ।
द्वाभ्यां किंशुकनामा च त्रिभिर्व्यंजनमुच्यते ।। 42 ।।
चतुर्भिश्चामराख्यं च छत्रं पंचभिरेव च ।
षड्भिः कुण्डलयोगः स्यान्मुकुटाख्यं च सप्तभिः ।। 43 ।।
सप्तवर्गेऽथ दिग्वर्गे पारिजातादि संज्ञकाः ।

हे मैत्रेय ! अब मैं वर्गभेदों को कहता हूँ, तुम उसे समझ लो। सभी वर्गो को चार विभागों में बाँटा जाता है– षड्वर्ग, सप्तवर्ग, दशवर्ग, षोडशवर्ग। षड्वर्ग व सप्तवर्ग में किंशुकादि सज्ञाएँ होती हैं।

दो स्थानों पर शुभ होने से **'किंशुक'** तीन वर्गो में **'व्यंजन'**, चार वर्गो में **'चामर'**, पाँच वर्गो में **'छत्र'** छह वर्गो में **'कुण्डल'** ये षड्वर्ग की संज्ञाएँ हैं। इसी क्रम से सप्तवर्गो में भी ये ही संज्ञाएँ होती हैं, केवल सप्त स्थानों पर शुभ रहने से 'मुकुट' संज्ञा होती है।

इसके बाद दशवर्गो की पारिजातादि सज्ञाएँ बता रहा हूँ।

पारिजातं भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिरुत्तममुच्यते ।। 44 ।।
चतुर्भिर्गोपुराख्यं स्याच्छरैः सिंहासनं तथा ।
पारावतं भवेत्षड्भिर्देवलोकं च सप्तभिः ।। 45 ।।
वसुभिर्ब्रह्मलोकाख्यंनवभिःशक्रवाहनम् ।
दिग्भिः श्रीधामयोगः स्यादथ षोडशवर्गके ।। 46 ।।

दश वर्गो में दो स्थानों पर शुभ होने से **'पारिजात'**, तीन स्थानों पर **'उत्तम'**, चार स्थानों पर **'गोपुर'**, पाँच स्थानों पर **'सिंहासन'** छह स्थानों पर **'पारावत'**, सात स्थानों पर **'देवलोक'**, आठ स्थानों पर **'ब्रह्मलोक'** नौ स्थानों पर **'शुक्रवाहन'** या **'ऐरावत'** दस स्थानों पर **'श्रीधाम'** संज्ञा होती है। इसके बाद षोडश वर्गो में संज्ञाएँ बता रहा हूँ।

भेदकं च भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिः स्यात्कुसुमाख्यकम् ।
चतुर्भिर्नागपुष्पं स्यात् पंचभिः कन्दुकाह्वयम् ।। 47 ।।
केरलाख्यं भवेत् षड्भिः सप्तभिः कल्पवृक्षकम् ।
अष्टभिश्चनन्दनवनं नवभिः पूर्ण चन्द्रकम् ।। 48 ।।

दिग्भिरुच्चैःश्रवानामरुद्रैर्धन्वन्तरिर्भवेत् ।
सूर्यकान्तं भवेत्सूर्यैर्विश्वैः स्याद् विद्रुमाख्यकम् ।। 49 ।।
शक्रसिंहासनंशक्रैर्गोलोकंतिथिभिर्भवेत् ।
भूपैः श्रीबल्लभाख्यं स्याद्वर्गा भेदैरुदाहृताः ।। 50 ।।

षोड्श वर्गों में संज्ञाएँ इस प्रकार होती हैं। दो स्थानों पर शुभ रहने से **'भेदक'** तीन से **'कुसुम'** चार से **'नागपुष्प'** पाँच से **'कन्दुक'**, छह से **'केरल'**, सात से **'कल्पवृक्ष'**, आठ से **'चन्दनवन'**, नौ से **'पूर्णचन्द्र'** दस से **'उच्चैःश्रवा'**, ग्यारह से **'धन्वन्तरि'**, बारह से **'सूर्यकान्त'**, तेरह से **'विद्रुम**, चौदह से **'इन्द्रासन'** पन्द्रह से **'गोलोक'**, सोलह से **'श्रीवल्लभ'** संज्ञा होती है। इस प्रकार वर्ग भेदों का उल्लेख किया गया है।

शुभ–अशुभ वर्ग विवेक –

स्वोच्चमूलत्रिकोणस्वभवनाधिपतेः शुभाः ।
स्वारूढात् केन्द्रनाथानां वर्गा ग्राह्याः सुधी मता ।।51 ।।
अस्तंगता ग्रहजिता नीचगा दुर्बलाश्च ये ।
शयनादिगतास्तेभ्य उत्पन्ना योगनाशकाः ।। 52 ।।

जो ग्रह वर्ग कुण्डलियों में स्वोच्च, मूल त्रिकोण, स्वराशि में पड़े, वे शुभ होते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रह जिस राशि में हों, उस राशि से 1.4.7.10 भावेशों के वर्ग में आना भी बुद्धिमानों को शुभ ही समझना चाहिए।

इसके विपरीत जो ग्रह जन्म कुण्डली में अस्तंगत, पराजित, शयनावस्थागत, नीचगत, हीनबली हों तो उनके वर्गों को अशुभ समझना चाहिए।

हमारे उदाहरण में सूर्य अपनी होरा, केन्द्रेश के द्रेष्काण उच्च चतुर्थांश, उच्च नवांश केन्द्रेश के द्वादशांश, केन्द्रेश के विंशांश, उच्च चतुर्विंशांश, केन्द्रेश का भांश स्व अक्षवेदांश व केन्द्रेश के (अमृत) षष्ट्यंश में स्थित है। अर्थात् इतने स्थानों पर शुभ है। षोडश वर्गों में 9 स्थानों पर शुभ रहने से 'पूर्णचन्द्र' संज्ञक वर्ग में हुआ। इसी पद्धति से सब ग्रहों का विचार किया जाएगा। प्रचलित परिपाटी में शुभ ग्रहों की राशि में रहने पर भी शुभ मान लिया जाता है, यह बालमति लोगों की प्रक्रिया है। उच्च स्तर पर यह ग्राह्य नहीं है।

।। षोडशवर्ग संज्ञा चक्र ।। (उदाहरण)

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
ग्रह	10	3	8	10	5	11	8	4
होरा	5	5	4	5	5	4	4	4
द्रेष्काण	2	7	12	2	5	3	8	4
चतुर्थांश	1	6	11	4	5	5	11	4
सप्तमांश	6	5	5	7	6	2	3	10
नवमांश	1	10	8	2	2	11	6	4
दशमांश	9	6	8	2	7	4	6	12
द्वादशांश	2	7	1	4	7	5	11	5
षोडशांश	6	3	12	9	8	1	9	2
विंशांश	8	12	6	11	1	7	2	2
चतुर्विंशांश	1	2	3	4	9	6	10	6
सप्तविंशांश	2	5	10	6	6	9	4	12
त्रिंशांश	6	9	12	12	11	9	6	2
खवेदांश	9	4	1	4	9	10	5	10
अक्षवेदांश	5	2	2	12	2	5	4	5
षष्ट्यंश	8	2	12	5	5	7	11	9
शुभव	9	9	8	6	11	8	7	9

सूर्य, चन्द्र, 'पूर्ण चन्द्रांश' में, लग्न मंगल शुक्र 'चन्द्रन वन' में, गुरु 'धन्वन्तरि' अंश में, शनि, 'कल्पवृक्ष' में व बुध 'केरलांश' में है। ये संज्ञाएँ षोडश वर्ग में देखी गई हैं। इसी पद्धति से षड्वर्ग, सप्तवर्ग, व दशवर्ग में भी देखेंगे।

इसी उदाहरण में क्रूर षष्ट्यंश रहने से सभी शुभ फलों में कमी होगी। अक्षवेदांश में अधिपति शिव भी संहारक, अग्नि समुत्पादक, सेनानी के पिता, गणेश के पिता अतः विरुद्ध गुणों का समन्वय प्रदर्शित करने वाले हैं। खवेदांश में त्वष्टा अर्थात् देवताओं का शिल्पी देवता है। इतने से जातक को क्रूर देवों या शिव की उपासना करनी चाहिए, क्रोध की अधिकता, रचनाधर्मिता, परिवर्तन की कामना, स्थापित मानदण्डों को तोड़ना इत्यादि गुण भी द्योतित होते हैं। त्रिंशांश में देवता 'मेघ' है। त्रिंशांश में अरिष्ट विचार करने से अरिष्ट की अनिश्चितता, कभी लाभ कभी हानि, आकाशवृत्ति, अरिष्ट अर्थात् धूपछाँव का खेल दिखता है। भांश में अग्निदेव, चतुर्विंशांश में विष्णु या गोविन्द देव हैं। भांश में बलाबल विचार अग्निवत् होगा। कभी बहुत बलवान् उत्साही, आक्रामक विघातक, कभी जठराग्निवत् पोषक व धारक स्वभाव व फलादि होगा। चतुर्विंशांश में विद्या की श्रेष्ठता द्योतित होती है। षोडशांश से वाहनों का व सामान्य सुख–दुःख विचार्य है, उसका स्वामी विष्णु स्वयं लक्ष्मीपति है। अतः सुख दिखता है। द्वादशांश में 'अश्विनीकुमार' देवता व विचारणीय विषय मातृ–पितृ–सुख है। यह सुख का द्योतक है। दशमांश में स्वामी 'अनन्त (नाग)' तथा विचार्य विषय महान् कार्य है। अतः अनन्त शेषनाग अथवा स्वयं विष्णु होने से बड़े कार्य सिद्ध होने के योग हैं। नवांश में वर्गोत्तम देव नवांश होने से पत्नी का सुख, सामान्य सुख तथा आन्तरिक बल की दिव्यता प्रतीत होती है। सप्तमांश का स्वामी 'शुद्ध जल' से विचार्य विषय वेश व सन्तान की प्राप्ति दिखती है। चतुर्थांश में भाग्य विचारणीय तथा स्वामी 'सनक' है, अतः प्रसिद्धि दिखती है, सम्पत्ति विशेष नहीं होगी। द्रेष्काण में स्वामी 'नारद' रहने से भ्रातृ–सुख दिखता है, लेकिन स्त्री के कारण (नारद स्त्री के कारण मोहित थे), विशेष समर्पण व कार्यनिष्ठा के कारण या चुगलखोरी के कारण भाई कम सहयोग देंगे।

होरा में पितृ अधिदेव होने से सम्पत्ति आदि के प्रति सांसारिक आकर्षण, संग्रह की प्रवृत्ति आदि दिखती है। मध्यम सम्पत्ति रहने के संकेत हैं। इत्यादि प्रकार से विचार करना चाहिए। पुनश्च लग्न से तत्तत् चीजों के भावेश भी किस प्रकार से स्थित हैं, इससे तारतम्य स्थापित करना चाहिए। यह स्वामि–देवों के आधार पर फल संकेत की विधि है। विशेष फलविचार आगे कहा जा रहा है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां षोडशवर्गाध्यायः सप्तमः ।। 7 ।।

8

।। अथ वर्गविवेचनाध्यायः ।।

अथ षोडशवर्गेषु विवेकं च वदाम्यहम् ।
लग्ने देहस्य विज्ञानं होरायां सम्पदादिकम् ।। 1 ।।
द्रेष्काणे भ्रातृजं सौख्यं तुर्यांशे भाग्यचिन्तनम् ।
पुत्रपौत्रादिकानां वै चिन्तनं सप्तमांशके ।। 2 ।।
नवमांशे कलत्राणां दशमांशे महत्फलम् ।
द्वादशांशे तथा पित्रोश्चिन्तनं षोडशांशके ।। 3 ।।

पूर्वोक्त षोडश वर्गों में फल विचार का निर्णय बता रहा हूँ। लग्न से शरीर का विचार व होरा कुण्डली से सम्पत्ति आदि का विचार देखना चाहिए ।

द्रेष्काण कुण्डली से भ्रातृवर्ग से उत्पन्न होने वाला सुख अर्थात् भाइयों के सुख का विचार, चतुर्थांश से भाग्य विचार, सप्तमांश से पुत्र–पौत्रादि सन्तति अर्थात् वंशवृद्धि का विचार करना चाहिए ।

नवांश में स्त्री का विचार एवं दशमांश में महत्ता प्राप्त करने से सम्बद्ध राजयोग अथवा जीवन के बड़े–बड़े कामों का विचार करना चाहिए । द्वादशांश में माता–पिता का विचार होता है ।

सुखासुखस्य विज्ञानं वाहनानां तथैव च ।
उपासनाया विज्ञानं साध्यं विंशतिभागके ।। 4 ।।
विद्याया वेदबाह्वंशे भांशे चैव बलाबलम् ।
त्रिंशांशकेऽरिष्टफलं खवेदांशे शुभाशुभम् ।। 5 ।।
अक्षवेदांशके चैव षष्ट्यंशेऽखिलमीक्षयेत् ।

षोडशांश शब्द श्लोक 3 से लिया जाएगा । षोडशांश में सुख–दुःख का विचार तथा वाहनों के सुख का विचार करना चाहिए । विंशांश में उपासना अर्थात् स्वाध्याय, लगन, तत्परता, काम के प्रति समर्पण अर्थात् ईश्वर के प्रति भक्ति आस्तिकतादि का विचार करना चाहिए ।

चतुर्विंशांश से विद्या का विचार, सप्तविंशांश (भांश) से बलाबल अर्थात् दैवबल, शरीर बल व मनोबल का विचार करना चाहिए ।

त्रिंशांश में अरिष्ट अर्थात् इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति या वियोग का विचार करना चाहिए ।

अक्षवेदांश (पंचचत्वारिंशांश) व षष्ट्यंश से सब फलों का विचार करना चाहिए।

यत्रकुत्रापि सम्प्राप्तः क्रूरषष्ट्यंशकाधिपः ।।6।।

तत्र नाशो न सन्देहो गर्गादीनां वचो यथा।

यत्रकुत्रापि सम्प्राप्तः कलांशाधिपतिः शुभः ।।7।।

तत्र वृद्धिश्च पुष्टिश्च गर्गादीनां समीरितम्।

इति षोडशवर्गाणां भेदास्ते प्रतिपादिताः ।।8।।

क्रूर षष्ट्यंश का स्वामी जिस भाव में पड़े, उस भाव सम्बन्धी बातों का सदैव नाश होता है तथा जहाँ पर शुभ षष्ट्यंशेश (कला = 60, कलांश षष्ट्यंश) पड़े उस भाव की वृद्धि व पुष्टि होती है, ऐसा गर्गादि मुनियों ने कहा है। उसी के अनुसार षोडशवर्गों का फलभेद यहाँ हमने तुम्हें बताया है।

फलविचार में विशेष :– षड्वर्गों व सप्तवर्गों से विशेषतया फलादेश की परिपाटी प्रचलित है। अवान्तर ग्रन्थों में किसी वर्ग से भिन्न विषय का विचार भी बताया गया है। सामान्यतः वर्ग कुण्डलियों में इन वस्तुओं का भी विचार होता है–

(i) लग्न या ग्रह– शरीर, से सम्बन्धित सभी बातें। सम्पत्ति, धन, धनभोग, धननाश, समस्त भौतिक सुख तथा शरीर–नाश।

(ii) होरा सम्पत्ति, मतान्तर से शील, चरित्र, सदसत् निर्णय की शक्ति व आचरण तथा विपत्ति।

(iii) द्रेष्काण– पराक्रम, पदवी, भ्रातृसुख परिश्रम का फल इत्यादि।

(iv) सप्तमांश– धन सम्पत्ति का संचय, बचत, खर्च की प्रवृत्ति, विनिवेश, धन जमा करना आदि। 'धनस्य निचयं सप्तांशकात् चिन्तयेत्)।

(v) नवांश– वर्ण, रूप, गुण, बुद्धि, पुत्र, स्त्री, अथवा समस्त शुभाशुभ फल।

(vi) द्वादशांश– सन्तति, शरीर, आयु, स्त्री आदि का विचार।

(vii) त्रिंशांश– अरिष्ट, रोग, कष्ट, दुर्घटना, दया, उदारता, व्यवहारविधि, स्त्री, मृत्यु आदि।

लग्ने देहाकारो, होरायामर्थसम्पदो विपदः।

द्रेष्काणे कर्मफलं सप्तांशे बन्धुसौख्यं च ।।

पुत्रं नवांशभावे द्वादशभागे चिन्तयेत् पत्नीम्।

त्रिंशांशे निधनफलं शुभाशुभं सर्वजन्तूनाम् ।।

सौख्यं, शीलं, पदं, द्रव्यं, वर्णबुद्धिगुणात्मजान् ।
वपुः स्त्रीफलमित्याहुः षड्वर्गे क्रमशो विधिः ।।

होरा विचार –

(i) प्रचलित मत में सभी पुरुष ग्रह सूर्य होरा में व सभी स्त्री ग्रह चन्द्र होरा में हों तो शुभ हैं । सूर्य की होरा में चन्द्र तथा चन्द्र की होरा में सूर्य हो तथा अधिक ग्रह सूर्य होरा में हों तो धनी होता है ।

(ii) प्राचीन मत से राशि अनुसार मेष वृष, मिथुन इत्यादि की होरा हो सकती थी । उसमें होराकुण्डली में व्यय भाव में ग्रह होना अशुभ तथा धन स्थान में बहुत से ग्रह होना उत्तरोत्तर शुभ अर्थात् धनप्रद होता है ।

बहवो धवगाः श्रेष्ठास्तथा नेष्टा व्यये ग्रहाः ।

द्रेष्काण विचार –

(i) द्रेष्काण में लग्न राशि ही पड़े अथवा, द्रेष्काण कुण्डली में केन्द्र में कोई भी ग्रह उच्च, मूलत्रिकोण या स्वक्षेत्री हो तो बहुत शुभ है । ऐसे व्यक्ति का परिश्रम सफल होता है । कई उच्च ग्रह हों तो प्रशासक, राजादि होता है ।

(ii) द्रेष्काणेश यदि द्रेष्काण कुण्डली में केन्द्र, त्रिकोण में हो, शुभयुक्त दृष्ट हो अथवा शुक्र से विशेषतया दृष्ट हो तो मनुष्य सुखी, यशस्वी होता है ।

(iii) द्रेष्काणेश पणफर में हो, स्वोच्चादिगत हो तो पदवी प्राप्त होती है, प्रतिष्ठा मिलती है । यदि आपोक्लिम में स्वोच्चादिगत हो तो उसका परिवार, सन्तान, भाई आदि बड़े धार्मिक व सदाचारी होते हैं ।

(iv) प्रायः द्रेष्काणेश जिस भाव या राशि में हो, तत्तुल्य भाई–बहन होते हैं । शुभयुक्त हो तो वे जीवित रहते हैं, अन्यथा कुछ नष्ट हो जाते हैं ।

हमारे उदाहरण में सूर्य अपनी होरा में गुरु सहित, बुध, चन्द्र सहित है । चन्द्रमा साथ रहने से विशेष शुभ नहीं है । प्रायः शरीर सुख में कमी, दवा पर पैसे खर्च होंगे । सम्पदा का तात्पर्य सभी सांसारिक उपलब्धियों से है, केवल Property कहना उचित नहीं है । सूर्य होरा में पापग्रह रहने से धनी तथा शुभ ग्रह रहने से कम धनी होता है । यह जातक विशेष धनिक नहीं होगा ।

द्रेष्काण कुण्डली में केन्द्र में तुला में द्रेश्काणेश चन्द्र है । उस पर किसी ग्रह की पूर्ण दष्टि नहीं है । अतः लगभग सात भाई–बहन होंगे । भाइयों का सुख साधारण रहेगा । केन्द्र त्रिकोण में पाप ग्रहों की अधिकता भाइयों की विशेष सहायता व सौहार्द में कमी प्रकट करती है । वास्तव में भी यह

जातक मध्यमस्तरीय तथा पाँच जीवित भाई–बहनों वाला है। मंगल की चन्द्रमा पर पूर्ण दृष्टि है। इसकी एक बहन व एक भाई का देहान्त बाल्यकाल में हो गया था।

सप्तमांश विचार–

(i) प्रायः जितने ग्रह सप्तांश राशि को देखें, उतनी ही सन्तान होती है।

(ii) जितने ग्रह स्वोच्चादि में स्थित होंगे, उतनी ही अच्छी स्थिति की सन्तान होगी। जातक स्वयं भी धनी होगा।

(iii) सप्तांश लग्न में विषम राशि, शुभ दृग्योग पुत्रजनक व अन्यथा पुत्रीयोग समझना चाहिए।

(iv) यवन मत में सप्तांश से शरीरादि का विचार भी कहा है। यह सब लग्नवत् समझना चाहिए।

(v) दक्षिण भारतीयों ने द्रेष्काण, सप्तमांश, नवांश व द्वादशांश को विशेषतया फलविचार लग्नवत् विचारणीय कहा है।

उदाहरण में सप्तमांश में यद्यपि सम राशि है परन्तु गुरु की उस पर पूर्ण दृष्टि है। बुध की त्रिपाद दृष्टि है। दोनों त्रिकोणों में शुभ ग्रह हैं। शुक्र केन्द्रेश त्रिकोणेश होकर पंचम में है, यह सन्तति सुख पुत्रादि योग बनाता है। जातक वास्तव में सपुत्र है।

स्वक्षेत्री व समी शुभ ग्रह केन्द्र त्रिकोण में रहने से जातक धनी होगा, लेकिन अष्टम में चन्द्र युक्त मंगल सन्तति की ओर से क्लेश को द्योतित करता है।

नवांश विचार–

(i) लग्न नवांश के समान आकार होता है। चन्द्र नवांश के अनुसार जातक का रंग होता है।

(ii) नवांश में बलवान्, उच्चादिगत ग्रह केन्द्र त्रिकोण में हो तो उत्तम, 2.3.6.11 में हो तो मध्यम तथा 8.12 में सामान्य होते हैं।

(iii) नवांशेश अच्छी राशि में हो तो अच्छी पत्नी, नीचादि में हो तो अधम पत्नी होती है।

(iv) लग्नवत् सब बातों का विचार करना चाहिए। पंचम स्थान पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो अथवा नवांश में पंचमस्थ राशि की संख्या तुल्य या पंचमेश की संख्या तुल्य सन्तति होती है।

(v) नवांशेश केन्द्र में हो 20-22 वर्ष में, त्रिकोण में हो 23-25 वर्ष में तथा 8, 12 भावों में अनिष्ट होकर स्थित हो तो बहुत विलम्ब करके विवाह होता है। स्त्री की कुण्डली हो तो 18-20 तथा 21-24 वर्ष समझें।

नवांशेश 8 भाव में हो तो स्त्री की मृत्यु शीघ्र होती है। सूर्य, राहु, मंगल के साथ नवांशेश हो तो रोग, दाह या विपत्ति से पत्नी की मृत्यु होती है। नवांशेश चन्द्र के साथ हो तो पत्नी प्रायः चंचल स्वभाव वाली होती है। शुक्र के साथ हो तो विशेष कामुक होती है।

विचारणीय उदाहरण में वर्गोत्तम नवांश बहुत शुभ है। नवांशेश केन्द्र में है। केन्द्र में उच्चस्थ सूर्य, त्रिकोण में वर्गोत्तमी स्वक्षेत्री मंगल तथा अष्टम में शुभ ग्रह वर्गोत्तमी शुक्र है। यह धन, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, पत्नी सुख के लिए अच्छा योग है। लाभ में शुभ ग्रह होना भी शुभ है। नवांशेश केन्द्रस्थ होने से साधारण आयु में 20-22 वर्ष में प्रायः विवाह होता है। नवांशेश राहुयुक्त होने से पत्नी की मृत्यु रोग से होती है।

द्वादशांश विचार –

(i) द्वादशांश में सूर्य राशि हो या द्वादशांशेश, जन्म लग्न में स्थित हो तो मनुष्य का स्तर पिता के बराबर होता है।

(ii) द्वादशांशेश द्वादशांश में त्रिक् में गया हो, पाप युक्त दृष्ट हो तो माता–पिता का सुख व सहायता कम होती है।

(iii) द्वादशेश यदि नीच, अस्तंगत या शत्रुक्षेत्री हो तो भाग्यहीनता होती है।

(iv) जन्मलग्नवत् भी विचार करना चाहिए।

उदाहरण में सूर्य का द्वादशांश है। द्वादशांशेश केन्द्र में है। दशमेश व लग्नेश का स्थान परिवर्तन योग है। नवम में नवमेश मंगल है। सप्तम में सप्तमेश है। यह उत्तम धन–सम्पत्ति व भाग्य योग है।

त्रिंशांश विचार –

(i) त्रिंशाशेश शुभयुक्त दृष्ट या अच्छे भाव में हो तो शुभ है।

(ii) त्रिक् में गया हो या नीचास्तंगतादि हो तो बहु वैर होता है।

(iii) 6.8 में पाप ग्रह क्रूर मृत्यु व शुभ ग्रह शुभ स्वाभाविक मृत्यु देते हैं।

(iv) स्त्री कुण्डली में विशेष विचार बृहज्जातक में देखें। बड़ा सटीक बैठता है।

(v) त्रिंशांश में शुभ राशि या शुभ दृग्योग रहने से तथा त्रिंशांशेश शुभ स्थानों में रहें तो प्रायः अनिष्ट, विपत्ति, दुर्घटनादि से रहित जीवन होता है।

उदाहरण में त्रिंशांश में शुभ राशि तथा त्रिंशांशेश शुक्र चन्द्र युक्त है। यह शुभ मृत्यु अर्थात् घर में परिवार जनों के बीच, सम्मानपूर्वक मरण

द्योतित करती है । त्रिंशांशेश अष्टम में होने से राजपक्ष से भय प्रतीत होता है । त्रिंशांश शुक्र होने से व्यक्ति रसिक, शौकीन स्वभाव वाला होगा । शुक्र से ही प्रमेह रोग अर्थात् डायविटीज, प्यास, अधिक खुश्की या ज्वर से मृत्यु प्रतीत होती है ।

महर्षि ने षष्ट्यंश व पंचचत्वारिंशांश से सब कुछ देखने के लिए कहा है । अक्षवेदांश में लग्नेश लग्न में है । गुरु, चन्द्र, मंगल दशम में शुभ हैं । नवमेश दशम में, दशमेश लग्न में लग्नेश के साथ उत्तम योग बनाता है । अष्टम में बुध शुभ व आयुष्यरक्षक है । अतः जातक सुखी स्वस्थ प्रायः (द्वादश में शनि व राहु प्रौढ़ावस्था व वृद्धावस्था में रोगादि कारक हैं) धनी व मान्य होना चाहिए ।

षष्ट्यंश में उसका स्वामी नवम में शुभ युक्त, दशमेश नवम में, चन्द्रमा उच्चस्थ, शुक्र लाभ भाव में स्वक्षेत्री, तृतीयस्थ स्वक्षेत्री शनि, शुभ दृष्ट है । यह भी शुभ योग है । लग्न में क्रूर षष्ट्यंश विशेष शुभ नहीं है । लेकिन पंचम में शनि सौम्यांश में, राहु देवगणांश में तथा मंगल कालांश में है । अतः सन्तान हानि के पश्चात् सन्तान लाभ व सन्तान सुख होगा । दावाग्नि अंशगत शुक्र अष्टम में स्थित है । यह मृत्यु का नाशक होने से शुभ ही है । सप्तम में सूर्य बुध भी अमृत व कमला षष्ट्यंश में होने से योग कारक हैं ।

उक्त बातें वैचारिक सूत्रपात करने हेतु पाठकों की सुविधार्थ कही हैं । वर्ग विवेचन के विषय में कभी विस्तार से विवेचन करेंगे ।

वर्गों में विश्वा बलः–

उदयादिषु भावेषु खेटस्य भवनेषु वा ।
वर्गविंशोपकं वीक्ष्य ज्ञेयं तेषां शुभाशुभम् ।। 9 ।।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वर्गविंशोपकं बलम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण विपाकं दृष्टिगोचरम् ।। 10 ।।

जन्म लग्न, सभी ग्रहों व सभी भावों के स्पष्ट से प्राप्त वर्गों का फल कहना चाहिए, तथा वर्गों में विश्वा (विंशोपक) बल देखकर शुभाशुभ का निर्णय करना चाहिए ।

अब मैं वर्ग विंशोपक बल कहता हूँ, जिसके जानने से समस्त शुभाशुभ फल का ज्ञान होता है ।

विंशोपक अर्थात् बिस्वा प्राचीन चलन का शब्द है । जिस प्रकार 100 वाँ भाग $\frac{1}{100}$ या प्रतिशत 1 % कहलाता है । उसी तरह 20 को सम्पूर्ण इकाई मानकर उसका भाग निर्धारण करना 'विंशोपक या बिस्वा या $\frac{1}{20}$

होता है। वर्ग कुण्डलियों में आगे बताए जा रहे बिस्वा बल से फल की वास्तविक मात्रा निर्धारित करनी चाहिए।

गृहविंशोपके वीक्ष्य सूर्यादीनां खचारिणाम्।
स्वगृहोच्चे बलं पूर्ण शून्यं तत्सप्तमे स्थिते।। 11।।
ग्रहस्थितिवशाज्ज्ञेयं द्विराश्यधिपतिस्तथा।
मध्येऽनुपाततो ज्ञेयं ओजयुग्मर्क्षभेदतः।। 12।।

सभी सूर्यादि ग्रहों का विंशोपक देखकर फल कहें। स्वगृह या स्वोच्च में ग्रह को पूर्ण बल तथा नीच में 0 बल मिलता है। जो ग्रह दो राशियों के अधिपति हों, वे दोनों भावों पर अपना प्रभाव रखेंगे, लेकिन विशेषतया अपनी राशि से मूलत्रिकोण में विशेष फल देंगे।

फल विचार की परिपाटी –

सूर्यहोराफलं दद्युर्जीवार्कवसुधात्मजाः।
चन्द्रास्फुजिदर्कपुत्राश्चन्द्रहोराफलप्रदाः।।13।।
फलद्वयं बुधो दद्यात् समे चन्द्रं तदन्यके।
रवेः फलं स्वहोरादौ फलहीनं विरामके।। 14।।
मध्येऽनुपातात्सर्वत्र द्रेष्काणेऽपि विचिन्तयेत्।
गृहवत् तुर्यभागेऽपि नवांशादावपि स्वयम्।। 15।।
सूर्यः कुजफलं धत्ते भार्गवस्य निशापतिः।
त्रिंशांशके विचिन्त्यैवमत्रापि गृहवत् स्मृतम्।। 16।।

होरा में गुरु, सूर्य, मंगल ये तीनों सूर्य होरा में रहने पर सूर्यवत् फल देते हैं। अर्थात् पुरुष ग्रह होने से सूर्य होरा में स्वहोरास्थ मान लिए जाते हैं। इसी तरह चन्द्र होरा में चन्द्रमा, शुक्र व शनि स्वहोरास्थ हैं। अर्थात् चन्द्र होरा शुक्र व शनि की भी होरा है।

बुध प्रायः दोनों ओर स्वहोरास्थ माना जाता है। सम राशि में चन्द्र होरा में तथा विषम राशि में सूर्य होरा में बुध स्वहोरास्थ होता है।

सूर्य अपनी होरा में प्रारम्भ में विशेष फलद है तथा होरान्त में निष्फल है। चन्द्रमा होरान्त में सफल व होरा के आदि में निष्फल है, यह बात अन्यथा सिद्ध है। यदि बीच में हों तो अनुपात करना चाहिए।

इसी तरह द्रेष्काणादि में भी फल समझना चाहिए। अर्थात् प्रारम्भ में पूर्ण फल मध्य में मध्यम तथा अन्त में फल विराम समझना चाहिए।

चतुर्थांश व नवांश में जन्म कुण्डलीवत् भी विचार करना चाहिए। त्रिंशांश में सूर्य को मंगल के त्रिंशाश में स्वत्रिंशाशगत, चन्द्रमा को शुक्र के

त्रिंशांश में स्वत्रिंशांश गत समझना चाहिए। अथवा सूर्य के त्रिंशांश का फल मंगल की तरह तथा चन्द्र का फल शुक्र की तरह होगा। त्रिंशांश कुण्डली को लग्नवत् विचारणीय भी मानना चाहिए।

विषम राशि वर्ग क्रमशः कम बलवान् होते जाते हैं अर्थात् 0°-15° तक मेष में विषम होरा है। अतः 0°-5° तक पूर्ण, 6°-10° तक मध्य तथा 11°-15° तक अल्प बली होगी। सम होरा में विपरीत समझना चाहिए। अर्थात् प्रथम अंश में $\frac{100}{100}$ फल तथा 15 अंश में ÷ फल तो बीच में कितना? इस तरह अनुपात करना चाहिए। यही विधि सब वर्गों में अपनाई जाएगी।

षड्वर्ग के विंशोपक –

लग्नहोराद्दृकाणांकभागसूर्यांशका इति।
त्रिंशांशकश्च षड्वर्गा अत्र विंशोपकाः क्रमात्।। 17।।
रसनेत्राब्धि पंचाश्विभूमयः सप्तवर्गके।

लग्न, होरा द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश व त्रिंशांश ये षड्वर्ग होते हैं। इनमें 6.2.4.5.2.1 क्रमशः विंशोपक बल होता है। अर्थात् ये वर्ग विंशोपक गुणक हैं।

सप्तवर्ग के विंशोपक –

ससप्तमांशके तत्र विश्वका पंचलोचनम्।। 18।।
त्रयः सार्धद्वयं सार्धवेदा द्वौरात्रिनायकः।
स्थूलं फलं च संस्थाप्य तत्सूक्ष्मं च ततस्ततः।। 19।।

इन्हीं षड्वर्गों में सप्तमांश जोड़ देने से 'सप्तवर्ग' बन जाते हैं। इनमेंक्रमशः 5. 2. 3. $2\frac{1}{2}$, $4\frac{1}{2}$ 2. 1 यह विंशोपक बल है। यह स्थूलतया बताया गया फल है। विशेषतया सूक्ष्म फल विभागार्थ अनुपात करना चाहिए।

उक्त सब संख्याओं का योग 20 होता है। आशय यह है कि षड्वर्गों में समन्वित रूप से राशि या लग्न को $\frac{6}{20}$ या 30% महत्त्व देना, होरा को $\frac{2}{20}$ या 10% महत्त्व, द्रेष्काण को $\frac{4}{20}$ या 20%, नवांश को $\frac{5}{20}$ या 25% महत्त्व, द्वादशांश को $\frac{2}{20}$ या 10% तथा त्रिशांश को $\frac{1}{20}$ या 5% महत्त्व देना होगा। इसी तरह सप्तवर्ग में भी समझना चाहिए।

यदि कोई ग्रह स्वक्षेत्र में (स्वक्षेत्र में उच्च व मूलत्रिकोण भी गृहीत हैं) हो तो उक्त पूर्ण बल, अधिमित्र के वर्ग में $\frac{18}{20}$, मित्र के वर्ग में $\frac{15}{20}$ तथा सम गृह में $\frac{10}{20}$, शत्रु के गृह में $\frac{7}{20}$ एवं अधिशत्रु के गृह में $\frac{5}{20}$ के अनुपात से उक्त बल समझना चाहिए।

दशवर्ग में विंशोपक –

दशवर्गा दिगंशाढ्याः कलांशाः षष्टिभागकाः।
त्रयं क्षेत्रस्य विज्ञेयाः पंचषष्ट्यंशकस्य च।। 20।।
साद्र्धैकभागाः शेषाणां विश्वकाः परिकीर्तिताः।
अथ वक्ष्ये विशेषेण बलं विंशोपकाह्वयम्।। 21।।

उक्त सप्तवर्गों में दशमांश, षोडशांश व षष्ट्यंश मिलाने से दस वर्ग होते हैं। इनमें राशि को $\frac{3}{20}$ या 15%, षष्ट्यंश में $\frac{5}{20}$ या 25% तथा शेष आठ वर्गों को $1\frac{1}{2}$ – $1\frac{1}{2}$ बल देना चाहिए। अर्थात् 7.5%-7.5% प्रतिशत महत्त्व देना चाहिए। अथवा ये इनके विंशोपक गुणक हैं।

इसके बाद षोडश वर्गों में विंशोपक विभाग कहता हूँ।

क्रमात् षोडशवर्गाणां क्षेत्राणां च पृथक् पृथक्।
होरात्रिंशांश दृक्काणे कुचन्द्र शशिनः क्रमात्।।22।।
कलांशस्य द्वयं ज्ञेयं त्रयं नन्दांशकस्य च।
क्षेत्रे सार्धं च त्रितयं वेदाः षष्ट्यंशकस्य च।। 23।।
अर्धमर्धं तु शेषाणां ह्येतत् स्वीयमुदाहृतम्।
पूर्णं विंशोपकं विंशो धृतिः स्यादधिमित्रके।। 24।।
मित्रे पंचदश प्रोक्तं समे दश प्रकीर्तितम्।
शत्रौ सप्ताधिशत्रौ च पंचविंशोपकं भवेत्।। 25।।

क्रमशः षोडश वर्गों में विंशोपक बल इस प्रकार समझना चाहिए। होरा, त्रिंशांश व दृक्काण में $\frac{1}{20}$ अर्थात् 5-5%, षोडशांश में $\frac{2}{20}$ अर्थात् 10%, नवांश में $\frac{3}{20}$ या 15%, गृह में $3\frac{1}{2}$ या 17.5%, षष्ट्यंश में $\frac{4}{20}$ या 20% तथा शेष वर्गों में $\frac{1}{2}$ विंशोपक अर्थात् 2.5% बल समझना चाहिए। विंशोपक बल

कुल 20 होता है। स्वक्षेत्र में यह पूरा, अधिमित्र के क्षेत्र में 18, मित्र में 15, सम में 10, शत्रु गृह में 7, अधि शत्रु के घर 5 तथा नीच में 0 होता है।

विंशोपक बल का स्पष्टीकरण :–

वर्गविश्वाः स्वविश्वघ्नाः पुनर्विंशतिभाजिताः।
विश्वा फलोपयोग्यं तत् पंचोनं फलदं न हि।। 26।।
तदूर्ध्वं स्वल्पफलदं दशोर्ध्वं मध्यमं स्मृतम्।
तिथ्यर्धं पूर्णफलदं बोध्यं सर्वखचारिणाम्।। 27।।

अभीष्ट वर्गादि विंशोपक संख्या को ग्रह की अधिमित्रादि विंशोपक संख्या से गुणा कर 20 का भाग देने से फलोपयोगी विश्वाबल होता है।

यह विश्वाबल यदि 5 से कम हो तो निष्फल, 5-10 तक अल्प फल देने वाला, 10-15 तक मध्यम, 15 से अधिक पूर्ण फल देता है। इस तरह सब ग्रहों का विश्वा बल समझना चाहिए।

इसी पद्धति से पद्धति ग्रन्थों में सप्तवर्गबल साधन किया जाता है। कह चुके हैं कि स्वक्षेत्र का तात्पर्य स्वोच्च, मूलत्रिकोण व स्वराशि है।

सप्तवर्ग में गृह का विंशोपक गुणक 5 है। स्वीय में 20 विश्वा बल ग्रह का कहा है, अतः $20\times5 = 100\div20 = 5$ विश्वा बल हुआ। गृह का अधिकतम बल 5 होने से पूर्ण बल मिला। इस बात को $\frac{5}{5}$ या $\frac{100}{100}$ या शत प्रतिशत भी कह सकते हैं। यदि इसे अंशात्मक बनाना हो, जैसी कि परिपाटी है तब $\frac{30}{30}$ कहने से $1^\circ.0'.0''$ बल, मूल त्रिकोण में चौथाई कम $0^\circ.45'.0''$ तथा स्वक्षेत्र में $0^\circ.30'.0''$ अंशादि बल होता है। पराशरोक्त यह विश्वाबल पद्धतिकारों ने थोड़ा भिन्न ढंग से ग्रहण किया है।

हमारे उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा का उक्त प्रकार से बल विचार करते हैं। चन्द्रस्पष्ट $2.11^\circ.21'$ है। सप्तवर्गों में इसकी स्थिति इस प्रकार है।

राशि में सम क्षेत्रस्थ होने से वर्गविश्वा 10 है। सप्तवर्ग में राशि गुणक विश्वा 5 है। तब $\frac{5\times10}{20}$ 2.5 दशमलव विधि में विश्वाबल मिला।

द्रेष्काण में तुला राशि शुक्र का क्षेत्र है। शुक्र पंचधा शत्रु है।
$\frac{\text{स्ववर्ग } 3 \times \text{ वर्गविश्वा } 7}{20} = \frac{21}{20}$ अथवा 1.05 विश्वा बल हुआ।

होरा में चन्द्रमा सूर्य की राशि में है। सूर्य सम है। अतः
$\frac{\text{वर्गविश्वा } 10 \times \text{ स्ववर्ग } 2}{20} = 1$ विश्वा बल हुआ।

नवांश में मकर शत्रु राशि में है। अतः $\frac{4.5 \times 7}{20} = \frac{31.5}{20} = 1.25$ विश्वा बल हुआ।

सप्तमांश में सूर्य की राशि सम है। अतः $\frac{2.5 \times 10}{20} = 1.25$ विश्वा बल हुआ।

द्वादशांश में शुक्र की राशि शत्रु क्षेत्र है। अतः $\frac{2 \times 7}{20} = \frac{14}{20}$ या 0.42 विश्वाबल मिला।

त्रिंशांश में गुरु की राशि अधिमित्र क्षेत्र है। अतः $\frac{1 \times 18}{20} = \frac{18}{20}$ या 0.9 विश्वा बल हुआ। 2.5 + 1.05 + 1 + 1.5.75 + 1.25 + 0.42 + 0.9 = 8.725 विश्वा बल (दशमलव) हुआ। इसे हम पौने नौ विश्वा कह सकते हैं। 5 से 10 विश्वा तक अल्प फल देने वाला सिद्ध हुआ। अतः लग्नेश का विश्वाबल या वर्गविंशोपक बल कम है। इसी विधि से सब ग्रहों का भी जाना जा सकता है।

बलाबल निर्णय : एक अन्य विधि –

अथान्यदपि वक्ष्येऽहं मैत्रेय त्वं विधारय।
खेटाः पूर्णफलं दद्युः सूर्यात्सप्तमके स्थिताः।। 28।।
फलाभावं विजानीयात्समे सूर्यनभश्चरे।
मध्येऽनुपातात्सर्वत्रह्युदयास्तविंशोपकाः।। 29।।

सभी ग्रह सूर्य से सप्तम राशि में स्थित होने पर पूर्ण फल देते हैं। यदि उक्त फल की मात्रा 1 है तो सूर्य के तुल्य ग्रह स्पष्ट रहने पर फल मात्रा 0 समझनी चाहिए। अन्यत्र स्थित रहने पर अनुपात करके उदयास्त विंशोपक' जान लें। अर्थात् इस तरह से प्राप्त बल उदयास्त विंशोपक कहलाता है।

वर्गविंशोपकं ज्ञेयं फलमस्य द्विजर्षभ ! ।

यच्च यत्र फलं बुद्ध्वा तत्फलं परिकीर्तितम् ।। 30 ।।

वर्गविंशोपकं चादौ उदयास्तमतः वरम् ।

हे विप्रवर मैत्रेय ! विश्वाबल की तरह उदयास्त विंशोपक भी जानना चाहिए । उदित अस्त रहने पर क्रमशः फलोदय व फलनाश समझना चाहिए । पहले वर्गविंशोपक का साधन कर बाद में उदयास्त साधन करना चाहिए ।

180° अंशों के अन्तर पर पूर्ण फल मिलेगा अर्थात् 100% शुभाशुभ फल होगा । यदि अन्तर 0 हो तो फल भी 0 होगा । अर्थात् सूर्य से युक्त होने पर सूर्य की अधिष्ठित राशि में 0 फल या अतिहीन फल, द्वितीय या द्वादश राशि तक हीनफल, 3.11 राशियों में अल्प फल, 4.10 में मध्य फल, 5.9 भावों में अति मध्य फल, 6.8 में पूर्ण व सप्तम में अतिपूर्ण बल समझना चाहिए । इस प्रकार स्थूल अनुमान रखना चाहिए ।

(i) अथवा पूर्वागत विंशोपक बल को यथावत् समझें यदि ग्रह, सूर्य से सातवीं राशि में हो ।

(ii) 6.8 में रहने पर प्रायः पूर्णवत् ही समझें या लगभग 16% कम करके शेष का ग्रहण करें ।

(iii) 5.9 भावों में लगभग 33% बल कम कर लें ।

(iv) 4.10 में ग्रह हो तो पूर्वागत विश्वा बल का 50% कम कर लें ।

(v) 3.11 में हो तो 67% कम करें, 2.12 में हो तो 83% कम करें तथा उसी राशि में हो तो 100% कम कर लें । शेष बल वास्तविक् विश्वाबल होगा । सूक्ष्मता का आग्रह हो तो स्पष्टों का अन्तर कर देखें ।

इस तरह सम्पूर्ण विश्वाफल के 7 भेद या 8 भेद बन जाएँगे । इसका विवरण आगे दिया जा रहा है ।

पूर्णं पूर्णेति पूर्णं स्यात् सर्वदैवं विचिन्तयेत् ।। 31 ।।

हीनं हीनेति हीनं स्यात् स्वल्पेऽल्पात्यल्पकं मतम् ।

मध्यं मध्येति मध्यं स्याद्यावत्तस्य दशास्थितिः ।। 32 ।।

$17\frac{1}{2}$ से 20 विश्वा तक अति पूर्ण, 15 से $17\frac{1}{2}$ तक पूर्ण, $12\frac{1}{2}$ से 15 तक अति मध्य, 10 से $12\frac{1}{2}$ तक मध्य, $7\frac{1}{2}$ से 10 तक अल्प, 5 से $7\frac{1}{2}$ तक अति अल्प, $2\frac{1}{2}$ से 5 तक हीन तथा 0 से $2\frac{1}{2}$ तक अतिहीन संज्ञा समझनी चाहिए ।

जैसा भी शुभाशुभ फल ग्रह का हो, वह सम्पूर्ण दशा काल में उक्त पूर्णादि मात्रा में सदैव मिलता है।

हमारे उदाहरण में चन्द्रमा लग्नेश अल्पविश्वा है। यह सूर्य से 6 राशि समाप्ति पर स्थित है, अतः इस अल्प में विशेष हानि करने की आवश्यकता नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि चन्द्रमा लग्नेश रहने से सब शुभाशुभ फलों का नियामक है, अतः चन्द्रमा की दशान्तर्दशा में शुभ फल कम तथा अशुभ फल अधिक मिलेंगे, यह सामान्य निष्कर्ष हुआ।

भाव संज्ञा निश्चय :-

अथान्यदपि वक्ष्यामि मैत्रेय ! श्रृणु सुव्रत !।
लग्नतुर्यास्तवियतां केन्द्रसंज्ञा विशेषतः ।। 33 ।।
द्विपंचरन्ध्रलाभानां ज्ञेयं पणफराभिधम् ।
त्रिषष्ठभाग्यरिःफानामापोक्लिममिति द्विज ।। 34 ।।
लग्नात्पंचमभाग्यस्य कोणसंज्ञा विधीयते ।
षष्ठाष्टव्ययभावानां दुःसंज्ञात्रिकसंज्ञका ।। 35 ।।
चतुरस्रं तुर्यरन्ध्रं कथयन्ति द्विजोत्तम !।
स्वस्थादुपचयर्क्षाणि त्रिषडायाम्बराणि हि ।। 36 ।।

हे मैत्रेय ! अन्य भी कुछ विशेष बताता हूँ। 1.4.7.10 भावों या राशियों को केन्द्र कहते हैं। 2.5.8.11 को पणफर एवं 3.6.9.12 को आपोक्लिम कहते हैं।

लग्न से 5.9 को त्रिकोण कहते हैं। 6.8.12 भावों को दुःस्थान या त्रिक्स्थान कहते हैं।

4.8 भावों को चतुरस्र कहते हैं तथा विचारणीय भाव या ग्रह से 3.6.10.11 राशियाँ 'उपचय' कहलाती हैं।

लग्नादि भावों के नाम –

तनुर्धनं च सहजो बन्धुपुत्रारयस्तथा ।
युवतीरन्ध्रधर्माख्य कर्मलाभव्ययाः क्रमात् ।। 37 ।।
संक्षेपेणैतदुदितमन्यद् बुद्ध्यनुसारतः ।
किंचिद्विशेषं वक्ष्यामि यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ।। 38 ।।
नवमेऽपि पितुर्ज्ञानं सूर्याच्च नवमेऽथवा ।
यत्किंचिद् दशमे लाभे तत्सूर्याद्दशमे भवे ।। 39 ।।

तनु, धन, सहज, बन्धु, पुत्र, शत्रु, स्त्री, रन्ध्र, धर्म, कर्म, लाभ व व्यय ये क्रमशः 12 भावों के शीलानुसार नाम हैं। अर्थात् इन भावों से उक्त विषयों का विचार करना चाहिए, यह एक सामान्य नियम हुआ।

यह विषय मैंने संक्षेप में कहा है, अब अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ विशेष भी कहता हूँ, जैसा कि मैंने ब्रह्माजी के मुख से सुना था।

लग्न से नवम भाव एवं सूर्य की अधिष्ठित राशि से नवम भाव से भी पिता के विषय में विचार करना चाहिए। अर्थात् दशम भाव से सामान्यतः विचार करते हैं लेकिन यहाँ विशेष नियम बताया गया है। लग्न से 10.11 भावों के समान सूर्य से 10.11 भावों से भी विचार करना चाहिए।

तुर्ये तनौ धने लाभे भाग्ये यच्चिन्तनं च तत्।
चन्द्रात्तुर्ये तनौ लाभे भाग्ये तच्चिन्तयेद् ध्रुवम्।। 40।।
लग्नात् दुश्चिक्य भवने यत्कुजाद् विक्रमेऽखिलम्।
विचार्यं षष्ठभावस्य बुधात्षष्ठे विलोकयेत्।। 41।।
पुत्रस्य च गुरोः पुत्रे जायायाः सप्तमे भृगोः।
अष्टमस्य व्ययस्यापि मन्दान्मृत्यौ व्यये तथा।। 42।।

लग्न से 2.4.9.11 भावों के समान ही चन्द्रमा से 2.4.9.11 भावों में भी फलविचार यथावत् करना चाहिए। यह निश्चित नियम है।

लग्न से तृतीय स्थान के समान ही मंगल से तृतीय स्थान में भी विचार करना है।

लग्न से षष्ठ स्थान के समान ही बुध से छठे स्थान को भी देखना चाहिए।

लग्न से पंचम व बृहस्पति से पंचम ये दोनों भाव पुत्रादि के विषय में समान विचारणीय हैं।

लग्न से सप्तम स्थान के समान ही शुक्र से सप्तम स्थान का विचार करना है।

जिस प्रकार लग्न से 8.12 में मृत्यु व हानि का विचार करना है, उसी तरह से शनि से 8.12 स्थानों का भी समान रूप से विचार करना चाहिए।

भावेश से भी भाव विचार –

यद्भावाद्यत्फलं चिन्त्यं तदीशात्तत्फलं विदुः।
ज्ञेयं तस्य फलं तद्धि तत्रचिन्त्यं शुभाशुभम्।। 43।।

जिस तरह भाव से पूर्वोक्त तन, धन, भ्राता आदि विषयों का विचार कहा है, उसी तरह लग्नेश जिस स्थान में हो, उस भाव को भी लग्नवत् देखें। धनेश से द्वितीय भाव में भी धन का, तृतीयेश से तृतीय भाव में भी भ्राता का इत्यादि प्रकार से सब भावेशों से भी विचार करना चाहिए।

श्लोक 39 से 43 तक बहुत महत्त्वपूर्ण व व्यापक नियम बताए गए हैं। इन नियमों को बिल्कुल मौलिक, आधारभूत, धारणी या आधारशिला की तरह समझना चाहिए।

सम्पूर्ण विषय को एक वाक्य में कहना हो तो कहेंगे कि लग्न कुण्डली में जिन–जिन बातों का विचार, जिस भाव में किया जाए, वही वही विचार भावेश व नित्य कारक ग्रहों से भी करना चाहिए।

(i) लग्न व सूर्य से नवम भाव में समान रूप से पिता के विषय में विचार करना है। यहाँ नवम भाव को भी पितृस्थान कहा है। इस नियम का प्रयोग दाक्षिणात्यों ने बहुत किया है। सूर्य, पिता का नित्य कारक है, अतः लग्न से नवम व सूर्य से नवम तथा नवमेश से नवम भाव में पिता का विचार करना चाहिए, यह नियम स्पष्ट हुआ। सूर्य व लग्न को समान श्रेणी में रखकर दोनों को ही लग्नवत् मान लिया है।

(ii) चन्द्रमा से 2.4.9.11 भावों को भी लग्नवत् ही देखें। अर्थात् जो विचार लग्न से द्वितीय में (धन, कुटुम्ब, वाणी आदि) करना है, वह चन्द्रमा से द्वितीय में भी देखना है। इसी तरह चतुर्थ में सुख सम्पत्ति, वाहन, बन्धु आदि का विचार लग्न व चन्द्र से समान है। यही स्थिति 9.11 भावों की भी है।

अतः लग्न, चन्द्र व सूर्य राशि व इनके स्वामियों को समान महत्त्व देना चाहिए, यह नियम स्वतः स्फुट हुआ लेकिन भाव विचार में उदय लग्न प्राथमिक आधार है।

(iii) लग्न, चन्द्र व सूर्य ये तीनों ही लग्नवत् हैं। अतः सामान्यतया सभी भावफलों का विचार इन लग्नों में करते हुए भी सूर्य कुण्डली के 9.10.11 भाव लग्न के 9.10.11 भाव समान हैं।

(iv) चन्द्र माता का कारक है। अतः चन्द्र कुण्डली में विशेषतया 2.4.9.11 भावों को लग्नवत् मानें। चन्द्र व लग्न से चतुर्थ तथा लग्न से चतुर्थ भावेश से चतुर्थ में माता का विचार होगा।

(v) मंगल भ्रातृकारक है। अतः मंगल से तृतीय भाव को भी लग्न से तृतीयवत् मानना। भाई का विचार लग्न से तृतीय में, मंगल से तृतीय में तथा तृतीयेश से तृतीय में करना है।

(vi) लग्न से षष्ठ भाव, बुध से षष्ठ भाव तथा षष्ठेश से षष्ठ भाव समान हैं। षष्ठभाव मामा, शत्रु व रोग का है।

(vii) पुत्र विचार लग्न से पंचम, गुरु से पंचम व पंचमेश से पंचम में करना है। गुरु सन्तान का निसर्ग कारक है।

(viii) सप्तमभाव, सप्तमेश से सप्तम व शुक्र से सप्तम में पत्नी आदि का समान विचार है।

(ix) लग्न से 8.12 व शनि से 8.12 एवं लग्न से अष्टमेश से अष्टम भाव, द्वादशेश से द्वादश भाव समान विचारणीय हैं।

इस विषय को जैमिनीय मत में भी माना गया है। (देखें हमारा जैमिनिसूत्र शान्तिप्रियभाष्य, पृ. 18-19)

हमारे विचार से लग्न को 50% महत्त्व देकर चन्द्र व सूर्य को 25%-25% महत्त्व देना चाहिए, यह लग्नवत् सारे भावों का नियम हुआ। लेकिन महर्षि द्वारा कहे गए पूर्वोक्त भावों को बराबर महत्त्व देना चाहिए।

विचारार्थ क्रमिक उदाहरण को ही लेते हैं। लग्नेश चन्द्र त्रिक् में गया है। चन्द्र कुण्डली में लग्नेश बुध भी त्रिक् में गया है। सूर्य कुण्डली में लग्नेश शनि, एकादश में गया है। यह स्वास्थ्य व शरीर सम्पत्ति की कमी दिखाता है।

लग्न से 8.12 में शुभ ग्रह, चन्द्र से 8.12 में पाप ग्रह तथा सूर्य से 8.12 में शुभ ग्रह एवं द्वादश ग्रह रहित है। अतः आयु है।

भाग्य भाव का विचार अभीष्ट है। लग्न से नवम में कोई ग्रह नहीं है। स्वामी गुरु की त्रिपाद दृष्टि है। कारक मंगल व शनि की भी आधी दृष्टि है। भाग्य मध्यम प्रतीत हुआ।

चन्द्र से नवम में शुक्र मित्र क्षेत्री, वर्गोत्तमी है। भावेश शनि त्रिपाद दृष्टि से देखता है। गुरु की भी पूर्ण दृष्टि है, अतः भाग्य उत्तम प्रतीत हुआ।

लग्न से नवमेश गुरु है। गुरु से नवम भाव भी विचारणीय हुआ।

गुरु से नवम में मेष राशि है। उस पर किसी ग्रह की दृष्टि नहीं है। लेकिन 3.11 उपचयों में शुभ ग्रह हैं। उसका स्वामी गुरु कुण्डली में चतुर्थ में है, यह केन्द्रेश व त्रिकोणेश होने से परम कारक हुआ। दूसरे केन्द्रेश शनि से युक्त भी है। राहु का बल भी प्राप्त हो रहा है, अतः भाग्य उत्तम है। निष्कर्षतः भाग्य अच्छा सहयोग्र देगा, यह कहना उपयुक्त है। लेकिन कब ? जब बलवान् भाग्य भवन गुरु व चन्द्र से मिले। गुरु से नवम का

स्वामी मंगल, आयु 28 वर्ष है। अतः 28 वर्ष के उपरान्त भाग्य समृद्धि शुरू होगी। चन्द्र से नवम में शनि की राशि है। अतः 36 वर्ष के उपरान्त या शनि की अवस्थानुसार प्रौढ़ावस्था में विशेष भाग्योदय होगा। मंगल, शनि, गुरु, दशाओं में लग्नेश या राशीश की दशाएँ या शुभ दशाएँ या इन्हीं में परस्पर विनिमय से दशान्तर्दशा आने पर विशेष फलोदय होगा।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
वर्ग–विवेचनाध्यायोऽष्टमः ।।8।।

9

।। अथ राशिदृष्टिभेदाध्यायः ।।

राशियों की दृष्टि –

मेषादीनां च राशीनां चरादीनां पृथक् पृथक्।
दृष्टिभेदं प्रवक्ष्यामि श्रृणु त्वं द्विजसत्तम ! ।। 1 ।।
राशयोऽभिमुखं विप्र ! तथा पश्यन्ति पार्श्वभे।
रन्ध्रे षष्ठे तथा द्यूनेऽभिमुखो राशिरुच्यते ।। 2 ।।

राशियाँ एक दूसरे पर दृष्टि रखती हैं। हे विप्रवर ! अब मैं दृष्टिभेद बताता हूँ।

सभी राशियाँ अपनी सम्मुख राशि को व अगल–बगल की राशि को देखती हैं।

जैमिनीय मत में भी राशियों की दृष्टि को बड़ी प्रमुखता से कहा गया है। ध्यातव्य है कि वहाँ ग्रहों की दृष्टि प्रचलित पद्धति के समान द्विपाद, त्रिपाद आदि नहीं होती है। वहाँ राशि के अनुसार ही ग्रहों की दृष्टि है। महर्षि भी आगे इसी का उल्लेख कर रहे हैं। प्रचलित ग्रह दृष्टि भी मूल रूप से पाराशरीय नहीं हैं।

अभिमुख :– सम्मुख राशि, जो राशि ठीक सामने पड़े। सदैव सप्तम राशि सम्मुख नहीं होती। चर राशि में आठवीं, स्थिर में छठी व द्विस्वभाव में सप्तम राशि सम्मुख होती है। ऐसा क्यों होता है यह आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

पार्श्व राशि :– अगल–बगल की राशि। द्विस्वभाव राशि के सन्दर्भ में यह लागू नहीं होता। चर राशि के सन्दर्भ में पिछली राशि व स्थिर के सन्दर्भ में दूसरी राशि का ग्रहण होता है।

दृष्टिचक्रोद्धारः–

चक्रन्यासमहं वक्ष्ये यथावद् ब्रह्मणोदितम् ।

यस्यविज्ञान मात्रेण दृष्टिभेदः प्रकाश्यते ।। 3 ।।

पूर्वं मेषवृषौ लेख्यौ कर्कसिंहौ च दक्षिणे ।

तुलाली वारुणे विप्र ! मृगकुम्भौ तथोत्तरे ।। 4 ।।

अग्निकोणे तु मिथुनं नैऋत्यां कन्यकां द्विज ।

वायव्यां धनुषं लेख्यमीशाने मीनमालिखेत् ।। 5 ।।

चतुरस्रं च विन्यासं ज्ञायते द्विजसत्तम ।

वृत्ताकारं विशेषेण ब्रह्मणां चोदितं पुरा ।। 6 ।।

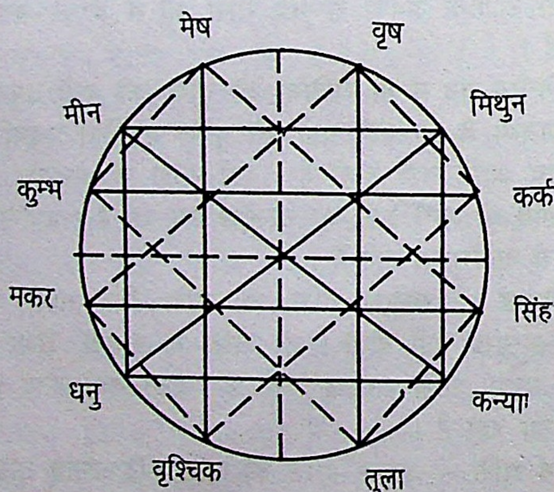
ब्रह्माजी द्वारा कहा गया दृष्टि चक्र निर्माण प्रकार कहता हूँ, जिसके जानने से दृष्टिभेद सर्वथा स्पष्ट हो जाता है ।

पूर्व में मेष वृष, दक्षिण में कर्क सिंह, पश्चिम में तुला वृश्चिक, उत्तर में मकर कुम्भ लिखें ।

अग्निकोण में मिथुन, नैर्ऋत्य कोण में कन्या, वायव्य में धनु तथा ईशान में मीन राशि की स्थापना करने से दृष्टि चक्र बनता है ।

इस चक्र को चौकोर या वृत्ताकार लिखना चाहिए । ब्रह्माजी ने विशेषतया वृत्ताकार लिखने के लिए कहा है ।

।। दृष्टि चक्र ।।



सीधी रेखा पर पड़ने वाली राशियाँ 'अभिमुख' कहलाती हैं । यह प्रत्यक्ष है । दक्षिण भारतीय कुण्डली चक्र को यदि देखें तो वह चतुरस्र या

चौकोर दृष्टि चक्र ही है। चतुष्कोण भी वृत्तान्तर्गत ही होता है यह पीछे चक्र में दिख ही रहा है। इस चक्र के अनुसार निर्णय करने पर निष्कर्ष निकलता है–

सबसे पहले चर राशियों की दृष्टि निर्णीत करेंगे। मेष वृश्चिक, कर्क कुम्भ, तुला वृष, मकर सिँह एक सीध में या सम्मुख पड़ रही हैं। अतः ये जोड़े अपने–अपने जोड़े की दूसरी राशियों को देखते हैं। यह अभिमुख दृष्टि है। पार्श्व दृष्टि के सिद्धान्त से आजू–बाजू की रेखाओं पर मेष की दृष्टि सिँह व कुम्भ पर कर्क की वृश्चिक व वृष पर इत्यादि प्रकार से निश्चित होती है। इसी बात को हम सरल शब्दों में कह सकते हैं कि सभी चर राशियाँ, अपने से दूसरी स्थिर को छोड़कर शेष सब स्थिर राशियों को देखती हैं।

स्थिर राशियाँ द्वादशस्थ चर को छोड़कर सब चरों को देखती हैं। द्विस्वभाव राशियाँ स्वयं को छोड़कर शेष सब द्विस्वभावों को देखती हैं।

चरं धनं बिना स्थास्नुं स्थिरमन्त्यं विना चरम्।
युग्मं स्वेन विना युग्मं पश्यन्तीत्ययमागमः।।

(जैमिनि : वृद्धकारिका)

इसी आशय को महर्षि पराशर ने किस प्रकार कहा है, यह अगले श्लोकों में स्पष्ट है।

यथा चरः स्थिरानेवं स्थिरः पश्यति वै चरान्।
द्विस्वभावो विनात्मानं द्विस्वभावान् प्रपश्यति।।
समीपस्थं परित्यज्य राशींस्त्रीन् ननु पश्यति।। 7।।

अपनी पास की राशि को छोड़कर चर राशि तीन स्थिरों को, स्थिर राशि समीपस्थ चर रहित तीन चरों को व द्विस्वभाव स्वयं को छोड़कर शेष तीन द्विस्वभावों को देखती हैं।

ग्रहों की दृष्टि :–

सूर्यादयः क्रमेणैव पश्यन्ति च परस्परम्।
राशित्रयं त्रयं विप्र ! सर्वराशिगता ग्रहाः।। 8।।
चरेषु संस्थिताः खेटाः पश्यन्ति स्थिर सङ्गतान्।
स्थिरेषु संस्थिता एवं पश्यन्ति चर संस्थितान्।। 9।।
उभयस्थास्तु सूर्याद्याः पश्यन्त्युभय संस्थितान्।
निकटस्थं विना खेटा पश्यन्तीत्ययमागमः।। 10।।

सूर्यादि ग्रह भी क्रमशः पूर्वोक्त राशि दृष्टि के अनुसार ही देखते हैं। ग्रह जिस राशि में स्थित है, वह राशि जिन तीन राशियों को देखती है, तो उन राशियों में स्थित ग्रह भी उसी प्रकार दृष्टि रखते हैं।

चर राशि गत ग्रह समीपस्थ एक स्थिर को छोड़कर शेष तीनों स्थिरस्थ ग्रहों को देखेगा। स्थिर राशिगत् ग्रह समीपस्थ चर को छोड़कर शेष तीनों चरों में संस्थित ग्रहों को देखेगा।

द्विस्वभावस्थ ग्रह अपने से अतिरिक्त तीनों द्विस्वभावस्थ ग्रहों को देखेगा, यह आगम है अर्थात् शास्त्र या ब्रह्मा जी की आज्ञा है।

इसी बात को वृद्धकारिकाओं में भी यथावत् कहा गया है–

चरस्थं स्थिरगः पश्येत् स्थिरस्थं चरराशिगः।

उभयस्थं तूभयगो निकटस्थं विना ग्रहम्।। (वृद्धकारिका)

इस दृष्टि में एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद आदि दृष्टि भेद न होकर सर्वत्र पूर्ण दृष्टि ही स्वीकार्य है। यह राशि के आधार पर ग्रहों की दृष्टि हुई।

दूसरी बात यह भी ध्यातव्य है कि उत्तर भारत में प्रचलित राशि चक्र विधि, जिसमें दाएँ से बाएँ राशियाँ लिखी जाती हैं, वह बाद की उपज है। 'चरंधनं विना' कहने से 'मेष राशि द्वितीयस्थ वृष को छोड़कर ऐसा कहने से दक्षिण भारतीय राशि चक्र विधि ही आर्ष सिद्ध होती है।

कतिपय प्रतियों में प्रचलित ग्रह दृष्टि के प्रतिपादक श्लोक भी संगृहीत हैं। उनमें व प्रचलित दृष्टि में भेद है। मंगल की सातवें एकपाद, शनि की सप्तम में तीन पाद एवं गुरु की सप्तम में द्विपाद दृष्टि बताई गई है। यह विरुद्ध है।

होराशास्त्रे भिन्नदृष्टिः खेटानां च परस्परम्।

त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे।। 11।।

शनिर्देवगुरुर्भौमः परे च वीक्षणेऽधिकाः।

पदार्धं त्रिपदं पूर्णं वदन्ति गणकोत्तमाः।। 12।।

होरा शास्त्र में ग्रहों की दृष्टि अलग प्रकार से कही गई है। 3.10, 5.9, 4.8, व 7 भावों में ग्रहों की दृष्टि होती है।

शनि, गुरु व मंगल क्रमशः उक्त से अधिक दृष्टि रखते हैं। यह दृष्टि एकपाद (पद) द्विपाद (अर्ध), त्रिपाद व पूर्ण भेद से चार प्रकार की होती है।

शनिपादं त्रिकोणेषु चतुरस्रे द्विपादकम्।

त्रिपादं सप्तमे विप्र! त्रिदशे पूर्णमेव हि।। 13।।

चतुरस्रे गुरुः पादं सप्तमे च द्विपादकम्।

त्रिपादं त्रिदशे विप्र ! पूर्णं पश्यति कोणभे।। 14।।

सप्तमे पादमेकं च द्विपादं त्रिदशे कुजः ।।

त्रिपादं च त्रिकोणेषु पूर्णं स्यात् चतुरस्रके।। 15।।

अन्येषां त्रिदशे पादं द्विपादं च त्रिकोणगे।

चतुरस्रे त्रिपादं च पूर्णं पश्यति सप्तमे।। 16।।

शनि 5.9 में एकपाद, 4.8 में द्विपाद, 7 में त्रिपाद, 3.10 में पूर्ण दृष्टि रखता है।

बृहस्पति 4.8 में एकपाद, 7 में द्विपाद, 3.10 में त्रिपाद व 5.9 में पूर्ण दृष्टि रखता है।

मंगल 7 में एकपाद, 3.10 में द्विपाद, 5.9 में त्रिपाद व 4.8 में पूर्ण दृष्टि रखता है।

अन्य ग्रहों की 3.10 में एक पाद, 5.9 में द्विपाद, 4.8 में त्रिपाद व 7 में पूर्ण दृष्टि होती है।

प्रचलित मत से मंगल, शनि, गुरु समेत सभी ग्रह, सप्तम पर पूर्ण दृष्टि ही रखते हैं। लघुपाराशरीकार ने भी प्रचलित मतानुसार ही दृष्टि मानी है। वराह, यवन, गर्गादि ने भी यही माना है। अतः यह दृष्टिभेद किसी अति प्राचीन काल की दृष्टि को द्योतित करता है। ग्रहों की दृष्टि में मतमतान्तर थे, इसकी सूचना तो हमें ग्रहदृष्टि से सम्बद्ध बृहज्जातक के इस श्लोक में ही मिल जाती है।

त्रिदशत्रिकोणचतरस्रसप्तमान्------किल वीक्षणेऽधिकाः।

यहाँ प्रयुक्त 'किल' शब्द वराह की लड़खड़ाहट को ही दिखाता है। इससे प्रतीत होता है कि वराह के समय तक, विशेषतया बृहज्जातक की रचना तक प्रचलित निश्चित मत बहुमत सम्मत होते हुए भी, सबको मान्य नहीं रहा होगा। इसका विरोध भी कुछ लोग करते होंगे।

'किलेति शब्देन ग्रह दृष्टे निश्चितत्वं सूचितम्। (रुद्रभट्ट)

ग्रहों की दृष्टि के विषय में समालोचनात्मक विधि से परीक्षा की आवश्यकता है। षष्ठ स्थान में कोई दृष्टि न होना व्यावहारिक व तार्किक दोनों ही प्रकार से विरुद्ध है। वर्तमान दृष्टि विधि यवनों की देन है, जिसे वराहमिहिर ने अपनाया था, तथा उसे बाद में किसी ने पाराशर होरा में भी मिला दिया होगा।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां राशि–दृष्टि भेदाध्यायो नवमः।। 9।।

10

।। अथ अरिष्टाध्यायः ।।

प्रथम दृष्ट्या अरिष्ट

चतुर्विंशतिवर्षाणि यावद्गच्छन्ति जन्मतः ।

जन्मारिष्टं तु तावत्स्यादायुर्दायं न चिन्तयेत् ।। 1 ।।

जन्म समय से चौबीस वर्ष की अवस्था होने तक बालारिष्ट योग प्रभावी होते हैं। अतः चौबीस वर्ष तक आयुर्दाय का गणित द्वारा साधन नहीं करना चाहिए।

चौबीस वर्ष तक बालारिष्ट मानना भी एक सम्प्रदाय है। लेकिन यह कथन गड्डलिका प्रवाह अर्थात् अन्धानुकरण ही है। शास्त्रकारों ने तीन प्रकार के अरिष्ट कहे हैं। योगज, नियत व अनियत। अरिष्ट अर्थात् अनिष्ट अर्थात् अशुभ चिन्ह। जिन चिन्हों से जीवन का संकट प्रतीत हो, उन्हें **अरिष्ट** या **रिष्ट** कहते हैं

'रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते ।

तल्लक्षणमरिष्टं स्याद् रिष्टमप्यभिधीयते ।।

नवजात शिशु, रोगी, दुर्घटनाग्रस्त, विपत्तिग्रस्त व्यक्ति या प्राणी के लिए जीवन रक्षा के सन्दर्भ में प्रतिकूल बातें, चिन्ह लक्षण अरिष्ट हैं। अतः ग्रहकृत अरिष्टमात्र का ही यहाँ ग्रहण न होकर जीवन रक्षा हेतु सामान्य सावधानी रखना भी अभीष्ट है।

हमारे विचार से अरिष्ट योगों में योगों द्वारा अरिष्टों का विचार सर्वप्रथम करना चाहिए। अरिष्ट योगों के उपरान्त ही दशान्तर्दशा व गणितागत आयु के आधार पर विचार करना चाहिए।

सद्योरिष्ट योग जन्म से एक वर्ष तक, अरिष्टयोग अधिकतम 24 वर्ष तक, मध्यम मान से 12 वर्ष तक तथा सामान्यतया 8 वर्ष तक प्रभावी होते हैं। हमारे विचार से 12 वर्ष तक अरिष्ट योगों का प्रभाव मानना अधिक व्यावहारिक है।

आचार्यो ने कहा है कि चार वर्ष तक बालक माता–पिता के दोषों से अर्थात् रक्तवीर्य दोष से, गुणसूत्रों के दोष से या पैतृक दोषों से मृत्यु प्राप्त कर सकता है। आठ वर्ष तक बालग्रहों के कारण अर्थात् चेचक,

खसरा, पोलियो आदि बीमारियों से तथा बारह वर्ष तक अपने दोषों से मृत्यु को प्राप्त होता है। अपने दोष अर्थात् बालक-स्वभाव के कारण खतरनाक स्थानों पर चले जाना, अनजानी चीजें चखने का लोभ, विशेष तर्क बुद्धि न होने से बहुत तेजी से भागना, साइकिल आदि चलाना तथा दुर्घटना–ग्रस्त हो जाना आदि अपने दोष हैं। इसके बाद बालक निज सुरक्षा के प्रति सावधान हो जाता है। अतः ग्रहारिष्ट का विचार आठ वर्ष तक गम्भीरता पूर्वक करके चिकित्सा (टीका लगवाना, समय पर दवा दिलवाना) जप-होम उपाय अर्थात् आस्तिकता, परोपकार, पूजा, दान, व सम्यक् चरित्र निर्माण हेतु प्रेरित करना इत्यादि विधियों से बालक की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। वराहादि आचार्यो ने आठ वर्ष वाले पक्ष को विशेष आदर दिया है।

चन्द्र या शुभग्रहों से अरिष्ट :–

षष्ठाष्टरिष्फगश्चन्द्रः क्रूरैः खेटैश्च वीक्षितः।
जातस्य मृत्युदः सद्यस्त्वष्टवर्षैः शुभेक्षितः।।2।।
शशिवन्मृत्युदाः सौम्याश्चेद्वक्राः क्रूरवीक्षिताः।
शिशोर्जातस्य मासेन लग्ने सौम्यविवर्जिते।।3।।

जन्म समय में 6.8.12 भावों में स्थित चन्द्रमा यदि कई पापी ग्रहों द्वारा दृष्ट हो तो बालक की तुरन्त मृत्यु हो जाती है। अर्थात् जन्मते ही प्राण संकट उपस्थित होता है। यदि वहीं 6.8.12 में स्थित चन्द्रमा साथ ही शुभ ग्रहों से भी देखा जाता हो तो 8 वर्ष के भीतर मृत्युप्रद होता है।

इसी तरह अन्य शुभ ग्रहों से भी अरिष्ट विचार करना चाहिए। यदि बुध, गुरु, शुक्र में से दो या तीनों 6.8.12 में वक्री होकर स्थित हों तथा क्रूर ग्रहों से देखे जाते हों तो एक मास के भीतर मृत्युप्रद होते हैं। इस योग के साथ यदि लग्न में कोई शुभ ग्रह स्थित हों तो उक्त 6.8.12 में स्थित शुभ ग्रह मृत्युप्रद नहीं होते।

यदि 1.8 भाव में मंगल पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तथा किसी भी शुभ ग्रह की उस पर दृष्टि न हो, तो बालक के लिए मृत्युप्रद योग है।

इसी पद्धति से सूर्य व शनि 1.8 में पापयुक्त–दृष्ट तथा शुभ ग्रहों के दृग्योग से रहित हों तब वे भी मृत्युकारक होते हैं।

माता व भाई का अरिष्ट :–

यस्य जन्मनि धीस्थाः स्युः सूर्यार्कीन्दुकुजाभिधाः ।
तस्य त्वाशु जनित्री च भ्राता च निधनं व्रजेत् ।। 4 ।।
पापेक्षितो युतो भौमो लग्नगो न शुभेक्षितः ।
मृत्युदस्त्वष्टमस्थोऽपि सौरेणार्केण वा पुनः ।। 5 ।।

जिसके जन्म समय में सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मंगल ये सब ग्रह पंचम स्थान में स्थित हों तो उस शिशु की माता व भाई (सहोदर) की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है, अर्थात् ऐसा शिशु इनके लिए कष्टप्रद होता है।

यदि 1.8 भाव में मंगल पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तथा किसी भी शुभ ग्रह की उस पर दृष्टि न हो, तो बालक के लिए मृत्युप्रद योग है।

इसी पद्धति से सूर्य व शनि यदि 1.8 में पापयुक्त दृष्ट तथा शुभ ग्रहों के दृग्योग से रहित हों तब वे भी मृत्युकारक होते हैं।

चन्द्रसूर्यग्रहेराहुश्चन्द्रसूर्ययुतो यदि ।
सौरिभौमेक्षितं लग्नं पक्षमेकं स जीवति ।। 6 ।।
कर्मस्थाने स्थितः सौरिः शत्रुस्थाने कलानिधिः ।
क्षितिजः सप्तमे स्थाने सहमात्रा विपद्यते ।। 7 ।।
लग्ने भास्करपुत्रश्च निधने चन्द्रमा यदि ।
तृतीयस्थो यदा जीवः सः याति यममन्दिरम् ।। 8 ।।

सूर्य ग्रहण या चन्द्रग्रहण के दिन या इनके आसन्न जन्म हो तथा सूर्य चन्द्रमा व राहु एकत्र स्थित हों अर्थात् कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्यादि में जन्म हो तथा लग्न पर मंगल व शनि की दृष्टि हो तो बालक 15 दिन जीवित रह पाता है।

दशम स्थान में शनि, षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, सप्तम स्थान में मंगल यदि हो तो माता सहित शिशु के लिए अरिष्ट योग होता है।

लग्न में शनि, अष्टम में चन्द्रमा तथा तृतीय में बृहस्पति हो तो बालक की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

होरायां नवमे सूर्यः सप्तमस्थः शनैश्चरः ।
एकादशे गुरुशुक्रौ मासमेकं स जीवति ।।9 ।।
व्यये सर्वे ग्रहा नेष्टाः सूर्यशुक्रेन्दुराहवः ।।
विशेषान्नाशकर्तारो दृष्ट्या वा भंगकारिणः ।। 10 ।।

यदि लग्न (क्षितिज लग्न) में या नवम में सूर्य,सप्तम में शनि, ग्यारहवें भाव में बृहस्पति या शुक्र हो तो एक मास का जीवन होता है। अथवा इस योग का विचार होरा लग्न में भी कर सकते हैं।

बारहवें भाव में अरिष्ट की दृष्टि से सभी ग्रह खराब होते हैं। यह सामान्य नियम है। इनमें भी सूर्य, शुक्र, चन्द्रमा व राहु द्वादशस्थ होने पर विशेष अरिष्टकारक हो जाते हैं। यदि द्वादश भाव पर इनकी दृष्टि हो तो भी भंग अर्थात् योगभंग होता है, अर्थात् शुभ योग नहीं होता।

पापान्वितः शशी धर्मे द्यूनलग्नगतो यदि।

शुभैरवीक्षितयुतस्तदा मृत्युप्रदः शिशोः।। 11।।

सन्ध्यायां चन्द्रहोरायां गण्डान्ते निधानाय वै।

प्रत्येकं चन्द्रपापैश्च केन्द्रगैः स्याद् विनाशनम्।। 12।।

यदि चन्द्रमा 1.7.9 में पापयुक्त हो तथा कोई भी शुभ ग्रह उससे दृष्टि या योग न करे तो शिशु के लिए मृत्युकारक होता है।

यदि सन्ध्या (प्रातः या सायं) समय में जन्म हो, जन्म लग्न में चन्द्रमा की होरा हो अथवा सन्ध्या समय में गण्डान्त (कर्क, वृश्चिक, मीन का अन्तिमं नवांश या अन्तिम अंश) हो एवं चन्द्रमा व पापग्रह चारों केन्द्रों में हो तों बालक की तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

अथवा पाप ग्रह राशि के अन्त में हो तथा सन्ध्या में चन्द्रहोरा हो, तो यह योग होता है। ऐसा बृहज्जातक में कहा गया है। तदनुसार वहाँ गण्डान्त के स्थान पर भान्त अर्थात् राश्यन्त पाठ कहा है।

साधारणतया सायं या प्रातः सन्ध्या में गण्डान्त लग्न हो या गण्डान्त चन्द्रमा हो या लग्न में चन्द्रहोरा हो एवं पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) तीन केन्द्रों में व चन्द्रमा भी चौथे केन्द्र में हो अर्थात् चारों केन्द्रों में प्रत्येक में सूर्य, चन्द्र,मंगल, शनि, क्रम व्युत्क्रम से स्थित हों तो बहुत अरिष्ट होता है।

बृहज्जातक में 'प्रत्येकं चन्द्रपापैश्च केन्द्रगैः' यह एकयोग तथा 'सन्ध्याया चन्द्रहोरायाम्' यह अलग दूसरा योग माना है।

सन्ध्या परिभाषा :--

रवेस्तु मण्डलार्धास्तात् सायं सन्ध्या त्रिनाडिका।

तथैवार्धोदयात् पूर्वं प्रातः सन्ध्या त्रिनाडिका।। 13।।

सूर्य के केन्द्रोदय से पहले तीन घड़ी अर्थात् 72 मिनट का समय एवं सूर्य केन्द्र के अस्त से आगे तीन घड़ी या 72 मिनट का समय क्रमशः सायं व प्रातः सन्ध्या कहलाती है।

पंचांगों में सूर्य के केन्द्र का उदयास्त ही इष्ट काल साधनार्थ प्रयोग किया जाता है। सूर्य की कोर का क्षितिज से स्पर्श (उदय में ऊपरी कोर व अस्त में निचली कोर) भी उदयास्त कहलाता है। लेकिन इष्टकाल साधन, सूर्य बिम्बकेन्द्र के क्षितिज स्पर्श पर आधारित होता है। अतः सूर्योदय के पंचांगस्थ काल से 72 मिनट पूर्व तक अर्थात् 57 घड़ी इष्ट से 59.59 इष्ट तक तथा सायं सूर्यास्त से 72 मिनट या तीन घड़ी आगे तक (स्थानीय दिनमान + तीन घड़ी) सन्ध्या मानी जाएगी। वराह ने बृहत्संहिता में सूर्यास्त से तारे दिखने तक एवं तारों के प्रकाश की हानि से सूर्योदय तक सन्ध्या कही है।

चक्रपूर्वापरार्धेषुक्रूरसौम्येषुकीटभे।
लग्नगे निधनं याति नात्र कार्या विचारणा।।14।।
व्यय शत्रुगतैः क्रूरैर्मृत्यु द्रव्यगतैरपि।
पापमध्यगते लग्ने सत्यमेव मृतिं वदेत्।।15।।
लग्न सप्तमगौ पापौ चन्द्रोऽपि क्रूरसंयुतः।।
यदा नावीक्षितः सौम्यैः शीघ्रान्मृत्युर्भवेत्तदा।।16।।

(i) दशम भाव से आगे चतुर्थ भाव तक चक्रपूर्वार्ध व चतुर्थ से दशम तक परार्ध या उत्तरार्ध कहलाता है। यदि कीट लग्न अर्थात् वृश्चिक लग्न में जन्म हो तथा पूर्वार्ध में समी पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, क्षीण चन्द्रादि) तथा पश्चिमार्ध में सब शुभ ग्रह हों तो परम अरिष्ट अर्थात् बालक की मृत्यु का योग है। बादरायण ने 'कीट' शब्द से वृश्चिक व कर्क दोनों लग्नों को माना है–

"पूर्वापरभागगतैरशुभैरलिकर्कटे लग्ने।
जातस्य शिशोर्मरणं सद्यः कथयति यवनेन्द्रः।।" (बादरायण)

मूल रुप से यह योग यवनेश्वर ने कहा है। सारावली में इसका उल्लेख वज्रमुष्टि नाम से किया गया है तथा केवल वृश्चिक लग्न में ही लागू माना है। वृश्चिक व कर्क दोनों को अधिकांश आचार्यो ने स्वीकार किया है।

(ii) यदि 6.12 में या 2.8 भावों में एक साथ पापग्रह हों तथा लग्न के दोनों ओर पापग्रह हों तो निश्चय से मृत्यु होती है।

यहाँ कुछ आचार्य 6.8 या 2.12 में एक साथ पाप ग्रह होने पर उक्त योग मानते हैं। लेकिन गार्गि ने सारे विकल्पों को स्वीकार कर लिया है। अतः 1.7 भाव की पापमध्यता हो या 6.12 या 2.8 में कई पापग्रह हों या सारे पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) हों तो यह योग होगा। इन योगों

का विशेष विवेचन बृहज्जातक के अभिनवभाष्य के अरिष्टाध्याय में किया जा चुका है।

इस योग में शुभ दृष्टि या योग रहने पर मृत्यु नहीं होती। यदि चन्द्रमा भी 1.7 में हो तथा पापमध्यगत हो तो योग अति तीव्र हो जाएगा, यह सारावलीकार ने माना है।

(iii) यदि लग्न सप्तम दोनों भावों में एक–एक पापग्रह हो, चन्द्रमा भी क्रूर ग्रह से युक्त हो और सौम्य ग्रह चन्द्रमा को न देखते हों तो शीघ्र मृत्यु योग बनता है। विशेषार्थ के लिए बृहज्जातक अभिनवभाष्य 6.4 श्लोक देखें।

चन्द्र से अरिष्ट :–

क्षीणे शशिनि लग्नस्थे पापैः केन्द्राष्टसंस्थितैः।

यो जातो मृत्युमाप्नोति स विप्रेश न संशयः।। 17।।

पापयोर्मध्यगश्चन्द्रोलग्नाष्टान्तिमसप्तमः।

अचिरान्मृत्युमाप्नोति यो जातः स शिशुस्तदा।। 18।।

पापद्वयमध्यगते चन्द्रे लग्नसमाश्रिते।

सप्ताष्टमेन पापेन मात्रा सह मृतः शिशुः।। 19।।

(i) लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा तीनों निसर्ग पाप ग्रह किसी भी तरह से केन्द्र व अष्टम में हों तो विप्रवर ! निःसन्देह बालक की जन्मते ही मृत्यु होती है, यह अतिरिक्त अर्थ है।

सारावली में सभी पाप ग्रहों की स्थिति केन्द्र में या अष्टम में रहने पर भी उक्त योग माना है तथा इसे यवनाधिपति प्रोक्त योग कहा है। कई स्थानों पर थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ इसे कहा गया है। चन्द्रमा की क्षीणता, 1.8.12 में पाप ग्रह रहना, केन्द्र में पाप योग व शुभ ग्रहों का न होना ये अरिष्ट के मौलिक कारण हैं। इस योग में शुभ ग्रह दृग्योग न रहने पर ही सत्याचार्य ने मृत्यु कही है।

(ii) चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच में हो तथा 1.8.7.12 में कहीं स्थित हो तो अविलम्ब ही बालक मृत्यु को प्राप्त होता है।

वराह के मत से चन्द्रमा लग्न में हो तथा लग्न के दोनों ओर पाप ग्रह हों एवं 7.8 में एक साथ पाप ग्रह हों तो माता व पुत्र की मृत्यु होती है। इस योग में भी बली शुभ ग्रह की दृष्टि या योग न रहने पर ही उक्त फल कहना चाहिए (देखें बृह० अरिष्ट 8)।

क्रूर ग्रहों से अरिष्ट विचार

शनैश्चरार्कभौमेषु रिःफधर्माष्टमेषु च ।
शुभैरवीक्ष्यमाणेषु यो जातो निधनं गतः ।। 20 ।।
यद्द्रेष्काणे च यामित्रे यस्य स्याद् दारुणो ग्रहः ।
क्षीणचन्द्रो विलग्नस्थः सद्यो हरति जीवितम् ।। 21 ।।
आपोक्लिमस्थिताः सर्वे ग्रहा बलविवर्जिताः ।
षण्मासं वा द्विमासं वा तस्यायुः समुदाहृतम् ।। 22 ।।

(i) शनि, मंगल व सूर्य ये तीनों शुभ ग्रहों से अदृष्ट होकर 8.9.12 भावों में कहीं हों तो बालक की मृत्यु हो जाती है ।

इन तीनों ग्रहों की तीनों भावों में स्थिति रहना आवश्यक है । वराहमिहिर ने इस योग की पूर्णता हेतु लग्न में चन्द्रमा भी कहा है । इन सब ग्रहों की किस क्रम से स्थिति हो ? यह स्पष्ट किया जाता है । लग्न में चन्द्रमा, शनि बारहवें भाव में, सूर्य नवम में, मंगल अष्टम में होना आवश्यक है । दूसरी शर्त यह है कि इन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तभी यह योग मृत्युप्रद होगा । शुभ ग्रहों में से केवल गुरु की दृष्टि सम्भव है । वराहमिहिर व सारावलीकार दोनों इस बात से सहमत हैं । गुरु यदि बलवान होगा तो मृत्यु नहीं देगा । कम बली होगा तो थोड़ा विलम्ब से तथा नीचादिगत निर्बल होगा तो अकिंचित्कर अर्थात् योग का बाधक नहीं हो सकेगा । विशेषतया पंचमस्थ गुरु सर्वत्र दृष्टि रख सकेगा ।

(ii) लग्न कुण्डली व द्रेष्काण कुण्डली में एक साथ सप्तम स्थान में पाप ग्रह हों एवं लग्न में क्षीण चन्द्रमा रहे तो तुरन्त मृत्युप्रद है । यह प्रचलित किन्तु भ्रष्ट अर्थ है ।

लग्न में क्षीण चन्द्रमा अशुभ है, पापयुक्त होने पर अधिक अशुभ है । पापदृग्योग वाला क्षीण चन्द्रमा अकेला ही प्राणहरण में समर्थ है । सामान्यतः लग्न भाव में चन्द्रमा (कर्क वृष को छोड़कर) प्रायः अशुभ ही होता है ।

इस श्लोक का वैकल्पिक अर्थ भी है । सारावली में 'द्रेष्काण–जामित्रगतो' कहकर शेष श्लोक यथावत् मिलता है । द्रेष्काण से जामित्र में पापग्रह होने का तात्पर्य इस तरह हो सकता है । द्रेष्काणात् जामित्रगतः अर्थात् लग्नगत द्रेष्काण राशि से सातवीं राशि में पाप ग्रह हो । वास्तविकता यह है कि लग्नगत द्रेष्काण में अर्थात् उदय द्रेष्काण में क्षीण चन्द्रमा, व सप्तम भावगत द्रेष्काण में पाप ग्रह रहने पर यह योग बनेगा । लग्न में प्रथम द्रेष्काण होगा तो सप्तम में भी सप्तम राशि का प्रथम द्रेष्काण ही रहेगा । यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण होगा तो प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का रहने से एक साथ

जन्म लग्न व द्रेष्काण से सप्तम में पापग्रह रहेगा, यह तीव्रतम स्थिति है। लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो केवल लग्न द्रेष्काण राशि से सप्तम राशि में ही यह स्थिति होगी।

(iii) यदि जन्म समय में सभी ग्रह निर्बल होकर 3.6.9.12 अर्थात् आपोक्लिम भावों या राशियों में हो तो वह बालक दो मास या छह मास ही जीवित रहता है।

मातृकष्टविचार :–

त्रिभिः पापग्रहैः सूतौ चन्द्रमा यदि दृश्यते।
मातृनाशो भवेत्तस्य शुभैर्दृष्टे शुभं वदेत्।। 23।।
धने राहुर्बुधः शुक्रः सौरिः सूर्यो यदा स्थितः।
तस्य मातुर्भवेन्मृत्युर्मृते पितरि जायते।। 24।।
पापात्सप्तमरन्ध्रस्थे चन्द्रे पापसमन्विते।
वलिभिर्पापकैर्दृष्टे जातो भवति मातृहा।। 25।।
उच्चस्थोवाऽथनीचस्थः सप्तमस्थो यदा रविः।
पानहीनो भवेद् वालः अजाक्षीरेण जीवति।। 26।।

(i) यदि तीन पाप ग्रहों (सूर्य, मंगल, शनि) द्वारा चन्द्रमा देखा जाता हो तथा उस चन्द्रमा पर शुभ दृष्टि न हो तो तो बालक की माता का परम अनिष्ट होता है। अर्थात् शुभदृष्ट रहने पर परम हानि नहीं होती।

(ii) यदि द्वितीय स्थान में राहु, बुध, शुक्र, शनि व सूर्य हो तो पिता की मृत्यु जन्म से पूर्व ही हो चुकी होती है तथा माता की मृत्यु जन्म के बाद होती है।

(iii) यदि चन्द्रमा पाप ग्रह से युक्त होकर बलवान् पाप ग्रहों से देखा जाए, तो यह एक योग है। चन्द्रमा पाप युक्त हो तथा चन्द्र से 6.7 भावों में एक साथ पाप ग्रह हों, यह दूसरा योग है। इनमें बालक की माता की मृत्यु होती है।

(iv) जन्म समय में लग्न से सप्तम भाव में उच्चस्थ या नीचस्थ सूर्य हो तो बालक को दूध नहीं मिलता, वह बकरी के दूध से पलता है।

'बकरी का दूध' यहाँ माँ के अतिरिक्त किसी अन्य स्रोत से प्राप्त दूध का उपलक्षण है, जिसमें डिब्बाबन्द दूध पाउडर, आया का दूध, अन्य स्त्री, आदि भी शामिल है। जन्म समय में सूर्य से पिता का व चन्द्रमा से माता का विचार होता है। चन्द्रमा पर अति पाप प्रभाव माता के लिए कष्टकारक ही है।

चन्द्राच्चतुर्थगः पापो रिपुक्षेत्रे यदा भवेत् ।

तदा मातृवधं कुर्यात् केन्द्रे यदि शुभो न चेत् ।। 27 ।।

द्वादशे रिपुभावे च यदा पापग्रहो भवेत् ।

तदा मातुर्भयं विद्याच्चतुर्थे दशमे पितुः ।। 28 ।।

लग्ने क्रूरो व्यये क्रूरो धने सौम्यस्तथैव च ।

सप्तमे भवने क्रूरः परिवारक्षयङ्करः ।।29 ।।

चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में शत्रुक्षेत्री होकर कोई पापग्रह स्थित हो तथा केन्द्र में कोई भी शुभग्रह न हो तो माता की मृत्यु हो जाती है ।

यदि 6.12 में एक साथ पाप ग्रह स्थित हों तो माता के लिए एवं 4.10 में पाप ग्रह स्थित हों तो पिता के लिए कष्टकारक योग होता है ।

लग्न, द्वादश, सप्तम में तीनों स्थानों पर पापयोग हो तथा धन भाव में शुभ ग्रह हो तो समस्त परिवार के लिए कष्टकारक योग होता है ।

लग्नस्थे च गुरौ सौरौ धने राहौ तृतीयगे ।

इति चेज्जन्मकाले स्यान्माता तस्य न जीवति ।। 30 ।।

क्षीणचन्द्रात् त्रिकोणस्थैः पापैः सौम्यविवर्जितैः ।

माता परित्यजेद्बालं षण्मासाच्च न संशयः ।। 31 ।।

एकांशकस्थौ मन्दारौ यत्रकुत्रस्थितौ यदा ।

शशिकेन्द्रगतौ तौ वा द्विमातृभ्यां न जीवति ।। 32 ।।

लग्न में बृहस्पति, द्वितीय में शनि व तृतीय में राहु हो तो बालक की माता जीवित नहीं रह पाती है ।

क्षीण चन्द्रमा से 5.9 भावों में सभी पाप ग्रह हों तथा कोई भी शुभ ग्रह वहाँ न हो तो बालक को उसकी माता त्याग देती है । उक्त फल छह मासों के भीतर निःसन्देह होता है ।

यदि किसी भी भाव में शनि व मंगल एक नवांश में हों अथवा चन्द्रमा से 1.4.7.10 में शनि मंगल हों तो दो माताओं से पालित होकर भी जीवित नहीं रहता ।

सारावली में तृतीय योग के सन्दर्भ में कहा गया है कि 1.7 में शनि व मंगल हो तो निश्चय ही माता त्याग देती है । अंश शब्द का अर्थ यहाँ नवांश ही अधिक उपयुक्त है । एक भी' अंश (युति) में रहने पर तो उत्कट फल होगा ही, लेकिन एक नवांशगत रहने पर भी अशुभ फल होता है ।

पितृकष्ट विचार :–

लग्ने मन्दो मदे भौमः षष्ठस्थाने च चन्द्रमाः ।
इति चेज्जन्मकाले स्यात् पिता तस्य न जीवति ।। 33 ।।
लग्ने जीवो धने मन्दरविभौमबुधास्तथा ।
विवाहसमये तस्य बालस्य म्रियते पिता ।। 34 ।।
सूर्यः पापेन संयुक्तो ह्यथवा पापमध्यगः ।
सूर्यात् सप्तमगः पापस्तदा पितृवधो भवेत् ।। 35 ।।

लग्न में शनि, सप्तम में मंगल, षष्ठ में चन्द्रमा हो तो बालक का पिता जीवित नहीं रहता है ।

लग्न में गुरु व द्वितीय में शनि, सूर्य, मंगल, बुध हो तो बालक के विवाह के समय पिता की मृत्यु हो जाती है ।

यदि जन्म समय में सूर्य पाप ग्रह से युक्त हो अथवा दो पापग्रहों के मध्य में हो तथा सूर्य से सप्तम में भी पाप ग्रह हो तो पिता की मृत्यु या वध हो जाता है ।

सप्तमे भवने सूर्यः कर्मस्थो भूमिनन्दनः ।
राहुर्व्यये च यस्यैव पिता कष्टेन जीवति ।। 36 ।।
दशमस्थो यदा भौमः शत्रुक्षेत्रसमाश्रितः ।
म्रियते तस्य जातस्य पिता शीघ्रं न संशयः ।। 37 ।।
रिपुस्थाने यदा चन्द्रो लग्नस्थाने शनैश्चरः ।
कुजश्च सप्तमस्थाने पिता तस्य न जीवति ।। 38 ।।

सातवें भाव में सूर्य, दशम में मंगल व द्वादश में राहु हो तो पिता बड़े कष्ट पाता है ।

दशम में मंगल यदि शत्रु की राशि में स्थित हो तो जातक के पिता की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है ।

यदि षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, लग्न में शनि, संप्तम में मंगल हो तो जातक का पिता जीवित नहीं रहता ।

इन योगों में सामान्यतः माता व पिता का सुख बहुत कम होता है । 1.7 में शनि रहने से सारावली में मातृत्याग योग कहा है । पीछे श्लोक 32 में केन्द्रों में शनि मंगल का दृष्टि सम्बन्ध मातृनाशक कहा है तथा यहाँ पितृनाशक कहा है । वास्तव में इन योगों में से थोड़ी बात किसी योग की व थोड़ी बात दूसरे योग की रहने पर भी अर्थात् इन योगों के परस्पर

आंशिक सम्मिश्रण में भी हमने अनिष्ट होते देखा है। अतः पाठकों को स्वबुद्धि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

भौमांशकस्थिते भानौ शनिना च निरीक्षिते।
प्राग्जन्मतो निवृत्तिः स्मान्मृत्युर्वाऽपि शिशोः पितुः।। 39।।
चतुर्थदशमे पापौ द्वादशे च यदा स्थितौ।
पितरं मातरं हत्वा देशाद्देशान्तरं व्रजेत्।। 40।।
राहु जीवौ रिपुक्षेत्रे लग्ने वाऽथ चतुर्थके।
त्रयोविंशतिमे वर्षे पुत्रस्तातं न पश्यति।। 41।।

(i) यदि सूर्य नवांश में मेष या वृश्चिक हो तथा शनि सूर्य को देखे तो बालक के जन्म से पूर्व ही पिता घर छोड़ देता है या संसार ही छोड़ देता है।

हमारे क्रमिक उदाहरण में सूर्य सप्तम भाव में मेष नवांश में है तथा शनि की तृतीय पूर्ण दृष्टि भी है, किन्तु पिता के विषय में उक्त योग घटित नहीं हुआ। यह योग होरासार में थोड़े भेद से कहा है–सिंह नवांश में मंगल 4.9 में गुरु शुक्र से अदृष्ट हो तो पिता को पुत्र नहीं देखता (अ० 5 श्लोक 7)।

(ii) लग्न से 4.10 भावों में या 4.12 में एक साथ दो पाप ग्रह बैठे हों तो माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् जातक घर से बाहर चला जाता है।

(iii) राहु व बृहस्पति 1.4.6 में हों तो जातक की 23 वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु या पिता से अलगाव हो जाता है।

मातृपितृ कष्ट विचार का आधार :–

मातुः पिता च जन्तूनां चन्द्रो माता तथैव च।
पापदृष्टियुतो मातुः पापमध्यगतोऽपि वा।। 42।।
पित्ररिष्टं विजानीयाच्छिशोर्जातस्य निश्चितम्।
भानोः षष्ठाष्टमर्क्षस्थैः पापैः सौम्य विवर्जितैः।।
चतुरस्रगतैर्वापि पित्ररिष्टं विनिर्दिशेत्।। 43।।
एवं चन्द्रात् स्थितैः पापैर्मातुः कष्टं विचारयेत्।
बलाबलविवेकेन कष्टं वा मृत्युमादिशेत्।। 44।।

सूर्य जातक का पितृकारक व चन्द्रमा मातृकारक होता है। अतः सूर्य के साथ पापदृष्टि, पापयोग, पापमध्यगतत्व रहने पर पिता को कष्ट होता है।

इसी पद्धति से चन्द्रमा से 1.6.8 में पापग्रह रहने से, चन्द्रमा पर अधिक पापदृष्टि, पापयोग या पापमध्यत्व रहने से माता को कष्ट व बलाबल के विचार से मृत्यु भी समझनी चाहिए। श्लोक 42-44 भी पृथुयशा के होरासार अध्याय 5 में मामूली भेद से मिलते हैं। पृथुयशा वराहमिहिर के पुत्र थे। इन्होंने कहा है कि मैं होराशास्त्र का सार कहता हूँ। यह होरा पाराशरहोरा थी या वराहहोरा? विचार करने से प्रतीत होता है कि पृथुयशा ने पाराशरहोरा (शास्त्र) का ही सारांश अपने होरासार में प्रस्तुत किया है। पाराशरहोरा व होरासार में बहुत से श्लोक मिलते या बिल्कुल समान हैं।

इतिबृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामरिष्टाध्यायो दशमः ।। **10** ।।

11

।। अथ अरिष्टभंगाध्यायः ।।

शुभग्रहः अरिष्टनाशक –

एकोऽपि ज्ञार्यशुक्राणां लग्नात् केन्द्रगतो यदि ।
अरिष्टं निखिलं हन्ति तिमिरं भास्करो यथा ।।1।।
एक एव बली जीवो लग्नस्थोऽरिष्टसंचयम् ।
हन्ति पापक्षयं भक्त्या प्रणाम इव शूलिनः ।।2।।

लग्न से केन्द्र 1.4.7.10 में यदि बुध, गुरु, शुक्र में कोई एक भी बलवान् हो तो सारे अरिष्टों को उसी तरह दूर कर देता है, जैसे अन्धकार को सूर्य।

अकेला बृहस्पति ही यदि बली होकर लग्न में स्थित हो तो सारे अरिष्टों को दूर करता है, जैसे भक्तिपूर्वक शंकर को प्रणाम करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

श्लोक 21 का ही आशय सारावली 12.1 में भी यथावत् प्रकट किया गया है।

एक एव विलग्नेशः केन्द्रसंस्थो बलान्वितः।
अरिष्टं निखिलं हन्ति पिनाकी त्रिपुरं यथा।। 3।।
शुक्लपक्षे क्षपाजन्म लग्ने सौम्य निरीक्षिते।
विपरीतं कृष्णपक्षे तथारिष्टविनाशनम्।। 4।।

यदि केवल लग्नेश ही बनवाल् होकर केन्द्र में हो तो सारे अरिष्ट को नष्ट कर देता है। जैसे शिवजी त्रिपुरासुर को नष्ट कर देते हैं।

शुक्लपक्ष में रात्रि में जन्म हो तथा लग्न कोई शुभ ग्रह देखता हो एवं कृष्ण पक्ष में दिन में जनम हो तथा लग्न शुभदृष्ट हो तो समस्त अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं।

तुला लग्न में दीर्घायु :—

व्ययस्थाने या सूर्यः तुला लग्ने तु जायते।
जीवेत् स शतवर्षाणि दीर्घायुर्बालको भवेत्।। 5।।

यदि तुला लग्न में द्वादश स्थान में कन्याराशिगत सूर्य हो तो बालक सौ वर्ष तक जीवित रहता है अथवा दीर्घायु होता है।

गुरुभौमौ यदा युक्तौ गुरुदृष्टोऽथवा कुजः।
हत्वारिष्टमशेषं च जनन्याः शुभकृद् भवेत्।। 6।।
चतुर्थदशमे पापः सौम्यमध्ये यदा भवेत्।
पितुः सौख्यकरो योगः शुभे केन्द्रत्रिकोणगेः।। 7।।
सौम्यान्तर्गतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः।
सद्यो नाशयतेऽरिष्टं तद्भावोत्थफलं न तत्।। 8।।

यदि गुरु व मंगल साथ हों या मंफल पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो अरिष्टों का नाश एवं माता का शुभ होता है।

4.10 भाव में कोई पापग्रह हो तथा वह शुभ ग्रहोंके बीच में गया हो अथवा केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हों तो पिता के लिए शुभ है।

यदि सभी पाप ग्रह शुभ मध्य में हों तो शुभ ग्रह 1.4.5.7.9.10 में हों तो सद्यः अरिष्ट का नाश होता है तथा पापयुक्त भाव का भी अशुभ फल शान्त हो जाता है।

संक्षेप में लग्नेश या शुभग्रहों की केन्द्र त्रिकोण में स्थिति, पापग्रहों पर शुभ दृष्टि या शुभमध्यत्व या भावेशानुसार शुभाशुभ ग्रहों के बलाबल से, चन्द्र, सूर्य या लग्न के शुभ से अरिष्ट नष्ट होते हैं।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामरिष्टभंगाध्याय एकादशः।। 11।।

12

।। अथ भावविवेकाध्यायः।।

देहं रूपं च ज्ञानं च वर्ण चैव बलावलम्।
सुखं दुःखं स्वभावं च लग्नभावान्निरीक्षयेत्।। 1।।
धनं धान्यं कुटुम्बांश्च मृत्युजालममित्रकम्।
धातुरत्नादिकं सर्व धनस्थानान्निरीक्षयेत्।। 2।।
विक्रम भृत्यभ्रात्रादि चोपदेश प्रयाणकम्।
पित्रोर्वैमरणं विज्ञो दुश्चिक्याच्च निरीक्षयेत्।। 3।।
वाहनान्यथ बन्धूंश्च मातृसौख्यादिकान्यपि।
निधि क्षेत्रं गृहं चापि चतुर्थात् परिचिन्तयेत्।। 4।।

(i) शरीर, रुप, ज्ञान, रंग, बलावल, सुख, दुख स्वभावादि का लग्न भाव से विचार करना चाहिए।

धन, धान्य, कुटुम्ब, मृत्यु, शत्रु, धातु, अर्थात् संचित धन का द्वितीय भाव से। पराक्रम, नौकर, भाई, उपददेश, विददेश, यात्रा, माता–पिता की मृत्यु तीसरे भाव से तथा वाहन, बन्धु बान्धव, माता, सुख, गड़ा धन, खेत, घर, अचल सम्पत्ति आदि का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए।

यन्त्रमन्त्रौ तथा विद्यां बुद्धेश्चैव प्रबन्धकम् ।

पुत्रराज्यापभ्रंशादीन् पश्येत्पुत्रालयाद् बुधः ।। 5 ।।

मातुलातंकशंकानां शत्रूंश्चैव व्रणादिकान् ।

सपत्नीमातरं चापि षष्ठभावान्निरीक्षयेत् ।। 6 ।।

जायामध्वप्रयाणं च वाणिज्यं नष्टवीक्षणम् ।

मरणं च सर्वदेहस्य जाया भावान्निरीक्षयेत् ।। 7 ।।

आयूरणं रिपुं चापि दुर्गं मृतधनं तथा ।

गत्यनूकादिकं सर्वं पश्येद् रन्ध्राद् विचक्षणः ।। 8 ।।

यन्त्र, मन्त्र, विद्या, बुद्धि, प्रबन्ध शक्ति, पुत्र, राज्य की हानि, पदावनति आदि का विचार पंचम भाव से; मामा, आतंक, डर, आशंका, शत्रु, घाव चोट, सौत, सास का विचार षष्ठ भाव से; स्त्री, यात्रा, व्यापार, डूबा धन, नष्ट वस्तु, अपनी मृत्यु का विचार सप्तम भाव से; आयु, युद्ध, शत्रु किला, डूबा, धन, मृत्यु के बाद की गति आदि का विचार अष्टम भाव से करना चाहिए ।

भाग्यं श्यालं च धर्मं च भ्रातृपत्न्यादिकांस्तथा ।

तीर्थयात्रादिकं सर्वं धर्मस्थान्निरीक्षयेत् ।। 9 ।।

राज्यं चाकाशवृत्तिं च मानं चैव पितुस्तथा ।

प्रवासस्य ऋणस्यापि व्योमस्थान्निरीक्षयेत् ।।10 ।।

नाना वस्तुभवस्यापि पुत्रजायादिकस्य च ।

आयं वृद्धिं पशूनां च भवस्थान्निरीक्षयेत् ।। 11 ।।

व्ययं च वैरिवृत्तान्तरिः फमन्त्यादिकं व्ययात् ।

एवं भावफलं सम्यक् तत्तत्संज्ञानपूर्वकम् ।। 12 ।।

भाग्य, साला, धर्म, भ्रातृपत्नी, तीर्थयात्रा आदि नवम भाव से; राज्य अनिश्चित आमदनी, मान–सम्मान, पिता, प्रवास, कर्ज, आदि दशम भाव से; सभी वस्तुओं की प्राप्ति, भौतिक लाभ, जैसे स्त्री पुत्र धन आदि की प्राप्ति, आय, वृद्धि, सम्पत्ति आदि का विचार एकादश भाव से; खर्च, शत्रु, शत्रुओं का वृतान्त, आदि का विचार बारहवें भाव से ; इस प्रकार भावफल का विचार बुद्धिपूर्वक करना चाहिए ।

भावफल विचार के मौलिक नियम :–

यो यो शुभैर्युतो दृष्टो भावों वा पतिदृष्टयुक् ।

युवा प्रबुद्धो राज्यस्थः कुमारो वापि यत्पतिः ।। 13 ।।

तदीक्षणवशात् तत्तद् भवसौख्यं वदेद् बुधः ।
यद्यद्भावपतिर्नष्टस्त्रिकेशाद्यैश्च संयुतः ।। 14 ।।
भावं न वीक्षते सम्यक् सुप्तो वृद्धो मृतोऽथवा ।
पीडितो वास्य भावस्य फलं नष्टं वदेद्ध्रुवम् ।। 15 ।।

(i) जिस भाव में उस भाव का स्वामी या शुभ ग्रह बैठा हो अथवा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो अथवा जिस भाव का स्वामी 'युवावस्था' में हो या 'कुमारावस्था' में हो या 'प्रबुद्धावस्था' में हो अथवा लग्न से (अथवा विचारणीय भाव से) दशम स्थान में हो । ऐसी अवस्था वाला भावेश यदि भाव को देखे या योग करे तो उस भाव से सम्बन्धित सारे शुभ फल होते हैं ।

(ii) जिस भाव का स्वामी 'नष्टावस्थाफत' हो, 6.8.12 भावेशों से यशुक्त हो या इन्हीं भावों में गया हो, अपने भाव को अधिक दृष्टि से न देखता हो ।

(iii) अथवा 'सुप्तावस्था' 'वृद्धावस्था' या 'मृतावस्था' मे हो या 'पीडितावस्था' में हो तो उस भाव से सम्बन्धित सारे शुभ फल नष्ट हो जाते हैं ।

ये भाव विचार के मौलिक नियम बताए गए हैं । जो भावेश अवस्थानुसार शुभ हो व शुभ तािा अशुभावस्था में हो तो अशुभ फल होता है । यहाँ भावेश योग, भाव पर दृष्टि, शुभ योग, शुभ दृष्टि के अतिरिक्त भावेशों की अवस्थाओ से भी विशेष निर्णय करना चाहिए । अवस्था के विषय में आगे अवस्थाध्याय में विस्तार से बताया जाएगा । संक्षेप में विषम राशि में 6-6 अंशों में क्रमशः बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, व मृत अवस्था तथा सम राशियों में विपरीत क्रम से अर्थात् मृत, वृद्ध व कुमार, बाल ये 6-6 अंशों की अवस्थाएँ हैं । युवावस्था में पूर्ण, कुमारावस्था में आधा तथा **वृद्धावस्था** में मामूली एवं मृत में शून्य फल होता है । **पीड़ित** अर्थात् शत्रुराशिगत, पापयुक्त अस्त अथवा नीचगत ग्रह होता है । **प्रबुद्ध** अर्थात् जाग्रत अवस्था अर्थात् स्वोच्चस्थ या स्वगृही एवं **नष्टावस्था** अर्थात् **मृतावस्था** होती है ।

ग्रहों का कारकत्व :–

शुक्रः शुक्रं च नेत्रं च चन्द्रमाः मनसस्तथा ।
आत्मा वै दिनकृत्तत्र जीवो जीवितसौख्यदः ।। 16 ।।

क्रोधः पराक्रमः भौमो बुधो बालत्वधीमतः ।

शनिर्दुःखप्रदो ज्ञेयः प्रपदः पार्श्वकस्तथा ।। 17 ।।

राहुरैश्वर्यकं विद्धि योगेक्षणवशान्मुने ।

संक्षेपेणैतदुदितमन्यद् बुद्ध्यनुसारतः ।। 18 ।।

शुक्र ग्रह वीर्य का, चन्द्रमा मन का, सूर्य आत्मा का, गुरु जीवनी शक्ति का, मंगल क्रोध व पराक्रम का, बुध चंचलता व बल बुद्धि का, शनि दुःखदायक नौकर व पड़ौसियों का कारक है। राहु ऐश्वर्यदायक है। भाव व ग्रहों के बलाबल, योग व दृष्टि आदि से उक्त विषयों का निर्णय करना चाहिए। यह संक्षेप से ग्रहों का कारकत्व कहा है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां भावविवेकाध्यायो द्वादशः ।। 12 ।।

13

।। अथ लग्नभावाध्यायः ।।

देहसुख विचार –

तनुपः पापसंयुक्तस्त्रिकगो देहसौख्यहृत् ।

केन्द्रकोणगतश्चासौ सदा देहसुखं दिशेत् ।। 1 ।।

लग्नपोऽस्तंगतो नीचे शत्रुभे रोगकृद् भवेत् ।

शुभाः केन्द्रत्रिकोणस्थाः देहं सौख्यप्रदाः स्मृताः ।। 2 ।।

यदि लग्नेश पाप युक्त हो, 6.8.12 भावों में गया हो तो शरीर का सुख कम करता है। वही लग्नेश यदि केन्द्र त्रिकोण में हो तो शरीर सुख देता है।

लग्नेश अस्तंगत, नीचगत, शत्रुक्षेत्री हो तो रोगकारक कहाता है यदि शुभ ग्रह केन्द्रकोण में हो तो लग्नेश का उक्त योग रहने पर भी शरीर-सुख रहता है।

लग्नेचन्द्रेऽथवाक्रूरग्रहैर्युक्तेऽथवेक्षिते ।

सौम्यदृष्टिविहीने तु जन्तोर्देहसुखं न हि ।। 3 ।।

लग्ने सशुभे सुभगः पापे रूपविवर्जितः ।

सौम्यखेटैर्युते दृष्टे देहसौख्यं भवेद्ध्रुवम् ।। ४ ।।

लग्न या चन्द्रमा पर क्रूर ग्रह की दृष्टि या योग हो तथा शुभ ग्रह उसे न देखे तो शरीर-सुख की अल्पता रहती है।

लग्न में शुभ ग्रह हो तो मनुष्य सुन्दर व आकर्षक तथा पाप ग्रह हो तो रूपहीन या अनाकर्षक होता है। लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि या योग हो तो अवश्य ही शरीर सौख्य होता है।

लग्नेशो ज्ञोगुरुर्वापि शुक्रो वा केन्द्रकोणगः ।

दीर्घायुर्धनवान् जातो बुद्धिमान् राजवल्लभः ।। 5 ।।

लग्नेशे चरराशिस्थे शुभग्रहनिरीक्षिते ।

कीर्तिश्रीमान् महाभोगी देहसौख्यसमन्वितः ।। 6 ।।

बुधौजीवोऽथवा शुक्रो लग्ने चन्द्र समन्वितः ।

लग्नात्केन्द्रगतश्चापि राजलक्षणसंयुतः ।।7 ।।

लग्नेश, बुध, गुरु, शुक्र इनमें से कोई भी केन्द्र या त्रिकोण में हो तो जातक दीर्घायु, धनवान, बुद्धिमान् व राजप्रिय होता है।

लग्नेश यदि चरराशि में हो तथा शुभ ग्रह लग्नेश को देखता हो तो जातक यशस्वी, श्रीमान्, भोगवान् व शरीर–सुख पाने वाला होता है।

यदि लग्न में चन्द्रमा के साथ बुध या गुरु या शुक्र हो या लग्न से केन्द्र में इसी तरह से चन्द्र बुध, चन्द्र शुक्र या चन्द्र गुरु योग हो तो जातक राजसी चिन्हों से युक्त होता है।

ससौरे सकुजे वापि लग्ने मेषे वृषे हरौ ।

राश्यंश सदृशे गात्रे स जातो नालवेष्टितः ।। 8 ।।

चतुष्पदगते भानौ परे वीर्यसमन्विताः ।

द्विस्वभावगता जातौ यमलावितिनिर्दिशेत् ।। 9 ।।

लग्ने राहुसमायुक्ते तथा सोमनिरीक्षते ।

लग्नांशे मन्दसूरी चेज्जातश्च यमलो भवेत् ।। 10 ।।

मेष, वृष, सिंह लग्न में शनि या मंगल हो तो लग्नगत नवांश की राशि से संकेतित अंग में बालक नालवेष्टित होता है।

सूर्य यदि चतुष्पद राशि (मेष, वृष, सिंह, धनु, मकर का पूर्वार्ध) में हो तथा शेष ग्रह बली होकर द्विस्वभाव राशि में हों तो यमल (जुड़वाँ) जन्म होता है।

यदि लग्न में राहु हो तथा उसे चन्द्रमा देखे, साथ में लग्न नवांश में शनि गुरु दोनों हों तब भी जुड़वाँ जन्म होता है।

रवीन्दू चैक भावस्थावेकांशक समन्वितौ।

त्रिमात्रा च त्रिभिर्मासैः पित्राभ्रात्रा च पोषितः।। 11।।

एवं चन्द्राच्च विज्ञेयं फलं जातककोविदैः।

अथ जातस्य गात्रेषु व्रणलक्ष्मादिकं शृणु।। 12।।

(i) सूर्य व चन्द्रमा यदि एक ही भाव में तथा एक ही नवांश में हों तो जातक तीन माताओं का दूध पीता है तथा तीन मास बाद पिता व भाई द्वारा पाला जाता है।

उक्त स्थिति अमावस्या को जन्म होने पर प्रतिमास सम्भव होगी। अमाजन्म का मुख्य फल स्व हानि व परिवार हानि ही है। अतः इस योग में जन्म होने पर बालक के शरीर को व माता (चन्द्रकारक होने से) को विशेष कष्ट योग बनते हैं ऐसा समझें। शब्दार्थ को यथावत् लेना अव्यावहारिक ही है।

(ii) जिस प्रकार लग्न से विचार किया है, तदनुसार ही चन्द्रमा से भी विचार करना चाहिए।

साथ ही जिस भाव का विचार करना हो, उसकी विचार पद्धति का सूत्रपात भी यहाँ है। जिस भाव से केन्द्र त्रिकोण में शुक्र ग्रह हो, जिस भाव में भावेश या शुभ ग्रहों का दृग्योग हो, जिस भाव का स्वामी 6.8.12 में न गया हो, जिस भाव का स्वामी पूर्वोक्त प्रकार से अवस्थाबली हो, शत्रुक्षेत्री, नीचगत या अस्त न हो, उस भाव से सम्बन्धित फलों की वृद्धि होगी।

इसके बाद जातक के शरीर में तिल, चिन्ह, मस्सा आदि का विचार बताया जा रहा है।

शरीर चिन्ह विचार :–

शिरो नेत्रे तथा कर्णौ नासिके च कपोलकौ।

हनूर्मुखं च लग्नाद्या तनावाद्यदृकाणके।। 13।।

मध्यद्रेष्काणगे लग्ने कण्ठोऽंसौ च भुजौ तथा।

पार्श्वे च हृदये क्रोडे नाभिश्चेति यथाक्रमम्।।14।।

बस्तिर्लिंगगुदेमुष्कौ ऊरू जानू च जंघके।

पादश्चेत्युदितैवाममंगे ज्ञेयं तृतीयके।। 15।।

यस्मिन्नंगे स्थितः पापो व्रणं तत्र समादिशेत् ।

नियतं सबुधैः क्रूरैः सोम्यैर्लक्ष्म वदेद् बुधः ।। 16 ।।

(i) लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न सिर, 1.12 भाव नेत्र, 3.11 कान, 4.10 नाक, 5.9 गाल, 6.8 ठुड्डी, 7 मुख समझकर क्रमशः गणना करें ।

(ii) लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, 2.12 कन्धे, 3.11 भुजा, 4.10 पार्श्व (बगल), 5.9 हृदय, 6.8 पेट व सप्तमभाव नाभि है ।

(iii) लग्न तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न बस्ति, 2.12 लिंग व गुदा, 3.11 अण्डकोष, 4.10 जाँधें, 5.9 घुटने, 6.8 पिण्डली व सप्तम भाव पैर है । दृश्य चक्रार्ध या उदित 6 राशि के भावों में वामांग व अनुदित या अदृश्य चक्र में दायाँ अंग समझना चाहिए ।

(iv) जिस भाव के जिस द्रेष्काण में पापग्रह हो वहां घाव तथा जिस भाव में बुधयुक्त कई पापग्रह हो वहाँ तिलादि समझना चाहिए ।

लग्न में जो उदित द्रेष्काण है तदनुसार प्रथम, मध्यम व तृतीय क्रम से अंग न्यास शुरू कर द्रेष्काण भेद से तीन विभागों के तीन तीन अंग एकभाव में आ जाएँगे । उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित है तथा कर्क लग्न है अतः लग्न के प्रथम द्रेष्काण में सिर, द्वितीय द्रेष्काण में गला व तृतीय द्रेष्काण में वस्ति स्थित है । इत्यादि । इसकी विशेष व्याख्या 'बृहज्जातक अभिनव भाष्य' अध्याय 5 श्लोक 24 में लिख चुके हैं ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
लग्नभावफलाध्यायस्त्रयोदशः ।। 13 ।।

14

अथ धनभावफलाध्यायः

धनलाभ योग :–

धनेशो धनभावस्थः केन्द्रकोणगतोऽपि वा ।

धनवृद्धिकरो ज्ञेयस्त्रिकस्थो धनहानिकृत् ।। 1 ।।

धनदश्च धने सौम्यः पापो धनविनाशकृत् ।

सौम्यग्रहयुते दृष्टे धनलाभं विनिर्दिशेत् ।। 2 ।।

धनेश यदि द्वितीय भाव में हो, अथवा केन्द्र त्रिकोण में हो तो धनवृद्धिकारक होता है। यदि धनेश 6.8.12 में स्थित हो तो धन–हानिप्रद होता है।

धन भाव में शुभ ग्रह धनप्रद तथा धन भाव में पाप ग्रह धननाशक होते हैं। यदि धनस्थ शुभ ग्रह या धनेश, शुभ युक्त या दृष्ट हो तो धन लाभ होता रहता है।

धनाधिपो गुरुर्यस्यधनभावगतो भवेत्।
भौमेन सहितो वापि धनवान् स नरो भवेत्।।3।।
धनेशे लाभभावस्थे लाभेशे वा धनं गते।
तावुभौ केन्द्रकोणस्थौ धनवान् मानवो भवेत्।।4।।

(i) यदि धनभावेश गुरु हो अर्थात् वृश्चिक या कुम्भ लग्न में हो तथा गुरु द्वितीय भाव में ही हो, साथ में मंगल भी हो तो मुनष्य धनवान् होता है।

(ii) धनेश यदि एकादश स्थान में हो या लाभेश धनस्थान में गया हो अथवा ये दोनों केन्द्र त्रिकोण में गए हों तो मनुष्य धनवान् होता है।

धनेशे केन्द्रराशिस्थे लाभेशे तत् त्रिकोणगे।
गुरुशुक्रयुते दृष्टे धनलाभं दिशेद् बुधः।।5।।

यदि धनेश, लग्न में हो तथा लाभेश, धनेश से 1.5.9 में हो, साथ में गुरु या शुक्र की दृष्टि हो तो धन लाभ होता रहता है।

धनहानि योग :–

धनेशे रिपुभावस्थे लाभेशे तद्गते यदि।
वित्तलाभौ पापयुक्तौ दृष्टौ निर्धन एव सः।।6।।
धनलाभाधिपावस्तौ पापग्रहसमन्वितौ।
जन्मप्रभृतिदारिद्र्यं भिक्षान्नं लभते नरः।।7।।
षष्ठाष्टमव्ययस्थौ चेद्धनलाभाधिपौ मुने!।
लाभे कुजे धने राहौ राजदण्डाद् धनक्षयः।।8।।

यदि धनेश षष्ठभाव में लाभेश के साथ स्थित हो और धन व लाभ भाव में पापग्रहों का योग या दृष्टि हो तो मनुष्य निर्धन होता है।

यदि धनेश व लाभेश 6.8.12 में स्थित हों तथा मंगल एकादश स्थान में व राहु द्वितीय स्थान में हो तो राजा के दण्ड के कारण धनहानि होती है।

धनव्यय का विचार :–

लाभे जीवे धने शुक्रे धनेशे शुभसंयुते ।

व्यये च शुभसंयुक्ते धर्मकार्ये धनव्ययः ।। 9 ।।

स्वभोच्चस्थे धनाधीशे गुरुदृष्टयुते जनः ।

परोपकारी ख्यातश्च विज्ञेयो जनपोषकः ।। 10 ।।

स्थिते पारावतांशादौ धनेशे शुभ संयुते ।

तद्गृहे सर्वसम्पत्तिर्विनाऽयासेन जायते ।। 11 ।।

यदि एकादश स्थान में बृहस्पति, धनस्थान में शुक्र तथा धनेश किसी शुभग्रह के साथ हो एवं व्यय भाव में शुभ ग्रह हो तो मनुष्य का धन अच्छे धार्मिक कार्यो में व्यय होता है।

यदि धनेश अपने परमोच्च (या उच्च) में हो तथा उसे बृहस्पति देखता हो तो मनुष्य परोपकारी, विख्यात व बहुत लोगों का पोषक होता है।

यदि धनेश शुभ ग्रह से युक्त होकर पारावतांश आदि में हो अर्थात् दशवर्ग बली हो तो उसके घर में सब सम्पत्तियाँ स्वयं ही चलकर आ जाती हैं।

नेत्र विचार :–

नेत्रेशे बलसंयुक्ते शोभनाक्षो भवेन्नरः ।

षष्ठाष्टमव्ययस्थे च नेत्रवैकल्यवान् भवेत् ।। 12 ।।

धनेशे पापसंयुक्ते धने पापसमन्विते ।

पिशुनोऽसत्यवादी च वातव्याधिसमन्वितः ।। 13 ।।

यदि द्वितीयेश व द्वादशेश बलवान् होकर शुभ भाव में स्थित हो तो मनुष्य सुन्दर नेत्रों वाला होता है।

यदि धनेश पापयुक्त हो तथा धनभाव में भी पाप ग्रह हो तो मनुष्य चुगलखोर, झूठा व वातरोगी होता है।

धनेशे शुक्रसंयुक्ते धने लग्नेऽथवा रवौ ।

सशुक्रे जातमात्रस्य नेत्रविद्रूपता भवेत् ।।14 ।।

तत्रेन्दुरवी स्यातां निशान्धो धनलग्नपौ ।

सूर्ययुक्तौ धने नूनं जात्यन्धो मानवो भवेत् ।। 15 ।।

दोषकृन्न च सर्वत्र स्वोच्चस्वर्क्षादिगो ग्रहः ।

षडादित्रयनाथैश्च सम्बन्धी दोषकृच्छुभः ।। 16 ।।

यदि द्वितीयेश शुक्र के साथ हो अथवा 1.2 भाव में सूर्य शुक्र हो तो मनुष्य की आँखों में विकार होता है ।

यदि द्वितीय स्थान में सूर्यचन्द्रमा स्थित हो तो मनुष्य निशान्ध अर्थात् रात में अन्धापन अनुभव करता है । यदि धनेश लग्नेश सूर्य के साथ हो तो मनुष्य जन्म से अन्धा होता है ।

उक्त दोषकारक ग्रह यदि स्वक्षेत्री या स्वोच्च में हो तो विशेष हानि नहीं करता । इसके विपरीत शुभ ग्रह (उक्तयोग कारक ग्रहों में से कोई) 6.7.8 भावेशों के साथ सम्बन्ध करे तो भी दोषकारक हो जाता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
धनभावफलाध्यायश्चतुर्दशः ।। 14 ।।

15

।। अथ तृतीयभावफलाध्यायः ।।

भ्रातृसुख योग :–

सहजे सौम्ययुग्दृष्टे भावाधीशसमन्विते ।

सभौमे भ्रातृभावेशे केन्द्रकोणे सुखं भवेत् ।। 1 ।।

सभौमो भ्रातृभावेशो भ्रातृभावं प्रपश्यति ।

भ्रातृक्षेत्रगतो वापि भ्रातृसौख्यं विनिर्दिशेत् ।। 2 ।।

यदि तृतीय भाव शुभ ग्रह से युक्त दृष्ट हो अथवा तृतीयेश तृतीय में हो अथवा तृतीयेश व मंगल केन्द्र व त्रिकोण में गए हों तो मनुष्य को इस भाव का सुख अर्थात् पराक्रम परिश्रम की सफलता एवं भाइयों का सुख होता है ।

यदि मंगल व तृतीयेश, तृतीय स्थान को देखते हों अथवा तृतीयेश तृतीय में हो तो भी भ्रातृसौख्य होता है ।

भ्रातृसुख हानि योग :–

पापयोगेन तौ पापक्षेत्रयोगेन वा पुनः ।
उत्पाद्य सहजान् सद्यो निहन्तारौ न संशयः ।। 3 ।।
स्त्रीग्रहो भ्रातृभावेशः स्त्रीग्रहो भ्रातृभावगः ।
भगिनी स्यात्तथा भ्राता पुंगृहे पुंग्रहो यदि ।। 4 ।।
मिश्रे मिश्रफलं वाच्यं बलाबलविनिर्णयात् ।
मृतौ कुजतृतीयेशौ सहोदरविनाशकौ ।। 5 ।।

यदि तृतीयेश व मंगल दोनों ही पाप ग्रह की राशि में पाप ग्रह से युक्त हों तो जातक के बाद होने वाले सहोदरों को नष्ट कर देते हैं ।

यदि तृतीय भाव में स्त्रीग्रह (चन्द्र, बुध, शुक्र) की राशि हो एवं स्त्री ग्रह तृतीय में हों तो बहनें होती हैं । यदि तृतीय में पुरुष ग्रह व पुरुष राशि हो तो भाई होते हैं ।

यदि मिश्रित ग्रह व राशि तृतीय पर अपना प्रभाव रखें तो दोनों (भाई व बहन) का सुख होता है ।

सोदरनाथभौमौ च नाशस्थानगतौ यदि ।
पापेक्षितौ पापयुक्तौ भ्रातृनाशकरौ मुने ! ।। 6 ।।

यदि तृतीयेश व तृतीयकारक मंगल, अष्टम स्थान में पापग्रहों से युक्त व पाप दृष्ट होकर स्थित. हो तो भाइयों का सुख नहीं होता है ।

विविध भ्रातृसौख्ययोग :–

केन्द्रत्रिकोणगेवापिस्वोच्चमित्रस्ववर्गगे ।
कारके भावनाथे वा भ्रातृसौख्यं वदेद्बुधः ।। 7 ।।
भ्रातृभे बुधसंयुक्ते तदीशे चन्द्रसंयुते ।
कारके मन्द संयुक्ते भगिन्येकाग्रतो भवेत् ।। 8 ।।
पश्चात् सहोदरोऽप्येकस्तृतीयस्तु मृतो भवेत् ।

यदि तृतीयेश या मंगल में से कोई एक भी केन्द्र या त्रिकोण में हो, अथवा स्वोच्च, स्वमित्र या स्ववर्ग में गया हो तो भाइयों का सुख होता है ।

यदि तृतीय में बुध, तृतीयेश के साथ चन्द्र तथा मंगल के साथ शनि हो तो जातक की एक बड़ी बहन व एक छोटा भाई होता है तथा उसके बाद एक भाई पैदा होकर मर जाता है ।

कारके राहु संयुक्ते सहजेशे तु नीचगे ।। 9 ।।
पश्चात् सहोदराभावं पूर्व तु तत्त्रयं भवेत् ।
भ्रातृस्थानाधिपे केन्द्रे कारके तत् त्रिकोणगे ।। 10 ।।
जीवेनसहिते चोच्चे ज्ञेया द्वादश सोदराः ।
तत्र ज्येष्ठद्वयं तद्वज्जातकाच्च तृतीयकम् ।। 11 ।।
सप्तमं नवमं चैव द्वादशं च मृतं भवेत् ।
शेषाः सहोदराःषड् वै भवेयुर्दीर्घजीवनाः ।। 12 ।।

यदि भ्रातृकारक मंगल राहु के साथ हो अथवा तृतीयेश नीच में गया हो तो जातक सबसे छोटा भाई होता है तथा उसके तीन बड़े भाई होते हैं ।

यदि तृतीयेश केन्द्र में हो, कारक (मंगल) उससे त्रिकोण में हो, अथवा इन दोनों में से कोई अपने उच्च में बृहस्पति के साथ हो तो बारह भाई होते हैं । जातक के दो भाई बड़े, तीसरा स्वयं जातक होता है । क्रमशः 7.9.12 क्रम पर उत्पन्न भाई मर जाते हैं तथा शेष छोटे छह भाई दीर्घजीवी होते हैं ।

व्ययेशेन युतो भौमो गुरुणा सहितोऽपि वा ।
भ्रातृभावे स्थिते चन्द्रे सप्तसंख्यास्तु सोदराः ।। 13 ।।
भ्रातृस्थाने शशियुते केवलं पुंग्रहेक्षिते ।
सहजा भ्रातरो ज्ञेयाः शुक्रयुक्तेक्षितेऽन्यथा ।। 14 ।।
अग्रे जातं रविर्हन्ति पृष्ठे जातं शनैश्चरः ।
अग्रजं पृष्ठजं हन्ति सहजस्थो धरासुतः ।। 15 ।।
एतेषां विप्र ! योगानां बलाबल विनिर्णयात् ।
भ्रातृणां भगिनीनां वा जातकस्य फलं वदेत् ।। 16 ।।

यदि द्वादशेश या बृहस्पति से युक्त मंगल हो तथा तृतीय स्थान में चन्द्रमा हो तो सात भाई होते हैं ।

यदि तृतीय स्थान में चन्द्रमा हो तथा केवल पुरुष ग्रहों से दृष्ट हो तो भाई होते हैं । यदि शुक्र से दृष्ट चन्द्रमा तृतीयस्थ हो तो भगिनियाँ होती हैं ।

तृतीयस्थ सूर्य से बड़े भाई को, शनि से छोटे भाई को तथा तृतीयस्थ (भावेश व उच्च राशि के बिना) मंगल हो तो अगले पिछले सहोदरों को नष्ट करता है ।

इन सब योगों में योगकारक ग्रहों के बलाबल का निर्णय करके भाई व बहनों का विचार करना चाहिए ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां तृतीयभावफलाध्यायः पंचदशः ।। 15 ।।

16

।। अथ सुखभावफलाध्यायः ।।

गृह सुख योग :–

सुखेशे सुखभावस्थे लग्नेशे तद्गतेऽपि वा ।
शुभदृष्टे च जातस्य पूर्णगृहसुखं वदेत् ।। 1 ।।
स्वगेहे स्वांशके स्वोच्चे सुखस्थानाधिपो यदि ।
भूमियान गृहादीनां सुखं वाद्यभवं तथा ।। 2 ।।
केन्द्रे कोणे चतुर्थेशे शुभदृग्योगसंयुते ।
समीचीनं गृहं जन्तोर्वैपरीत्येऽन्यथा फलम् ।। 3 ।।
भावेशात्क्षेत्रचिन्ता तु सुखचिन्ता बृहस्पतेः ।
दिव्य वाहन सौख्यानां चिन्ता शुक्रात् सदा मता ।। 4 ।।

यदि चतुर्थेश चतुर्थभाव में हो अथवा लग्नेश चतुर्थ में हो अथवा लग्नेश चतुर्थेश का स्थानपरिवर्तन हो एवं शुभ ग्रह की उन पर दृष्टि हो तो गृह, कोठी, आवास आदि का पूर्ण सुख होता है ।

यदि चतुर्थेश स्वगृही, स्वनवांश या स्वोच्च में हो तो भूमि, वाहन व घर का तथा संगीतादि साधनों का सुख मिलता है ।

यदि चतुर्थेश केन्द्र या त्रिकोण में हो एवं शुभ दृष्टि या योग युक्त हो तो मनुष्य को आरामदायक कार्यसाधक घर की प्राप्ति होती है । यदि चतुर्थेश विपरीत स्थिति में हो अर्थात् 6.8.12 आदि अनिष्ट भावों में गया हो तो घर नहीं होता है ।

घर, जमीन जायदाद की चिन्ता चतुर्थेश से, सुख की चिन्ता बृहस्पति से तथा उत्तम वाहन, सुख व आराम का विचार शुक्र से करना चाहिए।

कर्माधिपेन संयुक्ते केन्द्रे कोणे गृहाधिपे।
विचित्रसौधप्राकारैर्मण्डितं तद्गृहं भवेत्।।5।।
बन्धुस्थानेश्वरे सौम्ये शुभग्रहयुतेक्षिते।
शशिजे लग्नसंयुक्ते बन्धुपूज्यो भवेन्नरः।।6।।

यदि चतुर्थेश व दशमेश साथ–साथ किसी केन्द्र या त्रिकोण में हों तो जातक का सुन्दर, बड़ा, महलनुमा, सुन्दर परकोटे से युक्त, सुसज्जित घर होता है।

यदि चतुर्थेश शुभ ग्रह हो तथा किसी अन्य शुभ ग्रह से देखा जाता हो एवं लग्न में बुध हो तो मनुष्य अपने बन्धु–बान्धवों के, समुदाय में पूज्य होता है।

माता का विचार :–

मातुः स्थाने शुभयुते तदीशे स्वोच्चराशिगे।
कारके बलसंयुक्ते मातुर्दीर्घायुरादिशेत्।।7।।
सुखेशे केन्द्रभावस्थे तथा केन्द्रस्थिते भृगौ।
शशिजे स्वोच्चराशिस्थे, मातुः पूर्ण सुखं भवेत्।।8।।

यदि चतुर्थेश अपनी उच्च राशि में हो तथा चतुर्थ में शुभ ग्रह स्थित हो, मातृकारक ग्रह (चन्द्र, शुक्र) बलवान् हो तो माता की दीर्घायु होती है।

यदि चतुर्थेश केन्द्र स्थान में गया हो, शुक्र भी केन्द्र में हो तथा बुध अपने उच्च में हो तो माता का भरपूर सुख मिलता है।

पशुधन लाभ योग :–

सुखे रवियुते मन्दे चन्द्रे भाग्यगते सति।
लाभस्थानगतो भौमो गोमहिष्यादि लाभकृत्।।9।।

यदि चतुर्थ स्थान में शनि के साथ सूर्य स्थित हो तथा चन्द्रमा नवम में हो, एकादश स्थान में मंगल हो तो गाय भैंस आदि दुधारू पशुओं का लाभ होता है।

गूँगापन होने का योग :–

चरगेहसमायुक्ते सुखे तद्राशिनायके ।
षष्ठे व्ययेस्थिते भौमे नरः प्राप्नोति मूकताम् ।। 10 ।।

यदि चतुर्थ स्थान में 1.4.7.10 राशि हो तथा चतुर्थेश षष्ठ में व मंगल 12 में हो तो मनुष्य मूक होता है ।

वाहन सुख विचार :–

लग्नस्थानाधिपे सौम्ये सुखेशे नीचराशिगे ।
कारके व्ययभावस्थे सुखेशे लाभसंगते ।। 11 ।।
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते वाहनस्य सुखं वदेत् ।
वाहने सूर्यसंयुक्ते स्वोच्चे तद्भावनायके ।। 12 ।।
शुक्रेण संयुते वर्षे द्वात्रिंशे वाहनं भवेत् ।
कर्मेशेन युते बन्धुनाथे तुंगांशसंयुते ।।
द्विचत्वारिंशके वर्षे नरो वाहनभाग् भवेत् ।। 13 ।।

लग्न में शुभ ग्रह की राशि हो, चतुर्थेश नीच राशि में लाभस्थान में हो तथा चतुर्थभाव के कारक (चन्द्रमा, बुध) द्वादश में हों तो बारहवें वर्ष में ही वाहन का सुख मिल जाता है ।

यदि चतुर्थ में सूर्य हो, चतुर्थेश उच्चगत हो एवं शुक्र से युक्त हो तो बत्तीसवें वर्ष में वाहन सुख मिलता है ।

यदि चतुर्थेश व दशमेश किसी राशि में एक साथ हों तथा चतुर्थेश अपने उच्च नवांश में हो तो बयालीसवें वर्ष में वाहन मिलता है ।

लाभेशे सुखराशिस्थे सुखेशे लाभसंयुक्ते ।
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते जातो वाहनभाग् भवेत् ।।
शुभं शुभत्वे भावस्य पापत्वे फलमन्यथा ।। 14 ।।

यदि एकादशेश चतुर्थ में व चतुर्थेश एकादश में हो तो बारहवें वर्ष में ही वाहन का सुख मिल जाता है ।

चतुर्थ भाव में शुभत्व अधिक हो तो घर, सम्पत्ति, वाहन, सुख उत्तम श्रेणी का तथा पापत्व अधिक हो तो उक्त बातों का अभाव या होते हुए भी ये वस्तुएँ कष्टकारक होती है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां सुखभावफलाध्यायः षोडशः ।। 16 ।।

17

। । अथ पंचमभावफलाध्यायः । ।

लग्नपे सुतभावस्थे सुतपे च सुते स्थिते ।
केन्द्रत्रिकोण संस्थे वा पूर्ण पुत्रसुखं वदेत् । । 1 । ।
षष्ठाष्टमव्ययस्थे तु सुताधीशे त्वपुत्रता ।
सुतेशेऽस्तंगते वापि पापाक्रान्ते च निर्बले । । 2 । ।
तदा न जायते पुत्रो जातो वा म्रियते ध्रुवम् । । 3 । ।

लग्नेश पंचम में हो अथवा पंचमेश भी वहीं हो यह एक योग है । अथवा पंचमेश केन्द्रत्रिकोण में गया हो तो पुत्र सुख होता है ।

यदि पंचमेश 6.8.12 भावों में हो तो पुत्र नहीं होता है । यदि पंचमेश अस्त हो, निर्बल या पापग्रहों से आक्रान्त हो तो पुत्र नहीं होता या पुत्र होकर भी जीवित नहीं रहता ।

काकबन्ध्यायोग :–

षष्ठस्थाने सुताधीशे लग्नेशे कुजसंयुते ।
म्रियते प्रथमापत्यं काकवन्ध्या च गेहिनी । । 4 । ।
सुताधीशो हि नीचस्थो षडादिभाव संस्थितः ।
काकवन्ध्या भवेन्नारी सुते केतुबुधौ यदि । । 5 । ।
सुतेशे नीचगो यत्र सुतस्थानं न पश्यति ।
तत्र सौरिबुधौ स्यातां काकवन्ध्यात्वमाप्नुयात् । । 6 । ।

यदि पंचमेश षष्ठ स्थान में हो, लग्नेश किसी भी भाव में मंगल से युक्त हो तो जातक की पहली सन्तान मर जाती है तथा बाद में जातक पुरुष हो तो उसकी पत्नी तथा स्त्री हो तो स्वयं, आगे गर्भ धारण नहीं करती । जिसे एक बार ही जीवन में गर्भधारण हो वह काकबन्ध्या तथा कभी गर्भ न हो तो वन्ध्या होती है ।

यदि पंचमेश नीच स्थान में गया हो और 6.8.12 भाव में स्थित हो और पंचम में केतु बुध हो तो काकवन्ध्या योग होता है ।

पंचमेश नीच राशि में हो और पंचम को न देखे एवं पंचम भाव में बुध शनि हो तो काकवन्ध्या योग होता है।

कष्टपूर्वक पुत्र लाभ –

भाग्येशो मूर्तिवर्ती च सुतेशो नीचगो यदि।
सुते केतु बुधौ स्यातां सुतं कष्टाद् विनिर्दिशेत्।। 7।।
षष्ठाष्टमव्ययस्थो वा नीचो वा शत्रुराशिगः।
सुतेशः पंचमे वा स्यात् कष्टात्पुत्रं विनिर्दिशेत्।। 8।।

यदि नवमेश लग्न में हो और पंचमेश नीच में हो, साथ पंचम में केतु व बुध हो तो प्रयत्न (चिकिसा, मन्त्रौषधादि) करने से पुत्रलाभ होता है।

यदि पंचमेश 6.8.12 में हो अथवा पंचमेश नीचस्थ शत्रुक्षेत्री होकर पंचम में ही हो तो भी कष्टपूर्वक पुत्र होता है।

दत्तकादि पुत्र योग :–

पुत्रभावे बुधक्षेत्रे मन्दक्षेत्रेऽथवा पुनः।
मन्दे मान्दियुते दृष्टे तदादत्तादयः सुताः।। 9।।
पंचमे षडग्रहैर्युक्ते तदीशे व्ययराशिगे।
लग्नेशेनदू बलाढ्यौ चेत् तदा दत्तसुतोद्भवः।। 10।।

यदि पंचम भाव में मिथुन, कन्या, मकर, कुम्भ राशि में शनि व मान्दिं (गुलिक) की दृष्टि या योग हो तो जातक को दत्तक या कृत्रिम, स्वीकृत, पुत्र होता है, अपनी पत्नी से उत्पन्न पुत्र नहीं होता।

यदि पंचम भाव में छह ग्रह हों तथा पंचमेश व्यय भाव में स्थित हो, लग्नेश व चन्द्र बली हो तो जातक का गोद लिया पुत्र होता है।

प्रबल पुत्र योग :–

सुते ज्ञजीवशुक्राश्च सबलैरवलोकिते।
भवन्ति बहवः पुत्राः सुतेशेहि बलान्विते।। 11।।

यदि पंचम भाव में बुध, गुरु, शुक्र हो तथा बलवान् ग्रह (पुरुष ग्रह) से देखे जाते हों और पंचमेश भी बलवान् हो तो बहुत से पुत्र होते हैं।

पुत्री योग :–

सुतेशे चन्द्रसंयुक्ते तद्द्रेष्काणगतेऽपि वा।
तदा हि कन्यकोत्पत्तिः प्रवदेद् दैवचिन्तकः।। 12।।

यदि पंचमेश चन्द्रमा के साथ हो अथवा पंचमेश कर्क राशि के द्रेष्काण में हो तो दैवज्ञ को कन्याओं का जन्म कहना चाहिए।

परजात पुत्र योग :–

सुतेशे चरराशिस्थे राहुणासहिते विधौ।

पुत्रस्थानं गते मन्दे परजातं वदेच्छिशुम्।।13।।

यदि पंचमेश चर राशि में हो, चन्द्रमा व राहु साथ हों, पंचम स्थान में शनि हो तो जातक का पुत्र परजात (अवैध पति द्वारा उत्पादित या कृत्रिम गर्भाधान) होता है, अर्थात् उसके वीर्य से पुत्र न होकर परवीर्योत्पन्न सन्तति होती है।

यह जातक का परजात योग योग न होकर जातक के पुत्र के सन्दर्भ में पठित है। कहीं–कहीं पर 'सुतेशे नरराशिस्थे' भी पाठ है। तब पंचमेश पुरुष (विषम) राशि में समझा जाएगा।

लग्नादष्टमगे चन्द्रे चन्द्रादष्टमगे गुरौ।

पापग्रहयुतैर्दृष्टे परजातो न संशयः।। 14।।

यदि लग्न से अष्टम में चन्द्रमा, चन्द्रमा से अष्टम में बृहस्पति हो तथा इन दोनों पर या एक पर पापग्रह की दृष्टि या योग हो तो जातक की स्ववीर्योत्पन्न सन्तान नहीं होती है।

पुत्र जन्म से भाग्य वृद्धि :–

पुत्रस्थानाधिपे स्वोच्चे लग्नाद्वा द्वित्रिकोणगे।

गुरुणासंयुते दृष्टे पुत्रभाग्यमुपैति सः।। 15।।

त्रिचतुःपापसंयुक्ते सुते सौम्यविवर्जिते।

सुतेशे नीचराशिस्थे नीचसंस्थो भवेच्छिशुः।। 16।।

यदि पंचमेश अपने उच्च में हो (मूल त्रिकोण,स्वक्षेत्र में भी) अर्थात् राशि बली हो तथा लग्न से 1.2.5.9 में हो और गुरु से दृष्ट रहे तो पुत्र जन्म के बाद जातक का भाग्य चमकता है।

यदि पंचम में कोई शुभ ग्रह न हो तथा तीन–चार पाप ग्रह पंचम में हों, पंचमेश नीच राशि में हो तो जातक का पुत्र नीच कर्म करने वाला होता है।

समयबद्ध पुत्रप्राप्ति :–

पुत्रस्थानं गते जीवे तदीशे भृगुसंयुते ।
द्वात्रिंशे च त्रयस्त्रिंशे वत्सरे पुत्रसम्भवः ।। 17 ।।
सुतेशे केन्द्रभावस्थे कारकेण समन्विते ।
षट्त्रिंशे त्रिंशदाब्दे च पुत्रोत्पत्ति र्विनिर्दिशेत् ।। 18 ।।
लग्नाद् भाग्यगते जीवे जीवाद्भाग्यगते भृगौ ।
लग्नेशे भृगुयुक्ते वा चत्वारिंशे सुतं वदेत् ।। 19 ।।

पंचम भाव में गुरु हो और पंचमेश शुक्र के साथ हो तो 32वें या 33वें वर्ष में पुत्र जन्मता है ।

पंचमेश केन्द्र में पुत्रकारक (चरकारक या गुरु) के साथ हो तो 30 या 36वें वर्ष में पुत्रोत्पत्ति होती है ।

लग्न से नवम भाव में गुरु तथा गुरु से नवम भाव में शुक्र हो तथा लग्नेश शुक्र के साथ हो तो 40वें वर्ष में पुत्रोत्पत्ति होती है ।

इन योगों में हमने 2 से 5 वर्षो का अन्तर अनुभव में पाया है । अन्यथा योग समीचीन है ।

पुत्रवियोग योग :–

पुत्रस्थानं गते राहौ तदीशे पापसंयुते ।
नीचराशिगतो जीवो द्वात्रिंशे पुत्रमृत्युदः ।। 20 ।।
जीवात्पंचमगे पापे लग्नात्पंचमगेऽपि च ।
षट्त्रिंशे च त्रयस्त्रिंशे चत्वारिंशे सुतक्षयः ।। 21 ।।
लग्ने मान्दिसमायुक्ते लग्नेशे नीचराशिगे ।
षट्पंचाशत्तमेऽब्दे च पुत्रशोकसमाकुलः ।। 22 ।।

यदि पंचम स्थान में राहु, पंचमेश के साथ पाप ग्रह तथा गुरु मकर राशि में हो तो बत्तीसवें वर्ष में पुत्रशोक होता है ।

बृहस्पति व लग्न से पंचम स्थान में एक साथ पाप ग्रह हों तो 33, 36 व 40वें वर्ष में कभी यथासम्भव पुत्रनाश होता है ।

लग्न में गुलिक हो तथा लग्नेश नीच राशि में हो तब 56वें वर्ष में पुत्रशोक होता है ।

इन योगों में पंचमेश व शुभ ग्रहों की दृष्टि या योग पंचम पर रहने से बचाव होता है ।

सन्तान संख्या योग :–

चतुर्थे पापसंयुक्ते षष्ठभावे तथैव च ।
सुतेशे परमोच्चस्थे लग्नेशेन समन्विते ।। 23 ।।
कारके शुभसंयुक्ते दशसंख्यास्तु सूनवः ।
परमोच्चगते जीवे धनेशे राहु संयुते ।। 24 ।।
भाग्येशे भाग्यसंयुक्ते संख्याता नवसूनवः ।
पुत्रभाग्यगते जीवे सुतेशे बलसंयुते ।। 25 ।।
धनेशे कर्मभावस्थे वसुसंख्यास्तु सूनवः ।

यदि चतुर्थ व षष्ठ में एक साथ पाप ग्रह हों और पंचमेश परमोच्चगत होकर लग्नेश के साथ हो एवं बृहस्पति शुभयुक्त हो तो दस पुत्र होते हैं।

यदि गुरु परमोच्च में गया हो, द्वितीयेश राहु के साथ हो, तथा नवमेश नवम में हो तो नौ पुत्र होते हैं।

यदि बृहस्पति पंचम या नवम में हो, पंचमेश बली हो तथा द्वितीयेश दशम स्थान में गया हो तो आठ पुत्र होते हैं।

पंचमात्पंचमे मन्दे सुतस्थे च तदीश्वरे ।। 26 ।।
सूनवः सप्तसंख्याश्च द्विगर्भे यमलौ वदेत् ।
वित्तेशे पंचमस्थाने सुतस्थे च सुताधिपे ।। 27 ।।
जायन्ते षट्सुतास्तस्य तेषां च त्रिप्रजामृतिः ।
मन्दात् पंचमगे जीवे जीवात्पंचमगे रवौ ।। 28 ।।
सूर्यात्पंचमगे पापे पुत्रमेकं विनिर्दिशेत् ।

यदि नवम भाव में शनि व पंचम में पंचमेश हो तो 7 पुत्र होते हैं तथा दो बार जुड़वाँ सन्तान भी होती है।

द्वितीयेश पंचम में हो तथा पंचमेश भी पंचम में हो तो 6 पुत्र होते हैं, लेकिन तीन ही जीवित रह पाते हैं।

शनि से पंचम में गुरु, गुरु से पंचम में सूर्य तथा सूर्य से पंचम में पाप ग्रह (मंगल, राहु) हो तो एक ही पुत्र होता है।

पंचमे पापयुक्ते च जीवात्पचंमगे शनौ ।। 29 ।।
पत्न्यन्तरे पुत्रलाभं कलत्रत्रयभाग् भवेत् ।
पंचमे पापसंयुक्ते जीवात्पंचमे शनौ ।। 30 ।।
लग्नेशे धनभावस्थे सुतेशो भौमसंयुतः ।
जातं जातं शिशुं हन्ति दीर्घायुश्च स्वयं भवेत् ।। 31 ।।

यदि पंचम में पाप ग्रह हो, गुरु से पंचम में शनि हो तो दूसरी या तीसरी पत्नी से पुत्र होता है।

पंचम में पाप ग्रह व गुरु से पंचम में शनि के साथ ही लग्नेश द्वितीय में हो व पंचमेश के साथ मंगल हो तो जातक की सन्तान पुत्रादि मर जाते हैं तथा स्वयं दीर्घायु होता है, अर्थात् सब बेटों के मरने के बाद मरता है।

इन योगों में देशकाल का विचार करके फल निर्देश करें। दस आदि पुत्रों को बहुत से पुत्र मानें तथा दूसरी–तीसरी पत्नी की बात यथावसर सम्भव होने पर ही कहें।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
पंचमभावफलाध्यायः सप्तदशः ।। 17 ।।

18

।। अथ षष्ठभावफलाध्यायः ।।

व्रणादियोग :–

पापः षष्ठाधिपो गेहे लग्ने वाष्टमसंस्थिते
तदा व्रणो भवेद्देहे षष्ठराशिसमाश्रिते ।। 1 ।।
एवं पित्रादिभावेशास्तत्तत्कारकसंयुताः ।
व्रणाधिपयुताश्चापि षष्ठाष्टमयुता यदि ।। 2 ।।
तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम् ।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेन ज्ञेन नाभिषु ।। 3 ।।

यदि पापी षष्ठेश 1.6.8 में स्थित हो तो षष्ठभावगत में स्थित राशि से द्योतित अंग में व्रण समझना चाहिए।

इस तरह षष्ठेश के साथ जिस सम्बन्धी का भावेश उक्त प्रकार से स्थित हो अर्थात् दशम से षष्ठेश यदि दशम में, उससे षष्ठ (तृतीय में) एवं उससे अष्टम अर्थात् पंचम में हो तो पिता को घाव होगा। इसी तरह पुत्र, माता, स्त्री, भ्राता आदि भावों से गणना करके षष्ठेश के आधार पर इन सम्बन्धियों के शरीर में व्रण स्थिति का निश्चय करना चाहिए।

यदि व्रण कारक (षष्ठेश) सूर्य हो तो सिर में, चन्द्रमा हो तो मुँह या गले में, मंगल व बुध हो तो पेट में घाव समझना चाहिए।

गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे।
शनिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत्।। 4।।
लग्नाधिपः कुजक्षेत्रे बुधभे यदि संस्थितः।
यत्र कुत्रस्थितो ज्ञेन वीक्षितो मुख रुक्प्रदः।। 5।।

बृहस्पति यदि व्रणकारक हो तो नाक पर, शुक्र हो तो आँख पर, शनि हो तो पैरों में, राहु व केतु से कोख (पेट) पर घाव होता है।

यदि लग्नेश 1.8.3.6 राशियों में गया हो तथा कहीं भी स्थित होकर बुध से दृष्ट हो तो मुख रोग होता है।

कुष्ठरोग योग :-

लग्नाधिपौ कुजबुधौ चन्द्रेण यदि संयुतौ।
राहुणा शनिना सार्ध कुष्ठं तत्र विनिर्दिशेत्।। 6।।
लग्नाधिपं विना लग्ने स्थितश्चेत्तमसाशशी।
श्वेतकुष्ठं तदा कृष्णकुष्ठं च शनिना सह।। 7।।
कुजेन रक्तकुष्ठं स्यात् तत्तदेवं विचिन्तेयत्।

यदि मंगल या बुध की राशि लग्न में हो अर्थात् 1.8.3.6. लग्न में जन्म हो तथा लग्नेश चन्द्रमा के साथ हो, इनके साथ राहु शनि भी हों तो कुष्ठरोग होता है।

कर्क लग्न के अतिरिक्त किसी लग्न में जन्म हो तथा चन्द्रमा राहु के साथ लग्न में हो तो श्वेत कुष्ठ (सफेद दाग) होता है। इसी तरह चन्द्रमा शनि के साथ लग्न में हो (लेकिन लग्नेश न हो) तो कृष्ण कुष्ठ होता है। मंगल व चन्द्र से उक्त योग बनता हो तो रक्त कुष्ठ होता है।

प्राचीन शुकसूत्रों में इन योगों को सामान्य हेरफेर के साथ कहा है। तदनुसार लग्नेश, बुध, मंगल व चन्द्रमा ये चारों किसी भी लग्न में राहु युक्त हों तो कुष्ठयोग है। सूर्य साथ हो तो रक्त कुष्ठ तथा शनि साथ हो तो कृष्ण कुष्ठ होता है। (देखें जातकालंकार, शुकसूत्र 3.6 पृ० 87) कुष्ठ से तात्पर्य सदैव गलित कुष्ठ न होकर त्वचाविकार है।

गण्डादिरोग योग :-

लग्ने षष्ठाष्टमाधीशौ रविणा यदि संयुतौ।। 8।।
ज्वरगण्डः कुजे ग्रन्थिः शस्त्र व्रणमथापि वा।
बुधेन पित्तं गुरुणा रोगाभावं विनिर्दिशेत्।। 9।।

स्त्रीभिः शुक्रेण शनिना वायुना संयुतो यदि ।

गण्डश्चाण्डालतो नाभौ तमः केतुयुते भयम् ।। 10 ।।

यदि लग्न में षष्ठेश व अष्टमेश सूर्य के साथ हो तो जातक को बार-बार ज्वर होता है । यदि मंगल के साथ हो तो गाँठ या शस्त्र की चोट का घाव होता है ।

यदि 6.8 भावेश लग्न में बुध के साथ हो तो पित्त रोग, गुरु के साथ हो तो रोग का अभाव् होता है । अथवा पाठान्तर से आँव या दस्त आदि होते हैं ।

यदि 6.8 भावेश लग्न में शुक्र के साथ हो तो स्त्री सम्पर्क के रोग, शनि हो तो वायु (वात या गैस) रोग या नाभि में फोड़ा होता है । केतु साथ हो तो भय होता है ।

गण्ड शब्द का तात्पर्य रोग, गिल्टी या फोड़ा दोनों है । शारीरिक व मानसिक रोग का आघात गण्ड द्वारा संगृहीत है । शुक सूत्रों में लग्नेश के साथ 6.8 भावेश तथा उक्त प्रकार से मंगलादि ग्रह होने पर ये रोग कहे हैं । अन्तर यह है कि शुक मुनि लग्नेश-मंगल-सूर्यादि ग्रहों का योग 6.8.12 में होने पर रोग मानते हैं जबकि पराशर ने यहाँ लग्न में 6.8 भावेशों के साथ रहने पर योग कहा है । 1.6.8 भावों भावेशों का क्रूर सम्बन्ध रोग का जनक है । व्युत्पत्ति के लिए हमारा जातकालंकार शुकसूत्र देखें । शुकसूत्रों में भी रोग विवेचन का यही क्रम है, यह विशेष ध्यातव्य है ।

चन्द्रेण गण्डः सलिलैः कफश्लेष्मादिना भवेत् ।

एवं पित्रादिभावानां तत्तत्कारकयोगतः ।। 11 ।।

गण्डं तेषां वदेदेवमूह्यमत्र मनीषिभिः ।।

यदि 6.8 भावेश लग्न में चन्द्र के साथ हो तो जलरोग, कफ विकार आदि होते हैं । इसी पद्धति से पिता, माता आदि भावों से 6.8 भावेशों का विचार कर उन सम्बन्धियों को भी रोग की सम्भावना कहें ।

चन्द्रेण जलगण्डः । भौमेन ग्रन्थिशस्त्रव्रणः । बुधेन पित्तम् । गुरुणा आमरोग । शनिना चाण्डाल चौराभ्यां गण्डः । राहुकेतुभ्यामपियोज्यम् । (शुकसूत्र जातकालंकार) ।

आप भाषा व भाव की समानता देखकर स्वयं प्रामाणिकता का निश्चय कर लें । शुकसूत्रकार भी पितादि भावों से रोगविचार इसी पद्धति से करने का निर्देश देते हैं ।

एवं पितृमातृभ्रातृकलत्रपुत्राणां तत्तत्कारकभावस्थान योगेन सर्व वाच्यम् । (शुकसूत्र) ।

रोगोत्पत्ति का समय :–

रोगस्थानगते पापे तदीशे पापसंयुते । । 12 । ।
राहुणासंयुते मन्दे सर्वदा रोगसंयुतः । ।
रोगस्थानगते भौमे तदीशे रन्ध्रसंयुते । । 13 । ।
षड्वर्षे द्वादशे वर्षे ज्वररोगी भवेन्नरः ।
षष्ठस्थानगते जीवे तद्गृहे चन्द्रसंयुते
द्वाविंशैकोनविंशेऽब्दे कुष्ठरोगं विनिदिर्शेत् ।

यदि षष्ठभाव व षष्ठेश दोनों ही पापयुक्त हों और शनि राहु साथ साथ हों तो जातक सदैव रोगी रहता है ।

यदि षष्ठस्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश अष्टम में गया हो तो 6 या 12 वर्ष में ज्वर रोग होता है ।

षष्ठस्थान में बृहस्पति हो तथा चन्द्रमा धनु या मीन में हो तो उन्नीसवें या बाईसवें वर्ष में कुष्ठ रोगोत्पत्ति होती है ।

रोगस्थानं गतो राहुः केन्द्रे मान्दिसमन्विते । । 15 । ।
लग्नेशे नाशराशिस्थे षड्विंशे क्षयरोगता ।
व्ययेशे रोगराशिस्थे तदीशे व्ययराशिगे । । 16 । ।
त्रिंशद्वर्षैकोन वर्षो गुल्मरोगं विनिर्दिशेत् ।
रिपुस्थानगते चन्द्रे शनिना संयुते यदि । । 17 । ।
पंचपंचाशदब्देषु रक्तकुष्ठं विनिर्दिशेत् ।

यदि षष्ठ स्थान में राहु व केन्द्र में गुलिक हो और लग्नेश अष्टम में गया हो तो छब्बीसवें वर्ष में क्षयरोग होता है ।

यदि द्वादशेश षष्ठ में व षष्ठेश द्वादश में हो तो तीस वर्ष या 29वें वर्ष में गुल्म रोग (फोड़ा ट्यूमर आदि) होता है ।

षष्ठस्थान में चन्द्रमा शनि के साथ हो तो 55वें वर्ष में रक्त कुष्ठ होने की सम्भावना होती है ।

लग्नेशे लग्नराशिस्थे मन्दे शत्रुसमन्विते । । 18 । ।
एकोनषष्ठिवर्षे तु वातरोगार्दितो भवेत् ।
रन्ध्रेशे रिपु राशिस्थे व्ययेशे लग्नसंस्थिते । । 19 । ।
चन्द्रे षष्ठेशसंयुक्ते वसुवर्षे मृगाद्भयम् ।
षष्ठाष्टमगतो राहुस्तस्मादष्टमगे शनौ । । 20 । ।

जातस्य जन्मतो विप्र ! प्रथमे च द्वितीयके ।

वत्सरेऽग्निभयं तस्य त्रिवर्षे पक्षिदोषभाक् ।। 21 ।।

यदि लग्नेश लग्न में व षष्ठ में शनि हो तो 59वें वर्ष में वातरोग होता है। यदि अष्टमेश षष्ठस्थान में हो, व्ययेश लग्न में स्थित हो तथा चन्द्रमा षष्ठेश से युक्त हो तो आठवें वर्ष में पशु से भय होता है।

6.8.12 में राहु तथा राहु से अष्टम में शनि हो तो बालक को पहले व दूसरे वर्ष में अग्नि भय तथा तीसरे वर्ष में पक्षियों से पीड़ा होती है।

षष्ठाष्टमगते सूर्ये तद्व्यये चन्द्रसंयुते ।

पंचमे नवमेऽब्दे तु जलभीतिं विनिर्दिशेत् ।। 22 ।।

अष्टमे मन्दसंयुक्ते तस्माद् द्वादशे कुजः ।

त्रिंशाब्दे दशमेऽब्दे तु स्फोटकादि विनिर्दिशेत् ।। 23 ।।

रन्ध्रेशे राहुसंयुक्ते तदंशे रन्ध्रकोणगे ।

द्वाविंशेऽष्टादशे वर्षे ग्रन्थिमेहादिपीडनम् ।। 24 ।।

6.8.12 में सूर्य हो तथा सूर्य से द्वादश स्थान में चन्द्र हो तो 5 या 9 वर्ष में जल से भय होता है।

अष्टम स्थान में शनि हो और सप्तम में मंगल तो 10वें या 30वें वर्ष में फोड़े–फुंसी होते हैं।

अष्टमेश राहु के साथ अपने नवांश में स्थित होकर अष्टम से 5.9 भाव में बैठा हो तो 18वें या 22वें वर्ष में बड़ा फोड़ा, मधुमेह या प्रमेह रोग से पीड़ा होती है।

शत्रु विचार :–

लाभेशे रिपुभावस्थे रोगेशे लाभराशिगे ।

एकत्रिंशत्तमे वर्षे शत्रुमूलाद्धनव्ययः ।। 25 ।।

सुतेशे रिपुभावस्थे षष्ठेशे गुरुसंयुते ।

व्ययेशे लग्नभावस्थे तस्य पुत्रो रिपुर्भवेत् ।। 26 ।।

लग्नेशे षष्ठराशिस्थे तदीशे षष्ठराशिगे ।

दशमैकोनविंशेऽब्दे शुनकाद् भीतिरुच्यते ।। 27 ।।

यदि एकादशेश षष्ठभाव में हो तथा षष्ठेश एकादश में हो तो 31वें वर्ष में शत्रुओं के कारण धन व्यय होता है।

यदि पंचमेश षष्ठभाव में हो व षष्ठेश गुरु के साथ, हो, व्ययेश लग्न में गया हो तो जातक का पुत्र ही उसका शत्रु हो जाता है।

लग्नेश षष्ठराशि में व षष्ठेश षष्ठ में ही हो तो 10वें व 19वें वर्ष में कुत्ते से कष्ट होता है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
षष्ठभावफलाध्यायोऽष्टादशः ।।18।।

19

।। अथ सप्तमभावफलाध्यायः ।।

अल्पस्त्रीसुख योग :–

कलत्रपो विना स्वर्क्ष व्ययषष्ठाष्टमस्थितः ।
रोगिणीं कुरुते नारीं तथा तुंगादिकं विना ।।1।।
सप्तमे तु स्थिते शुक्रेऽतीव कामी भवेन्नरः ।
यत्र-कुत्रस्थिते पापयुते स्त्रीमरणं भवेत् ।।2।।

यदि सप्तमेश स्वगृही स्वोच्च को छोड़कर अन्य राशि में 6.8.12 में हो तो पत्नी सदैव रोगिणी रहती है। अथवा पत्नी सुख कम होता है।

सप्तम भाव में यदि शुक्र हो तो मनुष्य अति कामुक होता है। यदि शुक्र कहीं भी पापयुक्त दृष्ट होकर बैठे तो स्त्री की मृत्यु होती है।

स्त्री सुख योग :–

जायाधिपः स्वभेस्वोच्चे स्त्रीसुखं पूर्णमादिशेत् ।
जायाधीशः शुभैर्युक्तो दृष्टो वा बलसंयुतः ।।3।।
तदा सौभाग्यशीलः स्यात् धनी मानी नरः प्रभुः ।
नीचे शत्रुग्रहेऽस्ते वा निर्बले वा कलत्रपे ।।4।।
तस्यापि रोगिणी भार्या बहुभार्यो नरो भवेत् ।
मन्दभे शुक्रगेहे वा जायाधीशे शुभेक्षिते ।।5।।
स्वोच्चगे तु विशेषेण बहुभार्यो भवेन्नरः ।

यदि सप्तमेश स्वराशि या सवोच्च में हो तो स्त्री सुख पूर्ण होता है। सप्तमेश यदि बलवान् हो और शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तब भी मनुष्य पत्नी सुख से सम्पन्न, समर्थ, धनी व सम्मानित होता है।

यदि सप्तमेश नीच राशि में या शत्रुराशि में, सप्तम भाव में किसी प्रकार से निर्बल हो तो उसकी पत्नी रोगिणी होती है तथा उसकी कई स्त्रियाँ होती हैं।

यदि सप्तमेश मकर, कुम्भ, वृष, तुला राशि में शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो मनुष्य की कई स्त्रियाँ होती हैं। यदि सप्तमेश स्वोच्च में हो तो विशेष तथा उक्त फल होता है।

बहुस्त्री से तात्पर्य जहाँ सम्भव हो वहाँ पत्नियां एवं जहाँ सम्भव न हो तो स्त्री सम्बन्ध समझना चाहिए। बहुविवाह विधिसम्मत न होते हुए भी बहुस्त्री सम्बन्ध समाज में देखा ही जाता रहा है। आगे के श्लोक में इसीलिए विविध प्रकार की स्त्रियों से सम्बन्ध बताया जा रहा है।

सम्बन्धित स्त्री का स्वरूप –

बन्ध्यासंगो मदे भानौ चन्द्रेराशिसमस्त्रियः ।। 6 ।।

कुजे रजस्वला संगो, बन्ध्यासंगश्च कीर्तितः ।

बुधे वेश्या च हीना च वणिक्स्त्री वा प्रकीर्तिता ।। 7 ।।

गुरौ ब्राह्मणभार्या स्यात् गर्भिणीसंग एव च ।

हीना च पुष्पिणी वाच्या मन्दराहुफणीश्वरैः ।। 8 ।।

यदि पूर्वोक्त बहुभार्या योग बनाने वाला ग्रह अर्थात् सप्तमेश होकर सप्तम में या क्वचित् नीचादि दोष युक्त हो या शनि शुक्र की राशि में हो। ऐसा ग्रह सूर्य हो तो वन्ध्या स्त्री से, चन्द्रमा हो तो जैसी राशि हो वैसी ही स्त्री से सम्पर्क होता है। अर्थात् समराशि हो तो कोमलांगी, विषमराशि हो तो कठोर आकृति स्वभाव वाली, ब्राह्मण, क्षत्रियादि राशि वर्ग से तत्तत् वर्ण की स्त्री होगी।

मंगल योग कारक हो तो रजस्वला स्त्री के साथ या बाँझ के साथ, बुध हो तो वेश्या, हीन बाजारू स्त्री या व्यापारी की स्त्री से सम्पर्क होता है।

ये यदा-कदा संयोगवशात् होने वाले स्त्री–सम्पर्क के योग हैं। स्त्री लाभ प्रश्न, विवाह प्रश्न, आदि में इनका प्रयोग हो सकता है।

कुजेऽथ सुस्तनी मन्दे व्याधिदौर्बल्य संयुता ।।

कठिनोर्ध्व कुचार्ये च शुक्रे स्थूलोत्तम स्तनी ।।9 ।।

पुनश्च सप्तम में मंगल हो तो सुन्दर स्तनों वाली, शनि हो तो बीमार कमजोर स्त्री, गुरु हो तो कठोर ऊँचे स्तनों वाली, शुक्र हो तो सुन्दर रमणीय उत्तम स्तनों वाली स्त्री मिलती है।

यह योग व्यभिचार के अतिरिक्त सामान्यतः पत्नी स्वरूप के लिए कहा है।

पत्नी वशीभूत योग :–

पापे द्वादशकामस्थे क्षीणचन्द्रस्तु पंचमे ।
जातश्च भार्यावश्यः स्यादिति जाति विरोधकृत् ।। 10 ।।

यदि 7.12 भाव में पापग्रह हो तथा पंचम में क्षीण चन्द्रमा रहे तो जातक अपनी पत्नी के वश में रहने वाला होता है तथा पत्नी के वश में रहने के कारण ही अपने बन्धु–बान्धवों से भी विरोध कर बैठता है।

व्यभिचारिणी स्त्री योग :–

जामित्रे मन्दभौमे च तदीशे मन्दभूमिजे ।
वेश्या वा जारिणी वापि तस्य भार्या न संशयः ।। 11 ।।
मन्दांशकगते शुक्रे मन्दक्षेत्रेगतेऽपि वा ।
मन्दयुक्ते च दृष्टे च शिश्नचुम्बनतत्परः ।। 12 ।।
भौमांशकगते शुक्रे भौमक्षेत्रगतेऽथवा ।
भौमयुक्ते च दृष्टे वा भगचुम्बनभाक् भवेत् ।। 13 ।।

यदि सप्तम स्थान में शनि या मंगल हों तथा वे ही सप्तमेश हों तो मनुष्य की पत्नी वेश्या या परपुरुषगामिनी होती है।

यदि शनि के नवांश व शनि की राशि में शुक्र हो तथा उसे शनि देखता हो तो मनुष्य समलैंगिक तथा दूसरे के लिंग को चूमने वाला होता है।

यदि मंगल के नवांश या राशि में शुक्र मंगल से युक्त दृष्ट हो तो पुरुष स्त्री की योनि को चूमने के लिए तैयार होता है।

सच्चरित्र स्त्री योग :–

दारेशे स्वोच्चराशिस्थे मदे शुभसमन्विते ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते कलत्रस्थानसंयुते ।। 14 ।।

तद्भार्यासद्गुणोपेता पुत्रपौत्रविवर्धिनी ।

यदि सप्तमेश अपने उच्च में हो या सप्तम में शुभ ग्रह हो तथा लग्नेश बलवान् होकर सप्तम में हो तो उसकी पत्नी सद्गुणों वाली तथा खूब सन्तति द्वारा कुलवर्धिनी होती है ।

स्त्री–हानि योग :–

कलत्रे तत्पतौ वापि पापग्रहसमन्विते ।। 15 ।।
भार्याहानिं वदेत्तस्य निर्बले च विशेषतः ।
षष्ठाष्टमव्ययस्थाने मंदेशो दुर्बलो यदि ।। 16 ।।
नीचराशिगतो वापि दारनाशं विनिर्दिशेत् ।
कलत्रस्थानगे चन्द्रे तदीशे व्ययराशिगे ।। 17 ।।
कारको बलहीनश्च दारसौख्यं न विद्यते ।। 18 ।।

यदि सप्तम भाव या सप्तमेश पाप ग्रह से युक्त हो तथा स्वयं निर्बल भी हो तो विशेषतया स्त्री की हानि होती है ।

यदि निर्बल सप्तमेश 6.8.12 में हो या सप्तमेश नीचस्थ हो तो स्त्री का नाश होता है ।

यदि सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो और सप्तमेश द्वादश में हो और गुरु या स्त्रीकारक निर्बल हो तो स्त्री का सुख नहीं मिलता है ।

तृतीय योग में द्वादश भाव से 6.8 भावों को भी लिया जा सकता है । स्त्री-सुखरहित योग के साथ में संयास या वैराग्य योगों का भी समन्वय कर लेना चाहिए ।

पत्नी संख्या विचार –

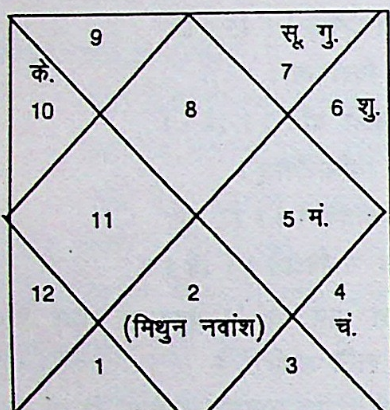
सप्तमेशे स्वनीचस्थे पापर्क्षे पापसंयुते ।। 19 ।।
सप्तमे क्लीबराश्यंशे द्विभार्यो जातको भवेत् ।
कलत्रस्थानगे भौमे शुक्रे जामित्रगे शनौ ।। 20 ।।
लग्नेशे रन्ध्रराशिस्थे कलत्रत्रयवान् भवेत् ।
द्विस्वभावगते शुक्रे स्वोच्चे तद्राशिनायके ।
दारेशे बलसंयुक्ते बहुदारसमन्वितः ।। 21 ।।

यदि सप्तमेश अपनी नीच राशि में हो या पाप ग्रह की राशि में पापयुक्त हो, सप्तम स्थान में नपुसंक राशि का नवांश हो तो जातक की दो पत्नियाँ होती हैं । बुध शनि की राशियाँ नपुंसक कही जाती हैं ।

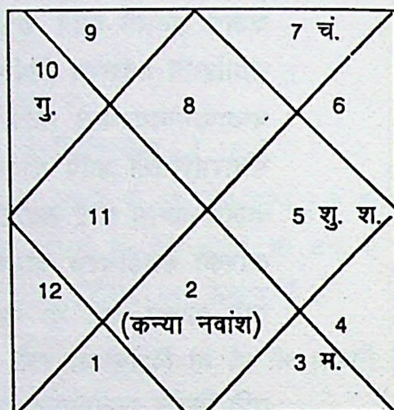
सप्तम स्थान में मंगल या शुक्र या दोनों के साथ शनि हो और लग्नेश अष्टम में हो तो तीन स्त्रियाँ होती हैं।

यदि शुक्र द्विस्वभावराशि में हो, शुक्र की अधिष्ठितराशि का स्वामी अपने उच्च में हो, सप्तमेश बली हो तो अनेक पत्नियाँ होती हैं।

(i)



(ii)



कुण्डली सं० (i) अनेक ग्रन्थों के रचयिता लेखक की है। इनके दो विवाह हुए थे। सप्तमेश नीचगत व सप्तम में नपुंसक नवांश है। दूसरी कुण्डली एक अध्यापक की है। इसमें शुक्र सप्तमेश होकर पापराशि में पापयुक्त है तथा सप्तम में कन्या नवांश नपुंसक है। इनके भी दो विवाह हो चुके हैं।

विवाह समय विचार :–

दारेशे शुभराशिस्थे स्वोच्चस्वर्क्षगतो भृगुः।
पंचमे नवमेऽब्दे तु विवाहः प्रायशो भवेत्।। 22।।
दारस्थानं गते सूर्ये तदीशे भृगुसंयुते।
सप्तमैकादशे वर्षे विवाहः प्रायशो भवेत्।। 23।।
कुटुम्ब स्थानगे शुक्रे दारेशे लाभराशिगे।
दशमे षोडशाब्दे च विवाहः प्रायशो भवेत्।। 24।।
लग्नकेन्द्रगते शुक्रे लग्नेशे मन्दराशिगे।
वर्षैकादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः।। 25।।

(i) यदि सप्तमेश शुभग्रह की राशि में हो और शुक्र स्वोच्च या स्वराशि मे हो तो पांचवें या नवें वर्ष में प्रायः विवाह हो जाता है।

(ii) यदि सप्तम स्थान में सूर्य हो तथा सप्तमेश शुक्र के साथ हो तो 7 या 11 वर्ष के आसपास विवाह होता है।

(iii) शुक्र यदि द्वितीय स्थान में हो व सप्तमेश एकादश स्थान में गया हो तो 10 या 16 वर्ष में विवाह होता है।

(iv) शुक्र केन्द्र में हो तथा लग्नेश मकर या कुम्भ में हो तो 11 वर्ष में विवाह होता है।

लग्नात्केन्द्रगते शुक्रे तस्मात्कामगते शनौ।
द्वादशैकोनविंशे च विवाहः प्रायशो भवेत्।। 26।।
चन्द्राज्जामित्रगेशुक्रेशुक्राज्जामित्रगेशनौ।
वत्सरेऽष्टादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः।। 27।।
धनेशे लाभराशिस्थे लग्नेशे कर्मराशिगे।
अब्दे पंचदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः।। 28।।
धनेशे लाभराशिस्थे लाभेशे धनराशिगे।
अब्दे त्रयोदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः।। 29।।

(i) लग्न से केन्द्र में शुक्र, शुक्र से सप्तम में शनि हो तो 12 या 19 वर्ष में विवाह होता है।

(ii) चन्द्र कुण्डली में सप्तम में शुक्र हो तथा शुक्र से सप्तम में शनि हो अर्थात् चन्द्रमा व शनि साथ हों और इनसे सप्तम में शुक्र हो तो 18 वर्ष में विवाह होता है।

(iii) द्वितीयेश एकादश में गया हो, लग्नेश दशम स्थान में हो तो 15वें वर्ष में विवाह होता है।

(iv) यदि धनेश लाभ में व लाभेश धन में हो तो 13 वर्ष में विवाह होता है।

रन्ध्राज्जामित्रगे शुक्रे तदीशे भौमसंयुते।
द्वाविंशे सप्तविंशेब्दे विवाहं लभते नरः।। 30।।
दारांशकगते लग्ननाथे दारेश्वरे व्यये।
त्रयोविंशे च षड्विंशे विवाहं लभते नरः।। 31।।
रन्ध्रेशे दारराशिस्थे लग्नांशभृगुसंयुते।
पंचविंशे त्रयस्त्रिंशे विवाहं लभते नरः।। 32।।

(i) यदि शुक्र द्वितीय स्थान ने हो, द्वितीयेश मंगल के साथ हो तो 22 या 27 वर्ष में विवाह होता है।

(ii) लग्नेश यदि सप्तमेश के नवांश में हो एवं सप्तमेश व्यय में गया हो तो 23 या 26 वर्ष में विवाह होता है।

(iii) यदि अष्टमेश सप्तम में स्थित हो तथा शुक्र लग्ननवांश राशि में हो तो 25 या 23 वर्ष में विवाह होता है।

भाग्याद्भाग्यगते शुक्रे तद्व्यये राहुसंयुते।
एकत्रिंशात्त्रयस्त्रिंशे दारलाभं विनिर्दिशेत्।। 33।।
भाग्याज्जामित्रमे शुक्रे तद्द्यूने दारनायके।
त्रिंशे वा सप्तविंशाब्दे विवाहं लभते नरः।। 34।।

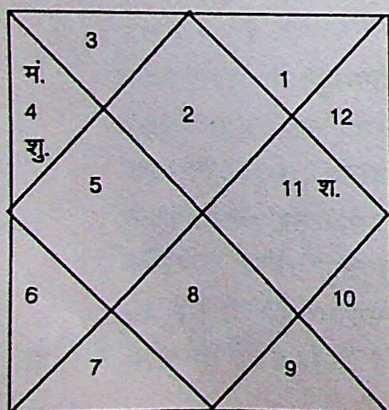
(i) यदि नवम (लग्न से पंचम) में शुक्र हो तथा राहु 5.9 में कहीं हो तो 31 से 33 वर्ष के बीच विवाह सम्पन्न होता है।

(ii) भाग्य से सप्तम अर्थात् तृतीय भाव में शुक्र हो तथा नवम में सप्तमेश हो तो 30 या 27 वर्ष में विवाह होता है।

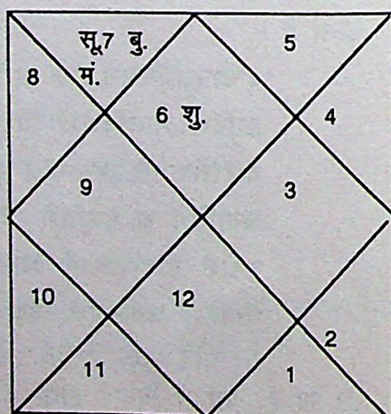
विवाह के जो वर्ष बताए गए हैं, ये कितने प्रामाणिक हैं? आज के युग में इनका समन्वय करना ही होगा। 18 वर्ष से नीचे विवाह अपराध होते हुए भी बाल विवाह कुछ प्रान्तों व जातियों में हो ही रहे हैं।

हमारे पीछे चले आ रहे क्रमिक कर्क लग्न वाले उदाहरण में श्लोक सं० 30 का योग कुछ घटित होता है। अष्टम से तृतीय में शुक्र न होकर अष्टम में है, अष्टमेश शनि मंगल से युक्त भी है। जातक का विवाह 23वें वर्ष में हुआ था। श्लोकोक्त दोनों भावों (रन्ध्रजामित्र) को ले लें तो योग पूरा है। ध्यातव्य है कि विवाह निश्चित 22 वें वर्ष में ही हो गया था।

(क)



(ख)

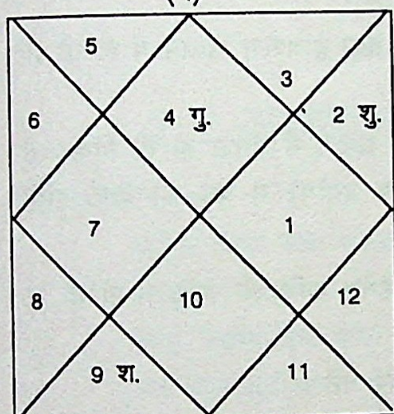


(क) नवम से सप्तम में शुक्र है। श्लोक 34 के अनुसार नवम में मंगल (सप्तमेश) होता, लेकिन यहाँ शुक्र के साथ ही है। इनका विवाह 26वें वर्ष में हुआ। 'तद्द्यूने' शब्द से यदि तत् अर्थात् वही तीसरा व द्यून अर्थात् तीसरे से सातवाँ भाव ले लें तो योग पूर्ण होता है। अतः इन योगों में प्रोक्त अवस्था में तथ्य अवश्य है।

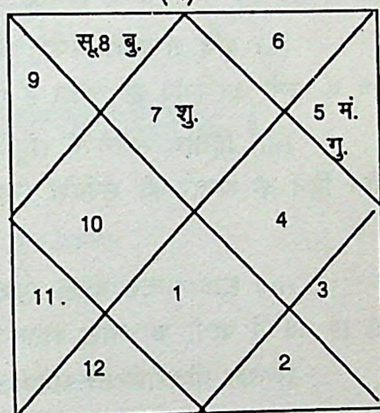
(ख) श्लोक 30 के अनुसार शुक्र की अधिष्ठित राशि का स्वामी बुध मंगल से युक्त है। 'रन्ध्राज्जामित्रगे' वाली बात नहीं है। इनका विवाह 23 वें वर्ष में हुआ। योग आधा ही घटित हो रहा है।

अनेक कुण्डलियों में मामूली अन्तर रहने पर भी विवाह की उम्र लगभग कथितानुसार ही पाई गई। अतः इन विवाह वर्षों में कोरी गप्प नहीं है। श्लोकोक्त 5.9.10.11 आदि वर्षों का तात्पर्य यदि 18 वर्ष से कम रख लिया जाए तो चमत्कारिक परिणाम निकलते हैं।

(ग)



(घ)



(ग) श्लोक 22 के अनुसार सप्तमेश शुभ राशि में है तथा शुक्र स्वक्षेत्री है। इनका विवाह मूँछों वाला होने से पहले ही हो गया था। यह एक राष्ट्रीय नेता की कुण्डली है।

(घ) इस कुण्डली में श्लोक 29 का योग पूरा घट रहा है, लेकिन इनका विवाह 35 वर्ष के लगभग हुआ था। श्लोकानुसार 13 वर्ष में होना सम्भव था। यह कुण्डली अपवाद मानी जा सकती है। ये एक व्यापारी हैं तथा घरेलू उत्तरदायित्वों के कारण स्वेच्छा से ही विलम्ब से विवाह किया था।

स्त्री मृत्यु समय :-

दारेशे नीचराशिस्थे शुक्रे रन्ध्रारिसंयुते ।
अष्टादशे त्रयस्त्रिंशे वत्सरे दारनाशनम् ।। 35 ।।
मदेशे नाशराशिस्थे व्ययेशे मंदराशिगे ।
तस्य चैकोनविंशब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ।। 36 ।।
कुटुम्ब स्थानगो राहुः कलत्रे भौमसंयुते ।
पाणिग्रहे च त्रिदिने सर्पदंष्टे वधूमृतिः ।। 37 ।।
रन्ध्रस्थानगते शुक्रे तदीशे सौरिराशिगे ।
द्वादशैकोनविंशाब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ।। 38 ।।

(i) यदि सप्तमेश नीच राशि में गया हो तथा शुक्र 6.8 में हो तो 18 या 33 वर्ष में पत्नी से वियोग होता है ।

(ii) यदि सप्तमेश अष्टम में हो तथा द्वादशेश सप्तम में हो तो 19 वर्ष में पत्नी का लोप हो जाता है ।

(iii) द्वितीय स्थान में राहु तथा सप्तम में मंगल हो तो विवाह से तीन दिन के अन्दर ही सर्पदंश (या विष प्रयोग) से वधू को कष्ट होता है ।

(iv) शुक्र अष्टम में हो तथा अष्टमेश शनि की राशि में हो तो 12 या 19 वर्ष में पत्नी का नाश होता है ।

लग्नेशे नीचराशिस्थे धनेशे निधनं गते ।
त्रयोदशे तु सम्प्राप्ते कलत्रस्य मृतिर्भवेत् ।। 39 ।।
शुक्राज्जामित्रगेचन्द्रेचन्द्राज्जामित्रगेबुधे ।
रन्ध्रेशे सुतभावस्थे प्रथमं दशमाब्दिकम् ।। 40 ।।
द्वाविंशे च द्वितीयं च त्रयस्त्रिंशे तृतीयकम् ।
विवाहं लभते मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ।। 41 ।।
षष्ठे च भवने भौमः सप्तमे राहु संस्थितिः ।
अष्टमे च यदा सौरिस्तस्य भार्या न जीवति ।। 42 ।।

(i) यदि लग्नेश नीच राशि में हो व द्वितीयेश अष्टम में हो तो 13वें वर्ष में पत्नी की मृत्यु होती है ।

(ii) शुक्र से सप्तम में चन्द्रमा व चन्द्रमा से सप्तम में बुध हो एवं अष्टमेश पंचम में हो तो जातक का पहला विवाह 10 वर्ष में, दूसरा 22 वें वर्ष में व तीसरा 33 वें वर्ष में होता है। इसमें विशेष संशय नहीं करना चाहिए।

(iv) षष्ठ में मंगल, सप्तम में राहु व अष्टम में शनि (क्रूर लग्नाधियोग) हो तो पत्नी जीवित नहीं रहती है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
सप्तमभावफलाध्याय एकोनविंशः ।। 19 ।।

20

।। अथायुर्भावफलाध्यायः ।।

दीर्घायुर्योग :–

आयुर्भावफलं चाथ कथयामि द्विजोत्तम ।।
आयुःस्थानाधिपः केन्द्रे दीर्घमायुः प्रयच्छति ।। 1 ।।
आयुः स्थानाधिपः पापैः सह तत्रैव संस्थितः ।
करोत्यल्पायुषं जातं लग्नेशोऽप्यत्र संस्थितः ।। 2 ।।
एवं हि शनिना चिन्ता कार्या तर्कैर्विचक्षण ! ।
कर्माधिपेन च तथा चिन्तनमायुषस्तथा ।। 3 ।।

हे द्विजवर मैत्रेय ! अब मैं (पराशर) आयुभाव का फल कहता हूं। यदि अष्टमेश केन्द्र में स्थित हो तो दीर्घायु होती है। यदि पणफर में हो तो मध्यायु तथा आपोक्लिम में हो तो अल्पायु––यह इसी तर्क से स्वयं स्पष्ट है।

यदि अष्टमेश बहुत से पापग्रहों के साथ अष्टम में हो तो अल्पायु होती है। यदि लग्नेश भी कई पापग्रहों से युक्त होकर अष्टम में हो तो भी अल्पायु योग होता है।

इसी पद्धति से शनि से भी विचार करें तथा दशमेश से भी विचार करना चाहिए। अर्थात् अष्टमेश, शनि व दशमेश केन्द्र में हों तो दीर्घायु,

बहुत पापयुक्त दृष्ट हों तो अल्पायु, पणफर में हों तो मध्यायु, आपोक्लिम में में हो तो अल्पायु होती है।

हमारे क्रमिक उदाहरण में अष्टमेश शनि त्रिकोण (पणफर) है। अतः मध्यायु। शनि ही अष्टमेश है। अतः शनि से भी मध्यायु तथा दशमेश मंगल भी पणफर में है अतः मध्यायु ही प्रतीत होती है।

षष्ठे व्ययेऽपि षष्ठेशो व्ययाधीशो रिपौ व्यये।
लग्नाष्टमे स्थितो वापि दीर्घमायुः प्रयच्छति।। 4।।
स्वस्थाने स्वांशके वापि मित्रेंऽशे मित्रमन्दिरे।
दीर्घायुषं करोत्येव लग्नेशोऽष्टमपः पुनः।। 5।।
लग्नाष्टमपकर्मेशमन्दाःकेन्द्रत्रिकोणयोः।
लाभे वा संस्थितास्तद्वत् दिशेयुर्दीर्घमायुषम्।। 6।।
एवं बहुविधा विद्वन्नायुर्योगाः प्रकीर्तिताः।
एषु यो बलवांस्तस्यानुसारादायुरादिशेत्।। 7।।

(i) यदि षष्ठेश 6.12 में हो, द्वादशेश 6.12 में हो, अथवा लग्न से अष्टम में हो तो दीर्घायु होती है। यह विपरीत राजयोग है। इसका विस्तार उत्तरकालामृत में देखें। अर्थात् 6.8.12 के स्वामी किसी भी प्रकार से इन्हीं भावों में हों तो दीर्घायु व सुख होता है।

(ii) यदि लग्नेश या अष्टमेश या दोनों ही स्वराशि, स्वनवांश, मित्रराशि मित्रनवांश में हों तो दीर्घायु करते हैं।

(iii) 1.8.10 भावेश व शनि केन्द्र त्रिकोण में या लाभ में हों तो दीर्घायु होती है।

(iv) इस प्रकार बहुत से आयुयोग होते हैं। जिनका संकेत मात्र यहाँ किया गया है। योगकारकों में जो सबसे बली हो, उससे बनने वाले योगानुसार आयु होगी।

लग्नेश, अष्टमेश, दशमेश, शनि व बृहस्पति, लग्न चन्द्र व अष्टमभाव ये आयु के उपकरण हैं। इनमें जो सबसे बली हो उससे आयु विचार होना चाहिए। हमारे क्रमिक उदाहरण में दशमेश मंगल त्रिकोण में स्वगृही है। अष्टमेश शनि पणफर में शत्रुक्षेत्री है। लग्नेश चन्द्रमा पक्षबली लेकिन आपोक्लिम में है। गुरु सममाव में मित्रराशि में शुभदृष्ट है। अतः जीवप्रदाता गुरु अनुकूल है। मंगल से दीर्घायु व शनि से मध्यायु व चन्द्र से अल्पायु है। सबसे बली मंगल है अतः दीर्घखण्ड की निचली सीमा आयु होगी। यह 65–75 वर्ष होती है। अतः इसी बीच में आयु होगी। दशान्तर्दशा

समन्वय से मृत्यु समय निश्चय द्वारा वास्तविक आयु निर्धारित की जा सकेगी ।

अल्पायुर्योग :–

अष्टमाधिपतौ केन्द्रे लग्नेशे बलवर्जिते ।
विंशद् वर्षाण्यसौ जीवेद् द्वात्रिशंत्परमायुषम् ।। 8 ।।
रन्ध्रेशे नीचराशिस्थे रन्ध्रेपापग्रहैर्युते ।
लग्नेशे दुर्बले जन्तोरल्पायुर्भवति ध्रुवम् ।। 9 ।।
रन्ध्रेशे पाप संयुक्ते रन्ध्रे पापग्रहैर्युते ।
व्यये क्रूरग्रहाक्रान्ते जातमात्रं मृतिर्भवेत् ।।10 ।।

(i) यदि अष्टमेश केन्द्र में हो व लग्नेश बलरहित हो तो 20 से 32 वर्ष के मध्य आयु होती है ।

(ii) अष्टमेश नीच में हो तथा अष्टम में पापग्रह हों, लग्नेश निर्बल हो तो जातक अल्पायु होता है ।

(iii) अष्टमेश के साथ पापग्रह हों, अष्टम में एकाधिक पापग्रह हों तथा द्वादश में पापग्रह हो तो पैदा होते ही मृत्यु होती है ।

केन्द्रत्रिकोणगाः पापाः शुभाः षष्ठाष्टगाः यदि ।
लग्ने नीचस्थरन्ध्रेशो जातः सद्यो मृतो भवेत् ।। 11 ।।
पंचमे पापसंयुक्ते रन्ध्रेशे पाप संयुते ।
रन्ध्रे पापग्रहैर्युक्ते स्वल्पमायुः प्रजायते ।। 12 ।।
रन्ध्रेशे रन्ध्रराशिस्थे चन्द्रेपापसमन्विते ।
शुभदृष्टिविहीने च मासान्ते च मृतिर्भवेत् ।। 13 ।।

(i) केन्द्र व त्रिकोण में पाप ग्रह हों, सारे शुभग्रह 6.8 में हों, लग्न में अष्टमेश नीच राशि में हो तो तुरन्त मृत्यु होती है ।

(ii) पंचम में पाप ग्रह, अष्टमेश पापयुक्त व अष्टम में पाप ग्रह हो तो स्वल्पायु होती है ।

(iii) अष्टमेश अष्टम में हो, चन्द्रमा पाप–युक्त–दृष्ट हो और शुभ ग्रह की दृष्टि योग न हो तो एक मास आयु होती है ।

पुनर्दीर्घायुर्योग :–

लग्नेशे स्वोच्चराशिस्थे चन्द्रे लाभसमन्विते ।
रन्ध्रस्थानगते जीवे दीर्घमायुर्न संशयः ।। 14 ।।

लग्नेशोऽतिबली दृष्टः केन्द्रसंस्थैः शुभग्रहैः ।

धनैः सर्वगुणैः सार्ध दीर्घमायुः प्रयच्छति ।। 15 ।।

यदि लग्नेश स्वराशि या स्वोच्च में हो एवं चन्द्रमा लाभ में, गुरु अष्टम में हो तो दीर्घायु निश्चय से होती है ।

लग्नेश बहुत बलवान् हो तथा केन्द्रगत शुभ ग्रहों से देखा जाता हो तो धन व सब गुणों के साथ दीर्घायु भी देता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामायुर्भावफलाध्यायो विंश ।। 20 ।।

21

।। अथ भाग्यभावफलाध्यायः ।।

भाग्यशाली योग :–

अथभाग्यभवं विप्र ! फलं वक्ष्ये तवाग्रतः ।

सबलो भाग्यपे भाग्ये जातो भाग्ययुतो नरः ।। 1 ।।

भाग्यस्थानगते जीवे तदीशे केन्द्रसंस्थिते ।

लग्नेशे बलसंयुक्ते बहुभाग्ययुतो भवेत् ।। 2 ।।

भाग्येशे बलसंयुक्ते भाग्ये भृगुसमन्विते ।

लग्नात् केन्द्रगते जीवे पिता भाग्यसमन्वितः ।। 3 ।।

अब मैं (पराशर) भाग्य भाव का फल विचार कहता हूँ। यदि भाग्येश बलवान् हो तथा नवम भाव में ही स्थित हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है ।

यदि भाग्यस्थान में बृहस्पति हो तथा भाग्येश केन्द्र में गया हो एवं लग्नेश वली हो तो मनुष्य बहुत भाग्यशाली होता है ।

यदि भाग्येश (नवमेश) बलवान् हो तथा नवम में शुक्र व केन्द्र में बृहस्पति हो तो मनुष्य का पिता बहुत भाग्यशाली होता है ।

निर्धन पिता के योग :–

भाग्यस्थानाद्द्वितीये वा सुखे भौमसमन्विते ।

भाग्येशे नीचराशिस्थे पिता निर्धन एव हि ।। 4 ।।

भाग्येशे परमोच्चस्थे भाग्यांशे जीवसंयुते ।
लग्नाच्चतुष्टये शुक्रे तत्पिता दीर्घजीवनः ।। 5 ।।
भाग्येशे केन्द्रभावस्थे गुरुणा च निरीक्षिते ।
तत्पितावाहनैर्युक्तो राजा वा तत्समो भवेत् ।। 6 ।।
भाग्येशे कर्मभावस्थे कर्मेशे भाग्यराशिगे ।
शुभदृष्टे धनाढ्यश्च कीर्तिमांस्तत् पिता भवेत् ।। 7 ।।

यदि भाग्य से द्वितीय (दशम) में या लग्न में मंगल हो तथा नवमेश नीच राशि में गया हो तो जातक का पिता निर्धन होता है।

यदि भाग्येश परमोच्च में गया हो तथा भाग्य भाव के नवांश में गुरु हो, लग्न से केन्द्र में शुक्र हो तो पिता दीर्घजीवी होता है।

यदि भाग्येश केन्द्र में हो तथा उसे बृहस्पति देखता हो तो जातक का पिता अनेक वाहनों से युक्त राजा या राजातुल्य होता है।

यदि भाग्येश दशम में व दशमेश नवम में हो तथा नवमेश को शुभ ग्रह देखें तो मनुष्य का पिता कीर्तिमान् व धनी होता है।

भाग्यशाली ग्रहनिर्णय :–

भाग्येशो भार्गवार्यौच द्वावेव भाग्यदायकौ ।
शुभभावगतौ स्यातां भाग्यवांछुभदृग्युते ।। 8 ।।
गुरुशुक्रौ च पाताले नवमे शुभराशिगे ।
भाग्येशे कोणकेन्द्रस्थे बहुभाग्ययुतो नरः ।। 9 ।।

नवमेश व गुरु शुक्र विशेषतया भाग्यशाली ग्रह होते हैं। यदि ये दोनों शुभ भाव—–केन्द्र त्रिकोण में गए हों या शुभ ग्रह से दृष्टयुत हों तो मनुष्य भाग्यशाली होता है।

गुरु व शुक्र 4.10 में हो तथा शत्रु ग्रह की राशि में गए हों, एवं नवमेश केन्द्रत्रिकोण में हो तो मनुष्य बहुत भाग्यशाली होता है।

पितृभक्ति योग :–

परमोच्चांशगे सूर्ये भाग्येशे लाभसंस्थिते ।
धर्मिष्ठोनृपवात्सल्यः पितृभक्तो भवेन्नरः ।। 10 ।।

लग्नात् त्रिकोणगे सूर्ये भाग्येशे सप्तमस्थिते ।

गुरुणा सहिते दृष्टे पितृभक्तिसमन्वितः ।। 11 ।।

यदि सूर्य परमोच्च में हो व भाग्येश एकादश में हो तो मनुष्य पितृभक्त, धार्मिक व राजा का प्रिय पात्र होता है ।

लग्न से त्रिकोण में सूर्य व नवमेश सप्तम में हो तथा गुरु की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य पितृभक्त होता है ।

वाहन व कीर्ति योग :–

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे ।

द्वात्रिंशत्परतो भाग्यं वाहनं कीर्तिसम्भवः ।। 12 ।।

यदि नवमेश द्वितीय भाव में हो तथा धनेश नवम में हो तो 32 वर्ष की अवस्था के बाद भाग्योदय, कीर्ति व वाहन होता है ।

पिता–पुत्र में शत्रुता :–

लग्नेशे भाग्यराशिस्थे षष्ठेशेन समन्विते ।

अन्योन्यवैरं ब्रुवते जनकः कुत्सितो भवेत् ।। 13 ।।

यदि लग्नेश नवम में हो तथा षष्ठेश साथ में हो तो पिता व पुत्र की परस्पर शत्रुता होती है तथा पिता निन्दित होता है ।

भिक्षावृत्ति योग :–

कर्माधिपेन सहितो विक्रमेशोऽपि निर्बलः ।

भाग्यपो नीचमूढस्थो योगो भिक्षाशनप्रदः ।। 14 ।।

यदि दशमेश व निर्बल तृतीयेश एक साथ हों तथा नवमेश नीच या अस्तंगत हो तो जातक भीख माँगकर निर्वाह करता है ।

पिता का अनिष्ट :–

षष्ठाष्टमव्यये भानू रन्ध्रेशे भाग्यसंयुते ।

व्ययेशे लग्नराशिस्थे षष्ठेशे पंचमे स्थिते ।। 15 ।।

जातस्य जननात्पूर्वं जनकस्य मृतिर्भवेत् ।

रन्ध्रस्थानगते सूर्यो रन्ध्रेशे भाग्यभावगे ।। 16 ।।

जातस्य प्रथमाब्देतु पितुर्मरणमादिशेत् ।

यदि सूर्य 6.8.12 में हो, भाग्य भाव में अष्टमेश एवं लग्न में व्ययेश तथा पंचम में षष्ठेश हो तो जातक के पैदा होने से पूर्व ही पिता की मृत्यु हो जाती है ।

यदि सूर्य अष्टम में हो व भाग्य भवन में अष्टमेश हो तो जातक के जन्म से एक वर्ष के भीतर ही पिता की मृत्यु हो जाती है।

व्ययेशे भाग्यराशिस्थे नीचांशे भाग्यनायके।। 17।।

तृतीये षोडशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत्।

लग्नेशे नाशराशिस्थे रन्ध्रेशे भानुसंयुते।। 18।।

द्वितीये द्वादशे वर्षे पितुर्मरणमादिशेत्।

भाग्याद् रन्ध्रगते राहौ भाग्याद्भाग्यगते रवौ।। 19।।

षोडशेऽष्टादशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत्।

यदि द्वादशेश नवम में हो, नवमेश नीच नवांश में गया हो तो तीसरे या सोलहवें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

यदि लग्नेश अष्टम में हो व अष्टमेश सूर्य के साथ हो तो दूसरे या बारहवें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

नवम से अष्टम अर्थात् चतुर्थ भाव में राहु, नवम से नवम अर्थात् पंचम में सूर्य हो तो 16 या 18 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

राहुणा सहिते सूर्ये चन्द्राद्भाग्यगते शनौ।। 20।।

सप्तमैकोनविंशाब्दे तातस्यमरणं ध्रुवम्।

भाग्येशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे भाग्यराशिगे।। 21।।

वेदाब्धिमितवर्षाच्च पितुर्मरणमादिशेत्।

रव्यंशे च स्थिते चन्द्रे लग्नेशे रन्ध्रसंयुते।। 22।।

पंचत्रिंशैकचत्वारिंशद्वर्षे मरणं पितुः।

यदि राहु व सूर्य साथ हों, चन्द्रमा से नवम स्थान में शनि हो तो 7 या 19 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

यदि नवमेश बारहवें भाव में तथा द्वादशेश भाग्य भवन में हो तो 44वें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

यदि चन्द्रमा सिंह नवांश में हो तथा लग्नेश अष्टम भाव में हो तो 35 या 41 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

पितृस्थानाधिपे सूर्ये मन्दभौमसमन्विते।। 23।।

पंचाशद्वत्सरे प्राप्ते जनकस्य मृतिर्भवेत्।

भाग्यात्सप्तमगे सूर्ये भ्रातृसप्तमगस्तमः।। 24।।

षष्ठेऽब्दे पंचविंशाब्दे पितुर्मरणमादिशेत्।

रन्ध्रजामित्रगे मन्दे मन्दाज्जामित्रगे रवौ।। 25।।

त्रिंशैकविंशे षड्विंशे जनकस्य मृतिर्भवेत् ।

यदि सूर्य दशमेश होकर शनि व मंगल से युक्त हो तो 50वें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है ।

यदि तृतीय में सूर्य व नवम में राहु हो तो 6 या 25वें वर्ष में यथासम्भव पिता की मृत्यु होती है ।

यदि 8.7 भाव में शनि व शनि से सप्तम में सूर्य हो तो 21,30 या 26 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है ।

भाग्येशे नीचराशिस्थे तदीशे भाग्यराशिगे ।। 26 ।।

षड्विंशेऽब्दे त्रयस्त्रिंशे पितुर्मरणमादिशेत् ।

एवं विचार्य बहुधा फलं प्राज्ञो विनिर्दिशेत् ।। 27 ।।

यदि नवमेश नीच में गया हो तथा नवमेश का नीचेश नवम में हो तो 26 या 33 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है ।

इस प्रकार अनेक प्रकार से विचार करके बुद्धिमान् दैवज्ञ को फलादेश करना चाहिए ।

भाग्योदय विचार :–

परमोच्चांशगे शुक्रे भाग्येशेन समन्विते ।

भ्रातृस्थाने शनियुते बहुभाग्याधिपो भवेत् ।। 28 ।।

गुरुणा संयुते भाग्ये तदीशे केन्द्रराशिगे ।

विंशद्वर्षात्परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ।। 29 ।।

परमोच्चांशगे सौम्ये भाग्येशे भाग्यराशिगे ।

षट्त्रिंशाच्च परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ।। 30 ।।

लग्नेशे भाग्यराशिस्थे भाग्येशे लग्नसंयुते ।

गुरुणा संयुते द्यूने धनवाहनलाभकृत् ।। 31 ।।

यदि शुक्र अपने परमोच्च में नवमेश के साथ हो तथा तृतीय में शनि हो तो मनुष्य बहुत भाग्यशाली होता है ।

यदि नवम स्थान में बृहस्पति हो तथा नवमेश केन्द्र में गया हो तो 20 वर्ष की अवस्था के बाद बहुत भाग्यशाली होता है ।

यदि बुध परमोच्च में हो तथा नवमेश नवम में हो तो 36 वर्ष के उपरान्त बहुत भाग्योदय होता है ।

यदि लग्नेश नवम में व नवमेश लग्न में हो तथा गुरु सप्तम में रहे तो मनुष्य को सदैव धन व वाहन का लाभ होता रहता है ।

दुर्भाग्य योग :–

भाग्यात्भाग्यगतो राहुस्तदीशे निधनं गते ।
भाग्येशेनीचराशिस्थे भाग्यहीनो भवेन्नरः ।। 32 ।।
भाग्यस्थानगते मन्दे शशिना च समन्विते ।
लग्नेशे नीचराशिस्थे भिक्षाशी च नरो भवेत् ।। 33 ।।

यदि पंचम स्थान में राहु तथा पंचमेश या भाग्येश अष्टम में नीचराशिगत हो तो मनुष्य भाग्यहीन होता है ।

यदि नवम में शनि तथा चन्द्रमा हों और लग्नेश नीच राशि में गया तो मनुष्य भीख माँगकर जीवन बिताता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां भाग्यभाव फलाध्याय एकविंशः ।। 21 ।।

22

।। अथ दशमभावफलाध्यायः ।।

यशस्वी योग –

सबले कर्मभावेशे स्वोच्चे स्वांशे स्वराशिगे ।
जातस्तातसुखेनाढ्यो यशस्वी शुभकर्मकृत् ।। 1 ।।
कर्माधिपो बलोनश्चेत् कर्मवैकल्यमादिशेत् ।
सैंहिःकेन्द्रत्रिकोणस्थो ज्योतिष्टोमादियागकृत् ।।2 ।।

यदि दशमेश बलवान् हो, अपने उच्च, अपनी राशि या उच्चनवांश में हो तो व्यक्ति को पिता का सुख मिलता है तथा वह शुभ कर्म करने वाला यशस्वी होता है ।

यदि दशमेश निर्बल हो तो जातक प्रायः कर्म करने में शिथिल होता है । यदि राहु त्रिकोण या केन्द्र में (विशेषतया केन्द्रेश त्रिकोण के साथ) हो तो मनुष्य ज्योतिष्टोमादि याग (धार्मिक कार्य) करने वाला होता है ।

शुभाशुभ कर्म निर्णय :–

कर्मेशे शुभसंयुक्ते शुभस्थानगते तथा ।
राजद्वारे च वाणिज्ये सदा लाभोऽन्यथाऽन्यथा ।। 3 ।।
दशमे पापसंयुक्ते लाभे पापसमन्विते ।
दुष्कृतिं लभते मर्त्यः स्वजनानां विदूषकः ।। 4 ।।
कर्मेशे नाशराशिस्थे राहुणा संयुते तथा ।
जनद्वेषी महामूर्खो दुष्कृतिं लभते नरः ।। 5 ।।
कर्मेशे द्यूनराशिस्थे मन्दभौमसमन्विते ।
द्यूनेशेपापसंयुक्ते शिश्नोदरपरायणः ।। 6 ।।

दशमेश यदि शुभ ग्रह से युक्त होकर शुभ स्थान में हो तो राजा व व्यापार से धनलाभ होता है। इसके विपरीत अशुभ स्थान (6.8.12) में हो तो राजा व व्यवसाय से धनहानि होती है।

यदि दशम स्थान में पाप ग्रह हो तथा लाभ में भी पाप ग्रह हो तो मनुष्य बुरे कार्य करने वाला तथा अपने लोगों को भी बदनाम करने वाला होता है।

यदि दशमेश अष्टम भाव में राहु के साथ हो तो मनुष्य जनता द्वेषी, महामूर्ख तथा कुकर्मपरायण होता है।

यदि दशमेश सप्तम में शनि मंगल के साथ हो तथा सप्तमेश पापयुक्त हो तो मनुष्य सदैव अपने पेट व अपने इन्द्रियसुख के लिए कुछ भी कर सकता है। अर्थात् धन व स्त्रीसुख के कारण वह कितना ही नीचे गिर सकता है।

सुख व विलास योग :–

तुंगराशिं समाश्रित्य कर्मेशे गुरुसंयुते ।
भाग्येशे कर्मराशिस्थे मानैश्वर्यप्रतापवान् ।। 7 ।।
लाभेशे कर्मराशिस्थे कर्मेशे लग्नसंयुते ।
तावुभौ केन्द्रगौ वापि सुख जीवनभाग् भवेत् ।। 8 ।।
कर्मेशे बलसंयुक्ते मीने गुरुसमन्विते ।
वस्त्राभरण सौख्यादि लभते नात्र संशयः ।। 9 ।।

यदि दशमेश अपने उच्च में बृहस्पति के साथ हो तथा नवमेश दशम में हो तो मनुष्य सम्मानित, ऐश्वर्यशाली व प्रतापी होता है।

यदि एकादशेश दशम स्थान में हो तथा दशमेश लग्न में हो अथवा दशमेश व लाभेश केन्द्र में ही हों तो मनुष्य सुख भोग से युक्त होता है।

यदि दशमेश बलवान् हो तथा बृहस्पति मीन राशि में हो तो मनुष्य वस्त्राभरणों से युक्त सुखी होता है।

अशुभ योग :–

लाभस्थानगते सूर्ये राहुभौमसमन्विते।
रविपुत्रेणसंयुक्ते कर्मच्छेत्ताभवेन्नरः।। 10।।

यदि सूर्य एकादश स्थान में राहु मंगल शनि से युक्त हो तो मनुष्य कर्मच्छेत्ता कार्यनाशक, स्वयं अपनी हानि करने वाला होता है।

सुकर्म योग :–

मीने जीवे भृगुयुते लग्नेशे बलसंयुते।
स्वोच्चराशिगते चन्द्रे सम्यज्ज्ञानार्थवान् भवेत्।। 11।।
कर्मेशे लाभराशिस्थे लाभेशे लग्नसंस्थिते।
कर्मराशिस्थिते शुक्रे रत्नवान् स नरो भवेत्।। 12।।
केन्द्रत्रिकोणगे कर्मनाथे स्वोच्चसमाश्रिते।
गुरुणासहिते दृष्टे स कर्मसहितो भवेत्।। 13।।
कर्मेशे लग्न भावस्थे लग्नेशेन समन्विते।
केन्द्रत्रिकोणगे चन्द्रे सत्कर्मनिरतो भवेत्।।14।।

यदि बृहस्पति मीन राशि में शुक्र के साथ हो, लग्नेश बलवान् हो तथा चन्द्रमा उच्च में हो तो मनुष्य विशेष ज्ञानवान्, धनवान् होता है।

यदि दशमेश एकादश में व एकादशेश लग्न में एवं शुक्र दशम में हो तो मनुष्य रत्नों से युक्त अर्थात् हीरे–मोती वाला होता है।

यदि दशमेश केन्द्रत्रिकोण में हो तथा वह अपने उच्च में हो एवं गुरु से युतदृष्ट हो तो मनुष्य सदैव कर्मशील होता है। अर्थात् सदैव व्यवसाय, व्यापार या रोजगार से युक्त होता है।

यदि दशमेश लग्न में लग्नेश के साथ हो तथा चन्द्रमा केन्द्रत्रिकोण में हो तो मनुष्य सदैव अच्छे कर्मो में रत रहता है।

कुकर्म योग :–

कर्मस्थानगते मन्दे नीचखेचरसंयुते।
कर्मेशे पापसंयुक्ते कर्महीनो भवेन्नरः।। 15।।

कर्मेशे नाशराशिस्थे रन्ध्रेशे कर्मसंस्थिते ।

पापग्रहेण संयुक्ते दुष्कर्मनिरतो भवेत् ।। 16 ।।

कर्मेशे नीचराशिस्थे कर्मस्थे पापखेचरे ।

कर्मभात्कर्मगे पापे कर्मवैकल्यमादिशेत् ।। 17 ।।

यदि दशमस्थान में शनि किसी नीचस्थ ग्रह के साथ हो तथा दशमगत नवांश राशि में कोई पाप ग्रह हो तो मनुष्य कर्महीन (आलसी या क्रिया रहित) बुरे कर्म करने वाला होता है ।

यदि दशमेश अष्टम में हो तथा अष्टमेश दशम में रहे, साथ में कोई पाप ग्रह भी हो तो मनुष्य बुरे कर्म करने वाला होता है ।

यदि दशमेश नीच राशि में हो, दशम स्थान में पाप ग्रह हो, दशम से दशम अर्थात् लग्न में पापग्रह हो तो मनुष्य कार्यहीन होता है ।

कीर्तिलाभ योग :–

कर्मस्थानगते चन्द्रे तदीशे तत् त्रिकोणगे ।

लग्नेश केन्द्रभावस्थे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ।। 18 ।।

लाभेशे कर्मभावस्थे कर्मेशे बलसंयुते ।

देवेन्द्रगुरुणा दृष्टे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ।। 19 ।।

कर्मस्थानाधिपे भाग्ये लग्नेशे कर्मसंयुते ।

लग्नात्पंचमगे चन्द्रे ख्यातनामा नरो भवेत् ।। 20 ।।

इति कर्मफलं प्रोक्तं संक्षेपेण द्विजोत्तम ! ।

ज्ञानकर्मेश सम्बन्धादूह्यमन्यदपि स्वयम् ।। 21 ।।

यदि दशम स्थान में चन्द्रमा, दशमेश त्रिकोण में व लग्नेश केन्द्र में हो तो मनुष्य सुप्रसिद्ध सत्कीर्तियुक्त होता है ।

यदि लाभेश दशम स्थान में हो, दशमेश बलवान् हो तथा बृहस्पति द्वारा देखा जाए तो मनुष्य सत्कीर्तियुक्त होता है ।

यदि दशमेश नवम में व लग्नेश दशम में हो, लग्न से पंचम में चन्द्रमा रहे तो मनुष्य बहुत प्रसद्धि होता है ।

इस प्रकार संक्षेप में दशम भाव का फल कहा है । लग्न दशम व लग्नेश दशमेश का परस्पर सम्बन्ध शुभ फल कारक है, इस नियमानुसार स्वबुद्धि से शुभ योगों की कल्पना करनी चाहिए । उदाहरणार्थ दशमेश मंगल दशम में व लग्नेश चन्द्रमा लग्न में रहे । दोनों दशम में, नवम में, लग्न में सर्वोत्तम फलदायक होंगे । दोनों किसी भी प्रकार से 1.9.10 के

अतिरिक्त केन्द्र त्रिकोण में रहें तो उत्तम, अशुभ भावों मे भी वर्गोत्तमी, शुभ राशि में शुभदृष्ट या उच्च, मूलत्रिकोण हों, तो भी मध्यम फलप्रद होंगे। मीन लग्न में गुरु लग्न में एक साथ दशमेश व लग्नेश होकर योगकारक होगा। इत्यादि विषय को विस्तार के साथ अपनी लघु पाराशरी विद्याधरी में लिख चुके हैं।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां दशम भावफलाध्यायो द्वाविंशः ।। 22 ।।

23

।। अथ लाभभावफलाध्यायः ।।

बहुलाभ योग :–

लाभाधिपो यदा लाभे तिष्ठेत् केन्द्रत्रिकोणयोः ।
बहुलाभं तदा कुर्यात् उच्चे सूर्यांशगोऽपि वा ।। 1 ।।
लाभेशे धनराशिस्थे धनेशे केन्द्रसंस्थिते ।
गुरुणा सहिते भावे गुरुलाभं विनिर्दिशेत् ।। 2 ।।
लाभेशे विक्रमे भावे शुभग्रहसमन्विते ।
षट्त्रिंशे वत्सरे प्राप्ते सहस्रद्वय निष्कभाक् ।। 3 ।।
केन्द्रत्रिकोणगे लाभनाथे शुभसमन्विते ।
चत्वारिंशे तु सम्प्राप्ते सहस्रार्धसुनिष्कभाक् ।4 ।।
लाभस्थाने गुरुयुते धने चन्द्रसमन्विते ।
भाग्यस्थानगे शुक्रे षट्सहस्राधिपो भवेत् ।। 5 ।।

यदि एकादशेश एकादश भाव में अथवा केन्द्रत्रिकोण में हो अथवा लाभेश उच्च में या सूर्यनवांश में हो तो बहुत लाभ योग होता है।

यदि एकादशेश द्वितीय में व द्वितीयेश केन्द्र में एवं गुरु केन्द्र में धनेश के साथ हो तो बहुत लाभदायक योग होता है।

यदि एकादशेश तृतीय में हो तथा शुभ ग्रह से युक्त हो तो 36 वर्ष का होते–होते दो हजार (सुवर्णमुद्रा) प्राप्त करता है। अर्थात् अच्छा लाभ होता है।

यदि लाभेश केन्द्र या त्रिकोण में और शुभ ग्रह से युक्त हो तो चालीसवें वर्ष में 500 निष्क (सुवर्ण मुद्राएँ) मिलती हैं।

यदि एकादश स्थान में बृहस्पति व धनस्थान में चन्द्रमा हो एवं शुक्र नवम में रहे तो 6000 निष्क (सुवर्ण मुद्राएँ) प्राप्त होती हैं।

मनु के अनुसार 'निष्क' शब्द का अर्थ चार मोहर या अशर्फी, सुवर्ण मुद्राएँ हैं। इसके अलावा एक सुवर्ण मुद्रा (16 मासे = 1 मुद्रा) की तोल भी रामायण की टीका में उल्लिखित है। केवल एक अशर्फी (8 मासे) या अठमासी का अर्थ भी प्रचलित है। आयुर्वेद ग्रन्थ शार्ङ्धर संहिता में 4 मासे का 1 निष्क कहा है। विष्णुगुप्त चाणक्य ने निष्क को दीनार का वाचक मानकर 32 रत्ती अर्थात् 4 मासे का ही माना है। अतः 4 x 4 = 16 मासे का निष्क रामायणकालीन होने से पुराना है तथा मनु के अनुसार 4 सुवर्ण मुद्रा को एक निष्क मानने से इसकी संगति भी लगती है। अतः 16 मासे का 1 निष्क तब 16 x 2000 = 3200 मासे सोना या 16 x 500 = 8000 मासे सोना अथवा 16 x 6000 = 96000 मासे सोना उक्त योगों में क्रमशः प्राप्त होता है। 1 मासा लगभग 1 ग्राम मानने पर 32000 ग्राम अर्थात् 32 किलो 8 किलो एवं 96 किलो सोना या उसका बाजार मूल्य, तदनुसार जातक की सम्पत्ति या संचित धन होता है। इस प्रकार बुद्धि से स्वयं निश्चय करना चाहिए।

अन्य लाभ योग :–

लाभाच्च लाभगे जीवे बुधचन्द्रसमन्विते।
धनधान्याधिपः श्रीमान् रत्नाद्याभरणैर्युतः।। 6।।
लाभेशे लग्नभावस्थे लग्नेशे लाभसंयुते।
त्रयस्त्रिंशे तु सम्प्राप्ते सहस्रनिष्क भाग्भवेत्।। 7।।
धनेशे लाभराशिस्थे लाभेशे धनराशिगे।
विवाहात्परतश्चैव बहुभाग्यं समादिशेत्।। 8।।
भ्रातृपे लाभराशिस्थे लाभेशे भ्रातृसंस्थिते।
भ्रातृभावाद्धनप्राप्ति दिव्याभरणसंयुतः।। 9।।

यदि एकादश से एकादश (अर्थात् नवम) भाव में गुरु, बुध, चन्द्र हो तो मनुष्य धनधान्य युक्त श्रीमान् रत्नों का स्वामी होता है।

एकादशेश यदि लग्न में बैठा हो, लग्नेश लाभ भवन में हो तो 33 वर्ष की अवस्था तक 1000 निष्क प्राप्त करता है।

धनेश लाभ भवन में व लाभेश धन में गया हो तो मनुष्य का भाग्य विवाह के बाद चमकता है।

यदि तृतीयेश एकादश में हो व एकादशेश तृतीय में गया हो तो भाइयों से धन, आभूषणादि की प्राप्ति होती है ।

लाभेशे नीचभेऽस्ते वा त्रिके पापसमन्विते ।

कृतेभूरिप्रयत्नेऽपि नैव लाभः कदाचन् ।। 10 ।।

यदि लाभेश नीचगत, अस्त या 6.8.12 में पापयुक्त हो तो खूब परिश्रम करने पर भी लाभ नहीं होता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां लाभ– भावफलाध्यायस्त्रयोविंशः ।। 23 ।।

24

।। अथ व्ययभावफलाध्यायः ।।

व्ययेशे शुभसंयुक्ते स्वभे स्वोच्चगतेऽपि वा ।

व्यये चाशुभसंयुक्ते शुभकार्ये व्ययस्तथा ।। 1 ।।

चन्द्रो व्ययाधिपो धर्म लाभमन्त्रेषु संस्थितः ।

स्वोच्चे स्वर्क्षे निजांशे वा लाभधर्मात्मजांशके ।। 2 ।।

दिव्यागारादिपर्यङ्कोदिव्यगन्धैकभोगवान् ।

परार्ध्यरमणो दिव्यवस्त्रमाल्यादिभूषणः ।। 3 ।।

यदि व्ययेश शुभ ग्रह से युक्त हो या स्वराशि, स्वोच्च में अथवा व्ययभाव में शुभ ग्रह हो तो मनुष्य का धन अच्छे कार्यो में खर्च होता है ।

यदि द्वादश भाव का स्वामी चन्द्रमा 9.5.11 में हो अथवा स्वोच्च, स्वराशि, स्वनवांश में हो अथवा 5.9.11 के नवांश में हो तो मनुष्य बहुत उच्चकोटि के स्वर्णिम सुखों से सम्पन्न घरवाला, शय्या स्थान वाला, स्वर्गीय सुखों को भोगने वाला, खूब विलासितापूर्ण जीवन बिताने वाला, बहुत कीमती वस्तुओं का स्वामी, सर्वोत्तम वस्त्रादि पहनने वाला होता है ।

एवं स्वशत्रुनीचांशेऽष्टमांशे वाऽष्टमे रिपौ ।

संस्थितः कुरुते जातं कान्तासुखविवर्जितम् ।। 4 ।।

व्ययाधिक्य परिक्लान्तं दिव्यभोगनिराकृतम् ।
सहि केन्द्रत्रिकोणस्थः स्वस्त्रियालंकृतः स्वयम् । । 5 । ।

यदि व्ययेश चन्द्रमा (या कोई भी ग्रह) अपने शत्रु के नवांश, नीच नवांश, अष्टम भाव व गत नवांश में हो या 6.8 भावों में हो तो मनुष्य को स्त्री का सुख प्रायः नहीं होता । ऐसा व्यक्ति अधिक खर्च से सदैव परेशान रहने वाला तथा विलास सुखभोग सामग्री से रहित जीवन बिताता है ।

यदि व्ययेश 1.4.7.10.5.9 में हो तो मनुष्य का अपनी स्त्री के साथ बहुत मेल या योग्य सम्बन्ध होता है ।

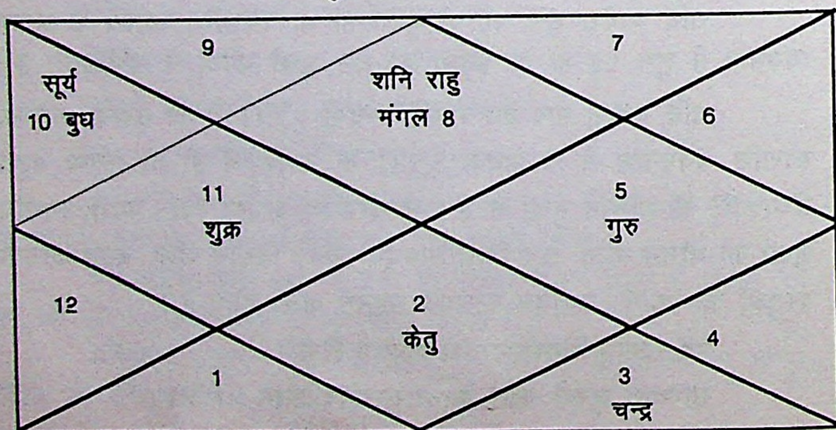
एवं लग्नात्फलं चैतदात्मनः परिकीर्तितम् ।
एवं भ्रात्रादि भावेषु तत्तत्सर्वं विचिन्तयेत् । । 6 । ।

इस प्रकार लग्न से विविध भावों का फल जातक के लिए बताया गया है । इसी पद्धति से भाई, पुत्र, पत्नी माता पिता आदि का भी फल जान लेना चाहिए ।

यदि भाई का फल जानना हो तो तृतीत भाव को लग्न तथा तृतीयेश को भ्रातृ लग्नेश मानकर इसी विधि से बारह भावों की कल्पना करें । तदनुसार जिस भाव में भावेश या शुभ ग्रह का स्वोच्चादिगत ग्रह हो, उस भाव की वृद्धि समझें ।

हमारे क्रमिक उदाहरण में जातक का कर्क लग्न है । जातक के पुत्रादि के विषय में फल जानना अमीष्ट है । तब पंचम भाव को पुत्र लग्न माना । पुत्रभाव में मंगल भावेश स्थित है । साथ में शनि राहु है ।

पुत्र लग्नोदाहरण



लग्न में लग्नेश, चतुर्थेश व उनके साथ राहु केतु बलवान् व शुभ हैं। केन्द्र में धनेश व पंचमेश होकर गुरु स्थित है, यह उक्त शुभता को बढ़ाता है। केन्द्र में शुक्र गुरु का दृष्टि सम्बन्ध उक्त फल को और बढ़ाता है। लेकिन भाग्येश चन्द्रमा अष्टम में बैठकर अशुभ है। शुभ ग्रह होने से आयुष्यवर्धक है। पुत्रों की पत्नियाँ शुक्र के कारण गुणवती व रूपवती रहेंगीं। इत्यादि प्रकार से समझना चाहिए।

प्रत्यक्ष व परोक्ष फलदाता ग्रह :–

दृश्यचक्रार्धगाः खेटाः प्रत्यक्ष फलदायकाः।
अदृश्यार्धगताः खेटाः परोक्षे फलदाः स्मृताः।। 7।।

लग्न के दृश्यभाग (सप्तम भाव स्पष्ट से आगे 8.9.10.11.12 व लग्न स्पष्ट तक) में स्थित ग्रह प्रत्यक्ष फल देने वाले हैं। अर्थात् अपनी शुभ स्थिति से विशेष फल देते हैं। इसके विपरीत अदृष्यार्धगत (लग्न स्पष्ट से 2.3.4.5.6 सप्तम भुक्तांश) ग्रह अप्रत्यक्ष रूप से फल देते हैं।

दृश्यार्ध की सभी राशियाँ उदित रहने से उनमें स्थित ग्रहों का फल प्रभाव जातक पर सीधा पड़ता है अर्थात् उनका प्रभाव विशेष पुष्ट होता है। जबकि अदृश्यभागगत ग्रह अदृश्य रहने से अपना अपेक्षया कम पुष्ट फल देते हैं।

नरकपतनादि योग :–

व्ययस्थानगतो राहुर्भौमार्किरविसंयुतः।
तदीशेऽप्यर्कसंयुक्ते नरके पतनं भवेत्।। 8।।
व्ययस्थानगते सौम्ये तदीशे स्वोच्चराशिगे।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे मोक्षः स्यान्नात्र संशयः।। 9।।

यदि द्वादश स्थान में सूर्य, राहु शनि मंगल हो तथा व्ययेश अस्त हो तो मनुष्य नरक में जाता है। अर्थात् पुनर्जन्म लेकर कष्ट भोगता है।

व्ययस्थान में शुभ ग्रह हो, व्ययेश अपनी उच्च राशि में हो तथा शुभ ग्रहों से युक्त दृष्ट हो तो मोक्ष हो जाता है। अर्थात् व्ययेश शुभ ग्रह होकर केवल शुभयुक्त या शुभदृष्ट हो तो भी शुभ होकर पुनर्जन्म में अच्छी स्थिति देता है। द्वादश स्थान से मोक्ष का विचार तथा सर्वविधव्यय का

विचार होता है। कर्मफल का व्यय (समाप्ति) अर्थात् कर्मबन्धन से मोक्ष ही मोक्ष है, तदनुसार द्वादश भाव से मरणोपरान्त स्थिति का विचार युक्त है।

व्ययेशे पापसंयुक्ते व्यये पापसमन्विते।
पापग्रहेण संदृष्टे देशाद्देशान्तरं गतः।। 10।।
व्ययेशे शुभराशिस्थे व्ययर्क्षे शुभसंयुते।
शुभग्रहेण संदृष्टे स्वदेशात् संचरो भवेत्।। 11।।

यदि द्वादशेश पापयुक्त हो और व्यय में पाप दृष्ट पाप ग्रह हो तो मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान या देशान्तर में घूमता रहता है अर्थात् स्थिर जीवन नहीं बिताता।

यदि द्वादशेश शुभ ग्रह की राशि में गया हो, द्वादश में कोई शुभ ग्रह शुभदृष्ट हो तो अपने देश में ही भ्रमणशील रहता है।

पापकर्म से धनार्जन :–

व्यये मन्दादिसंयुक्ते भूमिजेन समन्विते।
शुभदृष्टे न संप्राप्तिः पापमूलाद्धनार्जनम्।। 12।।
लग्नेशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे लग्नसंस्थिते।
भृगुपुत्रेण संयुक्ते धर्ममूलाद्धनव्ययः।। 13।।

यदि द्वादश भाव में शनि, राहु के साथ मंगल हो तथा शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो पापकार्यो से धनलाभ होता है।

यदि लग्नेश द्वादश में व द्वादशेश लग्न में हो, शुक्र से व्ययेश का योग हो तो धार्मिक कार्यो में धन का व्यय होता है।

'धार्मिक कार्यो में धनव्यय तभी होगा जब व्यक्ति बहुत धनी हो तथा वैचारिक स्वच्छता रहे। अतः अप्रत्यक्ष रूप से इस योग में व्यक्ति की सन्मार्ग से आय व सत्कार्यो में धनव्यय बता दिया है। इसी के आधार पर बाद के ग्रन्थकारों (उत्तरकालामृत व भावार्थरत्नाकरादि) ने द्वादश में शुभ राशि (विशेषतया केवल शनि की राशि नवांश को छोड़कर) में स्थित शुक्र का योग या दृष्टि शुभफल व धनप्रद कही है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
व्ययभावफलाध्यायश्चतुर्विंशः।। 24।।

25

।। अथ भावेशफलाध्यायः ।।

लग्नेश का द्वादशभाव फल :–

लग्नेशे लग्नगे देहसुखभाक् शत्रु विक्रमी ।

मनस्वी चंचलश्चैव द्विभार्यः परगोऽपि वा ।। 1 ।।

लग्नेशे धनगो बालो लाभवान् पण्डितः सुखी ।

सुशीलो धर्मविन्मानी बहुदारो गुणैर्युतः ।। 2 ।।

लग्नेशे सहजे जातः सिंहतुल्यपराक्रमी ।

सर्वसम्पद्युतोमानी द्विभार्यो मतिमान् सुखी ।। 3 ।।

लग्नेशे सुखगे बालः पितृमातृसुखान्वितः ।

बहुभ्रातृयुतः कामी गुणरूपसमन्वितः ।। 4 ।।

लग्नेशे सुतगे जन्तोः सुतसौख्यं च मध्यमम् ।

प्रथमापत्यनाशः स्यान् मानी क्रोधी नृपप्रियः ।। 5 ।।

लग्नेशे षष्ठगे जातो देहसौख्यविवर्जितः ।

पापाढ्ये शत्रुतः पीड़ा सौम्यदृष्टिविवर्जितः ।। 6 ।।

(i) लग्नेश लग्न में हो तो मनुष्य शरीर से सुखी, शुभ कार्यो में श्रम करने वाला, खुद्दार, स्वाभिमानी, चंचल विचार वाला, दो पत्नियों वाला, फिर भी परस्त्रीगामी होता है ।

(ii) द्वितीय में लग्नेश रहने से जातक लाभ पाने वाला, विद्वान, सुखी, सुशील, धर्मवेत्ता, मानयुक्त या स्वाभिमानी, अनेक स्त्रियों वाला व गुणी होता है ।

(iii) तृतीयस्थ लग्नेश से सिंहवत् पराक्रमी, सब सम्पत्तियों से युक्त, अभिमानी, दो पत्नियों वाला, बुद्धिमान व सुखी होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ लग्नेश से माता–पिता के सुख से युक्त, अनेक भाइयों वाला, कामुक रूपवान्, गुणी होता है ।

(v) लग्नेश पंचम में हो तो मनुष्य को पुत्र का सुख मध्यम सन्तोषजनक होता है, उसकी पहली सन्तान अल्पायु होती है तथा वह मानी, क्रोधी व राजमान्य होता है ।

(vi) षष्ठस्थ लग्नेश से शरीर सुख से रहित, पापयुक्त भी हो तो शत्रुओं से भय व पीड़ा होती है। यदि साथ में शुभ ग्रह हो तो अशुभ फल कम होता है।

लग्नेशे सप्तमे पापे भार्या तस्य न जीवति।
शुभेऽटनो प्रसिद्धो वा विरक्तो वा नृपोऽपि वा।।7।।
लग्नेशेऽष्टमगे जातः सिद्धविद्याविशारदः।
रोगी चौरो महाक्रोधी द्यूती च परदारगः।।8।।
लग्नेशे भाग्यगे जातो भाग्यवांजनवल्लभः।
विष्णुभक्तः पटुर्वाग्मी दारपुत्रधनैर्युतः।।9।।
लग्नेशे दशमे जातः पितृसौख्यसमन्वितः।
नृपमान्यो जने ख्यातः स्वार्जित स्वो न संशय।।10।।
लग्नेशे लाभगे जातः सदा लाभसमन्वितः।
सुशीलः ख्यातकीर्तिश्च बहुदारगुणैर्युतः।।11।।
लग्नेशे व्ययभावस्थे देहसौख्यविवर्जितः।
व्यर्थव्ययी महाक्रोधी शुभेक्षितयुते नहि।।12।।

(i) यदि लग्नेश सप्तम में हो तथा वह पापी ग्रह हो तो भार्या के लिए कष्टकारक है। यदि शुभ लग्नेश सप्तम में हो तो भ्रमणशील या प्रसिद्ध या विरक्त या राजा होता है।

(ii) अष्टम में लग्नेश हो तो मनुष्य की रुचि व कौशल सिद्ध (तन्त्र–मन्त्र जादूगरी अथवा गुप्त विद्या में) होता है। वह प्रायः रोगी या चोर या महा क्रोधी या जुआरी या परस्त्रीगामी होता है।

(iii) नवम में लग्नेश हो तो मनुष्य भाग्यवान्, लोकप्रिय, विष्णुभक्त, पटु, वाग्मी, स्त्री, पुत्र, धन से युक्त होता है।

(iv) यदि लग्नेश दशम में हो तो मनुष्य प्रायः पिता के सुख (सहायता) से वंचित रहता है। वह राजमान्य, प्रसिद्ध, अनेक गुणों व स्त्री सुख युक्त होता है।

(vi) द्वादशस्थ लग्नेश से मनुष्य के शरीर सुख में अल्पता, व्यर्थ खर्च करने वाला, क्रोधी स्वभाव होता है। यदि शुभ ग्रह से युत हो तो उक्त फल नहीं होता।

धनेश फल :–

धनेशे लग्नगे जातः स्वकुटुम्बस्य कण्टकः।
धनवान् निष्ठुरः कामी पुत्रवान् परकार्यकृत्।।13।।

धनेशे धनगे जातो धनवान् गर्वसंयुतः ।
द्विभार्यो बहुभार्यो वा सुतहीनः प्रजायते ।। 14 ।।
धनेशे सहजे जातो विक्रमी मतिमान् गुणी ।
कामी लोभी शुभाढ्ये च पापाढ्ये देवनिन्दकः ।। 15 ।।
धनेशे सुखभावस्थे सर्वसम्पत् समन्वितः ।
गुरुणा संयुते स्वोच्चे राजतुल्यो नरो भवेत् ।। 16 ।।
धनेशे सुतभावस्थे जातो धनसमन्वितः ।
धनोपार्जनशीलाश्च जायन्ते तत्सुता अपि ।। 17 ।।
धनेशे रिपुभावस्थे सशुभशत्रुतो धनम् ।
सपापे शत्रुतो हानिर्जङ्घावैकल्यवान् भवेत् ।। 18 ।।

(i) लग्नस्थ धनेश से मनुष्य स्वकुटुम्ब से विद्रोह करने वाला, धनी, कठोर हृदय, कामुक, पुत्रवान् तथा दूसरों के काम आने वाला होता है।

(ii) धनेश धन में ही हो तो मनुष्य गर्वीला, धनी तथा दो या कई पत्नियों वाला (अथवा समयानुसार बड़े परिवार वाला) पुत्रहीन होता है।

(iii) तृतीयस्थ शुभ धनेश से पराक्रमी, बुद्धिमान्, गुणवान्, कामी, लोभी होता है। यदि पापी धनेश तृतीयस्थ हो तो (देवताओं की) निन्दा करने वाला होता है।

(iv) चतुर्थ भावस्थ धनेश से सर्वसम्पदाओं का निधान होता है। यदि द्वितीयेश गुरु से युक्त होकर चतुर्थ में उच्चस्थ हो तो मनुष्य राजा के समान होता है।

(v) द्वितीयेश पंचमस्थ हो तो मनुष्य धनी तथा धनार्जनतत्पर पुत्रों का पिता होता है।

(vi) धनेश षष्ठ में हो तथा शुभ ग्रह से युक्त हो तो शत्रुओं से धनादि लाभ होता है। यदि पापयुक्त हो तो शत्रुओं से हानि व पिण्डलियों में थोड़ी विकलता (यथासम्भव कमजोरी, पतलापन आदि) होती है।

धनेशे सप्तमे वैद्यः परदाररतः पुमान् ।
पापेक्षितयुते तस्य भार्या स्याद् व्यभिचारिणी ।। 19 ।।
धनेशेऽष्टमगे जातो भूरि भूमिधनैर्युतः ।
पत्नीसुखं भवेत्स्वल्पं ज्येष्ठभ्रातृसुखं न हि ।। 20 ।।
धनेशे धर्मगे तीर्थव्रतधर्मरतः पटुः ।
बाल्ये रोगी सुखी पश्चाद् धनवानुद्यमी सदा ।। 21 ।।

धनेशे कर्मगे जातः कामी मानी च पण्डितः ।
बहुदारधनैर्युक्तः किंच पुत्रसुखोज्झितः ।। 22 ।।
धनेशे लाभभावस्थे सर्वलाभसमन्वितः ।
सदोद्योगयुतो मानी कीर्तिमान् जायते नरः ।। 23 ।।
व्ययगे धनभावेशे साहसी धनवर्जितः ।
जीविका नृपसान्निध्याज्ज्येष्ठापत्यसुखं न हि ।। 24 ।।

(i) यदि धनेश सप्तम में पाप ग्रह से युत दृष्ट हो तो पत्नी व्यभिचारिणी होती है । स्वयं पुरुष भी परस्त्रीरत होता है । प्रायः वैद्यक में रुचि होती है । यदि शुभ युक्त दृष्ट हो तो व्यभिचारादि फल नहीं होता ।

(ii) अष्टमस्थ धनेश से मनुष्य बहुत धनसम्पत्ति वाला, पत्नी सुख कम पाने वाला तथा बड़े भाई के सुख से रहित होता है ।

(iii) नवमस्थ धनेश से तीर्थ, व्रत, धर्म में रत, कार्य–पटु, बचपन में रोगी, बाद में सुखी तथा सदैव परिश्रम, प्रयत्न करने वाला, धनी होता है ।

(iv) धनेश दशमस्थ हो तो मनुष्य कामी, स्वाभिमानी, विद्वान्, बहुत धनी, बड़े परिवार वाला, लेकिन पुत्र सुख में कमी पाने वाला होता है ।

(v) एकादशस्थ धनेश से सभी लाभ पाने वाला, सदैव परिश्रम शील, मानी कीर्ति युक्त होता है ।

(vi) व्ययस्थ धनेश से साहसी, धनहीन, राजा के निकट से रोजगार कमाने वाला बड़े पुत्र के सुख से रहित होता है ।

तृतीयेश भाव फल :–

तृतीयेशे विलग्नस्थे स्वभुजार्जितवित्तवान् ।
सेवाज्ञः साहसी जातो विद्याहीनोऽपि बुद्धिमान् ।। 25 ।।
द्वितीये सहजाधीशे गुदाभंजनिको गुरुः ।
स्वल्पारम्भी सुखी न स्यात् परस्त्रीधनलोलुपः ।। 26 ।।
तृतीयेशे तृतीयस्थे भ्रातृपुत्रसुखान्वितः ।
धनयुक्तो महाहृष्टो भुनक्ति सुखमद्भुतम् ।। 27 ।।
तृतीयेशे सुखे कर्मे पंचमे वा सुखी नरः ।
क्रूरस्त्रीको धनाढ्यश्च मतिमान् पुत्रसंयुतः ।। 28 ।।
षष्ठभावे तृतीयेशे भ्रातृशत्रुर्महाधनी ।
मातुलैश्च समं वैरं मातुलानीप्रियो नरः ।। 29 ।।

तृतीयेशेऽष्टमे द्यूने राजसेवारतो मृतः ।

दासो वा शैशवे दुःखी चौरो वा जायते नरः ।। 30 ।।

नवमे सहजाधीशे पितुः सुखविवर्जितः ।

स्त्रीभिर्भाग्योदयस्तस्य पुत्रादि सुख संगतः ।। 31 ।।

लाभगे सहजेशे तु व्यापारे लाभवान् सदा ।

विद्याहीनोऽपि मेधावी साहसी परसेवकः ।। 32 ।।

व्ययस्थे सहजाधीशे कुकार्ये व्ययकृज्जनः ।

पिता तस्य भवेत् क्रूरः स्त्रीभिर्भाग्योदयी सदा ।। 33 ।।

(i) लग्नस्थ तृतीयेश से मनुष्य अपनी शक्ति से धन कमाने वाला, सेवाचतुर, साहसी, विद्याहीन होते हुए भी बुद्धिमान् होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ तृतीयेश से मनुष्य गुदामैथुन करने वाला, मोटा, छोटी शुरूआत करने वाला, सुख से रहित, दूसरों की नारी व धन की कामना करने वाला होता है ।

(iii) तृतीयस्थ तृतीयेश से भाई, पुत्रादि से संयुक्त, धनी, प्रसन्नचित्त, विविध सुखों को भोगने वाला होता है ।

यहाँ 'भुनक्ति' शब्द को आर्ष प्रयोग मानना चाहिए । अन्यथा 'भुङ्क्ते पाठ ठीक था ।

(iv) यदि तृतीयेश 4.5.10 भाव में हो तो मनुष्य सुखी, धनी, बुद्धिमान्, पुत्रवान् लेकिन क्रूर स्त्री वाला होता है ।

(v) षष्ठस्थ तृतीयेश से भाइयों से वैर, महाधनी, मामाओं से शत्रुता व मामी से प्यार रहता है ।

(vi) तृतीयेश 7.8 में हो तो मनुष्य राजकीय सेवा करने वाला, राजसेवा में ही मरने वाला, दास, बचपन में सुखी या चोर होता है ।

(vii) नवमस्थ तृतीयेश से पिता के सुख से रहित, स्त्री के कारण भाग्योदय पाने वाला, पुत्रादि के सुख से युक्त होता है ।

(viii) तृतीयेश एकादश भाव में हो तो व्यापार में सदा लाभ कमाने वाला, कम पढ़ा–लिखा होते हुए भी बुद्धिमान्, साहसी व परायों के काम आने वाला होता है ।

(ix) व्ययस्थ तृतीयेश से कुकार्यो में धन व्यय करने वाला, क्रूर पिता का पुत्र तथा स्त्री के कारण भाग्योदयी होता है ।

चतुर्थेश फल :–

सुखेशे लग्नगे जातो विद्यागुण विभूषितः ।

भूमिवाहन संयुक्तो मातुः सुखसमन्वितः ।। 34 ।।

सुखेशे धनभावस्थे भोगी सर्वधनान्वितः ।
कुटुम्बसहितो मानी साहसी कुहुकान्वितः ।। 35 ।।
सुखेशे सहजस्थे च विक्रमी भृत्यसंयुतः ।
उदारो गुणवान्दाता धनवान् नित्यरोगवान् ।। 36 ।।
सुखेशे सुखगे नित्यं मानी सर्वधनान्वितः ।
चतुरः शीलवान् मन्त्री ज्ञानी सौख्यसमन्वितः ।। 37 ।।
तुर्येशे पंचमे भाग्ये सुखी सर्वजनप्रियः ।
देवभक्तिरतोमानी सद्गुणवित्तसंयुतः ।। 38 ।।
सुखेशे शत्रुभावस्थे मातुः सौख्यविवर्जितः ।
क्रोधी चौरोऽभिचारी च कामचारी च दुर्मनाः ।। 39 ।।
सुखेशे सप्तमे बालो बहुविद्यासमन्वितः ।
पित्रार्जित धन त्यागी सभायां मूकवद्भवेत् ।। 40 ।।

(i) सुखेश लग्न में हो तो मानव विद्यावान्, गुणी, जमीन जायदाद वाला, वाहनयुक्त, माता का सुख पाने वाला होता है।

(ii) द्वितीयस्थ चतुर्थेश से मनुष्य भोग भोगने वाला, सब प्रकार के धनों (पुत्र धन, यशोधन, सुखधन, संचित धन, पशु धन वाहन, भूमि धन आदि), कुटुम्ब वाला, मानवान्, साहसी, लेकिन मायावी या दिखावा करने वाला होता है।

(iii) तृतीयस्थ चतुर्थेश से मनुष्य पराक्रमी, नौकर–चाकरों वाला, उदार, गुणवान्, दाता, धनी, लेकिन सदैव किसी न किसी रोग से पीड़ित रहता है।

(iv) चतुर्थ में चतुर्थेश हो तो मनुष्य मानी, सब धन से युक्त, चतुर, चरित्रवान, अच्छा सलाहकार, ज्ञानी व सुखी होता है।

(v) चतुर्थेश 5.9 में हो तो सुखी, लोकप्रिय, देवताओं में भक्ति रखने वाला, स्वाभिमानी, अच्छे गुणों व धन से युक्त होता है।

(vi) चतुर्थेश षष्ठ में हो तो माता के सुख से रहित, क्रोधी, चोर, तान्त्रिक, दूषित क्रियाएँ (मारणादि) करने वाला, स्वेच्छाचारी व दुर्विचार वाला होता है।

(vii) चतुर्थेश सप्तम में हो तो मनुष्य बहुत विद्यावान, पिता के धन का स्वेच्छा से त्याग करने वाला, सभा में बहुत कम बोलने वाला होता है।

सुखेशे व्ययरन्ध्रस्थे गृहादिसुखवर्जितः ।

पित्रोः सुखं भवेत्स्वल्पं जातः क्लीबसमो भवेत् ।। 41 ।।

सुखेशे कर्मभावस्थे राजमान्यः सुखी नरः ।

रसायनी महाह्रष्टो भोगी च विजितेन्द्रियः ।। 42 ।।

सुखेशे लाभगे जातो नित्यरोगभयान्वितः ।

उदारश्च गुणज्ञश्च दाता स्वार्जितवित्तवान् ।। 43 ।।

(i) चतुर्थेश 8.12 में हो तो मनुष्य घर अर्थात् आवास के सुख से रहित होता है । माता–पिता का कम सुख पाने वाला तथा रतिक्रिया में निर्बल होता है ।

(ii) चतुर्थेश दशम भाव में हो तो मनुष्य राजमान्य, सुखी, रसायन (कायाकल्प की विशेष पुष्टिकारक दवाएँ) जानने वाला अथवा रसायन से सदैव जवान रहने वाला, बहुत प्रसन्नचित्त, भोगवान लेकिन जितेन्द्रिय होता है ।

(iii) चतुर्थेश यदि एकादश स्थान में हो तो मनुष्य सदैव रोग के भय से पीड़ित, उदार, गुणवान, गुणज्ञ, दानी तथा स्वपरिश्रम से धनी होता है ।

पंचमेश फल :–

सुतेशे लग्नगे जातो विद्वान् पुत्रसुखान्वितः ।

कदर्योवक्रचित्तश्चद्रव्यसंग्रहतत्परः ।।44 ।।

सुतेशे धनभावस्थे बहुपुत्रो धनान्वितः ।

कुटुम्बपोषको मानी लोकवल्लभ्यसंयुतः ।। 45 ।।

सुतेशे सहजस्थे तु जायते सोदरप्रियः ।

मायापरो द्विजिह्वश्च स्वकार्यनिरतः सदाः ।। 46 ।।

सुतेशे मातृभवने चिरमातृसुखी धनी ।

लक्ष्मीयुक्तः सुबुद्धिश्च सचिवोऽप्यथवा गुरुः ।। 47 ।।

सुतेशः पंचमे यस्य तस्य पुत्रा भवन्ति हि ।

क्षणिकः क्रूरभाषी च धार्मिको मतिमान् भवेत् ।। 48 ।।

(i) पंचमेश लग्न में हो तो मनुष्य विद्वान्, पुत्रवान्, कुटिल, स्वार्थी, होता है । सदैव धनसंग्रह में लगा रहता है ।

(ii) पंचमेश द्वितीय में हो तो अनेक पुत्रों वाला, धनी, बड़े परिवार का पालन करने वाला, स्वाभिमानी, लोकप्रिय होता है।

(iii) पंचमेश तृतीय में हो तो मनुष्य भाई का प्यारा, मायावी, चुगलखोर, सदैव स्वार्थसिद्धि में लगा रहने वाला होता है।

(iv) पंचमेश चतुर्थ में हो तो लम्बे समय तक माता का सुख पाने वाला, धनी, लक्ष्मीयुक्त, सुबुद्धि, मन्त्री या गुरु होता है।

(v) पंचम में पंचमेश रहने से कई पुत्र होते हैं। ऐसा व्यक्ति क्षण में रुष्ट व क्षण में तुष्ट, कठोरभाषी, धार्मिक व बुद्धिमान् होता है।

सुतेशे रिपुभावस्थे पुत्रः शत्रुसमो भवेत्।
मृतपुत्रो ग्राह्यपुत्रो धनपुत्रोऽथवा भवेत्।। 49।।
सुतेशे कामगे मानी सर्वधर्मसमन्वितः।
तुंगयष्टिः सुपुत्रश्च तेजस्वी भक्तिमान् नरः।। 50।।
सुतेशे रन्ध्रगे जातः स्वल्पपुत्रसुखान्वितः।
कासश्वासी च क्रोधी च, विषवैद्यो धनान्वितः।। 51।।
सुतेशे नवमे पुत्रो भूपो वा भूपसन्निभः।
स्वयं वा ग्रन्थकर्ता च पुत्रः स्यात्कुलदीपकः।। 52।।
दशमस्थे सुतेशे च राजयोगी ससन्ततिः।
अनेक सुखभोगी स्यात् विख्यातो भुवि मानवः।। 53।।
सुतेशे भवभावस्थे पण्डितो जनवल्लभः।
ग्रन्थकर्ता महादक्षो बहुपुत्रधनान्वितः।। 54।।
व्ययगे पंचमाधीशे जातः पुत्र सुखोज्झितः।
शुभे शुभश्च संयुक्ते भक्तिमान् अल्पपुत्रवान्।। 55।।

(i) यदि पंचमेश सप्तम भाव में हो तो मनुष्य स्वाभिमानी, धार्मिक विचारों वाला, धर्मपालक, मजबूत शरीर वाला, सुपुत्रवान्, तेजस्वी व भक्तिमान् होता है।

(ii) यदि पंचमेश अष्टम में हो तो पुत्र सुख में अल्पता, खाँसी या श्वास रोग, क्रोध, रासायनिक चिकित्सक (डॉक्टर) व धनी होता है।

(iii) यदि पंचमेश नवम में हो तो पुत्र राजा या राजतुल्य होता है। अथवा व्यक्ति स्वयं ग्रन्थकार तथा उसका पुत्र कुलदीपक होता है।

(iv) पंचमेश दशम में हो तो मनुष्य को राजयोग व सन्तान सुख होता है। वह अनेक सुख भोगने वाला, प्रसिद्ध होता है।

(v) पंचमेश एकादश भाव में हो तो मनुष्य विद्वान्, लोकप्रिय, ग्रन्थकर्त्ता, अति दक्ष एवं बहुत पुत्रों वाला व धनी होता है।

(vi) पंचमेश द्वादशस्थ हो तो मनुष्य को पुत्र या सन्तान का सुख नहीं होता है। यदि शुभ पंचमेश हो या शुभ युक्त हो तो भक्तिमान् व पुत्रवान् होता है।

षष्ठेश भाव फल :–

षष्ठेशे लग्नगे जातो रोगवान् कीर्तिसंयुक्तः।
आत्मशत्रुर्धनी मानी साहसी गुणवान् नरः।। 56।।
षष्ठेशे धनभावस्थे साहसी कुलविश्रुतः।
परदेशी, सुखी, वक्ता स्वकर्मनिरतः सदा।। 57।।
षष्ठेशे सहजक्षेत्रस्थे क्रोधी संरक्तलोचनः।
भ्राता शत्रुसमस्तस्य भृत्यश्चोत्तरदायकः।। 58।।
षष्ठेशे सुखभावस्थे मातुरल्पसुखं भवेत्।
मनस्वी पिशुन द्वेषी चलचित्तोऽतिवित्तवान्।। 59।।
सुतंगः षष्ठभावेशः चलं तस्य धनादिकम्।
दयायुक्तः सुखी, सौम्यः स्वकार्ये चतुरो महान्।। 60।।
षष्ठगे षष्ठभावेशे बन्धुभिः शत्रुता भवेत्।
परैर्मैत्री सुखं मध्यं धनं मानो धनो भवेत्।। 61।।

(i) षष्ठेश लग्न में हो तो रोगी, ख्यातनामा, स्वयं अपनी हानि करने वाला, धनी, स्वाभिमानी, साहसी व गुणी होता है।

(ii) षष्ठेश द्वितीय में हो तो साहसी, अपने कुल में अग्रगण्य, परदेश में वास करने वाला, सुखी, उत्तम वक्ता, सदैव कार्यरत रहता है।

(iii) षष्ठेश तृतीय में हो तो मनुष्य क्रोधी, लाल आँखों वाला, लेकिन अप्रतापी, नौकरों को भी वश में न रख सकने वाला, भाई भी शत्रु के समान होता है।

(iv) षष्ठेश चतुर्थ में हो तो माता का सुख कम, स्वाभिमान की अधिकता, चुगलखोर, द्वेषभाव रखने वाला, चंचल मन वाला, अति धनी होता है।

(v) षष्ठेश पंचम में हो तो उसका धन चंचल होता है। वह दया युक्त, सुखी, सौम्य स्वभाव वाला, अपने कार्य में अति चतुर होता है।

(vi) षष्ठेश षष्ठ में हो तो अपने ही बन्धुओं से शत्रुता होती है। दूसरों से मैत्री भाव, सुख मध्यम, धन व घमंड अधिक होता है।

षष्ठेशे दारभावस्थे जातो दारसुखोज्झितः।
कीर्तिमान् गुणवान् मानी साहसी धनसंयुतः।। 62।।
षष्ठेशेऽष्टमगे जातो रोगी शत्रुर्मनीषिणाम्।
परद्रव्याभिलाषी च परदाररतोऽशुचिः।।63।।
नवमे रिपुभावेशः काष्ठपाषाणविक्रयी।
व्यवहारे क्वचिद् हानिः क्वचिद् वृद्धिश्च जायते।। 64।।
षष्ठेशे दशमस्थे तु साहसी कुलविश्रुतः।
अभक्तश्च पितुर्वक्ता विदेशे च सुखी भवेत्।। 65।।
षष्ठेशे लाभभावस्थे नरः कीर्तियुतो भवेत्।
गुणवान् मानवान् वीरः किन्तु पुत्रसुखोज्झितः।। 66।।
द्वादशे रिपुभावेशे व्यसनी हिंसको नरः।
अथवा शुभ युते दृष्टे सुखी भोगी न संशयः।। 67।।

(i) षष्ठेश सप्तम में हो तो पुरुष को स्त्री का सुख कम होता हे। लेकिन विख्यात, गुणी, मानी, साहसी, व धनी होता है।

(ii) षष्ठेश यदि अष्टम में हो तो मनुष्य रोगी, विद्वानों का शत्रु, दूसरों के धन की कामना करने वाला, परस्त्री–लोलुप, अपवित्र होता है।

(iii) यदि षष्ठेश नवम में हो तो लकड़ी व पत्थर का व्यापार करने वाला, व्यापार में कहीं हानि व कहीं बहुत वृद्धि पाने वाला होता है।

(iv) षष्ठेश दशम में हो तो मनुष्य साहसी, कुलप्रसिद्ध, पिता का विशेष आदर न करने वाला, अच्छा वक्ता व विदेश में सुखी होता है।

(v) षष्ठेश एकादश में हो तो मनुष्य कीर्तिमान्, गुणवान्, मानवान्, साहसी, किन्तु पुत्रसुख से रहित होता है।

(vi) द्वादशस्थ षष्ठेश से मनुष्य व्यसनी, हिंसक व आक्रामक स्वभाव वाला होता है। यदि शुभदृष्टयुक्त हो तो सुखी व भोगी होता है।

सप्तमेश का भावफल :–

दारेशे तनुभावस्थे परदारेषु लम्पटः ।
दुष्टो विचक्षणोऽधीरो जनो वातरुजान्वितः ।। 68 ।।
दारेशे धनभावस्थे बहुस्त्रीभिः समादृतः ।
दारयोगाद्धनाप्तिश्च दीर्घसूत्री च मानवः ।। 69 ।।
सप्तमेशे तृतीयस्थे दारसौख्यविवर्जितः ।
यत्नात् पुत्रवान् जातो मृतापत्योऽल्पसन्ततिः ।। 70 ।।
दारेशे सुखभावस्थे जाया तस्य न वशे सदा ।
स्वयं सत्यप्रियो धीमान् धर्मात्मा दन्तरोगयुक् ।। 71 ।।
दारेशे पंचमे जातो मानी सर्वगुणान्वितः ।
सर्वदा हर्षयुक्तश्च तथा सर्वधनाधिपः ।। 72 ।।
रिपुभावगते स्त्रीशे भार्या तस्य रुजान्विता ।
स्त्रिया सहाथवा वैरं स्वयं क्रोधी सुखोज्झितः ।। 73 ।।

(i) सप्तमेश लग्न में हो तो परस्त्रीगामी, दुष्ट, तीव्रबुद्धि, अधैर्यशाली, वातरोगी होता है ।

(ii) सप्तमेश द्वितीय में हो तो अनेक स्त्रियों का मानभाजन, स्त्री सम्पर्क से धन पाने वाला, देर तक सोने वाला होता है ।

(iii) सप्तमेश तृतीय में हो तो मनुष्य स्त्री सुख में कमी पाने वाला होता है । प्रायः उसके पुत्र यत्नपूर्वक जीवित रहते हैं । एवं अल्पसन्तान होती है ।

(iv) सप्तमेश चतुर्थ में हो तो उसकी पत्नी वश में नहीं होती अर्थात् स्वेच्छाचारिणी होती है । व्यक्ति स्वयं सत्यप्रिय, बुद्धिमान्, धर्मात्मा, लेकिन दाँतों का रोगी होता है ।

(v) सप्तमेश यदि पंचम भाव में हो तो स्वाभिमानी, सब प्रकार से सम्पन्न, गुणवान् व सदैव हर्षयुक्त रहता है ।

(vi) सप्तमेश षष्ठ में हो तो उसकी पत्नी रोगयुक्त होती है अथवा स्त्री के साथ वैर होता है । वह स्वयं क्रोधी व सुखरहित होता है ।

दारेशे सप्तमे भावे जातो दारसुखान्वितः ।
धीरो विचक्षणो धीमान् केवलं हृदि रोगवान् ।। 74 ।।

सप्तमेशे तु रन्ध्रस्थे नरो दारसुखोज्झितः ।
नारी रोगयुता वापि दुःशीला न वशानुगा ।। 75 ।।
दारेशे धर्मभावस्थे नानास्त्रीभिः समन्वितः ।
जायाहृन्मना जातो बह्वारम्भकरो नरः ।।76 ।।
दारेशे कर्मभावस्थे नास्य जायावशानुगा ।
स्वयं धर्मरतो जातो धनपुत्रादिसंयुतः ।। 77 ।।
सप्तमेशे भवस्थे तु दारैरर्थसमागमः ।
पुत्रादिसुखमल्पं च जनः कन्याप्रजो भवेत् ।। 78 ।।
द्वादशे सप्तमाधीशे दरिद्रः कृपणो महान् ।
वस्त्राजीवी भवेज्जातः भार्या रम्या व्ययप्रिया ।। 79 ।।

(i) सप्तमेश सप्तम में हो तो मनुष्य स्त्री सुख पाने वाला, धैर्यशील, तीव्र बुद्धि, कामी, हृदयरोगी होता है ।

(ii) सप्तमेश अष्टम में हो तो स्त्री सुख से रहित, अथवा रोगिणी अथवा स्वच्छन्द अथवा दुश्चरित्रा होती है ।

(iii) सप्तमेश नवम में हो तो अनेक स्त्रियों के सम्पर्क वाला, (कदाचित् स्त्रीजनों से लाभ योग है) स्त्री द्वारा दिल हार जाने वाला, बड़ा कार्य करने वाला होता है ।

(iv) सप्तमेश दशम में हो तो उसकी पत्नी वश में नहीं रहती, लेकिन व्यक्ति स्वयं धर्मपरायण, धन व पुत्रादि से युक्त रहता है ।

(v) सप्तमेश यदि एकादश में हो तो स्त्री व धन का लाभ होता है, पुत्र सुख में कमी व कन्याओं की अधिकता होती है ।

(vi) यदि सप्तमेश द्वादश में हो तो मनुष्य दरिद्र अर्थात् मैला–कुचैला रहने वाला, कंजूस, कपड़े से रोजगार कमाने वाला, सुन्दर तथा खर्चीले स्वभाव की पत्नी वाला होता है ।

अष्टमेश भावफल :–

अष्टमेशे तनौ याते तनुसौख्यविवर्जितः ।
देवनिन्दापरो नित्यं व्रणरोगी भवेत्पुमान् ।। 80 ।।
अष्टमेशे धने बाहुबलहीनः प्रजायते ।
धनं तस्य भवेत्स्वल्पं नष्टं वित्तं न लभ्यते ।। 81 ।।
सहजे रन्ध्रभावेशे भ्रातृसौख्यं न जायते ।
सालस्यो भृत्यहीनश्च जायते बलवर्जितः ।। 82 ।।

रन्ध्रेशे सुखभावस्थे मातृहीनो भवेच्छिशुः ।
गृहभूमिसुखैर्हीनो मित्रद्रोही न संशयः ।। 83 ।।
रन्ध्रेशे सुतभावस्थे जडबुद्धिः प्रजायते ।
स्वल्पप्रज्ञोभवेज्जातो दीर्घायुश्च धनान्वितः ।। 84 ।।
रन्ध्रेशे रिपुभावस्थे शत्रुजेता प्रभंजनः ।
रोगी सर्प जलाद्घातो बाल्ये तस्य प्रजायते ।। 85 ।।
रन्ध्रेशेसप्तमस्थे तु तस्यभार्याद्वयं भवेत् ।
व्यापारे च भवेद्हानिस्तस्मिन् पापयुते ध्रुवम् ।। 86 ।।
रन्ध्रेशे मृत्युभावस्थे जातो दीर्घायुषा युतः ।
द्यूटी चौरोऽन्यथावादी पापी चेद् गुरुनिन्दकः ।। 87 ।।

(i) अष्टमेश लग्न में हो तो शरीर के सुख में कमी, देवताओं की निन्दा करने का स्वभाव, सदैव शरीर पर घाव लगने के योग होते हैं ।

(ii) धनभाव में अष्टमेश हो तो मनुष्य अपने बाहुबल से रहित, कम धनी तथा डूबते धन वाला होता है । उसका गया धन प्रायः नहीं लौटता है ।

(iii) तृतीय में अष्टमेश हो तो भाई का सुख नहीं होता । वह आलसी, सेवकों से रहित, तथा बलहीन होता है ।

(iv) चतुर्थ में अष्टमेश हो तो मनुष्य माता से रहित, घर, भूमि व जायदाद के सुख से वंचित, मित्रद्रोही होता है ।

(v) अष्टमेश पंचम में हो तो जड़बुद्धि, कम प्रज्ञा वाला, धनी व दीर्घायु होता है ।

(vi) षष्ठ में अष्टमेश हो तो मनुष्य शत्रुओं को जीतने वाला, दबंग, रोगी, सर्प व जल से घात पाने वाला होता है ।

(vii) अष्टमेश सप्तम में हो तो उसकी दो पत्नियाँ होती हैं । उसे व्यापार में हानि होती है । यदि वह अष्टमेश पापयुक्त हो तो विशेष हानि होती है ।

(viii) अष्टमेश अष्टम में ही हो तो मनुष्य दीर्घायु, जुआ खेलने वाला, चोर या व्यर्थ बोलने वाला, पापी या गुरुओं की निन्दा करने वाला होता है ।

अष्टमेशे तपःस्थाने महापापी च नास्तिकः ।
दुष्टभार्यापतिश्चैव परद्रव्यापहारकः ।।88।।
रन्ध्रेशे तु दशमस्थे पितृसौख्यविवर्जितः ।।
पिशुनः कर्महीनश्च यदि नैव शुभेक्षिते ।। 89 ।।
रन्ध्रेशो लाभभावस्थे सपापे धनवर्जितः ।
बाल्ये दुःखी सुखी पश्चात् दीर्घायुश्च शुभान्विते ।। 90 ।।
व्ययस्थेऽष्टमभावेशे कुकार्यो व्ययकृत् सदा ।
अल्पायुश्च भवेज्जातः सपापे च विशेषतः ।। 91 ।।

(i) यदि अष्टमेश नवमस्थान में हो तो महापापी, नास्तिक, दुष्ट पत्नी वाला तथा दूसरों का धन लेने वाला होता है ।

(ii) अष्टमेश दशम में हो तो पिता के सुख से रहित, चुगलखोर, कर्महीन होता है, यदि वह शुभयुक्त दृष्ट हो तो उक्त फल कम होता है ।

(iii) अष्टमेश एकादश स्थान में हो तथा वह पापयुक्त हो तो विशेषतया निर्धन, बचपन में दुःखी बाद में सुखी व दीर्घायु होता है । शुभयुक्त होने पर अशुभ फल में कमी होती है ।

(iv) अष्टमेश व्ययभाव में हो तो कुकार्यो में व्यय करने वाला, अल्पायु होता है । पापयुक्त होने पर यह फल अधिक होता है ।

नवमेश भाव फल :–

भाग्येशे लग्नगे जातो भाग्यवान् भूपवन्दितः ।
सुशीलः सौम्यरूपश्च विद्यावान् जनपूजितः ।।92।।
भाग्येशे धनभावस्थे पण्डितो जनवल्लभः ।
जायते धनवान् कामी स्त्रीपुत्रादिसुखान्वितः ।। 93 ।।
भाग्येशे भ्रातृभावस्थे जातो भ्रातृसुखान्वितः ।
धनवान्विक्रमीरूपगुणशीलसमन्वितः ।।94।।
भाग्येशे तुर्यभावस्थे गृहयानसुखान्वितः ।
पुण्यवान् सुयशो वाग्मी साहसी जनपूजितः ।। 95 ।।
भाग्येशे पंचमस्थे तु भाग्यवान् पुत्रवान् नरः ।
गुरुभक्तिरतो मानी धर्मात्मा पण्डितो गुणी ।। 96 ।।
भाग्येशे रिपुभावस्थे स्वल्पभाग्यो भवेन्नरः ।
मातुलादिसुखैर्हीनः शत्रुभिर्पीडितः सदा ।। 97 ।।

भाग्येशे मदभावस्थे दारयोगात् सुखोदयः ।
गुणवान् कीर्तिमान् कामी कार्यबाधा क्वचिद् भवेत् ।। 98 ।।
भाग्येशे मृत्युभावस्थे भाग्यहीनो नरो भवेत् ।
ज्येष्ठभ्रातृ सुखैर्हीनः पीडितो भाग्यलीलया ।। 99 ।।

(i) यदि नवमेश लग्न में हो तो मनुष्य भाग्यवान, राजमान्य, सुशील, सौम्य व्यक्तित्व वाला, विद्यावान् व जनपूजित होता है ।

(ii) भाग्येश द्वितीय में हो तो पण्डित, जनप्रिय, धनवान्, कामी, स्त्री व पुत्रादि के सुख से युक्त होता है ।

(iii) भाग्येश तृतीय स्थान में हो तो भाई के सुख से युक्त, धनवान्, पराक्रमी, रूप, गुण व शील से युक्त होता है ।

(iv) भाग्येश चतुर्थ में हो तो मनुष्य घर व वाहन के सुख से युक्त, पुण्यवान्, वाक्चतुर, यशस्वी, लोकमान्य व साहसी होता है ।

(v) पंचमस्थ भाग्येश से भाग्यवान्, पुत्रवान्, गुरुभक्ति में रत, मानी, धर्मात्मा, पण्डित व गुणवान् होता है ।

(vi) भाग्येश पष्ठभाव में हो तो कम भाग्य वाला, मामा के सुख से रहित, शत्रु पीड़ित होता है ।

(vii) भाग्येश सप्तम भाव में हो तो स्त्री सम्पर्क से भाग्योदय पाने वाला; गुणवान्, कीर्तिमान, कामुक लेकिन कहीं–कहीं बाधित सफलता वाला होता है ।

(viii) अष्टमस्थ भाग्येश से मनुष्य भाग्यहीन होता है । बड़े भाई के सुख से रहित तथा भाग्य की लीलाओं से विशेष सन्तप्त होता है ।

भाग्येशे भाग्यभावस्थे बहुभाग्यसमन्वितः ।
गुणसौन्दर्यसम्पन्नः भ्रातृसौख्यं भवेद्बहु ।। 100 ।।
भाग्येशे कर्मभावस्थे मन्त्री सेनापतिर्नृपः ।
बलाबलविवेकेन गुणवान् अथ पूजितः ।। 101 ।।
भाग्येशे लाभभावस्थे धनलाभो दिने दिने ।
गुरुभक्तिरतः मानी गुणवान् पुण्यसंचयी ।। 102 ।।
धर्मेशे व्ययभावस्थे भाग्यहानिर्भवेद् ध्रुवम् ।
सविशेषात्तुलायां तु व्ययी ह्यतिथि संगमात् ।। 103 ।।

(i) भाग्येश नवम में हो तो मनुष्य बहुत अधिक भाग्यशाली, गुणी, सुन्दर, भाइयों से युक्त होता है।

(ii) भाग्येश दशम में हो तो बलाबल के तारतम्य से सेनापति, मन्त्री या राजा होता है। अपि च गुणी एवं पूजनीय भी होता है।

(iii) भाग्येश एकादश स्थान में हो तो प्रतिदिन लाभ होता रहता है। वह गुरुभक्त, स्नेहिल हृदय वाला, स्वाभिमानी, गुणी, पुण्य कमाने वाला होता है।

(iv) नवमेश द्वादश में हो तो भाग्य की हानि निश्चय से होती है। यदि द्वादश में नवमेश तुला में हो (वृश्चिक लग्न में द्वादशस्थ चन्द्र) तो विशेषतया भाग्यहीन होता है। ऐसे व्यक्ति का अधिक धन अतिथिसत्कार में खर्च होता है।

भावफल में तारतम्य :–

इति ते कथितं विप्र ! भावेशानां च यत्फलम्।
बलाबलविवेकेन सर्वेषां तत् समादिशेत्।। 104।।
द्विराशीशस्य खेटस्य विदित्वोभयथा फलम्।
विरोधे तुल्यफलयोर्द्वयोर्नाशः प्रजायते।। 105।।
विभिन्नयोस्तु फलयोर्द्वयोः प्राप्तिभवेद् ध्रुवम्।
ग्रहे पूर्णबले पूर्णमर्धमर्धफले फलम्।। 106।।
पादं हीनबले खेटे ज्ञेयमित्थं बुधैरिति।
उक्तं भावस्थितानां ते भावेशानां फलं मया।। 107।।

इस प्रकार मैंने भावेशों का जो फल कहा है, उसकी प्राप्ति बलाबल के आधार पर कहनी चहिए।

यदि कोई ग्रह दो राशियों का स्वामी हो तो उसके दोनों भावों के अनुसार फल जानकर निश्चय करना चाहिए। यदि दोनों प्रकार से विरोधी फल मिलें तो दोनों ही फलों का नाश हो जाता है।

यदि दोनों प्रकार से फल अलग-अलग आए तो वह शुभाशुभ जैसा भी हो, उन दोनों ही फलों की प्राप्ति होती है। यदि ग्रह पूर्ण बली हो तो उसका भावफल पूरा तथा आधा बली होने पर आधा ही फल मिलता है।

यदि ग्रह अल्पबली हो तो चौथाई फल समझना चाहिए तथा निर्बल ग्रह का फल शुभाशुभ जैसा भी हो, वह नहीं मिलता। इस प्रकार भावेशों की भिन्न भावस्थितियों के अनुसार फल कहना चाहिए।

उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में बृहस्पति 6.9 भावेश होकर द्वितीय में है तथा मंगल 5.10 भावेश होकर पंचम में है। षष्ठेश द्वितीय में हो तो मनुष्य साहसी, कुलमुख्य, परदेशी, सुखी तथा कार्यमग्न होता है तथा नवमेश द्वितीय में हो तो मनुष्य पण्डित, जनप्रिय, धनी सुखी होता है। इन फलों में धनी, सुखी होना सामान्य फल है। इनमें कोई विरोध नहीं है। अतः यह फल मिलेगा। इसी तरह पंचमेश पंचम में रहने पर पापयुक्त रहने से सन्तानहीन तथा दशमेश पंचम में होने से पुत्रवान, धनी होता है। अतः सन्तान की सामान्य संख्या होती है। वराहमिहिर ने इस सिद्धान्त का समर्थन बृहज्जातक में भी किया है।

वराहमिहिरानुसार भी एक ग्रह किसी विधि से यदि धनप्रद तथा अन्यविधि से धननाशक हो तो न धन–लाभ, न धन–हानि, कुछ, भी नहीं होती। यदि कोई ग्रह अधिक बली होकर एक प्रकार से राजयोग कारक, दूसरे प्रकार से सामान्य योग कारक हो तो अधिक फल की प्राप्ति होगी। (देखें बृहज्जातक, दशान्तर्दशा 23)।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां भावेश–
फलाध्यायः पंचविंशः ।। 25 ।।

26

।। अथाप्रकाशग्रहफलाध्यायः ।।

धूम का भावफलः–

शूरो विमल नेत्रांशः सुस्तब्धो निर्घृणः खलः ।
मूर्तिस्थे धूमसंज्ञे च गाढरोषो भवेन्नरः ।। 1 ।।
रोगी धनी तु हीनांगो राज्यापहृतमानसः ।
धूमे द्वितीये सम्प्राप्ते मन्दप्रज्ञो नपुंसकः ।। 2 ।।
मतिमान् शौर्यसम्पन्न इष्टचित्तः प्रियंवदः ।
धूमे सहज भावस्थे धनाढ्यो धनवान् भवेत् ।। 3 ।।
कलत्राङ्गपरित्यक्तो नित्यं मनसि दुःखितः ।
धूमे चतुर्थे सम्प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थचिन्तकः ।। 4 ।।

स्वल्पापत्योधनैर्हीनो धूमे पंचमसंस्थिते ।

गुरुता सर्वभक्षं च सुह्रन्मन्त्र विवर्जितः ।। 5 ।।

बलवांछत्रुवधको धूमे च रिपुभावगे ।

बहुतेजोयुतः ख्यातः सदा रोगविवर्जितः ।। 6 ।।

(i) लग्न में धूम हो तो मनुष्य शूरवीर, निर्मल आँखों वाला, अड़ियल, निर्दयी, खल, अति क्रोधी होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ धूम से रोगी, धनी, हीनांग, राज्यपक्ष की चिन्ता में मग्न रहने वाला, मन्दबुद्धि, नपुंसक होता है ।

(iii) तृतीयस्थ धूम से बुद्धिमान्, शूरवीर, उदारमन, प्रियभाषी, धनी होता है ।

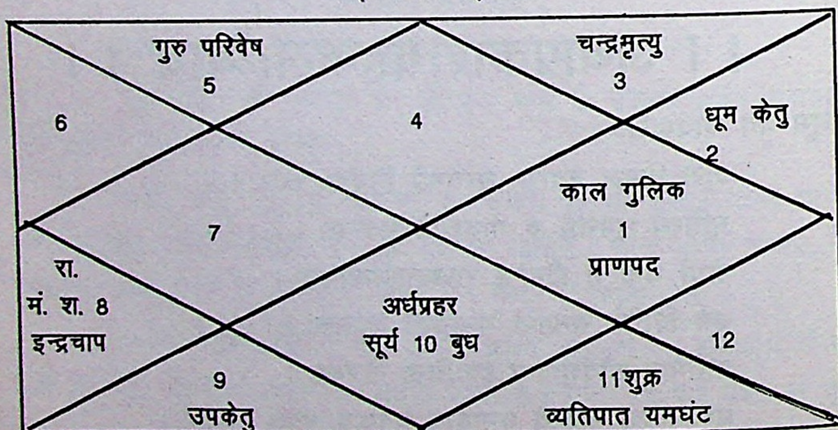
(iv) चतुर्थस्थ धूम से स्त्री शरीर के सुख से रहित, सदैव मन में दुःखी रहने वाला, सब शास्त्रों के अर्थो का विचारक (व्याख्याता या विचारक) होता है ।

(v) पंचमस्थ धूम से कम सन्तान, धनहीन, मोटा या बड़प्पन मानने वाला, सब कुछ खा लेने वाला, मित्र व सलाहकारों से रहित होता है ।

(vi) षष्ठस्थ धूम से शत्रुनाशक, तेजस्वी, प्रसिद्ध व रोगहीन होता है ।

पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में अप्रकाश ग्रहों (उपग्रहों) का स्पष्टीकरण पहले कर चुके हैं । तदनुसार सुविधार्थ यहाँ कर्क जन्म लग्न में धूमादि ग्रहों की स्थिति प्रदर्शित की जा रही है ।

(उदाहरणम्)



निर्धनः सततं कामी परदारेषु कोविदः ।

धूमे सप्तमगे जातो निस्तेजः सर्वदा भवेत् ।। 7 ।।

विक्रमेण परित्यक्तः सोत्साहो सत्यसंगरः ।

अप्रियो निष्ठुरः स्वार्थी धूमे मृत्युगते सति ।। 8 ।।

सुतसौभाग्य सम्पन्नो धनी मानी दयान्वितः ।

धर्मस्थाने स्थिते धूमे धर्मवान् बन्धुवत्सलः ।। 9 ।।

सुतसौभाग्यसंयुक्तः सन्तोषी मतिमान् सुखी ।

कर्मस्थे मानवो नित्यं धूमे सत्यपदस्थितः ।। 10 ।।

धनधान्य हिरण्याढ्यो रूपवांश्च कलान्वितः ।

धूमे लाभगते चैव विनीतो गीतकोविदः ।। 11 ।।

पतितः पापकर्मा च धूमे द्वादश संगते ।

परदारेषु संसक्तो व्यसनी निर्घृणः शठः ।। 12 ।।

(i) सप्तमस्थ धूम से निर्धन, कामुक, परस्त्रीगमन में कुशल, तेजो हीन होता है ।

(ii) अष्टमस्थ धूम से पराक्रम रहित, उत्साही, सत्य के लिए संघर्ष करने वाला, अप्रिय, कठोर, स्वार्थी होता है ।

(iii) नवमस्थ धूम से सुत व सौभाग्य से युक्त, धनी, सम्मानित, दयालु, धार्मिक व बन्धुप्रेमी होता है ।

(iv) दशमस्थ धूम से पुत्र व सौभाग्य से युक्त, सन्तोषी, बुद्धिमान्, सुखी, सत्यवादी होता है ।

(v) एकादशस्थ धूम से धनी, धन-धान्ययुक्त, सोना आदि रखने वाला, रूपवान्, संगीतज्ञ या काव्यज्ञ, कला से युक्त, विनीत होता है ।

(vi) द्वादशस्थ धूम से नीच, भ्रष्ट, पापी, परस्त्रीगामी, व्यसनी, निर्दय व धूर्त होता है ।

पातभाव फल :–

लग्नगे व्यतिपाते तु जातो दुःखनिपीडितः ।

क्रूरो घातकरो मूर्खो द्वेषी बन्धुजनस्य च ।। 13 ।।

जिह्मोऽतिपित्तवान् भोगी धनस्थे पातसंज्ञके ।

निर्घृणश्चाकृतज्ञश्च दुष्टात्मा पापकृत्तथा ।। 14 ।।

स्थिरप्रज्ञो रणी दाता धनाढ्यो राजवल्लभः ।

सम्प्राप्ते सहजे प्राप्ते सेनाधीशो भवेन्नरः ।। 15 ।।

बन्धव्याधिसमायुक्तः सुतसौभाग्य वर्जितः ।

चतुर्थगो यदा पातस्तदा स्यान्मनुजश्च सः ।। 16 ।।

दरिद्रो रूपसंयुक्तः पाते पंचमगे सति ।
कफपित्तानिलैर्युक्तो निष्ठुरो निरपत्रपः ।। 17 ।।
शत्रुहन्ता सुपुष्टश्च सर्वास्त्राणांच ग्राहकः ।
कलासु निपुणः शान्तः पाते शत्रुगते सति ।। 18 ।।
धनदारसुतैस्त्यक्तः स्त्रीजितो दुःखसंयुतः ।
पाते कलत्रगे कामी निर्लज्जः परसौहृदः ।। 19 ।।

(i) लग्नस्थ व्यतिपात से मनुष्य दुःखी, क्रूर, घातक स्वभाव, मूर्ख, बन्धुद्वेषी होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ पात से चालबाज, अधिक पित्त वाला, भोगी, निर्दय, अहसान न मानने वाला, दुष्ट मन वाला, पापकार्य करने वाला होता है ।

(iii) तृतीयस्थ पात से स्थिर बुद्धि, युद्धवीर, दाता, धनी, राजा का प्रिय व सेनापति होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ पात से बन्धक व व्याधि से पीड़ित, पुत्र व भाग्य से रहित होता है ।

(v) पंचमस्थ पात से दरिद्र लेकिन सुन्दर, कफ पित्त की अधिकता वाला, कठोर, निर्लज्ज होता है ।

(vi) षष्ठस्थ पात से शत्रुनाशक, बलवान्, सब शस्त्रों में कुशल, कलानिपुण शान्त होता है ।

(vii) सप्तमस्थ पात से धन, पुत्र व स्त्री से रहित, स्त्री से पराजित, दुःखी, कामुक, निर्लज्ज शत्रुओं से मिल जाने वाला अर्थात् गद्दार होता है ।

विकलाक्षो विरूपश्च दुर्भगो द्विजनिन्दकः ।
मृत्युस्थाने स्थिते पाते रक्तपीडापरिप्लुतः ।। 20 ।।
बहुव्यापारको नित्यं बहुमित्रो बहुश्रुतः ।
धर्मभे पातखेटे च स्त्रीप्रियश्च प्रियंवदः ।। 21 ।।
सश्रीको धर्मकृच्छान्तो धर्मकार्येषु कोविदः ।
कर्मस्थे पातसंज्ञे हि महाप्राज्ञो विचक्षणः ।। 22 ।।
प्रभूतधनवान् मानी सत्यवादी दृढव्रतः ।
अश्वाढ्यो गीतसंसक्तः पाते लाभगते सति ।। 23 ।।
कोपी च बहुकर्माढ्यो व्यङ्गोधर्मस्य दूषकः ।
व्ययस्थाने गते पाते विद्वेषी निजबन्धुषु ।। 24 ।।

(i) अष्टमस्थ पात हो तो मनुष्य नेत्र विकार वाला, दिखने में बदसूरत, दुर्भाग्यशाली, ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, रक्त विकार से पीड़ित होता है।

(ii) नवमस्थ पात से अनेक व्यापार करने वाला, अनेक मित्रों वाला, बहुत अधिक विविध जानकारी रखने वाला, स्त्रियों का प्रिय व प्रियभाषी होता है।

(iii) दशमस्थ पात से श्रीमान्, शोभाशाली, धर्मतत्त्व को जानने वाला, धर्म कार्यों में निपुण, बहुत बुद्धिमान्, विद्वान् व तीव्र बुद्धि होता है।

(iv) एकादशस्थ पात से खूब धनी, स्वाभिमानी, सत्यवादी, पक्के वचन वाला, घोड़े आदि वाहनों से युक्त, गीत-गान आदि में मन लगाने वाला होता है।

(v) द्वादशस्थ पात से क्रोधी, बहुत अधिक कार्य करने वाला, विकलांग, धर्मभ्रष्ट, अपने लोगों से द्वेष रखने वाला होता है।

पूर्वोक्त उदाहरण में पात अष्टमस्थ है, व धूम लाभस्थ है। धूम का फल खूब धनी होना व कार्यकुशल या कलान्वित अर्थात् हुनरमन्द, धनप्रद विद्या से युक्त समझा जाएगा। इसके विपरीत पात का फल नेत्रविकार, द्विजनिन्दा आदि है। इन दोनों फलों में धनी या निर्धन होने की बात उभयत्र नहीं है। अतः इन फलों का नाश न होकर दोनों ही प्रकार के फल यथावसर मिलेंगे। यदि एक जगह धनी व दूसरी जगह निर्धन होना होता तो धन का सम्बन्ध सामान्य होने से **'तुल्य फलयोर्द्वयोर्नाशः विरोधे सति'** जो कहा था तदनुसार धनी या निर्धन कुछ भी नहीं होता। इसी तरह सारे फलों में समन्वय स्थापित करना चाहिए।

परिवेष फलः—

विद्वान् सत्यरतः शान्तो धनवान् पुत्रवान् शुचिः।
परिधौ तनुगे दाता जायते गुरुवत्सलः।। 25।।
ईश्वरो रूपवान् भोगी सुखी धर्मपरायणः।
धनस्थे परिधौ जातः प्रभुर्भवति मानवः।। 26।।
स्त्रीवल्लभः सुरूपांगो देवस्वजनसंगतः।
तृतीये परिधौ भृत्यो गुरुभक्तिसमन्वितः।। 27।।
परिधौ सुखभावस्थे विस्मितं त्वरिमंगलम्।
अक्रूरं त्वथ सम्पूर्णं कुरुते गीतकोविदम्।। 28।।

लक्ष्मीवान् शीलवान् कान्तः प्रियवाक् धर्मवत्सलः ।
पंचमे परिधौ जातः स्त्रीणां भवति वल्लभः ।। 29 ।।
भक्तोऽर्थपुत्रवान् भोगी सर्वसत्वहिते रतः ।
परिधौ रिपुभावस्थे शत्रुहा जायते नरः ।। 30 ।।
स्वल्पापत्यः सुखैर्हीनो मन्दप्रज्ञः सुनिष्ठुरः ।
परिधौ द्यूनभावस्थे स्त्रीणां व्याधिश्च जायते ।। 31 ।।

(i) लग्नस्थ परिवेष (परिधि) हो तो विद्वान् सत्यप्रिय, शान्त, धनी, पुत्रवान्, पवित्र आचरण करने वाला, दानी, गुरु का प्रिय होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ परिवेष से राजा या राजतुल्य, रूपवान्, भोगवान्, सुखी, धर्मपरायण, स्वामी अर्थात् अधिकारी या मालिक या समर्थ होता है ।

(iii) तृतीयस्थ परिवेष से स्त्रियों का प्यारा, सुन्दर शरीर वाला, देवताओं का भक्त, नौकरी करने वाला, गुरुभक्तियुक्त होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ परिवेष से भ्रमित सा रहने वाला, शत्रुओं का भी उपकारक, क्रूरता रहित, संगीतज्ञ होता है ।

(v) पंचमस्थ परिधि से धनी, चरित्रवान्, प्रियदर्शन, धर्मप्रिय, प्रियमाषी, व स्त्रियों का प्यारा होता है ।

(vi) षष्ठस्थ परिधि से धनी व पुत्रवान्, भोगवान्, सब प्राणियों के हित में रत, शत्रुनाशक होता है ।

(vii) सप्तमस्थ परिधि से कम सन्तान वाला, सुखहीन, मन्द बुद्धि, कठोर हृदय, बीमार स्त्री वाला होता है ।

अध्यात्मचिन्तकः शान्तो दृढकायो दृढव्रतः ।
धर्मवांश्च ससत्त्वश्च परिधौ रन्ध्रसंस्थिते ।। 32 ।।
पुत्रान्वितः सुखी कान्तो धनाढ्यो लौल्यवर्जितः ।
परिधौ दशमे प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थपारगः ।। 33 ।।
कलाभिज्ञस्तथा भोगी दृढकायो ह्यमत्सरः ।
परिधौ दशमे प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थपारगः ।। 34 ।।
स्त्रीभोगी गुणवांश्चैव मतिमान् सर्वजनप्रियः ।
लाभगे परिधौ जातो मन्दाग्निरुपपद्यते ।। 35 ।।
व्ययस्थे परिधौ जातो व्ययकृत् मानवः सदा ।
दुःखभाग् दुष्टबुद्धिश्च गुरुनिन्दापरायणः ।। 36 ।।

(i) अष्टमस्थ परिवेष से मनुष्य अध्यात्म विषयों का विचारक, शान्त, मजबूत शरीर वाला, पक्के वचन वाला, धार्मिक, सत्त्वगुणी होता है ।

(ii) नवमस्थ परिवेष से पुत्रवान्, सुखी, सुन्दर, थोड़े से ही सन्तुष्ट रहने वाला, धनी, चंचलता से रहित, स्वाभिमानी होता है।

(iii) दशमस्थ परिवेष से कलाकार, भोगवान्, दृढ़ शरीर वाला, ईर्ष्या रहित, सब शास्त्रों के अर्थ को जानने वाला होता है।

(iv) एकादशस्थ परिवेष से स्त्री भोगी, गुणवान्, बुद्धिमान्, सब लोगों का प्रिय, पाचन शक्ति में कमी वाला होता है।

(v) द्वादशस्थ परिवेष से सदैव खर्च करने वाला, दुःखी, दुष्ट बुद्धि, गुरुओं की निन्दा करने वाला होता है।

चापभाव फल :–

धनधान्य हिरण्याढ्यः कृतज्ञः सम्मतः सताम्।
सर्वदोषपरित्यक्तश्चापे तनुगते नरः।। 37।।
प्रियंवदः प्रगल्भाढ्यौ विनीतो विद्ययान्वितः।
धनस्थे चापखेटे च रूपवान् धर्मतत्परः।। 38।।
कृपणोऽति कलाभिज्ञश्चौर्यकर्मरतः सदा।
सहजे धनुषि प्राप्ते हीनांगो गतसौहृदः।। 39।।
सुखी गोधनधान्याद्यै राजसम्मानपूजितः।
कार्मुके सुखसंस्थे तु नीरोगो ननु जायते।। 40।।
रुचिमान् दीर्घदर्शी च देवभक्तः प्रियंवदः।
चापे पंचमगे जातो विवृद्धः सर्वकर्मसु।। 41।।
शत्रुहन्ताऽतिधूर्तश्च सुखी प्रीतिरुचिः शुचिः।
षष्ठस्थानगते चापे सर्वकर्मसमृद्धिभाक्।। 42।।

(i) लग्नस्थ, इन्द्रधनु से मनुष्य धनधान्य व सुवर्ण से युक्त, कृतज्ञ, सज्जनों द्वारा समर्थित, सब दोषों से रहित होता है।

(ii) द्वितीयस्थ इन्द्रचाप से प्रियभाषी, प्रगल्भ, धनी, विनीत, विद्यावान्, रूपवान् व धर्मपालन में तत्पर रहता है।

(iii) तृतीयस्थ इन्द्रधनु से कंजूस, अत्यधिक कलाओं का ज्ञाता, चोरी से प्रेम करने वाला, हीनांग व मित्रों से रहित होता है।

(iv) चतुर्थस्थ इन्द्रधनु से सुख, चतुष्पद धन से युक्त, धनधान्य वाला, राजा द्वारा सम्मानित, नीरोग होता है।

(v) पंचमस्थ चाप से तेजस्वी, दूर की बात सोचने वाला, देवभक्त, प्रियभाषी, सर्वत्र बढ़ोत्तरी पाने वाला होता है।

(vi) षष्ठस्थ चाप से शत्रुहन्ता, अत्यधिक धोखेबाज, सुखी, प्रेमी स्वभाव, पवित्र, सर्वत्र सफलता पाने वाला होता है।

ईश्वरो गुणसम्पूर्णः शास्त्रविद् धार्मिकः प्रियः।
चापे सप्तमभावस्थे भवतीति न संशयः ।। 43 ।।
परकर्मरतः क्रूरः परदारपरायणः।
अष्टमस्थानगे चापे जायते विकलांगकः ।। 44 ।।
तपस्वी व्रतचर्यासु निरतो विद्ययाऽधिकः।
धर्मस्थे जायते चापे मानवो लोकविश्रुतः ।। 45 ।।
बहुपुत्र धनैश्वर्यो गोमहिष्यादिमान् भवेत्।
कर्मभे चापसंयुक्ते जायते लोकविश्रुतः ।। 46 ।।
लाभगे चापखेटे च लाभयुक्तो भवेन्नरः।
नीरोगो दृढकोपाग्निर्मन्त्रस्त्री परमास्त्रवित् ।। 47 ।।
खलोऽतिमानी दुर्बुद्धिर्निर्लज्जो व्ययसंस्थिते।
चापे परस्त्रीसंयुक्तो जायते निर्धनः सदा ।। 48 ।।

(i) सप्तमस्थ चाप से स्वामी या राजा, गुणवान्, शस्त्रवेत्ता, धार्मिक, प्रिय होता है।

(ii) अष्टमस्थ चाप से दूसरों की नौकरी करने वाला, परस्त्री से प्रेम करने वाला, विकलांग होता है।

(iii) नवमस्थ चाप से तपस्वी, व्रती, विद्यावान्, लोकप्रसिद्ध होता है।

(iv) दशमस्थ चाप से मनुष्य अनेक पुत्रोंवाला, धनी, ऐश्वर्यशाली, चतुष्पद धन से युक्त, प्रसिद्ध होता है।

(v) एकादशस्थ इन्द्रचाप से सदैव लाभ पाने वाला, नीरोग, अधिक क्रोधी, अच्छा सलाहकार, स्त्री के गूढ़ स्वभाव को जानने वाला, शस्त्रविद्या में निष्णात होता है।

(vi) द्वादशस्थ चाप से दुष्ट, घमंडी, दुर्बुद्धि, निर्लज्ज, परस्त्री प्रेमी, निर्धन होता है।

उपकेतुभावफल :–

कुशलः सर्वविद्यासु सुखी वाङ्निपुणः प्रियः।
तनौ शिखिनिसंजातः सर्वकामान्वितो भवेत् ।। 49 ।।
वक्ता प्रियंवदः कान्तो धनस्थानगते ध्वजे।
काव्यकृत् पण्डितो मानी विनीतो वाहनान्वितः ।। 50 ।।

कदर्यः क्रूरकर्ता च कृशांगो धनवर्जितः ।
सहजस्थे तु शिखिनि तीव्ररोगी प्रजायते ।। 51 ।।
रूपवान् गुणसम्पन्नः सात्त्विकोऽपि श्रुतिप्रियः ।
सुखसंस्थे तु शिखिनि सदा भवति सौख्यभाक् ।। 52 ।।
सुखीभोगी कलाविच्च पंचमस्थानगे ध्वजे ।
युक्तिजो मतिमान् वाग्मी गुरुभक्तिसमन्वितः ।। 53 ।।
मातृपक्षक्षयकरः शत्रुहा बहुबान्धवः ।
रिपुस्थाने ध्वजे प्राप्ते शूरः कान्तो विचक्षणः ।। 54 ।।
द्यूतक्रीडाष्वभिरतः कामी भोगसमन्वितः ।
ध्वजे तु सप्तमस्थाने वैश्यासु कृतसौहृदः ।। 55 ।।
नीचकर्मरतः पापो निर्लज्जो निन्दकः सदा ।
मृत्युस्थाने ध्वजे प्राप्ते गतस्त्रीकः परैर्हतः ।। 56 ।।

(i) लग्न में उपकेतु हो तो सब विद्याओं में कुशल, सुखी, वाक्चतुर, प्रिय, सब इच्छाएँ पूर्ण होने का योग पाता है ।

(ii) द्वितीयस्थ उपकेतु से अच्छा वक्ता, प्रियभाषी, सुन्दर, काव्यकर्ता, पण्डित, अभिमानी, विनीत, वाहन सुख से युक्त होता है ।

(iii) तृतीयस्थ उपकेतु से बहुत छोटे हृदय वाला अर्थात् स्वार्थी व कंजूस, क्रूरतापूर्ण व्यवहार करने वाला, पतले शरीर वाला, धनरहित, तीव्ररोग से पीड़ित होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ उपकेतु हो तो रूपवान्, गुणसम्पन्न, सात्त्विक, वेदों से प्रेम करने वाला, सदा सुखी होता है ।

(v) पंचमस्थ उपकेतु से सुखी, भोगवान्, कलाविद्, युक्तिपूर्वक कार्यसाधन करने वाला, बुद्धिमान्, वाक्चतुर, गुरुभक्ति से युक्त होता है ।

(vi) षष्ठस्थ उपकेतु से मामा के पक्ष को हानि पहुचाँने वाला, शत्रु नाशक, अनेक बान्धवों वाला, शूरवीर, सुन्दर व तीव्रबुद्धि होता है ।

(vii) सप्तमस्थ उपकेतु से जूआप्रेमी, कामुक, भोगवान्, वेश्याओं से मन लगाने वाला होता है ।

(viii) अष्टमस्थ उपकेतु से नीच कार्य करने वाला, पापी, निर्लज्ज, निन्दा करने वाला, स्त्री सुख से रहित, शत्रुपीड़ित होता है ।

लिङ्गधारी प्रसन्नात्मा, सर्वभूतहितेरतः ।
धर्मभे शिखिनि प्राप्ते धर्मकार्येषु कोविदः ।। 57 ।।

सुखसौभाग्यसम्पन्नः कामिनीनां च वल्लभः ।
दाता द्विजैः समायुक्तः कर्मस्थे शिखिनि नरः ।। 58 ।।
नित्यलाभः सुधर्मी च लाभे शिखिनि पूजितः ।
धनाढ्यः सुभगः शूरः सुयज्ञश्चातिकोविदः ।। 59 ।।
पापकर्मरतः शूरः श्रद्धाहीनोऽघृणो नरः ।
परदाररतो रौद्रः शिखिनि व्ययगे सति ।। 60 ।।

(i) नवमस्थ उपकेतु हो तो किसी धार्मिक सम्प्रदाय के चिन्ह को धारण करने वाला, (जैसे वैष्णव रहने पर तुलसी की माला या पीला तिलक, इत्यादि) प्रसन्न मन वाला, सब प्राणियों का भला चाहने वाला, धर्म कार्यो में कुशल होता है ।

(ii) दशमस्थ उपकेतु से सुख–सौभाग्य से युक्त, स्त्रियों का प्रिय, दान देने वाला, द्विजों से घिरा रहने वाला होता है ।

(iii) एकादशस्थ उपकेतु से सदैव लाभ कमाने वाला, सद्धर्म का पालन करने वाला, पूजित, धनी, भाग्यशाली, शूरवीर, यज्ञ करने वाला, विद्वान् होता है ।

(iv) द्वादशस्थ उपकेतु से पापकार्य करने वाला, श्रद्धाहीन, निर्दय, परस्त्री में लगा हुआ होता है ।

गुलिक भाव फलः–

रोगार्तः सततं कामी पापात्माधिगतः शठः ।
तनुस्थे गुलिके जातः खलभावोऽतिदुःखितः ।। 61 ।।
विकृतो दुःखितः क्षुद्रो व्यसनी च गतत्रपः ।
धनस्थे गुलिके जातो निःस्वो भवति मानवः ।। 62 ।।
चार्वङ्गो ग्रामपः पुण्यसंयुक्तः सज्जनप्रियः ।
सहजे गुलिके जातो मानवो राजपूजितः ।। 63 ।।

(i) लग्नस्थ गुलिक से रोगपीड़ित, कामुक स्वभाव, पापी मन वाला, शठ, खलस्वभाव, अति दुःखी होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ गुलिक से विकारयुक्त, दुःखी, नीच, व्यसनों से पीड़ित, निर्लज्ज, दीनहीन होता है ।

(iii) तृतीयस्थ गुलिक से सुन्दर शरीर वाला, पुण्य कार्य करने वाला, सज्जनों का प्रेमी, राजपूज्य होता है ।

रोगी सुखपरित्यक्तः सदा भवति पापकृत् ।
गुलिके सुखभावस्थे वातपित्ताधिको भवेत् ।। 64 ।।

विस्तुतिर्विधनोऽल्पायुर्द्वेषी क्षुद्रो नपुंसकः ।
गुलिके सुतभावस्थे स्त्रीजितो नास्तिको भवेत् ।। 65 ।।
वीतशत्रुः सुपुष्टांगो रिपुस्थाने यमात्मजे ।
सुदीप्तः सम्मतः स्त्रीणां सोत्साहः सुदृढो हितः ।। 66 ।।
स्त्रीजितः पापकृज्जारः कृशांगो गतसौहृदः ।
जीवितः स्त्रीधनेनैव गुलिके सप्तमस्थिते ।। 67 ।।

(i) चतुर्थस्थ गुलिक हो तो रोगी, सुखहीन, पापकारी, वात व पित्त विकार से युक्त होता है ।

(ii) पंचमस्थ गुलिक हो तो कहीं भी प्रशंसा न पाने वाला, धनहीन, अल्पायु, द्वेषपूर्ण स्वभाव वाला, नीच, नपुसंक, स्त्री से पराजित, नास्तिक होता है ।

(iii) षष्ठस्थ गुलिक से शत्रुओं से रहित, पुष्ट शरीर वाला, तेजस्वी, स्त्रियों द्वारा मान्य, उत्साही, दृढ़ विचार वाला व हितकारी होता है ।

(iv) सप्तमस्थ गुलिक से स्त्री से पराजित, पापकार्य करने वाला, स्त्रीगामी, पतला, मित्रता रहित, स्त्री के धन से ही मौज करने वाला होता है ।

क्षुधालुर्दुःखितःक्रूरस्तीक्ष्णरोषोऽतिनिर्घृणः ।
रन्ध्रगे गुलिके निःस्वो जायते गुणवर्जितः ।। 68 ।।
बहुक्लेशः कृशतनुर्दुष्टकर्मातिनिर्घृणः ।
गुलिके धर्मगे मन्दः पिशुनो बहिराकृतिः ।। 69 ।।

(v) अष्टमस्थ गुलिक हो तो भूख से पीड़ित, क्रूर स्वभाव वाला, तीव्र क्रोधी, अत्यधिक निर्दय, दीनहीन व गुणरहित होता है ।

(vi) नवमस्थ, गुलिक से बहुत क्लेश पाने वाला, पतले शरीर वाला, दुष्टतापूर्ण कार्य करने वाला, निर्दय, मन्दबुद्धि या आलसी, चुगलखोर, बाहर से अच्छा दिखने वाला होता है ।

पुत्रान्वितः सुखी भोक्ता देवाग्न्यर्चनवत्सलः ।
दशमे गुलिको जातो योगधर्माश्रितः सुखी ।। 70 ।।
सुस्त्रीभोगी प्रजाध्यक्षो बन्धूनां च हिते रतः ।
लाभस्थे गुलिके जातो नीचांगः सार्वभौमिकः ।। 71 ।।
नीचकर्माश्रितः पापो हीनांगो दुर्भगोऽलसः ।
व्ययगे गुलिके जातो नीचेषु कुरुते रतिम् ।। 72 ।।

(i) दशमस्थ गुलिक से सुखी, भोग भोगने वाला, देवता, अग्नि आदि की पूजा करने में रुचि रखने वाला, योगधर्म यम–नियमादि द्वारा मन व इन्द्रियों को प्रायः नियन्त्रित करने वाला होता है।

(ii) एकादशस्थ गुलिक से अच्छी स्त्री पाने वाला, प्रजा का अध्यक्ष अर्थात् मुखिया, अपने बन्धुओं (बिरादरी) का भला करने वाला, नीचा कद, सब तरह से अधिकार–सम्पन्न होता है।

(iii) व्ययस्थ गुलिक से नीच कार्य करने वाला, अंगहीन, दुर्भाग्यशाली, आलसी, नीच लोगों से प्रेम करने वाला होता है।

प्राणपद भाव फलः–

लग्ने प्राणपदे क्षीणो रोगी भवति मानवः।
मूकोन्मत्तो जडाङ्गस्तु हीनांगो दुःखितः कृशः।। 73।।
बहुधान्यो बहुधनो बहुभृत्यो बहुप्रजः।
धनस्थानस्थिते प्राणे सुभगो जायते नरः।। 74।।
हिंस्रो गर्वसमायुक्तो निष्ठुरोऽतिमलिम्लुचः।
तृतीयगे प्राणपदे गुरुभक्तिविवर्जितः।। 75।।
सुखस्थे तु सुखी कान्तः सुहृद्रामासु वल्लभः।
गुरौ परायणः शीतः प्राणे वै सत्यतत्परः।। 76।।

(i) लग्न में प्राणपद हो तो मनुष्य कमजोर, रोगी, गूँगा, उन्मत्त, आलसी शरीर वाला, हीनांग, दुःखी व पतला होता है।

(ii) द्वितीयस्थ प्राणपद हो तो मनुष्य बहुत धान्य वाला, बहुत धन वाला, अनेक नौकरों वाला, अनेक सन्तान वाला, सौभाग्यशाली होता है।

(iii) तृतीयस्थ प्राणपद से हिंसक, घमंडी, कठोर, अति मलिन, गुरुभक्ति से रहित होता है।

(iv) चतुर्थस्थ प्राणपद से सुन्दर, मित्रों व स्त्रियों का प्यारा, गुरुभक्त, शीतल स्वभाव व सत्यवादी होता है।

सुखभाग् सुक्रियोपेतस्त्वपचार दयान्वितः।
पंचमस्थे प्राणपदे सर्वकामसमन्वितः।। 77।।
बन्धुशत्रुवशस्तीक्ष्णो मन्दाग्निर्निर्दयः खलः।
षष्ठे प्राणपदे रोगी वित्तपोऽल्यायुरेव च।। 78।।
ईर्ष्यालुः सततं कामी तीव्र रौद्रवपुर्नरः।
सप्तमस्थे प्राणपदे दुराराध्यः कुबुद्धिमान्।। 79।।

रोगसन्तापितांगश्च प्राणपादेऽष्टमे सति ।

पीडितः पार्थिवैर्दुखैर्भृत्यबन्धुसमुद्भवैः ।। 80 ।।

(i) पंचमस्थ प्राणपद से मनुष्य सुन्दर कर्म करने वाला, सुखी, स्वाभाविक दयालु, सब मनोरथों को पाने वाला होता है ।

(ii) षष्ठस्थ प्राणपद से बन्धुओं व शत्रुओं के वश में रहने वाला, मन्दाग्नि, निर्दय, खलबुद्धि, रोगी, धनी लेकिन अल्पायु होता है ।

(iii) सप्तमस्थ प्राणपद से ईर्ष्यालु, कामुक, तीव्र क्रोधी, गुस्सैल दिखने वाला, सरलता से प्रसन्न न होने वाला, कुबुद्धियुक्त होता है ।

(iv) अष्टमस्थ प्राणपद से रोगी, राजा से पीड़ित, बन्धुकृत व सेवककृत दुःखों से पीड़ित होता है ।

पुत्रवान् धनसम्पन्नः सुभगः प्रियदर्शनः ।

प्राणे धर्मस्थिते भृत्यः सदाऽदुष्टो विचक्षणः ।। 81 ।।

वीर्यवान् मतिमान् दक्षो नृपकार्येषु कोविदः ।

दशमे वै प्राणपदे देवार्चनपरायणः ।। 82 ।।

(i) नवमस्थ प्राणपद से धनी, पुत्रवान्, सुन्दर, आकर्षक, नौकरी करने वाला, सज्जन व चतुर होता है ।

(ii) दशमस्थ प्राणपद से वीर्यशाली, बुद्धिमान्, चतुर, राजकाज में निपुण, देवताओं का भक्त होता है ।

विख्यातो गुणवान् प्राज्ञो भोगी धनसमन्वितः ।

लाभस्थाने स्थिते प्राणे गौरांगो मातृवत्सलः ।। 83 ।।

क्षुद्रो दुष्टस्तु हीनांगो विद्वेषी द्विजबन्धुषु ।

व्यये प्राणे नेत्ररोगी काणो वा जायते नरः ।। 84 ।।

(i) एकादशस्थ प्राणपद से प्रसिद्ध, गुणी, विद्वान्, भोगी, धनी, गौर वर्ण व माता का प्रिय होता है ।

(ii) द्वादशस्थ प्राणपद से नीच, दुष्ट, हीनांग, ब्राह्मणों व बन्धुओं से द्वेष रखने वाला, नेत्र रोगी या काणा होता है ।

अप्रकाश ग्रहफल की अनिवार्यता :–

इत्यप्रकाशखेटानां फलान्युक्तानि भूसुर ! ।

तथा यानि प्रकाशानां सूर्यादीनां खचारिणाम् ।। 85 ।।

तानि स्थितिवशात्तेषां स्फुटदृष्टिवशान्तथा ।

बलाबल विवेकेन वक्तव्यानि शरीरिणाम् ।। 86 ।।

इस प्रकार मैंने धूमादि पाँचों अप्रकाश ग्रहों व गुलिक प्राणपद का भावगत फल कहा है। पहले अप्रकाश ग्रहों का फल विचार करके बाद में सूर्यादि प्रकाश ग्रहों के फल का समन्वय करना चाहिए। ग्रहों पर दृष्टिवशात् तथा बलाबल विवेक से शुभाशुभ फल का निर्णय करना चाहिए। अर्थात् जिस भाव का फल अप्रकाश ग्रहों से अशुभ हो और प्रकाश ग्रहों से शुभ आए तो मध्यम फल समझें। दोनों से शुभ आने पर अत्यन्त शुभ मानना चाहिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
प्रकाशग्रहफलाध्यायः षड्विंशः ।। 26 ।।

27

।। अथ पदाध्यायः ।।

पद (आरूढ़) का ज्ञान :-

कथयाम्यथभावानां खेटानां च पदं द्विज ! ।
तद्विशेषफलं ज्ञातुं यथोक्तं प्राङ्महर्षिभिः ।। 1 ।।
लग्नाद्यावतिथे राशौ तिष्ठेल्लग्नेश्वरः क्रमात् ।
ततस्तावतिथे राशौ लग्नस्य पदमुच्यते ।। 2 ।।
सर्वेषामपि भावानां ज्ञेयमेवं पदं द्विज ! ।
तनुभावपदं तत्र बुधा मुख्यपदं विदुः ।। 3 ।।

हे मैत्रेय ! अब मैं आरूढ़ या पद का ज्ञान करने का उपाय बताता हूँ। पद या आरूढ़ से विशेष फल का विचार पुरातन महर्षियों ने कहा है।

लग्न से लग्नेश जितनी राशि आगे हो, लग्नेश से उतनी ही राशि आगे लग्न का पद होता है।

इसी विधि से सब भावों का पद जाना जा सकता है। पुनश्च लग्न के पद अर्थात् लग्नारूढ़ को ही मुख्यपद या पद कहते हैं। अर्थात् अन्य भावों के पदों को धन पद, सहज पद, पुत्र पद आदि नामों से कहा जाएगा, लेकिन लग्न के पद को केवल पद शब्द से अभिहित किया जाता है।

उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा द्वादश में है। अतः लग्नेश से द्वादशभाव में (लग्न से एकादश) 'लग्नारूढ़ लग्नपद या मुख्यपद या पद हुआ। धनेश सूर्य, धन भाव से षष्ठ में है। अतः सूर्य से

षष्ठ (लग्नात् द्वादश) में धन पद हुआ। दशमेश मंगल दशम भाव से अष्टम में है, अतः मंगल से अष्टम (लग्नात् द्वादश) में दशम पद हुआ। इसी तरह सब भावों के पद जानकर आगे कुण्डली दिखाई जा रही है।

उक्त नियम का अपवाद :–

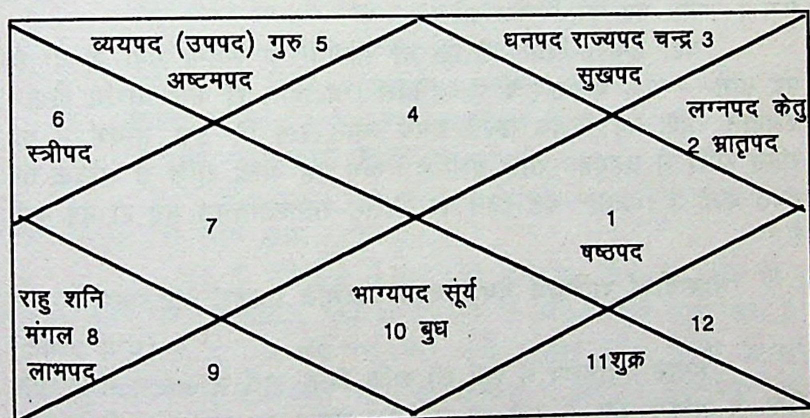
स्वस्थानं सप्तमं नैव पदं भवितुमर्हति।

तस्मिन् पदत्वे सम्प्राप्ते मध्यंतुर्यं क्रमात् पदम्।।4।।

यदि किसी भाव का स्वामी उसी भाव में हो तो उक्त नियमानुसार स्वभाव अर्थात् वही भाव पद होगा। लेकिन इसके स्थान पर उक्त स्थिति में दशम को पद समझें।

यदि भाव से सप्तम में ग्रह हो तो भावेश से सप्तम रहने से वह भाव ही स्वयं पद भी होना चाहिए, लेकिन इसके अपवादस्वरूप उससे चतुर्थ भाव को पद समझें। निष्कर्षतः स्वस्थान व सप्तम स्थान पद नहीं होते, इनके स्थान पर क्रमशः दशम व चतुर्थ को पद माना जाता है। यह भावारूढ़ का विचार बताया गया है।

पद कुण्डली (उदाहरण)



यह विषय जैमिनि सूत्र (सम्पूर्ण) शान्तिप्रिय भाष्य में हम विस्तार से स्पष्ट कर चुके हैं। पद, कारकांश वर्णद उपपद, अर्गलादि बहुत से विषय जैमिनि व पराशर दोनों महर्षियों के ग्रन्थों में यथावत् मिलते हैं। अतः इनकी प्रामाणिकता में कोई सन्देह नहीं तथा इनका फल भी चमत्कारक है। यहीं पर एक बात हम और स्पष्ट कर दें कि जैमिनीय सूत्रों के रहस्य से अनभिज्ञ होने के कारण बहुत से पाराशर टीकाकारों ने सम्बद्ध विषयों का आधा तीतर आधा बटेर कर दिया है अथवा सन्देह के स्थलों पर उन्हें मौन रहना ही उचित लगा। पद विचार में जैमिनीय मत का सामान्य नियम

कि समराशि में विपरीत क्रम से तथा विषम राशि में सीधे क्रम से गणना करनी चाहिए विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है।

वृद्धकारिका उद्धृत है, इसमें 'क्रमात्' कहकर क्रमगणना अर्थात् सीधी गणना को ही रेखांकित किया गया है।

लग्नाद्यावतिथे राशौ तिष्ठेल्लग्नेश्वरः क्रमात्।
ततस्तावतिथं राशिं लग्नारूढं प्रचक्षते।। (वृद्धकारिका)

कह चुके हैं कि सभी पदों में लग्नराशि का पद सर्वमुख्य होता है। जिस प्रकार राशियों के पद होते हैं, उसी तरह ग्रहों के पद भी होते हैं। यह अगले श्लोकों में बताया जा रहा है।

ग्रहों का पदः–

यस्माद्यावतिथे राशौ खेटात् तद्भवनं द्विज !।
ततस्तावतिथं राशिं खेटारूढं प्रचक्षते।।5।।
द्विनाथद्विभयोरेवं व्यवस्था सबलावधि।
विगणय्य पदं विप्र ! ततस्तस्य फलं वदेत्।।6।।

ग्रह से उसकी राशि जितना आगे हो, उससे उतना ही आगे ग्रह का आरूढ़ होता है। दो राशियों के स्वामियों के विषय में बलवान् राशि तक गणना करके पद का निर्णय करें।

यहाँ हमारा विचार है कि दो राशियों के स्वामी ग्रहों के दो ही पद होंगे–– एक बलवान् व एक निर्बल। बलवान् से फल निर्णय होगा। बलवान् राशि का निर्णय करते समय ध्यान रखें कि इस सन्दर्भ में ग्रह रहित राशि से ग्रहयुक्त राशि बली है। कम ग्रह वाली राशि से अधिक ग्रह युक्त बली है। समान ग्रह रहने पर जिसमें स्वोच्चादिगत ग्रह हों वह बली है।

'भौमादीनां राशिद्वयं मेषवृश्चिकात्मकमिति पदद्वयं वेदितव्यम्।

(दुर्गा प्रसादः)

हमारे उदाहरण में सूर्य की राशि सिंह, सूर्य से अष्टम में है, अतः सिंह से अष्टम मीन में सूर्य का पद है। मंगल का बलवान् वृश्चिक पद द्वितीय में होगा।

पद कुण्डली से फलादेश :–

पदादेकादशस्थाने ग्रहयुक्तेऽथवेक्षिते।
धनवान् जायते बालस्तथा सुखसमन्वितः।।7।।
शुभयोगात् सुमार्गेण धनाप्तिः पापतोऽन्यथा।
मिश्रैर्मिश्रफलं ज्ञेयं स्वोच्चमित्रादि गेहगैः।।
बहुधा जायते लाभो बहुधा च सुखागमः।।8।।

पद अर्थात् लग्न पद से ग्यारहवें भाव में कोई भी ग्रह हो या उसे कोई भी ग्रह देखे तो मनुष्य धनवान् व सुखी होता है।

यदि वहाँ शुभ ग्रह हों तो न्यायमार्ग, सन्मार्ग से धनागम होता है, तथा पाप ग्रह रहने से अन्याय, बेईमानी या कठोरतापूर्वक धनागम होता है।

मिश्रित ग्रह रहने पर मिलाजुला फल समझना चाहिए। यदि एकादश में स्थित ग्रह शुभ हो या पाप लेकिन स्वोच्च या स्वक्षेत्र में हो तो अनेक प्रकार से अनेक तरह का धन व सुख मिलता है।

पद से राजयोगः–

पदाल्लाभगृहं यस्य पश्यन्ति सकला ग्रहाः।
राजा वा राजतुल्यो वा स जातो नात्र संशयः।।9।।

पद से एकादश स्थान को सब ग्रह देखते हों तो मनुष्य राजा या राजा तुल्य होता है, इसमें संशय नहीं है।

अति लाभ योग :–

पदाल्लाभगृहं पश्येद् व्ययं कश्चिन्न पश्यति।
अविघ्नेन तदा लाभो जायते द्विजसत्तम।। 10।।
ग्रहदृग्योग बाहुल्ये पदादेकादशे द्विज।।
सार्गले चापि तत्रापि बह्वर्गलसमागमे।। 11।।
शुभग्रहार्गले विप्र ! तत्राप्युच्चग्रहार्गले।
शुभेन स्वामिना दृष्टे लग्नभाग्याधिपेन वा।। 12।।
जातस्य भाग्यप्राबल्यं निर्दिशेदुत्तरोत्तरम्।। 13।।

(i) पद से ग्यारहवें भाव को ग्रह देखे एवं द्वादश भाव को न देखे तो सरलता से लाभ होता रहता है।

(ii) पद से एकादश में बहुत से ग्रहों का योग या दृष्टि हो तो बहुत लाभ, अर्थात् अधिक ग्रहों के दृग्योग से अधिकाधिक लाभ योग है।

इसकी अपेक्षा यदि ग्यारहवाँ भाव अर्गला युक्त भी हो तो और अधिक लाभ होगा। अधिक ग्रहों की अर्गला से और अधिक लाभ योग होगा।

(iii) शुभ ग्रह की अर्गला से और अधिक, उच्चग्रह की अर्गला से उससे भी अधिक, एकादशेश शुभ ग्रह हो तथा एकादस्थ को देखे या भोग करे तो और अधिक लाभ होगा।

(iv) यदि पद से एकादश को लग्नेश व भाग्येश देखें तो और अधिक अर्थात् उक्त क्रम में उत्तरोत्तर अधिक प्रबल लाभ योग होता है।

इस अध्याय के विषय में हमारे 'जैमिनिसूत्र शान्ति प्रियभाष्य' पृ. 58-71 देखें। अर्गला का विचार प्रस्तुत ग्रन्थ के अर्गलाध्याय में किया

जाएगा। संक्षेप में विचारणीय भाव से 2.4.5.11 भावों में ग्रह होने पर भाव अर्गला युक्त होता है। एवं 3.10.9.12 में भी ग्रह रहने पर अर्गला बाधित हो जाती है।

विचारणीय पद लग्न से एकादश में मीन राशि है। मीन से 4 में चन्द्र,11 में सूर्य बुध हैं। तीन ग्रह से अर्गला बनती है। 4 का प्रति बन्धक दशम भावं ग्रह रहित है तथा 11 का विरोधी भाव तृतीय ग्रह रहित है अतः निर्बाध अर्गला है। शुभ ग्रहों की रहने से शुभार्गला है। अतः लाभ योग बनते हैं।

पद से द्वादश भाव विचार :–

पदस्थानाद्व्यये भावे शुभपापयुतेक्षिते।
व्ययबाहुल्यमित्येवं विशेषोपार्जनात् सदा।। 14।।
लाभअन्याय्यमार्गेण कुमार्गेण शुभाशुभैः।
मिश्रैर्मिश्रफलं वाच्यं विशेषः प्रोच्यतेऽधुना।। 15।।

यदि पद से द्वादश स्थान पर किसी भी ग्रह की दृष्टि या योग हो तो व्यय अधिक होता है। व्यय की अपेक्षा लाभ पर अधिक ग्रहों का योग या दृष्टि हो तो कम व्यय व अधिक रहने पर अधिक व्यय होता है।

जिस प्रकार लाभ भाव का विचार किया था, उसी तरह व्यय पर शुभ ग्रहों का दृष्टियोग रहने से न्यायोचित कार्यो पर एवं अशुभग्रह दृग्योग होने पर अन्याय कार्यो में धन व्यय होता है। मिश्रित ग्रह रहने पर मिश्रित फल होता है। अब आगे पद से द्वादश भाव का विशेष फल कहते हैं।

व्यय का कारण :–

पदारूढ़ाद्व्ययेशुक्रभानुस्वर्भानुभिर्युते।
राजमूलाद् व्ययो वाच्यश्चन्द्रदृष्ट्या विशेषतः।। 16।।
यदारूढ़ाद् व्यये सौम्ये ज्ञातिभ्यो कलहाद् व्ययः।
देवेज्ये करमूलाद् वै व्ययो वाच्यो गुरुर्बुधैः।। 17।।
तथैव सूर्यपुत्रेवै धरापुत्रेण संयुते।
भ्रातृवर्गाद्भवेन्नूनं धनानां निर्गमो मुने।। 18।।
पदाद् व्यये व्ययप्रदा ये योगाः परिकीर्तिताः।
ते एवैकादशे स्थाने लाभयोगकराः मताः।। 19।।

पद से व्यय स्थान में शुक्र, सूर्य व राहु एकत्र हों या इनमें से 1.2.3 ग्रह हों तो राजा या सरकार के कारण धन का व्यय होता है। यदि उक्त ग्रहों को चन्द्र देखे तो विशेषतया धन का व्यय होता है।

पद से व्यय में बुध हो तो जाति बिरादरी के कारण या कलह, वाद-विवाद, मुकदमे आदि में धन खर्च हो जाता है।

गुरु द्वादशस्थ हो तो कर देने (Taxation) में ही धन खर्च हो जाता है।

शनि मंगल होने से भाइयों के कारण धन का व्यय होता है। इस प्रकार लाभ भाव में ये ही योग लाभप्रद हो जाते हैं। अर्थात् पद से ग्यारहवें भाव में यदि शुक्र, सूर्य, राहु हों तो राजा से, बुध हो तो जाति से या मुकदमे आदि से लाभ होता है।

उक्त सब योगों में दृष्टि रहने पर कुछ कम व्यय तथा शुभ दृष्ट रहने पर कम कुप्रभाव तथा पाप दृग्योग होने पर विशेष उत्कट कुप्रभाव कहना चाहिए।

पद से सप्तम भाव विचार :–

आरूढ़ात् सप्तमे राहुरथवा संस्थितः शिखी।
कुक्षिव्यथायुतो बालः शिखिना पीडितोऽथवा।।20।।
आरूढात् सप्तमे केतुः पापखेटयुतेक्षितः।
साहसी श्वेतकेशी च वृद्धलिंगी भवेन्नरः।। 21।।

पद लग्न से सप्तम या द्वितीय में राहु या केतु हो तो जातक को पेट की बीमारी होती है अथवा वह कीट संक्रमण से पीड़ित होता है।

आरूढ से 2.7 में केतु पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक के शरीर पर बुढ़ापे के चिन्ह जल्दी दिखते हैं। उसके बाल सफेद होते हैं तथा वह साहसी होता है।

पदात्तु सप्तमे स्थाने गुरुशुक्रनिशाकराः।
त्रयो द्वयमथैकोऽपि लक्ष्मीवांजायते नरः।। 22।।
स्वतुंगे सप्तमे खेटः शुभो वाप्यशुभः पदात्।
श्रीमान् सोऽपि भवेन्नूनं सत्कीर्तिसहितो द्विज!।। 23।।
ये योगाः सप्तमे स्थाने पदाच्च कथिता मया।
चिन्त्यास्तथैव ते योगा द्वितीयेऽपि सदा द्विज!।। 24।।

पद से 2.7 में गुरु, या शुक्र या चन्द्र हो या इनमें से 2.3 ग्रह हों तो मनुष्य धनवान् होता है।

यदि 2.7 में उच्चगत कोई भी ग्रह हो तो भी मनुष्य विख्यात तथा धनी होता है।

जो योग मैंने पद से सप्तम स्थान में कहे हैं उनका विचार यथावत् पद से द्वितीय स्थान में भी करना चाहिए।

यह समस्त विषय यथावत् इसी क्रम से जैमिनि सूत्रों में भी कहा गया है। अतः पाठकों को विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारा जैमिनि सूत्र शान्ति प्रिय भाष्य अवश्य पढ़ना चाहिए।

विचारणीय उदाहरण में पद से सप्तम में राहु है। अतः पेट में कृमि संक्रमण के योग हैं तथा यही वास्तविकता भी है। पद से द्वितीय में पक्ष बली चन्द्रमा तथा सप्तम में स्वक्षेत्री मंगल मध्यम धनयोग बनाता है।

द्वितीयगत योग :–

उच्चस्थो रौहिणेयो वा जीवो वा शुक्र एव वा।
एको बली धनगतः श्रियं दिशति देहिनाम्।। 25।।
ये योगाश्च पदे लग्ने यथावद् गदिता मया।
ते योगाः कारकांशेऽपि विज्ञेया बाधवर्जिताः।। 26।।

पद लग्न से द्वितीय में उच्चगत चन्द्र, गुरु या शुक्र कोई एक हो तो भी जातक श्रीमान् होता है।

जो योग पद लग्न में कहे हैं, उनका विचार यथावत् कारकांश कुण्डली में भी करना चाहिए।

आरूढात् वित्तभे सौम्ये सर्वदेशाधिपो भवेत्।
सर्वज्ञो यदि वा स स्यात् कविर्वादी च भार्गवे।। 27।।

पद लग्न से द्वितीय में यदि बुध हो तो मनुष्य सार्वभौम राजा, शुक्र हो तो सर्वज्ञ, कवि या वक्ता या वकील होता है।

सप्तम स्थान पद का फल :–

आरुढात् केन्द्रकोणेषु स्थिते दारपदे द्विज !।
लग्न जायापदे वापि सबलग्रहसंयुते।। 28।।
श्रीमांश्च जायते नूनं देशे विख्यातिमान् भवेत्।
षष्ठेऽष्टमे व्ययस्थाने जातोदारपदेऽधनः।। 29।।
पदे तत्सप्तमे वापि केन्द्रे वृद्धौ त्रिकोणके।
सुवीर्यः संस्थितः खेटः भार्याभर्तृ सुखप्रदः।। 30।।

सप्तम भाव का पद यदि पद लग्न से केन्द्र त्रिकोण में पड़े अथवा दोनों पद या कोई एक पद बलवान् ग्रह से युक्त हो तो मनुष्य प्रसिद्ध व श्रीमान् होता है। यदि सप्तम भाव का पद 6.8.12 (पद से) में पड़े तो मनुष्य निर्धन होता है। यदि पद या उससे सप्तम में या पद से केन्द्र कोण में या उपचय में बलवान् ग्रह हो तो स्त्री को पति का व पति को स्त्री का सुख होता है।

विचारणीय कुण्डली में सप्तम स्थान का पद कन्या में है। यह पद लग्न से पंचम में होने से श्रीमान् योग हुआ। पद से केन्द्र में गुरु शुक्र, त्रिकोण में सूर्य बुध, सप्तम में बलवान् मंगल है। अतः स्त्रीसुख योग बनता है।

पद से सप्तम पद का विचार :–

पदाद् दारपदे चैवं केन्द्रे कोणे च संस्थिते ।
द्वयोर्मैत्री भवेन्नूनं त्रिके वैरं न संशयः ।। 31 ।।

पद लग्न से सप्तम भाव का पद यदि केन्द्र त्रिकोण में हो तो पति पत्नी में मित्रता व 6.8.12 में हो तो शत्रुता होती है ।

पद से अन्य सम्बन्धियों का विचार :–

एवं लग्नपदाद् विप्र ! तनयादि पदे स्थिते ।
मित्रामित्रे विजानीयाल्लाभालाभौ विचक्षणः ।। 32 ।।
लग्नदारपदे विप्र ! मिथः केन्द्रगते यदि ।
त्रिलाभयोस्त्रिकोणे वा तदा राजा धराधिपः ।। 33 ।।
एवं लग्नपदादेव धनादि पदतो द्विज !
स्थानद्वयं समालोच्य जातकस्य फलं वदेत् ।। 34 ।।

इसी तरह पद लग्न से जिस पुत्र, मित्रादि के पद केन्द्र या त्रिकोण में हों, उनमें मैत्री, अन्यथा शत्रुता होती है । मैत्री योग रहने से उन सम्बन्धियों से लाभ, अन्यथा हानि होती है ।

लग्न व स्त्री पद यदि परस्पर केन्द्र त्रिकोण में हों या 3.11 में हों तो जातक राजा होता है ।

इसी प्रकार लग्न पद से धनादि भावों के पदों का भी विचार करना चाहिए ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां पदाध्यायः सप्तविंशः ।। 27 ।।

28

।। अथोपपदाध्यायः ।।

उपपद का ज्ञान :–

अथोपपदमाश्रित्य कथयामि फलं द्विज ! ।
यच्छुभत्वे भवेन्नृणां पुत्रदारादिजं सुखम् ।। 1 ।।
तनुभावपदं विप्र ! प्रधानं पदमुच्यते ।
तनोरनुचराद्यत् स्यादुपारूढं प्रचक्षते ।।2 ।।

तदेवोपपदं नाम तथा गौणपदं मतम् ।

हे मैत्रेय ! अब मैं उपपद के आधार पर फल कथन की प्रणाली बताता हूँ। उपपद से शुभ फल होने पर मनुष्य को स्त्री–पुत्रादि का सुख होता है।

लग्न के पद को प्रधान पद या पद कहते हैं। इसी तरह लग्न के अनुचर अर्थात् द्वादशभाव के पद का नाम उप पद, उपारूढ या गौणपद है।

लग्न से द्वादश भाव का पद ही उपपद होता है, इस विषय में हम ऊहापोह के साथ जैमिनिसूत्र के पृ. 72-73 पर लिख चुके हैं। हमारे क्रमिक उदाहरण में उपपद सिंह राशि में पड़ता है।

शुभखेटगृहे तस्मिन् शुभग्रह युतेक्षिते ।। 3 ।।

पुत्रदारसुखं पूर्णं जायते जातकस्य वै ।

पापग्रहयुते तत्र पापभे पापवीक्षिते ।। 4 ।।

प्रव्राजको भवेज्जातो दारहीनोऽथवा नरः ।

शुभदृग्योगतो नैव योगोऽयं दारनाशकः ।। 5 ।।

रविर्नैवात्रपापः स्यात् स्वोच्चमित्रस्वभस्थितः ।

नीचशत्रुगृहस्थश्चेत्तदा ऽसौपाप एव हि ।। 6 ।।

यदि उपपद किसी शुभ ग्रह की राशि में हो, या शुभ ग्रह से युक्त दृष्ट हो तो मनुष्य को स्त्री व पुत्र का सुख पूर्ण होता है।

यदि उपपद पाप ग्रह से युतदृष्ट हो या पाप ग्रह की राशि में हो तो मनुष्य संयासी या पत्नी रहित होता है। ऐसा होने पर यदि शुभदृग्योग हो तो पत्नी का नाश नहीं होता है।

इस प्रसंग में सूर्य की गणना पाप वर्ग में नहीं करनी चाहिए। लेकिन शत्रुक्षेत्री या नीचगत हो तो सूर्य भी पापी है। अर्थात् उच्चगत, स्वक्षेत्री, मित्रक्षेत्री सूर्य उपपद में हो तो स्त्री पुत्र के लिए शुभ ही है।

हमारे उदारहण में उपपद में बृहस्पति है। उस पर शुक्र की पूर्ण दृष्टि है। अतः जातक को स्त्री व पुत्र का सुख भरपूर होगा।

उपपद से द्वितीय स्थान का विचार :–

शुभग्रहाणांदृष्टिश्चेदुपारूढाद्द्वितीयके ।

शुभर्क्षे शुभसंयुक्ते पूर्वोक्तं हि फलं मतम् ।। 7 ।।

उपारूढाद् द्वितीये च नीचांशे नीचखेट युक् ।

क्रूरग्रहसमायुक्तं जातको दारहा भवेत् ।। 8 ।।

स्वोच्चांशे स्वोच्चसंस्थे वा तुंगदृष्टिवशात् तथा ।

भवन्ति बहवो दारा रूपलक्षणसंयुताः ।। 9 ।।

इसी तरह उपपद से द्वितीय स्थान में यदि शुभ राशि, शुभ योग या शुभ दृष्टि हो तो भी स्त्री पुत्र का सुख होता है ।

उपपद से द्वितीय में नीच नवांश या नीचगत कोई ग्रह हो अथवा क्रूर ग्रह का योग दृष्टि हो तो पत्नी का नाश हो जाता है ।

उपपद से द्वितीय में स्वोच्च राशि या नवांश में स्थित ग्रह हो अथवा किसी उच्चगत ग्रह की दृष्टि हो तो मनुष्य की सुन्दर व अनुकूल कई पत्नियाँ होती हैं ।

उपारूढे द्वितीये वा मिथुने संस्थिते सति ।

तत्र जातनरो विप्र ! बहुदारयुतो भवेत् ।। 10 ।।

उपारूढे द्वितीयेऽपि स्वस्वामिग्रह संयुते ।

स्वर्क्षगेतत्पतौ वापि यत्रकुत्रापि संस्थिते ।। 11 ।।

यस्य जन्मनि योगोऽयं स नरो द्विजसत्तम ! ।

उत्तरायुषि निर्दारो भवत्येव न संशयः ।। 12 ।।

यदि उपपद से द्वितीय में या उपपद में मिथुन राशि पड़े तो व्यक्ति की बहुत सी पत्नियाँ होती हैं ।

उपपद से 1.2 में यदि कोई स्वक्षेत्री ग्रह हो अथवा उपपद का स्वामी या उपपद से द्वितीयेश कहीं अन्यत्र भी स्वक्षेत्री हो तो ऐसे व्यक्ति की पत्नी वृद्धावस्था में जीवित नहीं रहती है ।

उपपद व ससुराल :–

उपारूढपतिःस्वोच्चेस्थिरस्त्रीकारकोऽथवा ।

सुकुलाद् दारलाभः स्यान्नीचस्थे तु विपर्ययात् ।। 13 ।।

उपारूढे द्वितीये वा शुभसम्बन्धतो द्विज ! ।

जातस्य सुन्दरी भार्या भव्या रूपगुणान्विता ।। 14 ।।

यदि उपपद का स्वामी अपनी उच्च राशि में हो अथवा स्थिर कारक (सप्तमेश या गुरु) उच्च राशि में हो तो अच्छे कुल से पत्नी मिलती है तथा नीचादि में रहने से नीच कुल से पत्नी मिलती है ।

उपपद या उससे द्वितीय में किसी भी प्रकार से शुभ ग्रह या राशि का सम्बन्ध हो तो मनुष्य की पत्नी सुन्दर, आकर्षक, रूपवती व गुणवती होती है ।

उपपद स्थित ग्रहफल :–

उपारूढाद् द्वितीये च शनिराहूस्थितौ यदि ।
अपवादात् स्त्रियस्त्यागो नाशो वा जायते द्विज ! ।। 15 ।।
उपारूढ़े द्वितीये वा शिखिशुक्रौ यदा स्थितौ ।
रक्तप्रदररोगार्ता जायते तस्य भामिनी ।। 16 ।।

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में शनिराहु हों तो पत्नी का नाश होता है या बदनामी के कारण उसे त्याग दिया जाता है ।

उपपद या द्वितीय में केतु व शुक्र हों तो मनुष्य की स्त्री रक्तप्रदर से पीड़ित होती है ।

बुधकेतू स्थितौ तत्र तदास्थिस्रावसंयुता ।
तत्रस्था शनिराहवर्कास्तदाऽस्थिज्वर संयुता ।। 17 ।।
स्थूलांगी बुधराहुभ्यां तत्रस्थाभ्यां द्विजोत्तम ! ।
बुधक्षेत्रे कुजार्की चेन्नासिकारोगपीड़िता ।। 18 ।।
कुजक्षेत्रेप्येवमेव फलं ज्ञेयं स्त्रियां द्विज ! ।
बृहस्पतिशनी तत्र कर्णनेत्ररुजान्विता ।। 19 ।।
तत्रान्यगेहगौ विप्र ! बुधभौमौ स्थितौ यदा ।
यदा स्वर्भानुदेवेज्यौ भार्या दन्तरुजान्विता ।। 20 ।।
शनिराहू शनिक्षेत्रे पंगुर्वातरुजान्विता ।
शुभदृग्योगतो नेति फलं ज्ञेयं विपश्चिता ।। 21 ।।

उपपद या उससे द्वितीय में बुध व केतु हों तो हड्डी में स्राव (कमजोरी, हड्डियों का नाश करने वाला रोग) होता है ।

यदि शनि राहु व सूर्य हो तो हड्डियाँ विकृत करने वाला कोई बुखार होता है । यदि वहाँ पर बुध व राहु हों तो मनुष्य की पत्नी मोटी होती है । यदि मंगल शनि मिथुन या कन्या में वहाँ हों तो नाक का रोग होता है । इसी तरह मेष वृश्चिक में मंगल शनि एकसाथ उपपद या उससे द्वितीय में हों तो भी नाक का रोग नजला, पीनस, सायनस, जुकाम, हड्डी बढ़ना आदि रोग होते हैं ।

यदि इन स्थानों में गुरु–शनि हों तो कान व आँखों में विकार होता है । यदि स्वराशि के अलावा बुध–मंगल इन स्थानों में हों तो भी दाँत व कान में विकार होता है । इन्हीं स्थानों में राहु व बृहस्पति हों तो दाँत का रोग, शनि व राहु मकर कुम्भ में हों तो लँगडी या वातरोगी होती है ।

उक्त सब योगों में शुभग्रहों (कहे गए के अतिरिकत) की दृष्टि या योग हो तो उक्त अनिष्ट फल नहीं होता है।

लग्नात् पदादुपारूढ़ाद् यो राशिः सप्तमो भवेत् !।

तत्स्वामिनस्तदंशाच्च तदर्क्षाच्च बुधैः सदा ।। 22 ।।

एवमेव फलं ज्ञेयमित्याहुर्नारदादयः ।

लग्नपद व उपपद से, सप्तम राशि से, सप्तमगत नवांश से, सप्तमेश से भी इसी तरह उक्त योगों के अनुसार शुभाशुभ फल समझना चाहिए, ऐसा ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक नारदादि का मत है।

उक्त उदाहरण में पद लग्न से सप्तम में मंगल, शनि वृश्चिक में हैं, अतः जुकाम, नजला होने के योग हैं। फलस्वरूप जातक की पत्नी को उक्त विकार बचपन से ही हैं।

पुत्र विचार :–

उक्तेभ्यो नवमे विप्र ! शनि चन्द्रबुधा यदि ।। 23 ।।

अपुत्रता तथार्केज्य राहुभिर्बहुपुत्रता ।

चन्द्रेणैकसुतस्तत्र मिश्रैः पुत्रो विलम्बतः ।। 24 ।।

रवीज्यराहुयोगेन पुत्रो वीर्यप्रतापवान् ।

प्रचण्डविजयी विप्र ! रिपुनिग्रहकारकः ।। 25 ।।

हे मैत्रेय !यदि लग्न, लग्नपद, उपपद, सप्तमभाव, सप्तमभाव–नवांश से नवम में शनि, चन्द्र, बुध हो तो पुत्रहीनता योग होता है और सूर्य, बृहस्पति, राहु से अनेक पुत्र होते हैं।

यदि उक्त स्थानों में अकेला चन्द्र हो तो एक पुत्र होता है तथा मिश्रित ग्रह हों तो देर से पुत्र–प्राप्ति होती है।

वहीं सूर्य, शुक्र व राहु के एक साथ रहने से पुत्र बहुत प्रतापी, विजयी व शत्रु–संहारक होता है।

उक्तस्थाने कुजार्किभ्यां पुत्रहीनः प्रजायते ।

दत्तपुत्रयुतो वापि सहोत्थसुतवान् भवेत् ।। 26 ।।

तत्रस्थे विषमे राशौ बहुपुत्रयुतो भवेत् ।

स्वल्पापत्यः समेराशौ जायते द्विजसत्तम् ! ।। 27 ।।

यदि उक्त भावों से नवम में मंगल शनि हों तो व्यक्ति पुत्रहीन होता है अथवा दत्तक पुत्र या भाई के पुत्र को पुत्र मानता है।

इन्हीं नवम भावों में यदि विषम राशि हो तो अनेक पुत्र होते हैं तथा सम राशि रहने से कम सन्तान होती है।

सिंहे चोपपदे विप्र ! निशानाथयुतेक्षिते।
अल्पप्रजोऽथ कन्यायां जातः कन्या प्रजो भवेत्।। 28।।
सुतभावनवांशाच्च स्थिरसन्ततिकारकात्।
एवं त्रिंशांश कुण्डल्यामपियोगं विचिन्तयेत्।। 29।।

यदि उपपद सिंह राशि में पड़े तथा चन्द्रमा से युत दृष्ट हो तो मनुष्य की कम सन्तान होती है। यदि उपपद कन्या में हो तो अधिक कन्याएँ होती हैं।

इसी तरह पंचम भाव के नवांश से भी तथा त्रिंशांश कुण्डली से भी विचार करना चाहिए।

भाई–बहन विचारः–

शशिराहू त्रिलाभस्थौ पदाद् भ्रातृविनाशकौ।
ज्येष्ठस्यैकादशेतत्र कनिष्ठस्य तृतीयके।। 30।।
दैत्येज्ये तत्र गर्भस्य नाशो व्यवहितस्य च।
लग्ने वापि पदे रन्ध्रे दैत्याचार्यसुतेक्षिते।। 31।।
तथैव फलमित्याहुर्निर्विशंकं मुनीश्वराः !।।

यदि उपपद से तृतीय एकादश में चन्द्र व राहु हों तो भाई का नाश होता है। यदि उपपद से 11 में हो तो बड़े भाई का तथा तृतीय में छोटे भाई की मृत्यु होती है। यदि 3.11 में शुक्र हो अथवा लग्ने में उपपद में, उपपद या पद से 8 में शुक्र का योग या दृष्टि हो तो गर्भस्थ भाई का ही नाश होता है।

तृतीयलाभयोर्विप्र ! चन्द्रेज्यबुधमगंलाः।।32।।
बहवो भ्रातरस्तस्य बलवन्तः प्रतापिनः।
शन्यारसंयुते दृष्टे तृतीयैकादशे द्विज !।। 33।।
कनिष्ठज्येष्ठयोर्नाशो विज्ञेयो द्विजसत्तम !।
शनिरेको यदा तत्र लाभगो वा तृतीयगः।। 34।।
तदा स्वमात्रशेषः स्यादन्ये नश्यन्ति सोदराः।
तृतीये लाभगे केतौ बहुलं भगिनी सुतम्।। 35।।

यदि उपपद, पद या लग्न से 3.11 में चन्द्र, गुरु, बुध, मंगल हों तो व्यक्ति के अनेक प्रतापी भाई होते हैं।

यदि इन्हीं भावों में शनि मंगल साथ हों तो क्रमशः बड़े व छोटे भाइयों का नाश होता है।

अकेला शनि इन भावों में हो तो स्वयं को छोड़कर शेष भाई नष्ट हो जाते हैं।

3.11 में केतु हो तो व्यक्ति की कई बहनें होती हैं।

चोर आदि होने के योग :–

आरूढ़ात् षष्ठभावस्थे पापाख्ये शुभ वर्जिते।

शुभसम्बन्धरहिते चौरो भवति जातकः।। 36।।

सप्तमे द्वादशे स्थाने सैंहिकेययुतेक्षिते।

ज्ञानवांश्च भवेद् बालो बहुभाग्ययुतस्तथा।। 37।।

आरूढे संस्थिते सौम्ये सर्वदेशाधिपो भवेत्।

सर्वज्ञस्तत्र देवेज्ये, कविर्वादी च भार्गवे।। 38।।

यदि पद या उपपद से षष्ठ में पाप ग्रह हों तथा शुभ न हों, शुभ ग्रह का कोई सम्बन्ध भी न हो तो जातक चोर होता है।

7.12 में यदि राहु का योग दृष्टि हो (राशिवशात् दृष्टि) तो मनुष्य ज्ञानी व बहुत भाग्यवान् होता है।

पद या उपपद में बुध हो तो मनुष्य बड़ा राजा होता है। यदि वहाँ पर बृहस्पति हो तो सब शास्त्रों को जानने वाला, कवि या शास्त्रार्थी होता है।

उपारूढात् पदाद् वापि धनस्थे शुभखेचरे।

सर्वद्रव्याधिपो धीमांजायते मानवः सदा।। 39।।

उपारूढाद्धनाधीशेद्वितीयभवनस्थिते।

पापखेचरसंयुक्ते चौरो भवति जातकः।। 40।।

उपपद या पद से द्वितीय में यदि शुभ ग्रह हो तो मनुष्य बहुत धनी व बुद्धिमान् होता है।

उपपद से द्वितीयेश यदि द्वितीय में हो तथा पाप ग्रह भी साथ हो तो मनुष्य चोर होता है।

दन्तुर कुरूपादि योग :–

तत्सप्तमगृहाधीशाद् राहौ धनगते द्विज !।

दंष्ट्रावान् जायते जातः स्तब्धवाक् केतु खेचरे।। 41।।

शनैश्चरे कुरूपः स्यात् सप्तमेशाद् द्वितीयगे ।

मित्रग्रहसमायुक्ते फलं मिश्रं समादिशेत् ।। 42 ।।

उपपद से सप्तमेश जिस राशि में हो, उससे द्वितीय में राहु रहने पर बड़े दाँतों वाला, केतु हो तो बोलने में अटकने वाला तथा शनि हो तो कुरूप होता है ।

यदि उक्त सप्तमेश से द्वितीय में शुभाशुभग्रह हों तो मनुष्य मिश्रित रूप वाला होता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां उपपदाध्यायोऽष्टविंशः ।।28 ।।

29

।। अथार्गलाफलाध्यायः ।।

भगवन् ! यार्गला प्रोक्ता शुभदा भवताऽधुना ।
तामहं श्रोतुमिच्छामि सलक्षणफलां मुने ! ।। 1 ।।

मैत्रेय बोले—मुनिवर ! आपने जो शुभ अर्गला का उल्लेख किया है, मैं उसका लक्षण व फल सुनना चाहता हूँ ।

अर्गला विचार :–

मैत्रेय ! सार्गला नाम यया भावफलं दृढम् ।
स्थिर खेटफलं च स्यात् साधुना कथ्यते मया ।। 2 ।।
चतुर्थे च धने लाभे ग्रहे ज्ञेया तदर्गला ।
तद्बाधकाः क्रमात् खेटा व्योमरिःफतृतीयगाः ।।3 ।।
निर्बला न्यून संख्या वा बाधका नैव सम्मताः ।
तृतीये त्र्याधिकाः पापा यत्र मैत्रेय ! बाधकाः ।। 4 ।।
तथापि चार्गला ज्ञेया विपरीता द्विजोत्तम ! ।
तथापि खेटभावानां फलमर्गलितं विदुः ।। 5 ।।

हे मैत्रेय ! अर्गला भाव या ग्रह के फल को निश्चित रखती है अर्थात् मजबूती से सँभालती है । अतः भाव व ग्रह के फल को विगलित होने, रिसने से बचाने वाली ग्रह स्थिति अर्गला कहलाती है ।

जिस भाव या ग्रह की अर्गला देखनी हो, उससे 2.4.11 भावों में यदि ग्रह हों तो अर्गलाकारक होते हैं । इन स्थानों के क्रमशः 12.10.3 अर्गला बाधक स्थान होते हैं ।

यदि बाधक ग्रह, अर्गलाकारक से निर्बल हों या कम संख्या में हों तो वे बाधक स्थान होते हैं। लेकिन तृतीय में तीन या अधिक पाप ग्रह हों तो यह कभी भी बाधित नहीं होती तथा इसे विपरीत अर्गला कहते हैं। इस तृतीय भाव वाली अर्गला से भी फल पुष्ट होता है।

हमारे पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में पंचम स्थान में तीन पाप ग्रह हैं। अतः तृतीय भाव के लिए यह निर्बाध अर्गला हुई। फलस्वरूप तृतीय भाव का फल पराक्रम, परिश्रम, छोटे भाई आदि रूप फल अवश्य मिलेगा। धनस्थान से 4.11 में ग्रह है। 4 का बाधक स्थान 10 है जो ग्रह केतुयुक्त है। 11 का बाधक स्थान तृतीय है, जिसमें कोई ग्रह नहीं है। अतः चतुर्थ अर्गला एवं एकादश स्थान वाली अर्गला निर्बाध अर्गला है।

पंचमं चार्गलास्थानं नवमं तद्विरोधकृत्।
तमो ग्रहभवा सा च व्यत्ययाज् ज्ञायते बुधैः।।6।।

पंचम स्थान भी अर्गला स्थान है तथा नवम स्थान इसका बाधा स्थान है। राहु व केतु के लिए बाधा स्थान को अर्गला स्थान व अर्गला स्थान को बाधा स्थान समझना चाहिए।

हमारे उदाहरण में लग्न से पंचम में तीन ग्रह हैं। उनमें मंगल स्वक्षेत्री है। नवम स्थान खाली है। अतः यह निर्बाध अर्गला हुई।

एकग्रहा कनिष्ठा सा द्विग्रहा मध्यमा मता।
त्र्यादिखेटकृता सा च कथिता सार्गलोत्तमा।।7।।
राशितो ग्रहतश्चापि विज्ञेया द्विविधार्गला।
निर्बाधका सुफलदा विफला बाधिता स्मृता।।8।।
यत्र राशौ स्थितः खेटस्तस्य पाकान्तरं यदा।
तस्मिन् काले फलं ज्ञेयं निश्चलं धीमता सदा।।9।।

एक ग्रह द्वारा अर्गला बने तो कनिष्ठ, दो ग्रहों से बने तो मध्यम तथा तीन या अधिक ग्रहों से बने तो उत्तम अर्गला होती है।

राशि व ग्रह दोनों से अर्गला का विचार करना योग्य है। निर्बाध अर्गला शुभफलदायी तथा बाधित अर्गला निष्फल होती है।

जिस राशि या ग्रह से अर्गला बने, उस राशि या ग्रह की दशान्तर्दशा में अर्गला का पूर्ण फल समझना चाहिए।

यदि कई ग्रहों से एक ही स्थान में अर्गला बने तो उनमें से बलवान् ग्रह की दशान्तर्दशा में फल होगा, यह ध्यान रखिए।

हमारे उदाहरण में मंगल, शनि, राहु तीनों ही धन व लग्न स्थान से अर्गलाकारक हैं। अतः शनि में मंगल या मंगल में शनि या शनि में राहु या राहु में शनि की दशान्तर्दशा में शरीर सुख, धन, कुटम्ब आदि का पूर्ण सुख मिलेगा।

इन नियमों का मूल हमारे जैमिनि सूत्र शान्तिप्रिय भाष्य पृ० 11-15 पर देखें।

अर्गला व बाध का स्पष्टीकरण :–

अर्गलां प्रतिबन्धं च प्रथमांघ्रिचतुर्थयोः।

द्वित्र्यंघ्रोश्च मिथो विप्र ! चिन्तयेदिति मे मतिः।। 10।।

अर्गला कारक व बाधक ग्रह राशि के प्रथम चरण अर्थात् 7°.30′ अंशों के भीतर वाले ग्रह की अर्गला बाधाराशि में 22°.30′ अंशों से आगे स्थितग्रह से होने से तथा राशि के द्वितीय चरण 15° से 22°.30′ अंशगत ग्रह की 7°.30′ से 15°.0′ अंश तक स्थित ग्रह से माननी चाहिए, ऐसा मेरा विचार है।

अर्गला फल विचार :–

पदे लग्ने मदे वापि निराभासार्गला यदा।

तदाजातोऽतिविख्यातो बहुभाग्ययुतो भवेत्।। 11।।

यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले।

तेनटद्रष्टेक्षितं लग्नं प्राबल्यायोपकल्प्यते।। 12।।

यदि पद, लग्न या उनसे सप्तम भाव की अर्गला निर्बाध हो तो मनुष्य विख्यात व भाग्यवान् होता है।

जिस भाव की अर्गला शुभ या पाप किसी भी ग्रह से बने, लेकिन बाधारहित हो, उस अर्गलाकारक ग्रह की लग्न पर दृष्टि हो तो भी मनुष्य प्रबल भाग्यशाली व स्वस्थ होता है।

हमारे उदाहरण में जन्म की पंचमार्गला बली व निर्बाध है। पद लग्न में भी एक ग्रह की अर्गला है। सप्तम भाव में 2.11 भाव से निर्बाध अर्गला है, अतः जातक भाग्यवान् व प्रसिद्ध होगा।

सार्गले च धने विप्र ! धनधान्य समन्वितः।

तृतीये सोदरादीनां सुखमुक्तं महर्षिभिः।। 13।।

चतुर्थे सार्गले गेहपशुबन्धुकुलैर्युतः।

पंचमे पुत्रपौत्रादिसंयुतो बुद्धिमान्नरः।। 14।।

षष्ठे रिपुभयं काये धनदारसुखं बहु।

अष्टमे जायते कष्टं धर्मे भाग्योदयो भवेत्।। 15।।

यदि पद, लग्न से द्वितीय भाव अर्गलायुक्त हो तो मनुष्य धन–धान्य से सम्पन्न होता है। तृतीय भाव सार्गल हो तो भाइयों का सुख होगा, ऐसा महर्षियों ने कहा है।

चतुर्थ भाव की अर्गला से मनुष्य घर, चतुष्पद सम्पत्ति, बन्धु–बान्धव से युक्त तथा पंचम भाव की अर्गला से बुद्धिमान् व पुत्र–पौत्रादि से युक्त होता है।

षष्ठ स्थान में अर्गला हो तो शत्रुभय, सप्तम स्थान सार्गल हो तो स्त्री व धन का सुख तथा अष्टम भाव की अर्गला हो तो कष्ट होता है। नवम भाव की अर्गला से भाग्योदय होता है।

हमारे उदाहरण में नवम से 4 में चन्द्र, 11 में सूर्य बुध तथा 2 में कोई ग्रह नहीं है। 4 के विपरीत 10 भाव ग्रहरहित, तृतीय में अकेला केतु है। अतः यह निर्बाध अर्गला हुई। इनमें से सूर्य बुध लग्न को देखते हैं। फलस्वरूप सूर्य बुध की दशान्तर्दशा में या अन्य अर्गला कारक ग्रहों के साथ सूर्य बुध की दशान्तर्दशा में जातक का विशेष भाग्योदय होगा।

दशमे राजसम्मानं लाभे लाभसमन्वितः।

सार्गले च व्यये विप्र ! व्ययाधिक्यं प्रजायते।। 16।।

शुभार्गलायां विपेन्द्र! सौख्यं बहुविधं भवेत्।

मध्यं पापार्गलायां च मिश्रायामपि चोत्तमम्।। 17।।

लग्न पंचम भाग्येषु सार्गलेषु द्विजोत्तम !।

जातश्च जायते राजा भाग्यवान् नात्र संशयः।। 18।।

दशम भाव की अर्गला हो तो राज–सम्मान, लाभ भाव सार्गल हो तो लाभ योग होता है। लेकिन व्ययभाव यदि सार्गल हो तो अधिक व्यय होता है।

यदि शुभ ग्रह अर्गला युक्त हों अर्थात् कारक ग्रह अर्गला वाले हों तो शुभ, पाप ग्रह सार्गल हों तो मध्यम फल तथा मिश्रित ग्रह सार्गल हों तो भी उत्तम फल होता है।

यदि 1.5.9 भाव सार्गल हों तो मनुष्य राजा व भाग्यवान् होता है। स्पष्ट है कि 6.8.12 भाव सार्गल रहने से अशुभ तथा शेष भावों की अर्गला शुभ होती है। इनमें भी 1.5.9 इन तीनों भावों की अर्गला हो तो मनुष्य राजा, दो भाव सार्गल हों तो मध्यम राजातुल्य तथा एक भाव सार्गल हो तो भी सुचारु जीवन निर्वाह होता है। फिर अर्गलाकारक ग्रहों के बल व अधिकता को भी समन्वित करके फल कहना चाहिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामर्गलाफलाध्याय एकोनत्रिंशः।। 29।।

30

।। अथ कारकाध्यायः ।।

चर कारक विचार :–

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि ग्रहानात्मादिकारकान् ।
सप्त रव्यादिशन्यन्तान् राह्वन्तान्वाऽष्टसंख्यकान् ।।1।।
अंशैः समौ ग्रहौ द्वौ चेत् राह्वन्तान् गणयेद् द्विज ! ।
सप्तैव कारकानेवं केचिदष्टौ प्रचक्षते ।।2।।

अब मैं आत्मकारकादि सात चर कारकों को कहता हूँ। सूर्य से शनि पर्यन्त या सूर्य से राहु पर्यन्त सात या आठ ग्रहों के अंशों को देखें। यदि ग्रहों के अंशादि समान हों तो राहु तक गणना करें। यद्यपि सात ही कारक हैं, लेकिन कुछ लोग आठ कारक कहते हैं।

आत्मकारक, अमात्यकारक, भ्रातृकारक, मातृकारक, पुत्रकारक, ज्ञातिकारक व स्त्रीकारक ये सात कारक होते हैं, यह प्रधान व बहुप्रचलित पक्ष है। कुछ लोग राहु सहित सदैव गणना करके आठ कारक होते हैं, ऐसा मानते हैं। जैमिनि सूत्रों में भी दोनों विकल्प रखे हैं, लेकिन सप्तकारक वाले पक्ष को ही मुख्य माना है। आठ कारक वाले मत में पितृकारक अधिक माना जाता है। कारक निर्णय के दो सोपान हैं। पहले आत्मकारक व स्त्री कारक का निश्चय होगा। ये क्रमशः प्रथम व अन्तिम कारक हैं। इसके बाद मध्य कारकों 5 या 6 का निर्णय होता है। **निश्चित नियम है कि राशियों को छोड़कर जिस ग्रह के भुक्तांश सबसे अधिक हों, वही आत्मकारक है।** सबसे कम अंशों वाला स्त्रीकारक है। यदि किन्हीं दो ग्रहों के अंश समान हों तो कलाओं को देखें। कलाएँ भी समान हों तो विकलाओं को देखें। जिसके अंश, कला, विकला सबसे अधिक हों, वहीं आत्मकारक हुआ। लेकिन दो ग्रहों के समान अंश होने पर राहु तक गणना करने का निर्देश है। यह अन्य कारकों के विषय में है। सबसे अधिक अंशादि वाला आत्मकारक, उससे कम अमात्यकारक, उससे कम भ्रातृकारक इत्यादि क्रम से सबसे कम स्त्रीकारक तथा मध्य में जिसके अंश हों वह मध्यकारक या उपखेट होता है। यही ऋजु मार्ग है।

आत्मा सूर्यादिखेटानां मध्ये ह्यंशाधिको ग्रहः ।
अंशसाम्ये कलाधिक्यात् तत्साम्ये विकलाधिकः ।।3।।
अंशाधिकः कारकः स्यादल्पांशो ह्यन्त्यकारकः ।
मध्यांशो मध्यखेटः स्यादुपखेटः स एव हि ।।4।।

सूर्यादि ग्रहों में सर्वाधिक अंश, कला, विकला वाला ग्रह अंशों की अधिकता से ही निर्णीत हो जाए तो कला विकला देखने की आवश्यकता

नहीं है । अधिकांश ग्रह आत्मकारक, अल्पांश ग्रह अन्त्यकारक तथा मध्यांश ग्रह मध्यकारक या उपखेट होता है ।

विलोमगमनाद्राहोरंशाःशोध्याःखवह्निनतः ।
अंशक्रमादधोऽधः स्थाश्चराख्या कारका इति ।।5।।

यदि राहु तक गिनने की स्थिति हो तो राहु के स्पष्ट अंशादि को 30 में से घटाकर शेष अंशों को भुक्तांश मानें, क्योंकि राहु सदैव वक्रगति से चलता है । इस तरह क्रमशः कम कम अंश वाले ग्रह आत्मादि सात या आठ कारक होते हैं । इनमें सप्तकारक वाला पक्ष अधिक प्रचलित है ।

आत्मकारक की महत्ता :–

आत्मकारकस्तेषु प्रधानं कथ्यते बुधैः ।
स एव जातकाधीशो बन्धकृन्मोक्षकृत्तथा ।।6।।
यथा भूमौ प्रसिद्धोऽस्ति नराणां क्षितिपालकः ।
सर्ववार्ताधिकारी स विज्ञेयो द्विजसत्तम ! ।।7।।
यथा राजाज्ञया विप्र ! पुत्रामात्यादयो जनाः ।
प्रवृत्ताः निजकार्येषु तथैवान्येऽपि कारकाः ।।8।।

सब कारकों में आत्मकारक प्रधान है । वही वास्तव में जातक का स्वामी है । उसकी अनुकूलता व प्रतिकूलता से ही बन्धन या मोक्ष अर्थात् सारे शुभाशुभ फल व्यक्ति को मिलते हैं ।

जिस प्रकार राजा सर्वाधिकार सम्पन्न होता है तथा उसी की आज्ञा से अन्य अमात्य (मन्त्री) आदि अपना काम कर पाते हैं, उसी तरह आत्मकारक की अनुकूलता व उसके स्वभाव, बलाबलानुसार ही शेष कारक भी फल देते हैं ।

आत्मानुकूलमेवात्र भवन्ति फलदायकाः ।
प्रतिकूले यथा भूपे सर्वेऽमात्यादयो द्विज ! ।।9।।
कार्यं कर्तु मनुष्याणां न समर्था तथैव हि ।
प्रधानकारके क्रूरे नाऽन्ये स्वशुभदायकाः ।।10।।
अनुकूले नृपे तद्वत् सर्वेऽमात्यादयो द्विज ! ।
नाशुभं कुर्वते नृणां न ते पापफलप्रदाः ।।11।।

आत्मकारक के अनुकूल रहकर ही अन्य आत्मादि कारक भी अपना फल देते हैं । जैसे राजा की आज्ञा के बिना मन्त्री आदि भी स्वविवेक से शुभ या अशुभ नहीं कर सकते, उसी तरह अन्य कारक भी अनुकूल आत्मकारक पाकर अपना अपना शुभ फल देते हैं । आत्मकारक के मित्र रहने से कारक का शुभ फल होगा तथा आत्मकारक का विपक्षी होने पर शुभ फल नहीं होकर अशुभ फल होगा ।

अन्य कारकों के लक्षण :–

आत्मकारकभागेभ्यो न्यूनांशोऽमात्यकारकः ।
तस्मान्न्यूनांशको भ्राता तन्न्यूनो मातृसंज्ञकः ।। 12 ।।
तन्न्यूनाशंः पिता तस्मादल्पांशः पुत्रकारकः ।
पुत्रन्यूनांशको ज्ञातिस्तन्न्यूनो दारकारकः ।। 13 ।।
चराख्यकारका ह्येते ब्रह्मणा कथिता पुरा ।
मातृकारकमेवान्ये वदन्ति सुतकारकम् ।। 14 ।।
द्वौ ग्रहौ भागतुल्यौ चेज्जायेतां यस्य जन्मनि ।
तदग्रकारकस्यैवं लोपो ज्ञेयो द्विजोत्तम ।। 15 ।।
स्थिरकारकवशात्तस्य फलं ज्ञेयं शुभाशुभम् ।

आत्मकारक से कम अंशों वाला अमात्यकारक, उससे कम अंशों वाला ग्रह भ्रातृकारक, उससे कम मातृकारक, उससे कम पितृकारक, उससे कम पुत्रकारक, उससे कम ज्ञातिकारक व सबसे कम अंशों वाला ग्रह स्त्रीकारक होता है। ये चर कारक पहले ब्रह्मा जी ने बताए हैं।

यदि जन्म समय में किन्हीं दो ग्रहों के अंश समान हों तो उससे अगले कारक का लोप हो जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों समान अंश वाले ग्रह एक ही कारक होते हैं। तब लुप्त कारक का फल कारकवशात् जानना चाहिए।

स्थिर कारक विचार :–

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि स्थिरान् कारकान् मुने ! ।। 16 ।।
स पितृकारको ज्ञेयः बली यो रविशुक्रयोः ।
चन्द्रारयोर्बलीखेटो मातृकारक उच्यते ।। 17 ।।
भौमतो भगिनीश्यालः कनीयान् जननी तथा ।
बुधान्मातृसजातीया मातुलाद्याश्च बान्धवाः ।। 18 ।।
गुरोः पितामहः शुक्रात् पतिः पुत्र शनैश्चरात् ।
विप्रान्तेवासिनः पत्नी पितरौ श्वसुरौ तथा ।। 19 ।।
मातामहादयाश्चिन्त्या एते च स्थिर कारकाः ।।

अब मैं स्थिर कारकों को बताता हूँ। सूर्य व शुक्र में से जो बलवान् हो वह पितृ कारक होता है। चन्द्र मंगल में से बलवान् माता कारक है। मंगल से बहन, साला, छोटे भाई तथा माता का विचार करें। बुध से माता तुल्य लोग, मौसी, चाची, ताई आदि का एवं मामा आदि का विचार करें। गुरु से पितामह, शुक्र से पति, शनि से पुत्र तथा शुक्र (अन्तेवासी) से पत्नी, माता पिता, सास ससुर तथा नाना नानी का विचार करना चाहिए।

भाववशात् कारक विचार :–

अथाहं कारकान् वक्ष्ये खेटभाववशाद् द्विज ! । । 20 । ।
रवितः पुण्यभे तातश्चन्द्रान्माता चतुर्थके ।
कुजात् तृतीयतो भ्राता बुधात्षष्ठे च मातुलः । । 21 । ।
देवेज्यात् पंचमात् पुत्रो दाराशुक्रात् च सप्तमे ।
मन्दादष्टमतो मृत्युः पित्रादीनां विचिन्तयेत् । । 22 । ।

अब मैं ग्रह व भावों के आधार पर कारकों को बताता हूँ । सूर्य से नवम भाव में पिता का, चन्द्र से चतुर्थ में माता का विचार करें ।

मंगल से तृतीय भाव में भाई का, बुध से षष्ठ भाव में मामा का, गुरु से पंचम भाव में पुत्र का तथा शुक्र से सप्तम भाव में स्त्री का विचार करें । शनि से अष्टम भाव में पिता आदि की मृत्यु का विचार करें ।

अन्य योगकारक ग्रह :–

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि प्रसंगाद्योगकारकान् ।
खेटान् जन्मनि जातस्य मिथः स्थितिवशाद् द्विज ! । । 23 । ।
स्वर्क्षे स्वोच्चे च मित्रर्क्षे मिथः केन्द्रगता ग्रहाः ।
ते सर्वे कारकास्तेषु कर्मगस्तु विशेषतः । । 24 । ।
यथा लग्ने सुखे कामे स्वर्क्षोच्चस्था ग्रहा द्विज ! ।
भवन्ति कारकाख्यास्ते विशेषेण च खे स्थिताः । । 25 । ।

अब मैं प्रसंगवशात् अन्य कारकों को भी कहता हूँ । ग्रह परस्पर स्थितिवशात् भी कारक होते हैं । जन्म समय में जो ग्रह स्वराशि, उच्च मित्र राशि (अधिमित्र व मूलत्रिकोण) गत होकर परस्पर केन्द्र में हों, वे भी कारक होते हैं । इनमें भी दशमस्थ ग्रह विशेष कारक होता है ।

जैसे लग्न से 1.4.7.10 में ग्रह हों तथा वे उच्चादि गत हों तो कारक होते हैं । इनमें भी विशेषतया दशमस्थ ग्रह विशेष कारक होते हैं ।

स्वोच्चमित्रर्क्षगो हेतुरन्योऽन्यं यदि केन्द्रगः ।
सुहृत् तद्गुणसम्पन्नः सोऽपि कारक उच्यते । । 26 । ।

जो ग्रह परस्पर केन्द्र में हों अर्थात् स्वोच्च, स्वराशि, मूल त्रिकोणादि में हो तथा एक दूसरे से केन्द्र में हो (लग्न से नहीं) तब भी परस्पर कारक होते हैं । अर्थात् लग्न से केन्द्रगत होना अथवा परस्पर केन्द्र में होना भी कारकत्व का हेतु है ।

जैसे हमारे उदाहरण में पंचमस्थ मंगल, उससे चतुर्थ (लग्न से अष्टम) में शुक्र मित्रक्षेत्री, मंगल के साथ शनि, तथा मंगल से दशम में मित्र क्षेत्री गुरु है । ये सब ग्रह अर्थात् मंगल, शनि, व गुरु व शुक्र परस्पर कारक हैं ।

कारक ग्रहों का फल :–

नीचान्वयेऽपि यो जातः विद्यमाने च कारके ।
सोऽपि राजसमो विप्र ! धनवान् सुखसंयुतः ।। 27 ।।
राजवंशसमुत्पन्नो राजा भवति निश्चयात् ।
एवं कुलानुसारेण कारकेभ्यः फलं वदेत् ।। 28 ।।

कारक ग्रह होने से, नीचांश में उत्पन्न अर्थात् साधारण कुलोत्पन्न व्यक्ति भी राजा के समान धनी व सुखी होता है ।

यदि राजकुल में उत्पन्न हो तो मनुष्य निश्चय से राजा होता है । इस तरह कुल के अनुसार कारकों के आधार पर फल कहें ।

यह विषय सारावली अध्याय 6 में भी देखें । कारकग्रह यदि उच्चस्थ हों तो पूर्ण फल, मूल त्रिकोणी हों तो पौना (त्रिपाद) फल तथा स्वक्षेत्री हों तो आधा फल इत्यादि प्रकार से अनुपातपूर्वक कहना चाहिए ।

भावकारक विधि :–

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि विशेषान् भावकारकान् ।
जातस्य जन्मलग्नं यत् तद् विन्द्यादात्मकारकम् ।। 29 ।।
धनभावं विजानीयाद् दारकारकमेव हि ।
एकादशेऽग्रजातस्य तृतीये च कनीयसः ।। 30 ।।
सुते सुतं विजानीयात् तथा सप्तमभावतः ।
सुतभावे ग्रहो यः स्यात् सोऽपि कारक उच्यते ।। 31 ।।

अब मैं भावानुसारी कारकों को कहता हूँ । जन्म लग्न को आत्म कारक समझें । द्वितीय भाव पत्नी का कारक होता है । ग्यारहवाँ भाव बड़े भाई का तथा तृतीय भाव छोटे भाई का कारक होता है ।

पंचम भाव व सप्तम भाव से पुत्र का विचार करें । पंचम में जो भी ग्रह हो, वह भी ग्रह कारक होता है ।

द्वितीय भाव को भी पत्नी विचार में सम्मिलित करना चाहिए । दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में द्वितीय भाव में मंगलादि पाप ग्रहों के रहने से भी मंगली का दोष माना जाता है, यह विशेषतया ध्यातव्य है । द्वितीय भाव पत्नी भाव से अष्टम रहने से भी वहाँ स्थित पाप ग्रह पत्नी के लिए अनिष्टकारक होगा ।

लग्नादि भावों के कारक :–

सूर्यो गुरुः कुजः सोमो गुरुर्भौमो सितः शनिः ।
गुरुश्चन्द्रसुतो जीवो मन्दश्च भावकारकाः ।। 32 ।।

सूर्य, गुरु, मंगल, चन्द्र, गुरु, मंगल, शुक्र, शनि, गुरु, बुध, गुरु व शनि ये क्रमशः लग्नादि बारह भावों के कारक हैं ।

शुभाशुभ भाव निर्णय :–

पुनस्तन्वादयो भावाः स्थाप्यास्तेषां शुभाऽशुभम् ।
लाभस्तृतीयो रन्ध्रश्च शत्रुसंज्ञकधनव्ययाः ।। 33 ।।
एते भावाः समाख्याताः क्रूराख्या द्विजसत्तम ! ।
एषां योगेन यो भावस्तस्य हानिः प्रजायते ।। 34 ।।
भावा भद्राश्च केन्द्राख्या कोणाख्यौ द्विजसत्तम ! ।
एषां संयोगमात्रेण ह्यशुभोऽपि शुभो भवेत् ।। 35 ।।

लग्नादि द्वादश भावों का चक्र बनाकर भावानुसारी शुभाशुभ भी देखना चाहिए । 11.3.8.6.12.2 ये 6 भाव क्रूर हैं । 4 केन्द्र व 2 त्रिकोण ये 6 भाव शुभ हैं । इन क्रूर भावों का जिन भावों से सम्बन्ध पड़े अर्थात् इनके भावेश या भावमध्य जिस भाव में पड़ें, उन भावों की हानि होती है । इसके विपरीत केन्द्रत्रिकोण भाव, भावसाधनविधि से जहाँ पड़े, उनका शुभ फल होता है । अर्थात् शुभभावमध्य पड़ने से अशुभ भी शुभ हो जाता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
कारकाध्यायस्त्रिंशः ।। 30 ।।

31

।। अथ कारकांशफलाध्यायः ।।

कारकांश राशि का फल :–

गृहे मूषकमार्जारा मेषांशे ह्यात्मकारके ।
सदा भयप्रदा विप्र ! पापयुक्ते विशेषतः ।। 1 ।।
वृषांशकगते स्वांशे सुखदाश्च चतुष्पदाः ।
मिथुनांशगते तस्मिन् कण्ड्वादि व्याधिसंयुतः ।। 2 ।।
कर्कांशे च जलाद् भीतिः सिंहांशे श्वापदाद्भयम् ।
कण्डूः स्थौल्यं च कन्यांशे तथा वह्निकणाद् भयम् ।। 3 ।।

स्वांश अर्थात् स्व आत्मकारक का अंश नवांश अर्थात् कारकांश होने से स्वांश व कारकांश एक ही बात है । कारकांश लग्न में मेष राशि हो अर्थात् आत्मकारक नवांश मेष हो तो व्यक्ति को सदैव चूहों–बिल्लियों से कष्ट होता है ।

वृष राशि में कारकांश हो तो चौपाए पशुओं से विशेष सुख होता है। मिथुन नवांश हो तो मनुष्य खुजली आदि त्वचा–विकारों से पीड़ित होता है।

कर्क नवांश हो तो पानी से भय होता है। सिंह नवांश हो तो हिंसक पशुओं से कष्ट होता है।

कन्या नवांश हो तो खुजली व शरीर में मोटापा होता है। अग्निकण (चिंगारी) से भय होता है।

तुलांशे च वणिक्जातो वस्त्रादिनिर्मितो पटुः।
अल्यंशे सर्पतो भीतिः पीड़ा मातुः पयोधरे।। 4।।
धनुरंशे क्रमादुच्चात् पतनं वाहनादपि।
मकरांशे जलोद्भूतैर्जन्तुभिः खेचरस्तथा।। 5।।
शंखमुक्ताप्रवालाद्यैर्लाभो भवति निश्चितः।
कुम्भांशे च तडागादि कारको जायते जनः।। 6।।
मीनांशे कारको जातो मुक्तिभाग् द्विजसत्तम!।
नाशुभं शुभसंदृष्टे न शुभं पापवीक्षिते।। 7।।

तुला राशि के नवांश में आत्मकारक हो तो व्यापारी, वस्त्रादि निर्माण में चतुर होता है। वृश्चिकांश हो तो सर्पादि रेंगने वाले कीटों से भय तथा माता के स्तनों में कष्ट या दूध की कमी होती है।

धनुनवांश हो तो किसी ऊँचे स्थान या वाहनादि से पतन होता है। मकर नवांश हो तो जल से उत्पन्न वस्तुओं मोती, मूँगा, मछली, शंख, सीपी आदि से लाभ होता है।

यदि कुम्भ नवांश में आत्मकारक हो तो मनुष्य तालाब, पानी से सम्बन्धित स्थान, प्याऊ आदि बनवाता है।

मीनांश हो तो मनुष्य मुक्ति अर्थात् मोक्ष पाता है।

शुभ ग्रह की दृष्टि आत्मकारक पर कारकांश कुण्डली में या लग्न में हो तो शुभ फलों की अधिक वृद्धि तथा पाप ग्रहों की दृष्टि रहने से पापफलों की वृद्धि होती है। इसके विपरीत शुभ फलप्रद कारकांश पर पापदृष्टि हो तो, क्रमशः शुभ व अशुभ फल स्थगित हो जाता है।

राजयोगादि का कथन :–

कारकांशे शुभे विप्र! लग्नांशै च शुभग्रहे।
शुभसंवीक्षितो राजा जातो भवति निश्चितः।। 8।।
स्वांशाच्छुभग्रहाः केन्द्रे कोणे वा पापवर्जिताः।
धनविद्यायुतो जातो मिश्रैर्मिश्रफलं वदेत्।। 9।।

उपग्रहे च विप्रेन्द्र ! स्वोच्चस्वर्क्षशुभक्षगे ।

पापदृग्रहिते चान्त्ये कैवल्यं तस्य निर्दिशेत् ।। 10 ।।

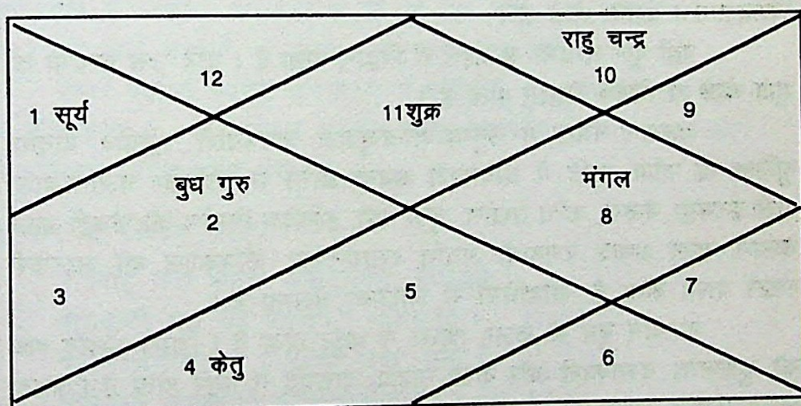
कारकांश कुण्डली में आत्मकारक के साथ व लग्न नवांश राशि में एक साथ शुभ ग्रह, शुभदृष्ट हों तो व्यक्ति राजा होता है।

कारकांश से केन्द्र व त्रिकोण में शुभ ग्रह हो, पाप ग्रह न हो तो व्यक्ति धनवान् व विद्यावान् होता है। यदि शुभ–पाप–मिश्रित ग्रह हों तो मिश्रित फल होता है।

उपग्रह अर्थात् मध्यकारक यदि स्वोच्च, स्वराशि या शुभ राशि में पापदृष्टि से होकर द्वादशस्थ हो तो मनुष्य को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

हमारे उदाहरण में आत्मकारक शुक्र है। वह कुम्भ नवांश में वर्गोत्तमी है। अतः कुम्भ राशि को लग्न समझकर कुण्डली लिखी तथा स्वग्रहों को अपने नवांश में स्थापित किया हो कारकांश कुण्डली तैयार हुई।

कारकांश कुण्डली (उदा०)



आत्मकारक कुम्भ नवांश में रहने से जातक प्याऊ, जलपान आदि की व्यवस्था या जनसुविधार्थ कार्य करने वाला होगा। कारकांश से केन्द्र में शुभग्रह तथा पाप हैं, अतः धन व विद्या अच्छी होगी। इस उदाहरण में आत्मकारक 16 अंश पर व स्त्रीकारक या अन्तिम कारक 6 अंशों पर है। दोनों का अन्तर 10 अंश का आधा आत्मकारक में से घटाने पर 11^0 अंश मिले। अतः 11 अंश या इसके लगभग स्थित ग्रह 'उपखेट' है। तब सूर्य व चन्द्रमा दोनों 11–11 अंशों पर होने से दोनों ही या चौथा कारक मातृकारक चन्द्रमा उपखेट है। वह स्वोच्चादिगत न रहने से ब्रह्मयोग नहीं बनेगा। विशेष व्युत्पत्ति हेतु हमारा जैमिनि सूत्र शान्तिप्रिय भाष्य पृ० 34-57 देखें।

कारकांश स्थित ग्रह फल :–

कारकांशे रवौ जातो राजकार्यपरो द्विज ! ।
पूर्णेन्दौ भोगवान् विद्वान् शुक्रदृष्टे विशेषतः ।। 11 ।।
स्वांशे बलयुते भौमे जातः कुन्तायुधी भवेत् ।
वह्निजीवी नरो वापि रसवादी च जायते ।। 12 ।।
बुधे बलयुते स्वांशे कलाशिल्पविचक्षणः ।
वाणिज्यकुशलश्चापि बुद्धिविद्यासमन्वितः ।। 13 ।।
सुकर्मा ज्ञानं निष्ठश्च वेदवित् स्वांशगे गुरौ ।
शुक्रे शतेन्द्रियः कामी राजकीयो भवेन्नरः ।। 14 ।।

यदि कारकांश लग्न में सूर्य हो अर्थात् सूर्य स्वयं आत्मकारक हो या आत्मकारक के साथ स्थित हो अथवा कारकांश लग्न की राशि में जन्म लग्न में सूर्य हो तो मनुष्य राजकाज करने वाला अर्थात् बलाबलानुसार सरकारी सेवक, अधिकारी, विशेष संप्रभुतायुक्त व्यक्ति, राजा का निजी विश्वासपात्र आदि होता है ।

वहाँ पूर्ण चन्द्रमा के रहने से विद्वान् होता है । यदि उस चन्द्रमा को शुक्र देखे तो विशेष विद्वान् होता है ।

बलवान् मंगल से मनुष्य शस्त्रकुशल, शस्त्रधारी, शूरवीर, योद्धा, पुलिस या फौज आदि में अधिकारी अथवा अग्नि से जीविका चलाने वाला जैसे ईटभट्टा, बेकरी, काँच उद्योग, चूना भट्टी, हथियार निर्माण की फैक्ट्री आदि चलाने वाला अथवा रसवादी अर्थात् रसायनवेत्ता, कैमिकल्स की जानकरी रखने वाला होता है, औषधियों से जीविका चलाता है ।

बलवान् बुध से कला, शिल्प में चतुर होता है । शिल्प अर्थात् हाथ की कुशलता, दस्तकारी और कला नाट्य, वाद्यादि में चतुर होता है । अथवा व्यापारकुशल, बुद्धिमान व विद्यावान् होता है ।

बलवान् गुरु से सत्कर्म करने वाला, ज्ञानवान् वेदवित् होता है । बलवान् शुक्र से राजकीय अधिकारी अथवा शतेन्द्रिय अर्थात् बहुत ऐन्द्रिक सुख विलास (भौतिक सुख) पाने वाला, कामी होता है ।

शनौ स्वांशगते जातः स्वकुलोचितकर्मकृत ।
राहौ चौरश्च धानुष्को जातो वा लोहयन्त्रकृत् ।। 15 ।।
विषवैद्योऽथवा विप्र ! जायते नात्र संशयः ।
व्यवहारी गजादीनां केतौ चौरश्च जायते ।। 16 ।।

कारकांश में पूर्ववत् शनि होने से मनुष्य अपने कुलक्रमानुसार प्राप्त कार्य अर्थात् पैतृक व्यवसाय करता है। अथवा जाति व कुल के अनुरूप कार्य करता है।

राहु रहने से चोर, धनुर्धारी अर्थात् शिकारी, तीरन्दाज, हत्यारा या लोहे की चीजें बनाने वाला अथवा विष आदि के द्वारा या विष की चिकित्सा करने वाला होता है।

यदि वहाँ केतु हो तो बड़ा व्यापार अर्थात् बड़ी वस्तुओं या चौपायों का व्यापार करने वाला उदाहरणार्थ बड़े आकार की कारें, रेस के घोड़े, हाथी, हवाई जहाज, रेल के डिब्बे आदि का व्यापार करता है अथवा चोर होता है।

पहले कह चुके हैं कि आत्मकारकादि केतु नहीं होता। राहु भी विकल्प से होता है, सदैव नहीं। इसी कारण जैमिनीय सूत्रों में प्रोक्त **'तत्र रवौ राजकार्यपरः'** इत्यादि सूत्रों में तत्र शब्द का अर्थ 'आत्मकारक के नवांश में' ऐसा है। आत्मकारक का नवांश, जिसमें स्वयं आत्मकारक हो, वह नवांश राशि, अथवा लग्न कुण्डलीगत वही राशि होगी। यदि आत्मकारक की नवांश राशि में अकेला आत्मकारक ही हो तब यह फल आत्मकारक से समझें। यदि कई ग्रह हों तो बलवान् से फलनिर्णय करें।

हमारे पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में वर्गोत्तमी शुक्र आत्मकारक कुम्भ राशि में अकेला है। फलस्वरूप जातक उक्त प्रकार का होगा। यह फल हमने अनेकत्र घटित होता देखा है।

कारकांश से विशेष अरिष्ट :–

रविराहू यदा स्वांशे सर्पाद्भीतिः प्रजायते।
शुभदृष्टौ भयं नैव पापदृष्टौ मृतिर्भवेत्।। 17।।
शुभषड्वर्गसंयुक्तौ विषवैद्यो भवेत् तदा।
भौमेक्षिते कारकांशे भानुस्वर्भानुसंयुते।।18।।
अन्ये यदा न पश्यन्ति स्ववेश्मपरदाहकः।
तस्मिन् बुधेक्षिते चापि वह्निदो नैव जायते।। 19।।
पापर्क्षे गुरुणा दृष्टे समीपगृहदाहकः।
शुक्रदृष्टे तु विप्रेन्द्र! गृहदाहो न जायते।। 20।।

यदि कारकांश में सूर्य व राहु साथ हों तो साँप से भय होता है। यदि शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो भय नहीं होता तथा पापदृष्टि होने पर मृत्यु होती है।

यदि शुभदृष्टि न होकर उक्त ग्रह शुभ ग्रहों के षड्वर्ग में गए हों तो मनुष्य विषवैद्य होता है।

यदि कारकांश गत सूर्य राहु पर मंगल की दृष्टि हो तथा अन्य ग्रह न देखें तो मनुष्य अपना व दूसरों का घर फूँकता है। सचमुच जला देता है अथवा लक्षणया अपनी परम हानि के साथ शत्रुओं को भी नष्ट कर देता है। शत्रुओं को मारकर मर जाता है। अथवा अपने व विपक्षियों के शवों को अग्नि देता है। इत्यादि।

यदि बुध की दृष्टि हो तो अग्नि देने वाला नहीं होता। पाप राशि में कारकांश हो, सूर्य राहु वहीं पर हों तथा गुरु देखे तो पास के घर को जलाता है।

यदि शुक्र की दृष्टि हो तो गृहदाह नहीं होता। इन योगों में अग्नि भय ही निष्कर्षतः समझना चाहिए।

विषपानादि योग :–

गुलिकेन युते स्वांशे पूर्णचन्द्रेण वीक्षिते।
चौरैर्हृत धनो जातः स्वयं चौरोऽथवा भवेत्।। 21।।
ग्रहादृष्टे सगुलिके विषदो वा विषैर्हतः।
बुधदृष्टे बृहद्बीजो जायते मानवो द्विज !।। 22।।

यदि कारकांश लग्न राशि, गुलिक से युक्त हो तथा पूर्ण चन्द्र देखंता हो तो मनुष्य स्वयं चोर या चोरों द्वारा नष्ट सम्पदा वाला होता है।

यदि किसी ग्रह से दृष्ट न हो और गुलिक कारकांश में हो तो मनुष्य विष पिलाने वाला या स्वयं विष द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है।

यदि अकेला बुध, उस गुलिक को देखे तो मनुष्य के अण्डकोष बड़े आकार के होते हैं।

कारकांश लग्न में गुलिक नवांशानुसार अर्थात् गुलिकस्पष्ट के अनुसार जो नवांश मिले तथा वह नवांश आत्मकारक का ही हो तब गुलिक व आत्मकारक साथ हो सकेंगे। लेकिन गुलिकादि को नवांश में रखने की परिपाटी नहीं है। अथवा आत्मकारक की नवांश राशि में ही गुलिक हो तब उक्त फल होगा।

कर्णरोग–दीक्षा–अवैध सन्तानादि योग :–

सकेतौ कारकांशे च पापदृष्टे द्विजोत्तम !।
जातस्य कर्णरोगो वा कर्णच्छेदः प्रजायते।। 23।।
भृगुपुत्रेक्षिते तस्मिन् दीक्षितो जायते जनः।
बुधार्किदृष्टे निर्वीर्यो जायते मानवो ध्रुवम्।। 24।।
बुधशुक्रेक्षिते तस्मिन् दासीपुत्रः प्रजायते।
पुनर्भवासुतो वापि सर्व द्विरभिभाषते।। 25।।

आत्मकारक के नवांश में केतु भी साथ हो तथा पाप ग्रह इसे देखते हों तो मनुष्य को कानों में रोग होता है या कान कट जाते हैं।

यदि उक्त केतु पर शुक्र की दृष्टि हो तो मनुष्य दीक्षा ले लेता है। अर्थात् संयासी हो जाता है।

यदि उसी केतु पर बुध शनि की दृष्टि हो तो मनुष्य नपुंसक होता है। यदि बुध शुक्र देखें तो दासीपुत्र अर्थात् अज्ञात पिता की सन्तान या माता के दूसरे पति से उत्पन्न होता है अथवा सब बातों को दो बार बोलता है।

तपस्वी शनिना दृष्टे जातः प्रोष्योऽथवा भवेत्।

शनिमात्रेक्षिते तस्मिन् जातः संयासिवेषवान्।। 26।।

रविशुक्रेक्षिते तस्मिन् राजप्रेष्यो जनो भवेत्।

इति संक्षेपतः प्रोक्तं कारकांशफलं मया।। 27।।

यदि शनि देखता हो तथा साथ में किसी अन्य ग्रह की दृष्टि भी हो तो मनुष्य तपस्वी या चपरासी, प्रेष्य, चतुर्थश्रेणी कर्मचारी होता है।

यदि केवल शनि देखे तो मनुष्य केवल संयासियों का वेष ही पहनता है, वास्तव में संयासी नहीं होता है।

यदि आत्मकारक नवांश में स्थित केतु को सूर्य व शुक्र देखें तो मनुष्य राजा का विशेष सन्देशवाहक, दूत, राजदूत आदि होता है।

परस्त्रीगमन योग :–

स्वांशाद्धने च शुक्रारवर्गे स्यात् पारदारिकः।

तयोर्दृग्योगतो ज्ञेयमिदमामरणं फलम्।। 28।।

केतोः तत्प्रतिबन्धः स्याद् गुरौ तु स्त्रैण एव सः।

राहौ चार्थनिवृत्तिः स्यात्कारकांशात् द्वितीयगे।। 29।।

यदि कारकांश से द्वितीय में या नवम में शुक्र मंगल का वर्ग हो अर्थात् इनकी राशि आदि पड़े तो मनुष्य पराई स्त्री के साथ संलग्न होता है।

यदि शुक्र मंगल की युति या दृष्टि वहाँ हो तो यह व्यसन जीवन भर चलता है।

यदि साथ में केतु की भी दृष्टि हो तो इस फल में कुछ रुकावट होती है अर्थात् उक्त फल नहीं होता या जीवन भर न चलकर अल्पकालीन होता है।

यदि गुरु की युति दृष्टि या वर्ग हो तो मनुष्य स्त्रियों के प्रति सदैव मनोविकार का अनुभव करता है।

यदि कारकांश से द्वितीय में राहु का योग या दृष्टि हो तो मनुष्य दूसरी स्त्री के चक्कर में अपना सब धन गँवा देता है।

जैमिनि ने ये योग इसी क्रम से नवम स्थान से सम्बन्धित कहे हैं। अतः हमने नवम भाव का भी ग्रहण यहाँ किया है। स्वयं पराशर भी आगे नवम भाव में इन योगों को आंशिक रूप से स्वीकार करते हैं।

कारकांश में तृतीय भाव :–

स्वांशात् तृतीयगे पापे जातः शूरः प्रतापवान्।

तस्मिन् शुभग्रहे जाते जातः कातरो भवेत्।। 30।।

कारकांश से तृतीय भाव में पाप ग्रह हो तो मनुष्य निडर, शूर व प्रतापी होता है। शुभ ग्रह तृतीयस्थ हो तो मनुष्य डरपोक (कातर) स्वभाव का होता है। यदि ग्रह न हो तो राशि से या दृष्टि से फल समझना चाहिए।

हमारे उदाहरण में तृतीय भाव में मंगल की मेष राशि व सूर्य है अतः जातक प्रचण्ड आक्रामक स्वभाव वाला होगा।

मकान, बंगला आदि विचार :–

स्वांशाच्चतुर्थभावे तु चन्द्रशुक्रयुतेक्षिते।

तत्र वा स्वोच्चगे खेटे जातः प्रासादवान् भवेत्।। 31।।

शनिराहुयुते तस्मिन् जातस्य च शिलागृहम्।

ऐष्टिकं कुजकेतुभ्यां गुरुणा दारवं गृहम्।। 32।।

तार्णं तु रविणा प्रोक्तं जातस्य भवनं द्विज!।

चन्द्रे त्वनावृते देशे पत्नी योग प्रजायते।। 33।।

कारकांश से चतुर्थ में यदि चन्द्रमा व शुक्र की दृष्टि या युति हो अथवा चतुर्थ में कोई उच्चगत ग्रह स्थित हो तो मनुष्य का बड़ा महलनुमा मकान होता है।

यदि चतुर्थ में शनि राहु हों या इनकी योगदृष्टि हो तो पत्थर से बना मजबूत मकान होता है।

मंगल व केतु से ईंटों से बना हुआ तथा बृहस्पति की दृष्टि से लकड़ी का काम किया हुआ अथवा सम्भव होने पर केवल लकड़ी से बना मकान होता है।

सूर्य के रहने से घास–फूस से बनी हुई पर्णकुटी, झोंपड़ी, लेकिन उच्चस्थ या स्वक्षेत्री हो तो मध्यम श्रेणी का रहने योग्य स्थिर मकान या प्रासाद होगा।

यदि वहाँ चन्द्रमा का योग हो तथा अन्य किसी का योग न हो तो जातक विवाहोपरान्त प्रथम बार स्त्री संगम भी खुले आकाश के नीचे ही करता है। अर्थात् तब उसके पास सिर छुपाने का स्थान भी नहीं होता।

पंचम भाव विचार :–

पंचमे कुजराहुभ्यां क्षयरोगस्य संभवः।
रात्रिनाथेन दृष्टाभ्यां निश्चयेन प्रजायते।। 34।।
कुजयोगे तु जातस्य पिटकादिगदो भवेत्।
केतुयोगे तु ग्रहणी जलरोगोऽथवा द्विज !।। 35।।
सराहुगुलिके तत्रभयं क्षुद्रविषोद्भवम्।
बुधे परमहंसश्च लगुडी वा प्रजायते।। 36।।

यदि कारकांश पंचम (जैमिनि सूत्रानुसार चतुर्थ भी) में मंगल व राहु एक साथ हों तो टी० बी० या घातक बड़ी बीमारी क्षय रोग, शरीर को निरन्तर कमजोर करने वाला कोई रोग होता है। यदि उक्त ग्रहों पर चन्द्र की दृष्टि हो तो यह रोग निश्चय से होता है।

यदि चतुर्थ पंचम भाव में मंगल हो तो मनुष्य को फोड़े फुन्सी आदि रोग होते हैं।

यदि इन्हीं भावों में केतु हो तो जल रोग या संग्रहणी रोग होता है। साथ साथ राहु व गुलिक वहाँ हो तो हल्के विष का संक्रमण होता है। यदि इन्हीं भावों में बुध का योग या राशि हो तो मनुष्य परमहंस अर्थात् जीवनमुक्त अथवा दण्डी स्वामी होता है।

रवौ खड्गधरो जातः कुजे कुन्तायुधी भवेत्।
शनौ धनुर्धरो ज्ञेय स राहौ लौहयन्त्रवान्।। 37।।
केतौ च घटिकायन्त्री मानवो जायते द्विज !।

कारकांश से चतुर्थ पंचम में सूर्य हो तो मनुष्य तलवारबाज, मंगल हो तो भालेबाज, शनि हो तो धनुर्धर, राहु हो तो लोहे की मशीनरी बनाने वाला इंजीनियर और केतु हो तो घड़ी बनाने वाला, समयसूचक चीजों का विशेषज्ञ होता है।

भार्गवेतु कविर्वाग्मीकाव्यज्ञो जायते जनः।। 38।।
स्वांशे तत्पंचमे वापि चन्द्रेज्याभ्यां च ग्रन्थकृत्।
शुक्रेण किंचिदूनोऽसौ ततोऽप्यल्पो बुधेन तु।। 39।।
गुरुणा केवलेनैव सर्वविद् ग्रन्थकृत तथा।
वेदवेदान्तविच्चापि, न वाग्मी शाब्दिकोऽपि सन्।। 40।।

यदि कारकांश में या उससे चतुर्थ या पंचम में शुक्र हो तो मनुष्य कवि, बोलने में चतुर, काव्यवेत्ता होता है।

कारकांश या उससे पंचम में गुरु चन्द्र हो तो मनुष्य मौलिक ग्रन्थकार होता है।

यदि इन्हीं स्थानों (1.5) में शुक्र हो तो गुरु की अपेक्षा कुछ हल्का, लेकिन वास्तव में ग्रन्थकार होता है।

बुध हो तो और कम मौलिक या विशिष्ट रचनाएँ करता है। यदि पंचम में या कारकांश में अकेला बृहस्पति हो तो मनुष्य सर्वशास्त्रों को जानता है, ग्रन्थकार भी होता है, लेकिन विषय पर बोल नहीं पाता। अथवा वेदवित् वेदान्ती होता है।

नैयायिकः कुजेनासौ ज्ञेन मीमांसकस्तथा।
समाजडस्तु शनिना गीतज्ञो रविणा स्मृतः।। 41।।
चन्द्रेण सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञश्च गायकः।
केतुना गणितज्ञोऽसौ राहुणाऽपि तथैव च।। 42।।
सम्प्रदायस्य सिद्धिः स्यात् गुरु सम्बन्धतो द्विज !।
स्वांशाद् द्वितीयः केचित् फलमेवं वदन्ति हि।। 43।।

कारकांश से 1.5 में मंगल हो तो मनुष्य नैयायिक, बुध हो तो मीमांसक, शनि हो तो सभा में जड़ की तरह बैठने वाला, सभा में अकुशल, रवि हो तो गीतकार होता है।

चन्द्र हो तो सांख्य योग का ज्ञाता, साहित्यिक या गायक होता है। केतु हो तो गणितज्ञ तथा राहु हो तो भी गणितज्ञ ही समझना चाहिए।

यदि इन पंचमस्थ ग्रहों से किसी प्रकार गुरु का सम्बन्ध हो तो मनुष्य इन क्षेत्रों में विशिष्ट ऊँचाई प्राप्त करता है। कुछ लोग इसी तरह द्वितीय भाव से भी विचार करते हैं।

षष्ठभाव विचार :–

स्वांशात् षष्ठगते पापे कर्षको जायते जनः।
शुभग्रहेऽलसश्चेति तृतीयेऽपि समं फलम्।। 44।।

कारकांश से तृतीय या षष्ठ में पाप ग्रह हो तो व्यक्ति किसान या खेती–बाड़ी करने वाला होता है। वहाँ शुभ ग्रह हो तो आलसी होता है।

पत्नी विचार :–

द्यूने चन्द्रगुरु स्वांशात् भार्या तस्यातिसुन्दरी।
तत्र कामवती शुक्रे, बुधे चैव कलावती।। 45।।

रवौ च स्वकुले गुप्ता शनौ चापि वयोऽधिका ।

तपस्विनी रुजाढ्या वा राहौ च विधवा स्मृता ।। 46 ।।

एवमेव कुजेद्यूने विकलांगी भवेद् द्विज ! ।

यदि कारकांश से सप्तम में चन्द्र गुरु हो तो मनुष्य की पत्नी बहुत सुन्दर होती है । यदि वहाँ शुक्र हो तो बहुत कामुक स्वभाव वाली, बुध हो तो कलाकौशल से सम्पन्न, होती है ।

यदि कारकांश में सप्तमस्थ सूर्य हो तो मनुष्य की पत्नी अपने घर में ही रहने वाली नितान्त घरेलू होती है ।

शनि हो तो अधिक अवस्था वाली या तपस्विनी या रोगिणी होती है । सप्तमस्थ राहु से विधवा तथा मंगल से विकलांगी होती है ।

यदि उक्त ग्रह न हों तब सप्तमस्थ राशि से विचार करना योग्य है ।

नवम भाव से स्वभावादि विचार :–

कारकांशाच्च नवमे शुभग्रहयुतेक्षिते ।। 47 ।।

सत्यवादी गुरौ भक्तः स्वधर्मनिरतो नरः ।

स्वांशाच्च नवमे भावे पापग्रहयुतेक्षिते ।। 48 ।।

स्वधर्मनिरतो बाल्ये मिथ्यावादी च वार्धके ।

नवमे कारकांशाच्च शनिराहुयुतेक्षिते ।। 49 ।।

गुरुद्रोही भवेद् बालः शास्त्रेषु विमुखो नरः ।

नवमे गुरु सूर्याभ्यां गुरुवाक्यं न मन्यते ।। 50 ।।

कारकांश से नवम भाव में शुभ ग्रह स्थित हों या उनका योग हो तो मनुष्य सत्यवादी, गुरुभक्त, स्वधर्मपालन करने वाला अर्थात् अपने कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों को खूब निभाता है ।

यदि उक्त नवम भाव पाप ग्रह से दृष्ट या युत हो तो मनुष्य प्रौढ़ावस्था या युवावस्था में मिथ्यावादी, बाल्यकाल में संस्कारवशात् सत्य बोलने वाला, स्वकार्य में प्रमत्त (असावधान) होता है ।

नवम में सूर्य गुरु हों तो भी गुरु पर सदैव अविश्वास रखने वाला, गुरु वाक्य को न मानने वाला या गुरुद्रोही होता है ।

परस्त्री के कारण नाशयोग :–

कारकांशाच्च नवमे शुक्रभौमयुतेक्षिते ।

षड्वर्गादि योगे तु मरणं परदारिकम् ।। 51 ।।

झेन्दुयुक्तेक्षिते भावे परस्त्रीबन्धको भवेत् ।
केवलेनैव गुरुणा जातः स्त्रैणो भवेद् ध्रुवम् ।। 52 ।।
नवमे कारकांशाच्च राहोर्दृग्योग संयुते ।
परस्त्रीसंगमाद् बालः सर्वसम्पत्क्षयंकरः ।। 53 ।।

यदि कारकांश नवम में शुक्र मंगल का योग या दृष्टि हो या इनके वर्ग पड़ें तो मनुष्य जीवनपर्यन्त दूसरी स्त्री के फेर में रहता है ।

यदि नवम भाव बुध चन्द्र से दृष्टयुत हो तो पराई स्त्रियों के कारण नपुंसकप्राय, हीनशक्ति (बन्धक) हो जाता है ।

नवम में केवल गुरु हो तो भी मनुष्य स्त्रियों के बीच में अधिक प्रसन्न, जनाने स्वभाव का या स्त्री–लोलुप होता है ।

यदि केवल राहु का दृग्योग हो तो मनुष्य पराई स्त्री के कारण अपना सबकुछ लुटा देता है ।

पितृसौख्यादि विचार :–

कारकांशाच्च दशमे विबुधे शुभदृग्युते ।
स्थिरवित्तो भवेद् बालो गम्भीरो बलबुद्धिमान् ।। 54 ।।
व्यापारे बहुलाभश्च प्रसिद्धिाजीविकः बुधे ।
दशमे कारकांशाच्च पापखेटयुतेक्षिते ।। 55 ।।
व्यापारे जायते हानिः पितृसौख्येन वर्जितः ।। 56 ।।
अस्थिरधीस्ततोबालोरविचन्द्रयुतेक्षिते ।
गुरुदृष्टयुते जातः राजयोगी भवेद् ध्रुवम् ।। 57 ।।
केवलेनैव सूर्येण गुरुमात्रेक्षितेन च ।
गोपो बहुगवधनो भवेज्जातः सुनिश्चितम् ।। 58 ।।

कारकांश से दशम भाव में बुध के अतिरिक्त कोई शुभ ग्रह हो या देखे तो मनुष्य स्थिर विचारों वाला, स्थिर धन वाला, गम्भीर, बली व बुद्धिमान, अर्थात् जमकर व्यवसाय करने वाला होता है ।

यदि केवल बुध का दृग्योग हो तो मनुष्य प्रसिद्ध करने वाला तथा त्वरित लाभ देने वाला व्यवसाय करता है, लेकिन अस्थिर विचार व धन होता है ।

दशम में पाप ग्रह का दृग्योग रहने से व्यापार में हानि व पिता के सुख में कमी होती है । ऐसा व्यक्ति अस्थिर विचारों वाला भी होता है ।

यदि दशम में सूर्य व चन्द्रमा गुरु से दृष्ट हो तो मनुष्य को राजयोग होता है। दशम में अकेला सूर्य यदि अकेले गुरु द्वारा दृष्ट हो तो मनुष्य दुधारू जानवरों वाला, गोपालन करने वाला होता है।

तान्त्रिक योग :–

कारकांशात् सुते पुण्ये पापखेटद्वये द्विज ! ।
मानवस्तन्त्रमन्त्रज्ञो जायते नात्र संशयः ।। 59 ।।
पापेन वीक्षिते तत्र जातो निग्राहको भवेत् ।
शुभैर्निरीक्षिते तस्मिन् नरोऽनुग्राहको भवेत् ।। 60 ।।

कारकांश से 5.9 में एक–एक पापग्रह हो या किसी एक त्रिकोण में दो पापग्रह हों तो मनुष्य तान्त्रिक, मान्त्रिक होता है।

यदि वे पाप ग्रह पाप ग्रह से दृष्ट हों तो मनुष्य निग्राहक अर्थात् जादू टोना, झाड़फूँक करके लोगों को बहकाने वाला अथवा वास्तविक तान्त्रिक होकर भी उस विद्या से लोगों को दण्ड (निग्रह) देने वाला होता है।

शुभ ग्रह से दृष्ट हों तो मनुष्य जनतोपकारार्थ तन्त्रविद्या प्रयोग करता है।

कारकांश से व्यवसाय का पुनर्विचार :–

शुक्रदृष्टे विधौ स्वांशे रसवादी भवेन्नरः ।
बुधदृष्टे च सद्वैद्यः सर्वरोगहरो भवेत् ।। 61 ।।

यदि कारकांश लग्न में शुक्र चन्द्र हों या वहाँ स्थित चन्द्र को शुक्र देखे तो मनुष्य रसायनवेत्ता चिकित्सक होता है।

यदि बुध भी इन्हें देखे तो निश्चय से रोग दूर करने वाला वैद्य, चिकित्सक होता है।

कुष्ठ, पित्तविकारादि योग :–

शुक्रदृष्टे सुखे चन्द्रे पाण्डुश्वित्री भवेन्नरः ।
भौमदृष्टे महारोगी रक्तपित्तार्दितो भवेत् ।। 62 ।।
केतुदृष्टे सुखे चन्द्रे नीलकुष्ठी प्रजायते ।

यदि कारकांश से चतुर्थ स्थान में चन्द्र को शुभ ग्रह देखें तो मनुष्य सफेद दाग से युक्त होता है।

यदि चतुर्थ चन्द्रमा को मंगल देखे तो रक्तपित्त विकार से युक्त होता है। यदि चतुर्थगत चन्द्र को केतु देखे तो काला कोढ़ होता है।

मूकयोग :–

कैतौ स्वांशाद् द्वितीये वा मूको वा स्तब्धवाग् भवेत् ।। 63 ।।
पापदृष्टे विशेषेण मानवो वक्तुमक्षमः ।

कारकांश से द्वितीय भाव में केतु हो तो मनुष्य बोलने में अटकने वाला, एकदम वाणी रुक जाने वाला या पाप दृष्ट होने पर विशेषतया गूँगा होता है ।

शुभाशुभ मरणगति विचार :–

कारकांशाद् व्ययस्थाने स्वभोच्चस्थे शुभग्रहैः ।। 64 ।।
सद्गतिर्जायते तस्य शुभलोकमवाप्नुयात् ।
कारकांशाद् व्यये केतौ शुभखेटयुतेक्षिते ।। 65 ।।
तदा तु जायते मुक्तिः सायुज्यपदमाप्नुयात् ।
मीने कर्कटके केतौ शुभदृष्टे विशेषतः ।। 66 ।।
व्यये च केवले केतौ परयुक्तेक्षितेऽपि वा ।।
न तदा जायते मुक्तिः शुभलोकं न पश्यति ।। 67 ।।

यदि कारकांश से द्वादश में शुभ ग्रह अपनी उच्च राशि में हो तो सद्गति होती है तथा व्यक्ति शुभ लोकों में जाता है ।

यदि द्वादश में केतु अकेला हो तथा शुभ ग्रह से युक्तदृष्ट हो तो मुक्ति मिलती है, यदि उक्त केतु 1.2.4 राशि में हो तो विशेषतया मुक्ति रूपी फल मिलता है ।

व्ययस्थ केतु यदि पाप ग्रहों से युक्तदृष्ट हो तो मुक्ति नहीं मिलती । शुभ लोकों में गमन नहीं होता ।

देवताओं में भक्ति विचार :–

रविणा संयुते केतौ कारकांशाद् व्ययस्थिते ।
शिवभक्तिर्भवेत्तस्य निर्विशंक द्विजोत्तमा ! ।। 68 ।।
चन्द्रेण संयुते भावे गौर्या भक्ति वदेद् बुधः ।
शुक्रेण चान्विते तत्र लक्ष्म्यां वै भक्तिमान्नरः ।। 69 ।।
कुजे तत्रगते नूनं स्कन्दभक्तः प्रजायते ।
वैष्णवो बुधसौरिभ्यां गुरुणा शिवभक्तिमान् ।। 70 ।।
राहुणा तामसी दुर्गा सेवते क्षुद्रदेवताम् ।
केतुना केवलेनैव स्कन्दे हेरम्बकेऽथवा ।। 71 ।।

कारकांशाद्व्यये सौरिः पापराशौ यदा भवेत् ।

तदापि क्षुद्रदेवस्य भक्तिस्तस्य न संशयः ।। 72 ।।

शुक्रे पापगते चापि क्षुद्रदेवस्य सेवकः ।

अमात्यकारकात् षष्ठेऽप्येवमेव फलं वदेत् ।। 73 ।।

कारकांश से द्वादश में केतु के साथ सूर्य हो तो मनुष्य शिवजी का भक्त होता है । अथवा शिवभक्ति से सुख पाता है ।

यदि कारकांश से द्वादश में चन्द्रमा हो (वैकल्पिक अर्थ केतु सहित हो) तो मनुष्य गौरी (पार्वती) में भक्तिमान् होता है ।

शुक्र हो तो लक्ष्मीदेवी का भक्त, मंगल हो तो कार्तिकेय का भक्त होता है ।

यदि द्वादश में बुध शनि हो तो विष्णु भक्त, बृहस्पति हो तो शिव भक्त, राहु से तामसी देवी (काली, छिन्नमस्ता, रक्तदन्तिका आदि) या दुर्गा का भक्त होता है । अथवा क्षुद्र देवियों (यक्षिणी आदि) का भक्त होता है ।

यदि द्वादश में अकेला केतु हो तो कार्त्तिकेय या गणेश जी का भक्त होता है ।

व्ययस्थान में शनि यदि पाप ग्रह कारक राशियों में हो तो क्षुद्रदेवता (भैरव, घटांकर्ण आदि) का भक्त होता है । इसी तरह पापराशि में द्वादशस्थ शुक्र से भी फल होता है ।

इसी तरह अमात्यकारक जिस स्थान में हो, उससे षष्ठ भाव में भी कारकांश लग्न में भक्ति का विचार यथावत् करना चाहिए ।

केमद्रुम योग (प्राचीन ऋषि मत) :–

स्वांशाल्लग्नात्पदाद्वापि द्वितीयाष्टम भावयोः ।

केमद्रुमः पापसाम्ये चन्द्रदृष्टौ विशेषतः ।। 74 ।।

कारकांश, लग्न, लग्नपद इनमें 2.8 भावों में बराबर संख्या में पाप ग्रह हों तो केमद्रुम योग होता है । यदि इन पाप ग्रहों पर चन्द्र की दृष्टि हो तो विशेष प्रभावशाली केमद्रुम होगा । यह दारिद्र्य देने वाला योग है । यदि तीनों जगह पड़े तो सर्वनाशक, दो जगह पड़े तब भी विशेष कष्टदायक तथा कारकांश में रहने पर भी बली एवं अन्यत्र किसी एक जगह होने पर साधारण प्रभावशाली होगा । ऐसा तारतम्य बुद्धिपूर्वक समझ लेना चाहिए ।

यथा स्वांशात्फलं प्रोक्तं तनुपंचमभावतः ।

तथा द्वितीये सहजे योज्यमेके वदन्ति हि ।। 75 ।।

अत्राध्याये च ये योगाः सफलाः कथिता मया ।

योगकर्तृदशायां ते सर्वे ज्ञेयाः फलप्रदाः ।। 76 ।।

एवं तन्वादिभावानां खेटानां च विपश्चिता ।

फलं तत्तद्दशायां तु योज्यं सम्यक् बलाबलात् ।। 77 ।।

कुछ लोगों का मत है कि कारकांश में 1.5 भावों से सम्बद्ध फल को कारकांश से 2.3 भावों में भी देखना चाहिए ।

इस अध्याय में जो फल कहे गए हैं, वे सब योगकारक ग्रह या राशि की दशा में मिलेंगे, ऐसा समझना चाहिए ।

इस तरह ग्रह के बलाबल का विचार कर एक ही ग्रह का शुभाशुभ फल उसकी दशा में या राशि की दशा में कहना चाहिए ।

उक्त सम्पूर्ण फलादेश का आधार आर्ष है । इसे जैमिनि ने भी यथावत् अपनाया है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां कारकांशफलाध्यायः एकत्रिंशत्तमः ।। 31 ।।

32

।। अथ योगकारकाध्यायः ।।

कारकांशे वशादेवं फलं प्रोक्तं मया द्विज ! ।

अथ भावाधिपत्येन ग्रहयोगफलं श्रृणु ।। 1 ।।

पराशर बोले– अभी आपने कारकांश के आधार पर फल सुना । अब तुम्हें भावेशत्व के आधार पर शुभाशुभ या योगकारक ग्रहों का निर्णय बताता हूँ ।

केन्द्रेश व त्रिकोणेश का विशेष नियम :–

केन्द्राधिपतयः सौम्या न दिशन्ति शुभं फलम् ।

क्रूरा नैवाशुभं कुर्युः शुभदाश्च त्रिकोणपाः ।। 2 ।।

यदि केन्द्रेश शुभ ग्रह हो अर्थात् बुध, गुरु, शुक्र, पूर्ण चन्द्र हो तो वे केन्द्रेश होने का अपना शुभ फल स्थगित कर देते हैं ।

इसी तरह अशुभ केन्द्रेश अपना अशुभ फल स्थगित कर देते हैं । सभी त्रिकोणेश सदैव शुभ फल देते हैं ।

निष्कर्षतः एक साथ ही कोई ग्रह केन्द्र व त्रिकोण का स्वामी हो तो वह परम शुभ होगा। केन्द्रेश स्वतन्त्र रूप से फल न देकर अपनी दूसरी राशि जैसे भाव में पड़े, तो तदनुसार फल देता है। शुभ केन्द्रेश पापफल नहीं देते, केवल अपने शुभ फल को स्थगित कर सामान्य हो जाते हैं। यही पद्धति पाप ग्रह केन्द्रेश के विषय में भी है। इसे केन्द्राधिपत्य दोष कहते हैं।

पाराशर होरा के इसी अध्याय के आधार पर लघुपाराशरी नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी गई है। लघु पाराशरी में यद्यपि 42 श्लोक ही हैं, परन्तु उसकी अनेक संस्कृत व हिन्दी टीकाएँ हो चुकी हैं। हमारे विचार से लघु पाराशरी का एक-एक श्लोक वास्तव में रत्न तुल्य है। इस अध्याय की विस्तृत व्याख्या यहाँ संभव नहीं है। एतदर्थ हमारी लघु पाराशरी विद्याधरी पढ़ें।

लग्न का विशेष नियम :–

लग्नं केन्द्रत्रिकोणत्वाद् विशेषेण शुभप्रदम्।
पंचम नवमं चैव विशेषधनमुच्यते ।। 3 ।।
सप्तमं दशमं चैव विशेषसुखमुच्यते ।

लग्न भाव केन्द्र व त्रिकोण दोनों होने से परम शुभ है। अर्थात् लग्नेश यदि शुभ हो या पाप वह केन्द्रेश होने के साथ-साथ 1. 4. 7. 10केन्द्र व 1. 5. 9 त्रिकोणों में सहावस्थान के कारण सदैव शुभ फल ही देगा।

5.9 भाव त्रिकोणों को विशेष धनस्थान अर्थात् धनस्थान न होते हुए भी धन-विचार में मुख्य समझना चाहिए।

7.10 भाव सुख स्थान (4.) के अतिरिक्त विशिष्ट सुख स्थान हैं। अतः सुख विचार में ये भी महत्त्वपूर्ण हैं।

त्रिषडायेशों (3.6.11) **का नियम :–**

त्रिषडायाधिपाः सर्वे ग्रहाः पापफलप्रदाः ।। 4 ।।

3.6.11 भावों के अधिपति सदैव पाप फल देते हैं। स्वाभाविक रूप से शुभ हों या अशुभ, यह मूल नियम है। अतः त्रिषडायेशों की दूसरी राशि जैसे भावों में पड़ेगी, तदनुसार फल में तारतम्य होगा। जैसे तृतीयेश व चतुर्थेश शनि हो तो वह तृतीयेश होने से पाप व चतुर्थेश होने से सामान्य शुभ होगा। अतः वह मिश्रित फल देगा।

द्वितीयेश व द्वादशेश का नियम :–

व्ययंद्वितीयभावेशौ साहचर्यात्फलप्रदौ ।
स्थानान्तरानुरोधाच्च प्रबला उत्तरोत्तरम् ।। 5 ।।

व्ययेश व द्वितीयेश जैसे ग्रह के साथ बैठें (साहचर्य) वैसा ही फल देगें। अथवा जैसे भाव में इनकी दूसरी राशि पड़ेगी वैसा ही फल देंगे। ये स्वतन्त्र रूप से फलदायक नहीं हैं।

सभी भाव केन्द्र, त्रिकोण, त्रिषडाय क्रमशः अधिक बली होते हैं। अर्थात् केन्द्रों में लग्न की अपेक्षा चतुर्थ, उसकी अपेक्षा सप्तम, उसकी अपेक्षा दशम अधिक बली है। अतः दशम भाव परम केन्द्र है। इसी तरह पंचम व नवम में भी नवम अधिक बली व 3.6.11 भी क्रमशः अधिक बली (अशुभ) हैं।

अष्टमेश का शुभाशुभत्व :–

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स्थानान्तरानुगुण्येन फलं प्रायः प्रयच्छति।। 6।।
न वा रन्ध्रेशदोषोऽत्र सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्।

भाग्य स्थान का व्यय स्थान होने से अष्टमेश शुभ फल नहीं देता। उसकी दूसरी राशि यदि शुभ स्थानों में पड़े तो वह भी स्थानान्तर के प्रभाव से प्रायः शुभ ही हो जाता है।

सूर्य व चन्द्रमा की एक राशि होने से यदि इनमें अष्टमेश पड़े तो इन्हें विशेष पापी नहीं माना जाता है।

निसर्ग शुभाशुभ ग्रह :–

गुरुशुक्रौ शुभौ प्रोक्तौ चन्द्रो मध्यम उच्यते।।7।।
उदासीनः शशिसुतः पापा रव्यार्किभूमिजा।
पूर्णेन्दुज्ञेज्य शुक्राश्च प्रबला उत्तरोत्तरम्।।8।।
क्षीणचन्द्रे न मन्दाराः प्रबलाश्च यथोत्तम्।
इति स्वभावात् संप्रोक्ता शुभाः पापा ग्रहाः द्विज !।। 9।।

गुरु व शुक्र शुभ, चन्द्रमा मध्यम, बुध उदासीन है। सूर्य, शनि व मंगल पाप ग्रह हैं।

अतः पूर्ण चन्द्र से बुध, बुध से गुरु व गुरु से शुक्र उत्तरोत्तर प्रबल शुभ हैं। क्षीण चन्द्र, सूर्य, शनि व मंगल ये उत्तरोत्तर अधिक पापी हैं। यह ग्रहों का स्वाभाविक शुभ पाप विभाग है।

केन्द्रेश का समन्वय :–

केन्द्राधिपत्य दोषो यः शुभानां कथितं मया।
चन्द्रज्ञगुरुशुक्राणांसविज्ञेयःक्रमाद्बली। 10।।

अभी जो केन्द्राधिपत्य दोष कहा है वह चन्द्र को सबसे कम, बुध को उससे अधिक, गुरु को इन दोनों से अधिक व शुक्र को सबसे अधिक लगता है।

योग कारक (विशेष फलप्रद) का निर्णय :–

केन्द्रत्रिकोणसम्बन्धः सदा योगकरः स्मृतः ।
केन्द्रकोणपती स्यातां परस्परगृहोपगौ ।। 11 ।।
एकत्र संस्थितौ वापि स्वस्वस्थानगतौ तथा ।।
पूर्णदृष्ट्योक्षितौ वापि मिथो योगकरौ मतौ ।। 12 ।।

यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश एक साथ सम्बन्ध करें तो यह योग कारकत्व है । अर्थात् केन्द्रश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध ही फल, योगफल या योगकारकत्व का जनक है ।

केन्द्रेश व त्रिकोणेश एक दूसरे के स्थान में हों जैसे केन्द्रेश त्रिकोण में व त्रिकोणेश केन्द्र में । अथवा दोनों किसी केन्द्र या त्रिकोण में इकट्ठे हों अथवा केन्द्र में केन्द्रेश व त्रिकोण में त्रिकोणेश हो अथवा दोनों परस्पर पूर्णदृष्टि रखते हों ।

इन योगों में योग या राजयोग या राजाधिराज योग बनता है । जैसे परम त्रिकोणपति नवमेश दशम (परम केन्द्र) में व दशमेश नवम में हो या दोनों नवम में या दशम में हों अथवा दशमेश नवमेश कहीं 9.10 में ही हों अथवा लग्नेश व दशमेश या लग्नेश व नवमेश से उक्त प्रकार की ग्रहस्थितियाँ बनें तो बहुत सुन्दर राजयोग या धनयोग या शुभयोग या सफलतादायक होंगे । वास्तव में केन्द्र स्थान विष्णु व त्रिकोण स्थान लक्ष्मी रुप है । इन दोनों का सम्बन्ध सदैव लक्ष्मी या राजलक्ष्मी को देता है ।

योगकारक का द्वितीय लक्षण :–

कोणेशत्वे यदेकस्य केन्द्रेशत्वं च जायते ।
केन्द्र कोणे स्थिते वाऽसौ विशेषाद्योगकारकः ।। 13 ।।

यदि एक ही ग्रह केन्द्रेश व त्रिकोणेश होकर कहीं केन्द्र या त्रिकोण में हो तो वह भी योगकारक होता है । जैसे कर्क लग्न में पंचमेश व दशमेश मंगल दशम में हो तो सर्वोत्तम व पंचम में हो तो उत्तम योगकारक है ।

केन्द्रेशत्वेनपापानां प्रयुक्ता शुभकारिता ।
सा त्रिकोणाधिपत्ये हि न केन्द्रेशत्वमात्रतः ।। 14 ।।

पापी केन्द्रेश होने से केवल पाप फल का स्थगन होता है, शुभ फल का आरम्भ नहीं । अतः पापी केन्द्रेश आदि साथ में त्रिकोणेश भी हो जाएँ तभी वे शुभ फलदायक व योगकारक होंगे । जैसे वृष लग्न में नवमेश दशमेश शनि ।

केन्द्रत्रिकोण नेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम् ।
सम्बन्धमात्राद् बलिनौ तावुभौ योगकारकौ ।। 15 ।।
केन्द्रकोणाधिपौ पापस्थानपावपि संगतौ ।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ।। 16 ।।

यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश स्वयं दोषयुक्त (नीचास्तंगत, शत्रुक्षेत्री आदि) भी हों लेकिन परस्पर सम्बन्ध करके वहीं केन्द्रकोण में हों तो भी वे अपने सम्बन्ध मात्र से ही शुभ फल योगकारक हो जाते हैं।

केन्द्रेश व त्रिकोणेश यदि एक साथ पापस्थानेश 3.6.8.11 के भावेश भी हो जाएँ, तथा परस्पर सम्बन्ध भी करें, तब भी अकेले योगकारक नहीं होते, अर्थात् किसी अन्य योगकारक का सम्बन्ध भी तब आवश्यक है। जैसे मेष या मिथुन लग्न में शनि, मकर में चतुर्थेश लाभेश मंगल इत्यादि।

राहु-केतु का फलनिर्णय :–

यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ।। 17।।
यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणाढ्यौ भवेतां योगकारकौ।। 18।।

राहु व केतु जैसे भावेश के साथ या जैसे भाव में बैठे हों, वैसा ही फल देते हैं। अर्थात् योगकारक के साथ हों या केन्द्रत्रिकोण में हों तथा अनिष्टकारक से युक्त न हों तो प्रबल योगकारक होते हैं।

यदि किसी भी केन्द्र या त्रिकोण में केन्द्रेश या त्रिकोणेश के साथ ही बैठे हों तो बहुत सुन्दर योगकारक होते हैं।

हमारे क्रमिक उदाहरण में पंचम में मंगल, शनि व राहु हैं। ये तीनों ही योगकारक हैं। मंगल दशमेश व पंचमेश होकर एक साथ त्रिकोणेश व केन्द्रेश होकर वहीं स्थित है। शनि सप्तमेश होने से पापी वहीं है तथा अष्टमेश होने से पापी है। लेकिन दूसरे योगकारक मंगल के साथ होने से योग का फल ही देगा। राहुत्रिकोण में केन्द्रेश व त्रिकोणेश के साथ है। अतः योगकारक हुआ। दूसरा त्रिकोणेश गुरु शुभ है। वह शनि पर त्रिपाद दृष्टि व शनि उस पर पूर्ण दृष्टि रखता है। अतः गुरु भी साधारण योगकारक है। चतुर्थेश व एकादशेश होने से शुक्र योगकारक नहीं है। द्वितीयेश सूर्य व व्ययेश बुध साहचर्य के कारण सामान्य (न शुभ न अशुभ) हैं। लेकिन बुध की दूसरी राशि अनिष्ट स्थान में होने से कुछ अशुभता रह जाती है। राहु के योगकारक होने से केतु भी शुभ ही है। लग्नेश चन्द्रमा शुभ ही है। इसी पद्धति से सब लग्नों में शुभ, अशुभ व योगकारक का निर्णय करना चाहिए।

मेषादि लग्नों के शुभाशुभ ग्रह :–

मन्दसौम्यसिताः पापाः शुभौ गुरुदिवाकरौ।
न शुभं योगमात्रेण प्रभवेच्छनिजीवयोः।। 19।।
पारतन्त्र्येण जीवस्य पापकर्मापि निश्चितम्।
शुक्रः साक्षान्निहन्तास्यान्मारकत्वेन लक्षितः।।20।।

मन्दादयो निहन्तारौ भवेयुः पापिनो ग्रहाः ।
शुभाशुभविभागोऽयं सामान्यं मेषलग्नके ।। 21 ।।

मेष लग्न में शनि, बुध शुक्र पापी, सूर्य गुरु शुभ, शनि व गुरु अन्य योगकारक से रहने पर शुभाशुभ होते हैं।

पापसम्बन्ध होने पर गुरु पापफलद भी होता है। शुक्र 2.7 भावेश होने से मारक है। मारकेश से सम्बन्ध होने पर शनि आदि भी मारक हो सकते हैं। इस प्रकार मेष लग्न में कारक व मारक का निर्णय समझना चाहिए।

जीवशुक्रेन्दवः पापाः शुभौ शनि दिवाकरौ ।
राजयोगकरः साक्षादेक एव रवेः सुतः ।। 22 ।।
जीवादयो ग्रहाः पापाः सन्ति मारकलक्षणाः ।
वृष लग्नोद्भवस्यैवं फलमूह्यं विचक्षणैः ।। 23 ।।

वृष लग्न में गुरु, शुक्र व चन्द्रमा पाप ग्रह, सूर्य व शनि शुभ, शनि साक्षात् राजयोगकारक होता है। गुरु आदि ग्रह (मंगल, बुध, गुरु) मारकत्व से युक्त होते हैं।

भौमजीवारुणाः पापाः एक एव कविः शुभः ।
शनैश्चरेण जीवस्य योगो मेषभवो यथा ।। 24 ।।
नायं शशी निहन्ता स्यात् बुधः सौम्यस्तु युग्मके ।

मिथुन लग्न में मंगल, गुरु, सूर्य पापी, शुक्र निर्विवाद शुभ, शनि व गुरु, साहचर्य से फलप्रद, चन्द्रमा साधारण शुभ, मारकत्व रहित व बुध लग्नेश होने से शुभ ही है।

भार्गवेन्दुसुतौ पापौ भूसुतेज्येन्दवः शुभाः ।। 25 ।।
पूर्णयोगकरः साक्षान्मंगलो मंगलप्रदः ।
निहन्ता रविजोऽन्येतु साहचर्यात् कुलीरके ।। 26 ।।

कर्क लग्न में शुक्र व बुध पापी, मंगल, चन्द्र व गुरु शुभ, इनमें भी मंगल साक्षात् योगकारक, शनि मारक व शेष सूर्य, राहु आदि साहचर्य से फल देते हैं।

बुधशुक्रयमाः पापाः कुजेज्यार्काः शुभावहाः ।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं गुरुशुक्रयोः ।। 27 ।।
मारकस्तु शनिश्चन्द्रः साहचर्यात् फलप्रदः ।
एवं फलानि ज्ञेयानि बुधैः पंचमजन्मनः ।। 28 ।।

सिंह लग्न में बुध, शुक्र व शनि पापी, मंगल, गुरु, सूर्य शुभ हैं। लेकिन गुरु व शुक्र केवल सम्बन्ध से ही फल नहीं देते। शनि मारक व चन्द्रमा साहचर्य से फल देता है।

कुजजीवेन्दवः पापा बुधशुक्रौ शुभावहौ ।
भार्गवेन्दुसुतावेव भवेतां योगकारकौ ।। 29 ।।
मारकोऽपि कविः सूर्यः साहचर्यात्तु षष्ठभे ।

कन्या लग्न में मंगल, गुरु व चन्द्रमा पापी हैं। बुध शुक्र शुभ हैं। ये ही योगकारक भी हैं। शुक्र मारक भी है। सूर्य साहचर्य से फलप्रद है।

जीवार्कमहिजाः पापाः शनैश्चरबुधौ शुभौ ।। 30 ।।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ चन्द्रतत्सुतौ ।
कुजो निहन्ति जीवाद्याः पापा मारकलक्षणाः ।। 31 ।।
शुक्रः समः फलान्येवं तुलायां कल्पयेद् द्विज ! ।

तुला लग्न में गुरु, सूर्य व मंगल पापी, शनि व बुध शुभ, बुध चन्द्र राजयोगकारी, मंगल मारक व शेष ग्रह पापी होते हैं। शुक्र सम है।

सितज्ञशनयः पापाः शुभौ गुरुनिशाकरौ ।। 32 ।।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ।
कुजः शुभः सिताद्याश्च पापा मारकलक्षणाः ।। 33 ।।
एवं फलं सुविज्ञेयं वृश्चिकोदय जन्मनः ।

वृश्चिक लग्न में शुक्र, बुध व शनि पापी, गुरु व चन्द्रमा शुभ, सूर्य चन्द्र योगकारक, मंगल शुभ, शुक्रादि शेष पापी ग्रह मारक होते हैं।

एक एव कविः पापः शुभौ भौमदिवाकरौ ।। 34 ।।
योगो भास्करसौम्याभ्यां निहन्ता भास्करात्मजः ।
गुरुः समफलः शुक्रः मारको नवमोदये ।। 35 ।।

धनु लग्न में शुक्र पापी, मंगल सूर्य शुभ, सूर्य बुध योगकारक, शनि मारक, गुरु सम तथा शुक्र अशुभ है।

कुजजीवेन्दवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ।
मन्दः स्वयं न हन्ता स्यान्मारका मंगलादयः ।। 36 ।।
सूर्यः समफलः प्रोक्तः कविरेकः सुयोगकृत् ।
मृगलग्नोद्भवस्यैवमथ कुम्भोदये श्रृणु ।। 37 ।।

मकर लग्न में मंगल, गुरु व चन्द्र पापी, शुक्र बुध सम, शनि स्वयं मारक नहीं होता। मंगलादि पाप ग्रह मारक, सूर्य सम व शुक्र योगकारक है। अब आगे कुम्भ लग्न के ग्रहों को सुनो।

जीवचन्द्रकुजाःपापाःशुक्रसूर्यात्मजौशुभौ ।
राजयोगकरः शुक्रः सौम्यो मध्यफलः स्मृतः ।। 38 ।।

कुम्भ लग्न में चन्द्र, मंगल, गुरु पापी, शुक्र शनि शुभ, शुक्र राजयोगकारक, बुध मध्यम है।

मन्दशुक्रांशुमत् सौम्याः पापाः भौमविधू शुभौ ।
महीसुतगुरू योगकारकौ च महीसुतः ।। 39 ।।
मन्दज्ञौ मारकौ ज्ञेयौ मीनलग्ने विचिन्तयेत् ।

मीन लग्न में शनि, शुक्र, सूर्य व बुध पापी, मंगल चन्द्र शुभ, गुरु मंगल योगकर्ता, इनमें भी मंगल विशेष योगकारक, शनि व बुध मारक होते हैं।

एवं भावाधिपत्येन जन्मलग्नवशादिह ।। 40 ।।
शुभाशुभं हि विज्ञेयं पुनः कारकलक्षणात् ।
बलाबलविचारेण भावर्क्षप्रभवं फलम् ।। 41 ।।

इस प्रकार जन्म लग्न में भावेश के आधार पर, पूर्वोक्त कारक ग्रहों के आधार पर, भाव व राशि स्थिति के आधार पर, पूर्वोक्त योगायोगों

के आधार पर एवं आगे कहे जाने वाले नियमों व योगों का समन्वय कर, जातक का शुभाशुभ जानना चाहिए ।

कारक लक्षण, मारक, दशा फल के नियम, मारक दशा व राजयोग देने वाली दशा के विषय में पाराशरीय मतानुसार हम लघुपाराशरी विद्याधरी में लिख चुके हैं । बृहत्पाराशर के नियमों का बहुत प्रामाणिक संक्षेप, जिसमें एक शब्द भी इधर–उधर नहीं किया जा सकता लघु पाराशरी में निहित है । लघु पाराशरी पाराशर होराशास्त्र का प्रवेशद्वार है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां योगकारकाध्यायो द्वात्रिंशत्तमः ।।32।।

33

।। अथ नाभस् योगाध्यायः ।।

पराशर उवाच :–

अधुना नाभसा योगाः कथ्यन्ते द्विजसत्तम !।
द्वात्रिंशत् तत्प्रभेदास्तु शतघ्नाष्टादशोन्मिताः ।। 1 ।।
आश्रयाख्यास्त्रयो योगा दलसंज्ञं द्वयं ततः ।
आकृतिर्विंशतिः संख्या सप्तयोगाः प्रकीर्तिताः ।। 2 ।।

हे मैत्रेय! अब मैं नाभस योगों को कहता हूँ । ये मूलरूप से 32 हैं तथा इनके ही भेद–प्रभेद परस्पर मिश्रण से 1800 हो जाते हैं । मूल नाभस योगों में 3 आश्रय योग, 2 दल योग, 20 आकृति योग, 7 संख्या योग होते हैं ।

नभ अर्थात् आकाश में विशेष ग्रह स्थितियों से बनने के कारण नाभस योग कहे जाते हैं । ग्रहों की स्थिति से जैसी आकृति दिखे जैसे मुसल जैसी तो मुसल योग, सर्प जैसी तो सर्प योग इत्यादि, नाम दे दिए गए हैं । उनके विषय में हम बहज्जातक की अभिनव व्याख्या में व वृद्ध यवन जातक में विस्तार से लिख चुके हैं । अतः पिष्टपेषण करना उचित नहीं है ।

योगों के नाम :–

रज्जुश्च मुसलश्चैव नलश्चेत्याश्रयास्त्रयः ।
मालाख्यः सर्पसंज्ञश्च दलयोगौ प्रकीर्तितौ ।। 3 ।।

गदाख्यः शकटश्चैव श्रृंगाटक विहंगमौ ।
हलवज्रयवाश्चैव कमलं वापियूपकौ ।। 4 ।।
शरशक्तिदण्डनौकाकूटच्छत्रधनूंषि च ।
अर्धचन्द्रस्तु चक्रं च समुद्रश्चेति विंशतिः ।।5 ।।
वल्लकीदामपाशास्तु केदारशूलको युगः ।
गोल इत्याख्ययासप्तसंख्या द्वात्रिंशका इमे ।। 6 ।।

रज्जु, मुसल व नल ये 3 आश्रय योग हैं। माला व सर्प ये दो दल योग हैं। गदा, शकट, श्रृंगाटक, विहग, हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, धनुः (चाप), अर्धचन्द्र, चक्र, समुद्र ये 20 आकृति योग हैं। वल्लकी (वीणा), दाम, पाश, केदार, शूल, युग व गोल ये 7 संख्या योग हैं। इनकी कुल संख्या 32 है।

आश्रय योगों का लक्षण :–

सर्वैश्चरे स्थिते रज्जुः स्थिरस्थैर्मुसलः स्मृतः ।
नलाख्यो द्विस्वभावस्थैराश्रयाख्या इमे त्रयः ।। 7 ।।

सभी ग्रह (सूर्य से शनि तक) 1.4.7.10 राशि में हों तो रज्जु, 2. 5.8.11 राशियों में हों तो मुसल एवं सभी ग्रह 3.6.9.12 में हों तो नल योग होता है। यह तीन आश्रय योगों का लक्षण कहा।

आश्रय अर्थात् निवास स्थान, बसेरा। अतः सब ग्रहों के आश्रय (राशि) के आधार पर होने से 'आश्रय' यह सार्थक नाम है। सभी ग्रह किसी एक या दो या तीन या चारों चरादि राशियों में होने पर ये योग होंगे। विशेष ऊहापोह के साथ बृहज्जातक अभिनव भाष्य में लिख चुके हैं।

दलयोग लक्षण :–

केन्द्रत्रयगतैः पापैः सौम्यैर्वा दलसंज्ञकौ ।
क्रमात्सर्पाख्यमालाख्यौ पापसौम्यफलप्रदौ ।।8 ।।

तीन पाप ग्रह (शनि, मंगल, सूर्य) 4.7.19 राशि में हों या लगातार किन्हीं तीन केन्द्रों में हों तो 'सर्प योग' तथा इसी तरह 4.7.10 में सभी शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) हों तो 'माला योग' होता है। सर्प योग में अति दुष्ट तथा माला योग में शुभ फल होता है।

आसपास के तीन केन्द्रों में ग्रह होना आवश्यक है। तभी सर्प या माला की आकृति बनेगी। इनमें भी 4.7.10 भावों का ग्रहण मुख्य पक्ष है। इन्हीं केन्द्रों में यह आकृति बनती है।

गदा, शकट, विहग लक्षण :–

आसन्नकेन्द्रद्वयगैःसर्वैर्योगोगदाह्वयः ।

शकटं लग्नजायास्थैः खाम्बुगैर्विहगस्मृतः ।। 9 ।।

पास के दो केन्द्रों (1.4 या 4.7 या 7.10 या 10.1) में सभी ग्रह रहने से गदा योग है। सभी ग्रह 1.7 में रहने से शकट (गाड़ी) योग व 4.10 में सभी ग्रह रहने से (4. 10) पक्षी योग होता है।

श्रृंगाटक व हल योग :–

योगः श्रृंगाटकं नाम लग्नात्मजतपः स्थितैः ।

अन्यस्थानात् त्रिकोणस्थैर्हलयोग इतीरितः ।। 10 ।।

सभी ग्रह लग्न से त्रिकोण (1.5.9) में हों तो श्रृंगाटक योगो सिंघाड़े जैसी आकृति वाला होता है। लग्न के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान से परस्पर त्रिकोण में सब ग्रह हों तो 'हल योग' होता है।

वज्र व यव योग :–

लग्नजायास्थितैः सौम्यैः पापाख्यैः खाम्बुसंस्थितैः ।

योगो वज्राभिधः प्रोक्तः विपरीतस्थितैर्यवः ।। 11 ।।

सभी शुभ ग्रह 1.7 में व सभी पाप ग्रह 4.10 में एक साथ हों तो वज्र योग तथा सभी शुभ ग्रह 4.10 में व पाप ग्रह 1.7 में हों तो यव अर्थात् जौ की आकृति वाला होता है।

जहाँ शुभ होंगे, वही भाव या उससे द्योतित आयु पुष्ट होगी। जौ का मध्य भाग पुष्ट होता है। अतः यह मध्यायु में शुभ फलद कहा है। इसके विपरीत वज्र के सिरे पुष्ट होते हैं। अतः प्रथम व अन्तिम अवस्था में शुभ फलद माना जाता है। इसकी विशेष व्याख्या हेतु हमारी वृद्ध यवन प्रणवाख्या पृ. 842-848 अवश्य देखें। इन योगों में सैद्धान्तिक विरोध पड़ता है। क्या ये योग असम्भव हैं ?

कमल व वापी योगः–

सर्वकेन्द्रगतैः सर्वैर्मिश्रैः कमलसंज्ञकः ।

केन्द्रादन्यत्रगैः सर्वैर्योगो वापीसमाख्यः ।। 12 ।।

यदि सब ग्रह मिश्रित रूप से होकर चारों केन्द्रों में हों तो 'कमल योग' होता है। यदि सभी ग्रह केन्द्र के अतिरिक्त पणफर, आपोक्लिम में हों तो 'वापी योग' होता है।

यूप–शर–शक्ति––दण्ड योग :–

यूपो लग्नाच्चतुर्थस्थैः शरस्तुर्याच्चतुर्थगैः ।
शक्तिर्मदाच्चतुर्थस्थैर्दण्डो मध्याच्चतुर्थगैः ।। 13 ।।

लग्न से चतुर्थ तक लगातार चारों राशियों में सब ग्रह हों तो 'यूप योग' स्तम्भ की आकृति वाला होता है। चतुर्थ से सप्तम तक होने पर शर योग, बाण की आकृति, सप्तम से दशम तक 'शक्ति योग' अर्थात् भाले की आकृति वाला एवं दशम से लग्न तक लगातार सब ग्रह रहने से 'दण्ड योग' होता है।

नौ, कूट, छत्र, चाप लक्षण :–

लग्नात् सप्तर्क्षगैर्नौका क्रमात्तुर्याच्च सप्तमात् ।
मध्यात्सप्तर्क्षगैरेवं कूटच्छत्रशरासनाः ।। 14 ।।
धनात्सप्तर्क्षगै खेटैः सर्वैरर्धेन्दुरीरितः ।। 15 ।।

लग्न से लगातार सात राशियों में सब ग्रह हों तो नौका योग, चतुर्थ से सात' राशियों में सब ग्रह हों तो 'कूट योग' होता है।

इसी तरह सप्तम से सात राशियों में 'छत्र योग' (छतरी) होता है। इसी प्रकार दशम से सात राशियों में सभी ग्रह हों तो धनुष या चाप योग होता है। द्वितीय भाव से लगातार 7 राशियों में सब ग्रह हों तो 'अर्ध चन्द्र' योग होता है। दशम भाव आकाश मध्य होने से छत्र योग (10.4) सप्त से लग्न तक। चतुर्थ पाताल होने से नौका योग, दशम से चतुर्थ तक होने से धनुष योग तथा चतुर्थ से दशम तक कूट टूटे सींग या फंदा या हल का खड़ा हिस्सा यह आकृति बनती है। कूट शब्द का अर्थ संस्कृत में ढेर, पक्षी फँसाने का फंदा, पर्वत की चोटी, झूठ, चालाकी, टूटा सींग, नोंक या हल का फाल इत्यादि होता है।

चक्र व समुद्र योग :–

लग्नादेकान्तरस्थैश्चषड्भगैश्चक्रमुच्यते ।
धनादेकान्तरस्थैस्तु समुद्रः षड्गृहाश्रितैः ।। 16 ।।

लग्न से शुरू कर एक एक भाव छोड़कर 1.3.5.7.9.11 इन विषम भावराशियों में सभी ग्रह हों तो 'चक्र योग' तथा द्वितीय भाव से इसी तरह शुरूकरके6 राशियों में सब ग्रह हों तो 'समुद्र योग' होता है। चक्र की आकृति के गहरे स्थानों में सभी सम भाव 2.4.6.8.10.12 होते हैं। अतः पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए समुद्र की सी आकृति बनती है।

संख्या योग लक्षण :–

एकात् सप्तर्क्षगैः खेटैः क्रमशो युगगोलकाः ।
शूलकेदारपाशाश्च दामवल्लकिसंज्ञकाः ।।
सप्तसंख्याः भवन्त्येते विहायान्यानुदीरितात् ।। 17 ।।

आश्रय, दल व आकृति योग न हों तब एक राशि में सभी ग्रह हों तो गोल, दो में युग, तीन में शूल, चार में केदार, पाँच में पाश, छह में दामिनी व सात में वीणा योग होता है ।

32 योगों का फल :–

अटनप्रियाः सुरूपाः परदेशस्वास्थ्यभागिनो मनुजाः ।
क्रूराः खलस्वभावा रज्जुप्रभवाः सदा कथिताः ।। 18 ।।
मानज्ञानधनाढ्यैर्युक्ताः भूपप्रियाः ख्याताः ।
बहुपुत्राः स्थिरचित्ता मुसलमुत्था भवन्ति नराः ।। 19 ।।
न्यूनातिरिक्त देहा धनसंचयभागिनोऽतिनिपुणाश्च ।
बन्धुहिताश्च सुरूपा नलयोगे सम्प्रसूयन्ते ।। 20 ।।

रज्जुयोग में व्यक्ति भ्रमणप्रिय, सुन्दर, परदेश में प्रसन्नचित्त रहने वाले, क्रूर, खलस्वभाव होते हैं । मुसल योग में सम्मान, धन व ज्ञान से युक्त, राजा के विश्वासपात्र प्रसिद्ध, अनेक पुत्रों वाले, स्थिर विचारों वाले होते हैं । नल योग में अधिकांग या हीनांग, धन इकट्ठा करने वाले, बहुत निपुण, बन्धुओं का हित करने वाले सुन्दर होते हैं ।

इन नाभस् योगों का फल सभी मान्य ग्रन्थों में कहा गया है, लेकिन सारावली में ये सारे फल श्लोक यथावत् ले लिए गए हैं । पाराशर होरा सभी ग्रन्थों का उपजीव्य या स्रोत है, अतः इसमें क्या आश्चर्य है ?

नित्यं सुखप्रधाना वाहनवस्त्रान्नभोगसम्पन्नाः ।
कान्ता सुबहुस्त्रीका मालायां सम्प्रसूताः स्युः ।। 21 ।।
विषमाः क्रूराः निःस्वाः नित्यं दुःखार्दिताः सुदीनाश्च ।
परभक्षपाननिरताः सर्पभवा भवन्ति नराः ।। 22 ।।

माला योग में सदैव सुख भोगने वाले, वाहनयुक्त, वस्त्राभूषण व अन्न अर्थात् खाने–पीने व पहनने में कोई कमी अनुभव न करने वाले, रमणीय व्यक्तित्त्व, अनेक सुन्दर स्त्रियों से युक्त होते हैं ।

सर्पयोग में कुटिल स्वभाव, चालाक, क्रूर, दीन–हीन, दुःखी, दूसरों के भरोसे व दया से खाने–पीने वाले होते हैं '

सततोद्युक्तार्थयशा यज्वानः शास्त्रयोगकुशलाश्च ।
धनकनकरत्नसम्पतसंयुक्ता मानवा गदायां तु ।। 23 ।।
रोगार्ताः कुनखाः मूर्खाः शकटानुजीविनो निःस्वाः ।
मित्रस्वजनविहीनाः शकटे जाताः भवन्ति नराः ।। 24 ।।
भ्रमणरुचयो विकृष्टा दूताः सुरतानुजीविनो धृष्टाः ।
कलहप्रियाश्च नित्यं विहगे योगे सदा जाताः ।। 25 ।।
प्रियकलहाः समरसहाः सुभगो नृपतेः प्रियाः शुभ कलत्राः ।
आढ्या युवतिद्वेष्याः श्रृंगाटकसम्भवा मनुजाः ।। 26 ।।

गदा योग में सदा धन व यश कमाने के पीछे रहने वाले, यज्ञकर्ता, शास्त्र व संगीत या गायन में कुशल, धन सम्पत्ति से युक्त होते हैं।

शकटयोग में रोगी, अटपटे नाखूनों वाला, गाड़ी से जीविका चलाने वाले, धनरहित, मित्रों व स्वजनों से रहित होते हैं।

विहग योग में घूमने की रुचि वाले, दूर स्थानों पर निवास करने वाले, दूतकर्म वाले, रतिक्रिया से पैसा कमाने वाले, झगड़ालू होते हैं।

श्रृंगाटक योग में कलहप्रिय, झगड़े या युद्ध सहन करने वाले अर्थात् अच्छे मुकाबलेबाज (स्थायी), सुन्दर, राजा के प्रिय पात्र, अच्छी पत्नी वाले, धनी, स्त्रियों से कुछ द्वेष सा रखने वाले होते हैं।

बह्वाशिनो दरिद्राः कृषीवला दुःखिताश्च सोद्वेगाः ।
बन्धुसुहृद्भिः शक्ताः प्रेष्या हलसंज्ञके सदा पुरुषाः ।। 27 ।।
आद्यन्तवयः सुखिनः शूराः सुभगाः विरोगदेहाश्च ।
भाग्यविहीनाः मध्ये वज्रे जाता खलैर्विरुद्धाश्च ।। 28 ।।
व्रतनियम मंगलपरा वयसो मध्ये सुखार्थपुत्रयुताः ।
दातारः स्थिरवित्ता यवयोगभवाः सदा पुरुषाः ।। 29 ।।

हल योग में खूब खाने वाले, दरिद्र, खेती करने वाले, दुःखी, उद्विग्न मन वाले, बन्धुओं व मित्रों का सहयोग पाने वाले या पाठान्तर से सहयोग मुक्त, प्रेष्य होते हैं।

वज्र योग में आयु के पहले व आखिरी भाग में सुखी, शूर, सुभग व नीरोग तथा मध्यमाग में भाग्यहीन दुष्टों का विरोध पाने वाले होते हैं।

यव योग में व्रत, नियम व मंगल कार्यों में सलंग्न, आयु के मध्य में दुखी, पुत्रवान्, व धनी, दाता, स्थिर धन वाले होते हैं।

विभवगुणाढ्या पुरुषाः स्थिरायुषो विपुलकीर्तयः शुद्धाः ।
शुभयशसः पृथ्वीशाः कमलभवा मानवा नित्यम् ।। 30 ।।

निधिकरणे निपुणधियः स्थिरार्थसंयुताः सुतृप्ताश्च ।
नयनसुखसम्प्रहृष्टा वापीयोगेन राजानः ।। 31 ।।
आत्मविदिज्यानिरतः स्त्रियायुतः सत्त्वसम्पन्नः ।
व्रतनियमरतमनुष्यो यूपे जातो विशिष्टश्च ।। 32 ।।

कमल योग में मनुष्य वैभवयुक्त, गुणी, लम्बी आयु वाले, अति प्रसिद्ध, शुद्ध मन व विचारों वाले, सत्कीर्ति युक्त, प्रायः राजा होते हैं।

वापी योग में धन संचय करने में निपुण या कोषरक्षा व कोषनिर्माण में कुशल, स्थिर धन व सुख वाले, सर्वथा संतुष्ट मन वाले, नेत्रों से ही सभी सुख देखने वाले राजा होते हैं।

यूप योग में आत्मज्ञानी, यज्ञयागादि में संलग्न, स्त्री से सुखी, सत्त्व अर्थात् आत्मबल से युक्त, व्रत नियम का पालन करने वाले, विशिष्ट होते हैं।

इषुकारा बन्धनपा मृगया वनसेविताश्च मांसादाः ।
हिंस्राः कुशिल्पकाराः शरयोगे मानवाः प्रसूयन्ते ।। 33 ।।
धनरहितविकलदुःखितनीचालसाश्चिरायुषाः पुरुषाः ।
संग्रामबुद्धिनिपुणाः शक्त्यां जाताः स्थिराः सुभगाः ।। 34 ।।
हृतपुत्रदारनिःस्वाः सर्वत्र च निर्घृणाः स्वजनबाह्याः ।
दुःखितनीचप्रेष्या दण्डप्रभवा भवन्ति नराः ।। 35 ।।

शर योग में शस्त्र बनाने वाले, बन्धन करने में समर्थ (पुलिस या तत्सदृश दण्डाधिकारी) शिकारी, वन में घूमने वाले, मांस भक्षक, हिंसक स्वभाव, लालित्य से रहित कुशिल्पी होते हैं।

शक्ति योग में धनहीन, विकल, दुःखी, नीच, आलसी, दीर्घायु, लड़ने में चतुर, दृढ़ स्वभाव वाले (हठी) लेकिन दिखने में सुन्दर होते हैं।

दण्ड योग में स्त्री, पुत्र व धन से रहित, निर्दय, अपने लोगों द्वारा बहिष्कृत, दुःखी, नीच, प्रेष्य (चपरासी या साधारण सन्देशवाहक) होते हैं।

सलिलोपजीविविभवा बह्वाशाः ख्यातकीर्तयो हृष्टाः ।
कृपणा मलिना लुब्धा नौसम्भूताः खलाः, पुरुषाः ।। 36 ।।
अनृतकथनबन्धनपा निष्किंचनाः शठाः क्रूराः ।
कूटसमुत्था नित्यं भवन्ति गिरिदुर्गवासिनो मनुजाः ।। 37 ।।
स्वजनाश्रयो दयावान् नानानृपवल्लभः प्रकृष्टमतिः ।
प्रथमेऽन्त्ये वयसि नरः सुखवान् दीर्घायुरातपत्री स्यात् ।। 38 ।।

आनृतिक गुप्तपालाश्चौराः कितवाश्च कानने निरताः ।

कार्मुकयोगे जाता भाग्यविहीनाः शुभा वयोमध्ये ।। 39 ।।

नौका योग में मनुष्य जल से जीविका चलाने वाले, अधिक खाने वाले, प्रसिद्ध, प्रसन्न अर्थात् मस्त रहने वाले कजूंस, मैले, लोभी, कुछ दुष्ट होते हैं ।

कूट योग में झूठे, पकड़ने या छापा मारने के अधिकारी (बन्धन करने में समर्थ) धनहीन, शठ अर्थात् धूर्त, क्रूर स्वभाव वाले, प्रायः पर्वतीय प्रदेशों या किले आदि में रहने वाले होते हैं ।

छत्रयोग में अपने लोगों को सहारा देने वाले, दयालु, अनेक राजाओं के प्रिय, उत्तम बुद्धि वाले आयु के पहले व अन्तिम भाग में सुखी, दीर्घायु होते हैं ।

चाप या धनुर्योग में झूठ बोलने से जीविका कमाने वाले, कोतवाल या चोर, धूर्त, धोखेबाज, जंगली प्रदेशों में रहने वाले प्रायः भाग्यहीन लेकिन मध्यावस्था में सुखी होते हैं ।

सेनापतयः सुभगाः कान्तशरीराः नृपप्रिया बलिनः ।

मणिकनकभूषणयुता भवन्ति योगेऽर्धचन्द्राख्ये ।।40 ।।

प्रणताशेषनराधिपकिरीटरत्नप्रभाच्छुरितपादः ।

भवति नरेन्द्रो मनुजश्चक्रे यो जायते योगे ।। 41 ।।

बहुरत्नधनसमृद्धाः भोगैर्युताः जनप्रियाः ससुताः ।

उदधिसमुत्थाः पुरुषाः स्थिरविभवाः साधुशीलाश्च ।। 42 ।।

अर्धचन्द्र नामक योग में मनुष्य सेनापति, सौभाग्यशाली, सुन्दर, राजा के प्रिय, बलवान्, मणिरत्न सुवर्ण से सुशोभित होते हैं ।

चक्र योग में मनुष्य ऐसा चक्रवर्ती राजा होता है, जिसके पैरों में सब राजाओं के मुकुटों की मणियाँ स्पर्श करती हैं ।

समुद्र योग में मनुष्य बहुत रत्न युक्त, धनी, भोगी, लोकप्रिय, पुत्रवान, स्थिर वैभव वाले और अच्छे आचरण वाले होते हैं ।

प्रियगीत नृत्यवाद्याः शास्त्रपराः मित्रान्विताः सुवचनाः ।

सुखभाजो बहुभृत्या वीणायां कीर्तिताः मनुजाः ।। 43 ।।

दाम्नि सुजनोपकारी नयधनयुक्तो महेश्वरः ख्यातः ।

बहुसुतरत्न समृद्धो धीरो विद्वान् प्रजातः स्यात् ।। 44 ।।

पाशेबन्धनभाजः कार्योद्युक्ताः. प्रपंचकाराश्च ।

बहुभाषिणो विशीलाः बहुभृत्याः सम्प्रसूताः स्युः ।। 45 ।।

सुबहूनामुपयोज्याः कृषीवलाः सत्यवादिनः सुखिताः ।

केदारे सम्भूताश्चलस्वभावा धनैर्युक्ताः ।। 46 ।।

वीणा योग में गान. नृत्य, वाद्य प्रिय, शास्त्रपरायण, मित्रों वाले, सुन्दर वचन बोलने वाले, सुखी, अनेक नौकरों वाले होते हैं ।

दाम योग में सज्जनों का उपकार करने वाले, नीति धन से युक्त, मुखिया या स्वामी, अनेक सुतों व धन से युक्त, धीर, विद्वान् होते हैं ।

पाश योग में बन्धन या दबाव पाने वाले, काम में सदा तत्पर, बहुत फैलाव करने वाले, बहुभाषी, शीलरहित, अनेक नौकरों वाले होते हैं ।

केदार योग में अनेक लोगों का उपकार करने वाला, या बहुजनोपयोगी वस्तु निर्माता, कृषक, सत्यवादी, सुखी, चचंल स्वभाव व धनी होता है ।

तीक्ष्णा अलसा निधनाः हिंस्राः सुबहिष्कृताः महाशूराः ।

संग्राम लब्धशब्दाः शूले रौद्राः प्रजायन्ते ।। 47 ।।

पाखण्डवादिनो वा धनरहिता वा बहिष्कृता लोके ।

सुतमानधर्मरहिता युगयोगे ये नरा जाताः ।। 48 ।।

दारिद्र्यालस्ययुताविद्याज्ञानवर्जितामलिनाः ।

नित्यं दुःखितदीना गोले योगे भवन्ति नराः ।। 49 ।।

शूल योग में तीक्ष्णस्वभाव, आलसी, धनरहित, हिंसक, शूरवीर, प्रायः बहिष्कृत, संग्राम में विशेष यश पाने वाले, क्रोधी होते हैं ।

युग योग में पाखण्डी, धनरहित, बहिष्कृत, पुत्र, सम्मान व धर्म से रहित होते हैं ।

गोल योग में दरिद्र, आलसी, विद्या व ज्ञान से रहित, मलिन स्वभाव, सदा दुःखी रहने वाले होते हैं ।

फलपरिपाक के नियम :–

आश्रया विफला ज्ञेया यद्यन्यैरपिमिश्रिताः ।

यैः ससृष्टाः सदा तेषाममिश्राः स्वफलप्रदाः ।। 50 ।।

सर्वास्वपिदशास्वेते भवेयुः फलदायकाः ।

प्राणिनामिति विज्ञेया प्रवदन्ति तवाग्रजाः ।। 51 ।।

यदि आश्रय योग अकेले हों अर्थात् आश्रय योग के साथ किसी आकृति योग का लक्षण भी न मिले तब आश्रय योग निष्फल होकर, केवल आकृति योग का फल होगा । यदि आश्रय योग अकेले हों तो अपना फल

देते हैं। संख्या योग का विचार तभी करना है, जब कुण्डली में आकृति या आश्रय या दल योग न हों, तभी संख्या योग का विचार करना है। अन्यथा राशि संख्या पर आधारित होने से संख्या योग तो सर्वत्र होंगे ही। इन्हीं 32 योगों या इनके सम्मिश्रित रूपों में सभी मनुष्यों का जन्म होता है। ये योग मनुष्यों को सभी दशा कालों में अर्थात् सारे जीवन भर फल देते रहते हैं। ऐसा पूर्वजों ने कहा है। अमिश्रित आश्रय योग या आकृति योग होने पर मनुष्य विशेष भाग्यवान् व अपने ही भाग्य से वृद्धि पाते हैं जबकि संख्या योग वाले कहीं प्रसन्न व सुखी, कहीं दुःखी तथा दूसरों के भाग्य से ही बढ़ते हैं।

हमारे उदाहरण में आश्रय योग या दल या आकृति योग नहीं बनते। अतः संख्या योग पाश (पाँच राशियों में सभी ग्रह रहने से) योग बनता है। फलस्वरूप अन्य प्राणियों का (स्त्री, पुत्र, मित्रादि) जैसे जैसे जीवन में समावेश होगा, यह जातक समृद्ध होगा।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां नाभस् योगाध्यायस्त्रयस्त्रिंशत्तमः ।।33।।

34

।। अथ विविधयोगाध्यायः ।।

शुभ व अशुभ योग :–

लग्ने शुभयुते योगः शुभः पापयुतेऽशुभः ।
व्ययस्वगैः शुभैः पापैः क्रमाद्योगौ शुभाशुभौ ।।1।।
शुभयोगे भवेद् वाग्मी रूपशीलगुणान्वितः ।
पापयोगोद्भवः कामी पापकर्मा परार्थयुक् ।।2।।

यदि लग्न में कोई शुभ ग्रह हो अथवा लग्न के 2.12 भावों में दोनों ओर शुभ ग्रह हों तो 'शुभ' योग होता है।

यदि लग्न में पाप ग्रह या लग्न से 2.12 में पाप ग्रह हों तो 'अशुभ योग' है। शुभ योग में उत्पन्न जातक रूप, शील, गुण, वाणी आदि से युक्त सुखी व अशुभ योग में कामुक, पापकर्म करने वाला, दूसरों की समृद्धि को ताकते रहने वाला होता है।

वराह ने शुभ योगों के सन्दर्भ में (i) वर्गोत्तम लग्न या चन्द्र (ii) सूर्य से द्वितीय में कोई शुभ ग्रह (iii) केन्द्र में ग्रह होना (iv) कारकाख्य ग्रह रहना भी सम्मिलित किया है।

हमारे विचारणीय क्रमिक उदाहरण में वर्गोत्तम नवांश है। सूर्य से 2 में शुभग्रह शुक्र है। लग्न से 2.12 में एक साथ गुरु व चन्द्र हैं, केन्द्र में सूर्य बुध हैं तथा कारकाख्य योग पीछे दिखा ही चुके हैं। अतः नाभस् योग न रहने पर भी शुभ योग होने से जातक विद्या, ज्ञान, धन, सुख, पुत्रादि से युक्त होगा।

गजकेसरी योग :–

केन्द्रस्थिते देवगुरौ शशांकाद् योगस्तदाहुर्गजकेसरीति।
दृष्टे सितार्येन्दुसुते शशांके नीचास्तहीनैर्गजकेसरीति।। 3।।
गजकेसरिसंजातस्तेजस्वी धनवान् भवेत्।
मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो भवेत्।। 4।।

(i) चन्द्रमा से 1. 4. 7. 10 भावों में गुरु हो तो यह गजकेसरी योग है, ऐसा प्रायः सभी लोगों ने माना है।

(ii) चन्द्रमा से केन्द्र में बुध, या शुक्र स्थित हों, चन्द्र दृष्टि रखे, या योग करे, यह भी गजकेसरी योग है। चन्द्रमा एवं योगकारक ग्रह नीचास्त शत्रु क्षेत्री न हो यह शर्त दोनों में है।

गजकेसरी योग में जातक तेजस्वी, धनी, मेधावी, राजसहयोग पाने वाला, राज का प्रिय कार्य करने वाला, दबंग, सभाचतुर आदि होता है।

ये दोनों श्लोक जातक पारिजात में भी आए हैं। जातक पारिजात में प्राचीन ग्रन्थों के बहुत से श्लोक यथावत् आ गए हैं। अन्यत्र ग्रन्थों में लिखा है कि गजकेसरी योगोत्पन्न जातक महान् कार्य करने वाला, सभा में कुशलतापूर्वक बोलने वाला, सिंह की तरह सबको परास्त कर देने वाला होता है।

अमला योग :–

लग्नाद्वा चन्द्रलग्नाद्वा दशमेशुभसंयुते।
योगोऽयममला नाम कीर्तिराचन्द्रतारकी।।5।।
राजपूज्यो महाभोगी दाता बन्धुजनप्रियः।
परोपकारी धर्मात्मा गुणाढ्योऽमलकीर्तिजः।। 6।।

लग्न या चन्द्रमा से दशम भाव में बलवान् शुभ ग्रह हों तो यह अमला योग या 'अमल कीर्ति योग' होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति का नाम चाँद–सितारों के रहने तक पृथ्वी पर रहता है।

वह राजपूज्य, महाभोगी, दानी, बन्धुओं व लोगों में प्रिय, परोपकारी, धर्मात्मा, गुणी होता है।

गजकेसरी योग के पूर्वोक्त दोनों भेदों में इसका ग्रहण होने पर भी पृथक् कहने का प्रयोजन यह है कि चन्द्र से दशम में बनने वाला गजकेसरी योग कदाचित् विशिष्ट व दुगुने प्रभाव वाला होगा। शुभ ग्रहों में भावानुसार पूर्वोक्त कारक ग्रहों (लघुपाराशरी अध्याय) को भी सम्मिलित समझना चाहिए। ये दोनों अमला योग प्रतिवादक श्लोक वैद्यनाथ ने यथावत् संगृहीत किए हैं। यह योग चन्द्रमा से दशमस्थ शुभ ग्रह या सद्ग्रह होने से बनने पर मुख्य होता है, ऐसा हमारा मन्तव्य है। जातकपारिजात, जातकादेश मार्ग आदि दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में पराशरोक्त यह योग इस प्रकार बताया गया है।

यस्य जन्म समये शशिलग्नात् सद्ग्रहो यदि च कर्मणि संस्थः।
तस्य कीर्तिरमला भुवि तिष्ठेद् आयुषोऽन्तमविनाशित सम्पत्।।

चन्द्रमा10 में शुभफलदायक ग्रह हो तो जातक की अमल कीर्ति व आजीवन स्थायी सम्पत्ति होती है।

पर्वत योग :–

सौम्येषु केन्द्र गृहगेषु सपत्नरन्ध्रौ
शुद्धेऽथवा शुभयुते यदि पर्वतः स्यात्।
लग्नान्त्यपौ यदि परस्परकेन्द्रयातौ
मित्रेक्षितौ भवति पर्वत नामयोगः।। 7।।
भाग्यवान् पर्वतोत्पन्नः वाग्मी दाता च शास्त्रवित्।
हास्यप्रियो यशस्वी च तेजस्वी पुरनायकः।। 8।।

(i) सभी शुभ ग्रह केन्द्र में किसी भी प्रकार से स्थित हों तथा 6.8 भावों में कोई ग्रह न हो अथवा ग्रह हों तो वे शुभ ही हों, ऐसी स्थिति में पर्वत योग है।

(ii) लग्नेश व द्वादशेश परस्पर केन्द्र में हों तथा मित्रग्रहों से देखे जाएँ तो भी पर्वत योग है।

इस योग में उत्पन्न व्यक्ति भाग्यवान्, वाक्कुशल, दाता, विद्वान्, हास्यप्रिय यशस्वी, तेजस्वी व बस्ती, जनपद, जिला या क्षेत्र का नायक होता है।

यवनेश्वर ने प्रथम भेद को ही 'पर्वत योग' कहा है। जातकादेशमार्ग में 8.12 भावों को शुद्ध एवं शेष को यथावत् 'पर्वत' कहा है। लेकिन जातका–देशानुसार नवम भाव में कोई न कोई ग्रह अवश्य हो। अस्तु, सारे शुभ ग्रह केन्द्र में आ गए तब 6.8 या 8.12 में शुभ कहाँ से आएँगे ? अतः शुभ का अर्थ शुभ फलप्रद ग्रह है। अतः यवनेश्वर ने केन्द्र में प्रशस्त ग्रह हों ऐसा

कहा है। फलदीपिका में एक अन्य स्थिति में पर्वत योग कहा है तथा फल भी अलग है। तदनुसार लग्नेश का राशीश यदि अपने उच्चादि में हो या केन्द्र त्रिकोण में बली हो तो 'पर्वत योग' है। ऐसा जातक स्थिर विचार, बुद्धि व कार्य वाला होता है। एवं बली योग कारक होने से राजा होता है।

काहल योग :–

अन्योन्यकेन्द्रगृहगौगुरुबन्धुनाथौ

लग्नाधिपे बलयुते यदि काहलः स्यात्।

कर्मेश्वरेण सहिते तु विलोकिते वा

स्वोच्चस्वके सुखपतौ यदि तादृशः स्यात्।। 9।।

ओजस्वी साहसी मूर्खश्चतुरंग बलान्वितः।

यत् किंचिद्ग्रामनाथस्तु जातः स्यात् काहले नरः।। 10।।

यदि गुरु व चतुर्थेश परस्पर केन्द्र में हों और लग्नेश बली हो तो 'काहल योग' है। अथवा चतुर्थेश स्वोच्च या स्वक्षेत्री हो तथा दशमेश से युक्त या दृष्ट हो तो भी काहल योग है।

इस योग में जातक ओजस्वी, साहसी, मूर्ख, चतुरंग बल अर्थात् सम्पूर्ण सेना से युक्त, कुछ ग्रामों का या साधारण ग्रामों (क्षेत्राधिपति) का अधिपति होता है।

हमारे विचार से 'मूर्ख' यह फल समुचित नहीं है। यहाँ अवश्य ही कोई पाठ भेद है। काहल योग के सारे फलों में यही बात बेमेल है। फलदीपिका इस योग में मनुष्य को आर्य व सुमति बताती है। जातकादेश में इस योग का लक्षण यही है तथा फल में 'विद्याविनयसम्पन्न, जितेन्द्रिय, महाभोगी' होना कहा है। अतः मूर्ख के स्थान पर धूर्त (चालाक) कुशल या दक्ष कहें या कूट कहें तो कुछ संगत है। हमें 'दक्ष' शब्द अधिक उपयुक्त लगता है।

हमारे क्रमिक उदाहरण में गुरु व चतुर्थेश शुक्र परस्पर 1.7 में हैं तथा लग्नेश चन्द्र पूर्वसाधित षड्बलानुसार सुबली है। अतः योग बनता है। अपि च मित्रक्षेत्री व वर्गोत्तमी चतुर्थेश शुक्र, दशमेश मंगल से पूर्ण दृष्ट भी है, अतः दूसरी तरह से यह योग बना।

चामर योग :–

लग्नेशे तुङ्गगे केन्द्रे गुरुदृष्टे तु चामरः।

शुभद्वये विलग्ने वा नवमे दशमे मदे।। 11।।

राजा वा राजपूज्यो वा विद्वान् वाग्मी च पण्डितः ।
चिरजीवी कलाभिज्ञः योगे चामरके जनः ।। 12 ।।

(i) लग्नेश उच्चगत होकर केन्द्र में हो तथा गुरु से दृष्ट हो ।

(ii) अथवा 1. 7. 9 में कहीं भी दो शुभ ग्रह एक साथ हों तथा शेष इन्हीं भावों में भी शुभ ग्रह हों तो इन दोनों स्थितियों में 'चामर योग' होता है

चामर योग में मनुष्य राजा या राजपूज्य, विद्वान्, वाक्कुशल, पण्डित, कलाविद्, चिरजीवी होता है ।

मालिका योग :–

सप्तराशिगतैः खेटैर्लग्नात्सप्तग्रहैरपि ।
योगोऽयं मालिका नाम प्रोक्तो विप्र ! पुरातनैः ।। 13 ।।
धनादिभावगैरेवंधनविक्रममालिके ।
एवं रसातलाद् बन्धु–माला मन्त्राच्च मन्त्रिणी ।। 14 ।।
षष्ठभादिन्द्रमाला स्यात् सप्तमात् काममालिका ।
रन्ध्रान्निधनमालाख्या नवमाच्छुभमालिका ।। 15 ।।
दशमात्कीर्तिमाला स्याल्लाभांच्वेद् विजयाभिधा ।
रिःफात्पतनमाला स्यात् फलं वक्ष्ये पृथक् पृथक् ।। 16 ।।

लग्न से लगातार सात भावों में सब सातों ग्रह (राहु–केतु नहीं) हों तो 'मालिका योग' प्राचीनों ने कहा है ।

इसी तरह द्वितीय से शुरू होने पर 'धनमाला' तृतीय से विक्रममाला, चतुर्थ से बन्धुमाला, पंचम से मन्त्रीमाला, षष्ठ से इन्द्रमाला, सप्तम से काममाला, अष्टम से निधनमाला, नवम से शुभमाला, दशम से कीर्तिमाला, एकादश से विजयमाला व द्वादश से 'पतनमाला होती है । इनका अब अलग–अलग फल कहता हूँ ।

इन ग्रहों में कोई ग्रह अस्त या नीचगत न हो तो विशेष शुभ है । 6. 8. 12 से शुरू होने वाली मालिकाओं के अतिरिक्त शेष सब मालाएँ अच्छी ही हैं ।

मालिकायां नरो राजा बहुवाहन नायकः ।
धनमालोनिधिपतिःपितृभक्तोऽग्ररूपवान् ।।17 ।।
विक्रमाद्भूमिपालः स्याद् शूरो रोगी धनान्वितः ।
सुखान्नरो दानपरः बहुदेशचरः सुखी ।। 18 ।।

पुत्रान् नरपतिर्यज्वा कीर्तिभागथवा नरः ।
ततः क्वचिद्धनसुखी क्वचिद्दीनस्ततः परम् । । 19 । ।
कामे कान्तः धनी भूपो गुणी स्त्रीवल्लभस्तथा ।
निधने दीर्घजीवी स्यान्निर्धनो वनिता जितः । । 20 । ।
धर्मादि ग्रहमालायां यज्वा गुणनिधिर्विभुः ।
कर्माद्यायां तु कर्मज्ञः सज्जनो जनपूजितः । । 21 । ।
लाभात्सर्वक्रियादक्षःप्रशस्तस्त्रीपतिर्नरः ।
व्ययाद् बहुव्ययो जातस्तथा सर्वत्र पूजितः । । 22 । ।

माला योग में मनुष्य राजा या अनेक वाहनों का स्वामी; धनमाला में धनी, पितृभक्त व सुन्दर; विक्रममाला में राजा, शूर, धनी किन्तु रोगी ; माला में दानी, अनेक देशों में घूमने वाला सुखी; मन्त्रमाला में राजा, यज्ञकर्ता, कीर्तिमान्; षष्ठमाला में इन्द्र अर्थात् वर्षावृत्ति, कहीं धन कहीं दीनता । काम माला में सुन्दर, धनी, राजा, गुणी न स्त्रियों का प्रिय; निधनमाला में दीर्घजीवी निर्धन और स्त्री से पराजित; शुभमाला में यज्ञकर्त्ता, गुणों की खान, समर्थ; कर्ममाला में कर्मकुशल, सज्जन, जनपूजित; लाभमाला (विजय माला) में सब कार्यों में दक्ष, श्रेष्ठ प्रशस्त स्त्री का पति; पतनमाला में अधिक व्यय करने वाला सर्वत्र मान्य होता है ।

शंख योग :–

सबले लग्नपे पुत्रषष्ठपौ केन्द्रगौ मिथः ।
शंखो वा लग्नकर्मेशौ चरे बलिनि भाग्यपे । । 23 । ।
धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तौ दयालुः पुण्यवान् बुधः ।
चिरजीवी च भोगी च शंखयोगे भवेन्नरः । । 24 । ।

(i) यदि 5. 6 भावों के स्वामी परस्पर केन्द्र में हों तथा लग्नेश बलवान् हो तो शंख योग है । (ii) अथवा 1. 10 भावेश चर राशियों में हों व नवमेश बलवान् हो तो भी शंखयोग है ।

इस योग में मनुष्य धनयुक्त, पुत्र व स्त्री युक्त, दयालु, पुण्यवान्, बुद्धिमान्, विद्वान्, चिरजीवी, भोगी अर्थात् भौतिक समृद्धियुक्त होता है ।

क्रमिक उदाहरण में पंचमेश मंगल व षष्ठेश गुरु परस्पर 4.10 में हैं तथा लग्नेश चन्द्रमा सुबली है । अतः शंख योग घटित हो रहा है ।

सबले कर्मपे भेरी खगैः स्वान्त्योदयास्तगैः ।
सबले भाग्यपे वापि गुरोः केन्द्रे सितेऽङ्गपे । । 25 । ।

दीर्घायुषो विगतरोगभया नरेन्द्रा बह्वर्थभूमिसुतदारयुताः प्रसिद्धाः ।
आचारभूरिसुखशौर्यमहानुभावा भेरीप्रजातमनुजा निपुणाः कुलीनाः ।। 26 ।।

(i) दशमेश बलवान् हो तथा सभी ग्रह या अधिकांश 1. 2. 12. 7 भावों में हों ।

(ii) अथवा नवमेश बली हो तथा लग्नेश व शुक्र इन दोनों की गुरु से केन्द्र में स्थिति हो । ये दोनों ही भेरी योग हैं ।

इसमें दीर्घायु, नीरोग, निर्भय, नृप, बहुत स्त्री, धन सम्पत्ति से युक्त, प्रसिद्ध, आचारवान्, सुखी, शूरवीर, अच्छे विचार वाले, निपुण व कुलीन मनुष्यों का जन्म होता है ।

मृदंग योग :–

उच्च ग्रहांशकपतौ यदि केन्द्र कोणे, तुंगस्वकीयभवनोपगते बलाढ्ये ।
लग्नाधिपे बलयुते मृदंगयोगः कल्याणरूपनृपतुल्ययशःप्रदः स्यात् ।। 27 ।।

जो ग्रह उच्चस्थ हो, उसका नवांशेश यदि केन्द्र त्रिकोण में बलवान् होकर उच्चगत या स्वक्षेत्री हो और लग्नेश बलवान् हो तो 'मृदंग योग' है । इसमें कल्याण, रूप, व यश सब राजा के तुल्य होता है ।

श्रीनाथ योग :–

कामेशे कर्मगे तुंगे कर्मेशे भाग्यपान्विते ।
योगः श्रीनाथ संज्ञोऽसौ जातः शक्रसमोनृपः ।। 28 ।।

सप्तमेश दशम में हो तथा 9.10 भावेश एक साथ हों तथा दशमेश अथवा सप्तमेश उच्चगत भी हों तो श्रीनाथ योग है । इस योग में मनुष्य इन्द्र के समान राजा होता है । हमारे विचार से 'तुंग' शब्द का अन्वय कामेश व कर्मेश दोनों से है । अतः इसके दो रूप बनेंगे । (i) सप्तमेश दशम में हो तथा 9.10 भावेश साथ हों और दशमेश उच्च में हो । अथवा (ii) सप्तमेश दशम में उच्चस्थ हो और 9.10 भावेश साथ हों ।

शारदा योग :–

योगः शारदसंज्ञकः सुतगते कर्माधिपे चन्द्रजे,
केन्द्रस्थे दिननायके निजगृहप्राप्तेऽतिवीर्यान्विते ।
चक्रात् कोणगते पुरन्दरगुरौ सौम्ये त्रिकोणे कुजे ।
लाभे वा यदि देवमन्त्रिणि बुधात्तच्छारदासंज्ञकः ।। 29 ।।
धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तः कान्तो विद्वान् गुणी गुरौ ।
देवद्विजादिकेभक्तः तपोयुक्तश्च धार्मिकः ।। 30 ।।

(i) दशमेश पंचम में हो, बुध केन्द्र में हो तथा सूर्य अपनी राशि में हो या बलवान् हो तो 'शारदा योग' है।

(ii) अथवा चन्द्रमा से त्रिकोण में बृहस्पति, शुभ ग्रह त्रिकोण में, मंगल एकादश में तथा बुध से एकादश में गुरु हो तब भी 'शारदा योग' है।

प्रथम योग का सर्वोत्तम उदाहरण मीन लग्न में हो सकता है। उसमें दशमेश गुरु, पंचम में कर्क में होगा। सप्तम में कन्या का बुध व षष्ठ में सिंहस्थ सूर्य रहेगा। हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में पंचम में दशमेश मंगल है। बुध सप्तम में है तथा सूर्य उच्च नवांश में है। अतः साधारणतया यह योग है।

इस योग में मनुष्य धनी, स्त्री पुत्र से युक्त, सुन्दर, विद्वान्, गुणी, गुरु देवद्विज का भक्त, तपस्वी व धार्मिक होता है। पुनश्च सभी योगों में योगकर्ता ग्रहों के बलाबल से स्वयं भी ऊहापोह करनी आवश्यक है।

मत्स्य योग :–

लग्नधर्मगते सौम्ये (पापे) पंचमे सदसद्युते।
चतुरस्रगते पापे योगोऽयं मत्स्यसंज्ञकः।। 31।।
कालज्ञः करुणासिन्धुर्गुणधीबल रूपवान्।
यशोविद्यातपस्वी च मत्स्ययोग समुद्भवः।। 32।।

(i) 1 या 9 भाव में शुभ ग्रह हों (मतान्तर व पाठान्तर से केवल पाप ही हों) पंचम में शुभ व अशुभ ग्रह हों तथा शेष पाप ग्रह 4.8 में हों तो 'मत्स्य योग' है। इसमें उत्पन्न व्यक्ति समय या काल को जानने वाला (ज्योतिषी), दयालु, गुणी, बुद्धिमान्, बलवान्, रूपवान्, यशस्वी, विद्वान्, तपस्वी होता है।

कूर्म योग :–

पुत्रारिमदने सौम्याः स्वोच्चर्क्षांशादिगाः खलाः।
त्रिलाभोदयगाः स्वोच्चभांशगाः कच्छपो मतः।। 33।।
विख्यातकीर्तिर्भुवि राज्यभोगी धर्माधिकः सत्त्वगुणप्रधानः।
धीरः सुखी वागुपकारकर्ता कूर्मोद्भवो मानव नायको वा।। 34।।

5. 6. 7 भावों में शुभ ग्रह तथा 1. 3. 11 में पाप ग्रह हों तथा वे अपने उच्च, मूल त्रिकोण, स्वराशि, मित्रराशि में या इनके नवांश में हों तो 'कूर्म योग' है। इसमें व्यक्ति विख्यात, कीर्तिमान्, राज्य भोगने वाला, धार्मिक, सत्त्वगुणी, धीर, सुखी, परोपकारी, जननेता होता है।

खड्ग योग :–

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे ।
लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे खड्गयोग इतीरितः ।। 35 ।।
वेदार्थशास्त्रनिखिलागमतत्त्वयुक्ति–
बुद्धिप्रतापबलवीर्यसुखानुरक्ताः ।
निर्मत्सराश्च निजवीर्य महानुभावाः
खड्गे भवन्ति पुरुषाः कुशलाः कृतज्ञाः ।। 36 ।।

यदि नवमेश धनभाव में व धनेश नवम में हो तथा लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो 'खड्ग योग' होता है।

इस योग में व्यक्ति वेदार्थ जानने वाले, शास्त्रज्ञ, विशिष्ट विद्वान्, बुद्धिमान्, प्रतापी, बली, सुखी, ईर्ष्यारहित, अपने परिश्रम से बड़प्पन पाने वाले, कुशल व किए गए अहसान को मानते हैं।

लक्ष्मी योग :–

केन्द्रे मूल त्रिकोणस्थे भाग्येशे परमोच्चगे ।
लग्नाधिपे बलाढ्ये च लक्ष्मीयोग इतीरितः ।। 37 ।।
सुरूपो गुणवान् भूपो बहुपुत्रधनान्वितः ।
यशस्वी धर्मसम्पन्नो लक्ष्मी योगे जनो भवेत् ।। 38 ।।

भाग्येश यदि केन्द्र में या त्रिकोण में अपने परमोच्च में हो तथा लग्नेश बलवान् हो तो लक्ष्मी योग है। अथवा भाग्येश केन्द्र में मूलत्रिकोणी व लग्नेश षड्वर्ती अपने परामोच्च में हो तब भी लक्ष्मी योग है।

इस योग में जातक सुन्दर, गुणी, राजा, बहु पुत्र व धन वाला, यशस्वी, धार्मिक, होता है।

कुसुम योग :–

स्थिर लग्ने भृगौ केन्द्रे त्रिकोणेन्दौ शुभेतरे ।
मानस्थानगते सौरे योगोऽयं कुसुमो भवेत् ।। 39 ।।
दाता नरेश वन्द्यश्च भोगी विद्वान् सुखी जनः ।
लोके महाकीर्तियुतः मुख्यः कुसुमसम्भवः ।। 40 ।।

लग्न में 2.5.8.11 राशि हो, केन्द्र में शुक्र, त्रिकोण में अशुभ ग्रह व चन्द्रमा, दशम स्थान में (पापग्रह या) शनि हो तो 'कुसुम योग' है।

इस योग में मनुष्य दानी, राजाओं का वन्दनीय, भोगी, विद्वान्, सुखी, अति कीर्तियुक्त, मुख्य होता है।

पारिजात योग :–

विलग्ननाथस्थितराशिनाथ स्थानेश्वरो वापि तदंशनाथः ।
केन्द्रत्रिकोणोपगतो यदि स्यात्स्वतुंगगो वा यदि पारिजातः ।। 41 ।।

(i) लग्नेश या लग्नेशाधिष्ठित राशीश जिस राशि में हो उसका स्वामी अर्थात् लग्नेशाधिष्ठित् राशीश (ii) वह लग्नेशाधिष्ठित राशीश जिस राशि में हो उसका स्वामी, अथवा इन सबके नवांशनाथ केन्द्र त्रिकोण में या उच्चगत हों तो 'पारिजात योग' होता है। इसे ही 'कल्पद्रुम योग' भी कहते हैं।

हमारे उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा मिथुन में है। अतः मिथुन का स्वामी बुध, मकरस्थ बुध का राशीश शनि है। ये दोनों ही केन्द्र त्रिकोण में हैं। शनि, बुध के नवांश में है। अतः नवांशेश भी केन्द्र में है। बुध शुक्र के नवांश में है जो केन्द्र योग में नहीं है। अतः राशि से सम्पूर्ण व नवांश से आंशिक योग है। यदि लग्नेश भी केन्द्र त्रिकोण में होता तथा चन्द्र, बुध, शनि अच्छी उच्चादि राशियों में होते तो यह श्रेष्ठ योग शत–प्रतिशत बनता।

युद्धप्रियो नृपवन्द्यो दयालुर्धर्मकर्मवित् ।
वाजियुक्तश्च मध्यान्तात्परं सौख्यं नृपोऽपि वा ।। 42 ।।

पारिजात योग में मनुष्य आक्रामक स्वभाव, राजपूज्य, दयालु, धर्म कर्म जानने वाला, वाहनों से युक्त, मध्यायु (प्रौढ़ावस्था के बाद) सुखी या राजा होता है।

कलानिधि योग :–

द्वितीये पंचमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते ।
क्षेत्रे तयोर्वा सम्प्राप्ते योगः स्यात्स कलानिधिः ।। 43 ।।
कलानिधिसमुत्पन्नो गुणी भोगी सुखी धनी ।
नृपवन्द्यश्च नीरोगो बलविद्यासमन्वितः ।। 44 ।।

यदि 2.5 भाव में स्थित गुरु को बुध शुक्र देखें या योग करें तो कलानिधि योग है। अथवा गुरु 2. 3. 6. 7 राशियों में हो तथा बुध शुक्र से दृष्ट हो तो भी कलानिधि योग है।

इस योग में जातक गुणी, भोगी, सुखी, धनी राजमान्य, नीरोग, बलवान् व विद्यावान् होता है।

हमारे क्रमिक उदाहरण में द्वितीयस्थ गुरु को शुक्र पूर्ण दृष्टि से व बुध त्रिपाद दृष्टि से देखता है। अतः योग का प्रभाव अवश्य रहेगा।

अंशावतार योग :–

केन्द्रगौ सितदेवेज्यौ स्वोच्चे केन्द्रगतेऽर्कजे ।

चरलग्ने यदा जन्म योगोऽयमवतारजः ।। 45 ।।

कालकर्ता जितात्मा च तीर्थकृत् कीर्तिसंयुतः ।

पुण्यश्लोकः कलाभिज्ञः श्रीधरोऽंशावतारजः ।। 46 ।।

गुरु व शुक्र केन्द्र में हों, शनि केन्द्र में अपनी उच्च राशि में हो, 1. 4. 7. 10 लग्न में जन्म हो तो 'अंशावतार योग' है ।

इस योग में जातक समय या काल का नियामक (युगप्रवर्तक) जितेन्द्रिय, शास्त्रकार, विशिष्ट आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न, प्रसिद्ध, पुण्यकीर्ति वाला, कलाविद्, लक्ष्मीपति होता है ।

हरिहर ब्रह्म योग :–

धनेशात्स्वान्त्यरन्ध्रस्थे शुभैर्हरिरितीरितः ।

कामेशाद् बन्धुधर्माष्टस्थितैः सौम्यैर्हराभिधः ।। 47 ।।

लग्नेशाद्बन्धुकर्मायस्थितैर्ब्रह्माख्यकःस्मृतः ।

एषु जातः सुखी विद्वान् धनपुत्रादि संयुतः ।। 48 ।।

वेदान्तज्ञः सूपकारी शत्रुहन्ता सुकर्मकृत् ।। 49 ।।

(i) द्वितीयेश से 2. 12. 8 में शुभ ग्रह हों तो 'हरियोग' है । (ii) सप्तमेश से 4. 9. 8 में शुभ ग्रह (विशेषतया गुरु, चन्द्र, बुध) हों तो 'हरयोग' है । (iii) लग्नेश से 4. 10. 11 में शुभ ग्रह हों (विशेषतया सूर्य, शुक्र, मंगल) तो 'ब्रह्मायोग' है । इन सब योगों में मनुष्य, सुखी, विद्वान्, धन पुत्र से युक्त, वेदान्तविद्, उपकारी, शत्रुहन्ता व सत्कर्म करने वाला होता है ।

अधियोग :–

षट्सप्ताष्टगैः सौम्यैर्लग्नाच्चन्द्राच्च संस्थितैः ।

पापदृग्योगहीनैश्च सुखे शुद्धेऽधियोगवान् ।। 50 ।।

चन्द्र से 6. 7. 8 में बुध, गुरु, शुक्र हों तथा पाप दृष्टि योग से रहित हों तो 'चन्द्राधियोग' तथा लग्न से 6. 7. 8 में शुभ ग्रह हों तथा पापदृग्योग रहित हों तो 'लग्नाधियोग' होता है । लग्नाधियोग में चतुर्थ स्थान में कोई पाप ग्रह नहीं होना चाहिए ।

शास्त्रकृद् विबुधो वित्तविद्यागुणयशोऽधिकः ।

बलाधिकारी मुख्यश्च जातो लग्नाधियोगके ।। 51 ।।

चन्द्रादथाधियोगे तु राजामन्त्री चमूपतिः ।

बलक्रमाद्भवेज्जातः सर्वसम्पद्युतः सुखी ।। 52 ।।

लग्नाधि योग में शास्त्रकार, विद्वान्, धन, विद्या, गुण, यश में अग्रगण्य, बलाधिकारी (सेनापति या समर्थ) मुख्य होता है ।

चन्द्राधियोग में बलक्रम से राजा, मन्त्री या सेनापति होता है । साथ ही सब सुख–सम्पत्ति का निधान व सुखी भी होता है ।

लग्नेश का पारिजातादि फल :–

लग्नपे पारिजातस्थे सुखी वर्गोत्तमेऽप्यरुक् ।

गोपुरे धनधान्याढ्यो भूपः सिंहासने स्थिते ।। 53 ।।

पारावतके विद्वान् देवलोके सवाहनः ।

ऐरावतस्थिते जातो विख्यातो भूपवन्दितः ।। 54 ।।

यदि लग्नेश पारिजात वर्ग में हो तो सुखी, लग्नेश वर्गोत्तमी हो तो नीरोग, गोपुरांश में धनधान्य से सम्पन्न, सिंहासनांश में राजा, पारावतांश में विद्वान्, देवलोक में बहुत वाहनों वाला, ऐरावतांश में विख्यात राजा या राजवन्द्य होता है ।

सभी योगों में मूल बात लग्न व चन्द्रमा का बल व स्थिति है । इन सबकी या कम से कम इनमें से एक की बलवत्ता रहने पर ही योग विशेष फलीभूत होगा । पुनश्च योगकारक ग्रह के बलाबल का भी विचार अवश्य करना चाहिए । कल्पना कीजिए, गजकेसरी योग का मूल चन्द्रमा से केन्द्र में गुरु की स्थिति है । कर्क लग्न में चन्द्रमा व सप्तम में केन्द्रगत किन्तु नीचस्थ गुरु होने पर भी उक्त योग है । पुनश्च वृश्चिक राशि में चन्द्रमा, सिंह, कुम्भ, वृष, में बृहस्पति हो तब भी, वृषगत चन्द्रमा में सिंहगत गुरु हो, अथवा कर्क में गुरु व मेष में चन्द्र होने पर भी उक्त योग है । क्या सब में ही व्यक्ति राजा या तत्सदृश होगा ? अतः ग्रहों की राशि भाव स्थिति व अन्यथा बलाबल का विचार करके उक्त योगफलों में तारतम्य, न्यूनाधिक्य अपनी ऊहापोह शक्ति से अवश्य करना है । इसी कारण ज्योतिषी का ऊहापोह कुशल होना, पराशर ने आवश्यक गुण कहा है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
विविधयोगाध्यायश्चतुस्त्रिंशत्तमः ।।34 ।।

।।अथ रविचन्द्रयोगाध्यायः ।।

सहस्ररश्मितश्चन्द्रेकण्टकादिगतेक्रमात् ।

धनधीनैपुणादीनि न्यूनमध्योत्तमानि हि ।।1।।

यदि सूर्य से केन्द्र में चन्द्रमा हो तो मनुष्य का धन, बुद्धि, चातुर्य, कुशलता आदि कम, पणफर में हो तो मध्यम व आपोक्लिम में हो तो श्रेष्ठ होते हैं।

चन्द्रकृत शुभाशुभ योग :–

स्वांशे वा स्वाधिमित्रांशे स्थितश्च दिवसे शशी ।

गुरुणा दृश्यते तत्र जातो धनसुखान्वितः ।।2।।

स्वांशे वा स्वाधिमित्रांशे स्थितश्च शशभृन् निशि ।

शुक्रेण दृश्यते तत्र जातो धनसुखान्वितः ।।3।।

एतद्विपर्ययस्थेतुशुक्रेज्यानवलोकिते ।

जायतेऽल्पधनो बालो योगेऽस्मिन् निर्धनोऽथवा ।।4।।

यदि चन्द्रमा अपने या अपने अधिमित्र के नवांश में हो तथा दिन में जन्म होने पर उसे गुरु देखे अथवा रात में जन्म होने पर शुक्र देखे तो मनुष्य धन व सुख से युक्त होता है।

यदि चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवांश में न हो तथा शुभ ग्रह से दृष्ट भी न हो तो जातक कम धनी या निर्धन होता है।

हमारे क्रमिक उदाहरण में चन्द्रमा सूर्य से षष्ठ में आपोक्लिमगत है, अतः विद्या, धन व बुद्धि अच्छी होगी।

चन्द्राद् वृद्धिगतैः सर्वैः शुभैर्जातो महाधनी ।

द्वाभ्यां मध्यधनोजात एकेनाल्पधनो भवेत् ।।5।।

चन्द्रमा से उपचय (3. 6. 10. 11) में सब शुभ ग्रह हों तो जातक बहुत धनी, दो हों तो मध्यम धनी व एक हो तो साधारण धनी होता है।

हमारे उदाहरण में चन्द्र से तृतीय में बृहस्पति है, शेष उपचयों में शुभ ग्रह नहीं हैं। अतः इस दृष्टि से जातक साधारण धनी (निर्धन नहीं) होगा।

चन्द्राधियोगः–

चन्द्राद्रन्ध्रारिकामस्थैःसौम्यैःस्यादधियोगकः ।

तत्र राजा च मन्त्री च सेनानीश्च बलक्रमात् ।। 6 ।।

चन्द्रमा से 6. 7. 8 भावों में किसी प्रकार से सारे शुभ ग्रह हों तो 'अधियोग' होता है । इसमें शुभ ग्रहों के बलाबल से राजा, मन्त्री, सेनापति तथा सर्वत्र सुखी सम्पन्न होता है ।

सुनफा नफादि योग –

चन्द्रात् स्वान्त्योभयस्थे हि ग्रहे सूर्य विना क्रमात् ।

सुनफाख्योऽनफाख्यश्च योगो दुरुधराह्वयः ।। 7 ।।

चन्द्रमा से द्वितीय में सूर्य रहित कोई ग्रह हो तो सुनफा, द्वादश में ग्रह हो तो अनफा व दोनों ओर ग्रह हों तो 'दुरुधरायोग' होते हैं ।

राजा वा राजतुल्यो वा धीधनख्यातिमांजनः ।

स्वभुजार्जितवित्तश्च सुनफायोगसम्भवः ।। 8 ।।

भूपोऽगदशरीरश्च शीलवान् ख्यातिमान् विभुः ।

सुरूपश्चानफाजातो सुखैः सर्वैः समन्वितः ।। 9 ।।

उत्पन्न सुखभुग्दाता धनवाहनसंयुतः ।

सद्भृत्यो जायते नूनं जनो दुरुधराभवः ।। 10 ।।

सुनफा योग में राजा या राजतुल्य, बुद्धि, धन, कीर्ति से युक्त, अपने पराक्रम से धन कमाने वाला होता है ।

अनफा योग में राजा, नीरोग, चरित्रवान्, कीर्तिमान्, समर्थ, सुन्दर व सब सुखों से युक्त होता है ।

दुरुधरा योग में मनुष्य सब प्राप्त सुखों को भोगने वाला, धन–वाहनयुक्त, दाता, अच्छे सेवकों वाला होता है ।

केमद्रुम योग :–

चन्द्राद्यधनान्त्यस्थो विना भानुं न चेद् ग्रहः ।

कश्चित् स्याद् वा बिना सूर्यं लग्नात् केन्द्रगतोऽथवा ।। 11 ।।

योगः केमद्रुमो नामो तत्र जातोऽतिगर्हितः ।

बुद्धि विद्याविहीनश्च दरिद्रापत्तिसंयुतः ।। 12 ।।

चन्द्रमा से 1. 2. 12 में या लग्न से केन्द्र में सूर्य के अतिरिक्त कोई ग्रह न हो तो 'केमद्रुम योग' अति निकृष्ट होता है । इसमें जातक विद्या-बुद्धि से रहित तथा दरिद्रता, विपत्तियों व दुःखों से पीड़ित होता है ।

चन्द्रयोगः सर्वप्रथम विचारणीय :–

अन्ययोगफलं हन्ति चन्द्रयोगो विशेषतः ।

स्वफलं प्रददातीति बुधो यत्नाद् विचिन्तयेत् ।। 13 ।।

ये शुभाशुभ चान्द्रयोग, अन्य योगों के फल का बाध करके, अपना फल देते हैं, अतः विद्वानों को चन्द्रयोगों का विशेषतया विचार करना चाहिए ।

अन्य प्रकार से अशुभ योग हो, लेकिन चन्द्रमा से अनफा सुनफादि शुभयोग हों तो शुभफल ही होता है तथा अन्यथा शुभ योग होते हुए भी चन्द्रमा की निर्बलता या केमद्रुम योग हो जाने से अशुभ फल ही होता है । अतः सभी योगों में चन्द्र, लग्न व सूर्य का बलाबल अवश्य देखें । विशेषतया लग्न से बनने वाले योगों में लग्न की, चान्द्र योगों में चन्द्र की तथा रवि योगों में सूर्य की तथा सब योगों में चन्द्रमा की बलवत्ता अवश्य विचारणीय है ।

वेशि वाशि उभयचरी योग :–

सूर्यात् स्वान्त्योभयस्थैश्च विनाचन्द्र कुजादिभिः ।

वेशिवाशिसमाख्यौ च तथोभयचरः क्रमात् ।। 14 ।।

सूर्य से द्वितीय में मंगलादि कोई ग्रह हो तो 'वेशियोग' । द्वादश में कोई ग्रह (चन्द्र रहित) हो तो 'वाशियोग' तथा दोनों ओर 2.12 में ग्रह हों तो 'उभयचरी योग' होता है ।

मन्ददृक् सत्यवाग्मर्त्यो दीर्घकायोऽलसस्तथा ।

सुखभागल्पवित्तोऽपि वेशियोग समुद्भवः ।। 15 ।।

वेशि योग होने पर जातक निर्बल दृष्टि, सत्यवादी या वचन फलीभूत होने वाला, भारी शरीर, आलसी, कम धन होने पर भी सुख भोगने वाला होता है ।

हमारे क्रमिक उदाहरण में सूर्य से द्वितीय में शुक्र होने से 'वेशियोग' है । अतः उक्त फल होगा, ऐसा कहना चाहिए ।

वाशौ च निपुणो दाता यशो विद्या बलान्वितः ।

तथोभयचरे जातो भूपो वा तत्समः सुखी ।। 16 ।।

सर्वसहः सुभद्रश्च नात्युच्चः स्थिर मानसः ।

शुभग्रह कृते योगे फलमेवं ततोऽन्यथा ।। 17 ।।

'वाशि योग' में निपुण, दानी, यशस्वी, विद्या व बल से युक्त होता है । उभयचरी योग में राजा या समानस्तरीय, अति सहनशील, भद्रपुरुष, मध्यम कद, स्थिर चित्त वाला होता है ।

शुभ ग्रह द्वारा योग बनने पर उक्त फल पूरा व सर्वशुभ तथा अशुभ ग्रह कृत योग से प्रायः विपरीत फल होता है। लेकिन यह सार्वत्रिक नियम नहीं है। चन्द्रयोग कारक ग्रह यदि स्वोच्च मूलत्रिकोण स्वक्षेत्र, वर्गोत्तम, अधिमित्र क्षेत्रादि में होंगे तो सदैव शुभ ही हैं। अतः शुभ ग्रह से तात्पर्य शुभ फलप्रद ग्रह से लेना चाहिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां रविचन्द्रयोगाध्यायः पंचत्रिंशत्तमः ।।35 ।।

36

।। अथ राजयोगाध्यायः ।।

पराशर उवाच–

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि राजयोगादिकं परम्।
ग्रहाणां स्थानभेदेन दृष्टियोगवशात् फलम्।। 1 ।।
.तपः स्थानाधिपो मन्त्री मन्त्राधीशो विशेषतः।
उभावन्योन्यसंदृष्टौ जातश्चेदिह राज्यभाक्।। 2 ।।
यत्र कुत्रापि संयुक्तौ तौ वापि समसप्तमौ।
राजवंशभवो बालो राजा भवति निश्चितम्।। 3 ।।
वाहनेशस्तथा माने मानेशो वाहने स्थितः।
बुद्धिधर्माधिपाधिपाभ्यां तु दृष्टश्चेदिह राज्यभाक्।। 4 ।।

पराशर बोले– अब मैं राजयोगों को कहता हूँ। ये राजयोग ग्रहों के पारस्परिक स्थान भेद (परिवर्तन आदि सम्बन्ध) दृष्टि व योग आदि पर आधारित हैं।

(i) तपः स्थानेश अर्थात् नवमेश व मन्त्रेश अर्थात् पंचमेश क्रमशः मन्त्री तथा विशेष मन्त्री हैं। दोनों एक दूसरे को देखते हों अर्थात् दोनों का परास्पर दृष्टि सम्बन्ध हो तो मनुष्य राज्य प्राप्त करता है। राज्य अर्थात् अधिकार, प्रभुता, सामर्थ्य इत्यादि। सदैव सिहांसन प्राप्ति ही इसका अर्थ नहीं है।

(ii) किसी भी स्थान में इन दोनों की एक साथ स्थिति हो या दोनों एक दूसरे से 6 राशि के अन्तर पर (षड्भान्तरित) अर्थात् समसप्तम हों। इस योग में राजकुल में उत्पन्न बालक राजा होता है। अन्य कुलोत्पन्न राजा या तत्सदृश अधिकार सम्पन्न होता है।

(iii) चतुर्थेश दशम में व दशमेश चतुर्थ में हो तथा पंचमेश या नवमेश से दृष्ट (या युक्त) हो तो मनुष्य राज्य प्राप्त करता है।

इन राजयोगों का आधार परस्पर सम्बन्ध है। विशेषतया केन्द्रश व त्रिकोणेशों का सम्बन्ध। पाराशर मत में सम्बन्ध का विशेष महत्त्व है।

चतुर्विध सम्बन्ध :–

प्रथमः स्थानसम्बन्धो दृष्टिजस्तु ततः परम्।

तृतीयस्त्वेकतो दृष्टिः तत एकत्रसुस्थितिः।। 5।।

अन्योन्यगौ तथा स्वे स्वे संयुतावन्यभे स्थितौ।

पूर्णेक्षितौ मिथो वापि चैकवर्गगतौ यदा।। 6।।

(i) स्थान सम्बन्ध, (ii) परस्पर दृष्टि सम्बन्ध (iii) एक दृष्टि सम्बन्ध (iv) एकत्र स्थिति। ये चार प्रकार के सम्बन्ध हैं।

ग्रह एक दूसरे की राशि में स्थित हों जैसे मेष में शुक्र व तुला में मंगल। दोनों ग्रह अपने अपने गृह में हों और दृष्टि रखें जैसे मेष में मंगल व तुला में शुक्र अथवा वृष में शुक्र, वृश्चिक में मंगल इत्यादि। अथवा किसी अन्य (विशेषतया मित्रादि) की राशि में हों तथा एक दूसरे को देखें। परस्पर पूर्ण दृष्टि हो अथवा दोनों ग्रह एक ही वर्ग (राशि नवांश) में गए हों तथा लग्न चक्र में अन्य विधि से भी सम्बन्धी हों। इत्यादि प्रकार से ग्रह सम्बन्ध समझें।

हमारे क्रमिक उदाहरण में सिंह में गुरु व कुम्भ में शुक्र है अतः दोनों एक दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, यह दृष्टि सम्बन्ध का उदाहरण है। मकर में सूर्य तथा वृश्चिक में शनि है। शनि अपनी राशि में स्थित सूर्य को पूर्ण दृष्टि से देखता है। यह तीसरा सम्बन्ध का उदाहरण है। सम्बन्ध कर्ता ग्रह यदि उच्चादि राशि में हों तो विशेष फलदायक होंगे। मकर में गुरु व कर्क में मंगल हो तब भी पूर्ण दृष्टि सम्बन्ध है तथा मकर में मंगल व कर्क में गुरु हो तब भी उक्त सम्बन्ध है। क्या दोनों का फल एक जैसा ही होगा ? निश्चित रूप से नहीं होगा। अतः सभी योगों में स्वबुद्धि का प्रयोग अवश्य करें। शास्त्रों में फलादेश आदर्श स्थिति के आधार पर कहा गया है, उसमें न्यूनाधिक्य अवश्य होता है।

राजयोग का निषेध :–

तदा योगो भवेत्तत्र विबलो नैव योऽसकृत्।

शत्रुयुक्तेक्षितौ पापवीक्षितौ नैव योगकृत्।। 7।।

व्ययमृत्युषड्स्थौ च द्वावेव समसंयुतौ।

राजामात्यादि योगानां वक्रगौ नाशकारकौ।। 8।।

यदि उक्त प्रकार से योगकारक ग्रह षड्बल से बहुत हीन हों अथवा कई शत्रु ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों या पापग्रह से भी दृष्ट युत हों अथवा उक्त सम्बन्ध 6. 8. 12 भावों में बनते हों अथवा योगकारक ग्रहों में अंशात्मक युति हो अथवा योगकारक ग्रह वक्री हों तो राज योग मन्त्री योग का बाध करते हैं।

इसी पंक्ति की एक प्रकार से व्याख्या करते हुए 'उत्तरकालामृत' में कहा गया है कि उच्चस्थ ग्रह या मूलत्रिकोणादिगत वक्री हो तो वह नीच या शत्रुक्षेत्र जैसा व नीचगत वक्री ग्रह उच्च का सा फल देता है। (देखें, उत्तरकालामृत, अध्याय 2.6)। योगकारक ग्रहों में उच्चादि स्थिति को विशेष फलद मानने से यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है कि नीचादिगत ग्रह वक्री होने पर शुभ व उच्चादि गत ग्रह वक्री होने पर अशुभ, अतः योगभंगकारक हो जाता है। (देखें वहीं अध्याय – 4. 2)

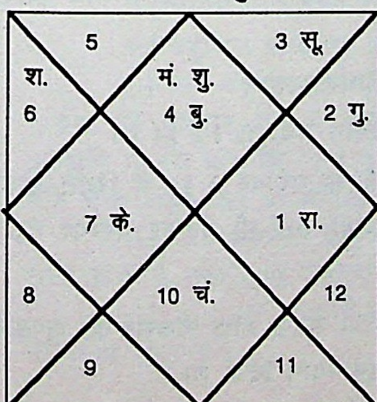
अन्य राजयोग :–

सुतेशकर्मेशसखेशलग्ननाथा यदा धर्मपसंयुताश्चेत्।
नृपोऽन्तरश्चेदिह वारणाढ्यः स्वतेजसा व्याप्तदिगन्तरालः।। 9।।
सुखकर्माधिपौ चैव मन्त्रिनाथेन संयुतौ।
धर्मेशेनाथवायुक्तौ जातश्चेदिह राज्यभाक्।। 10।।

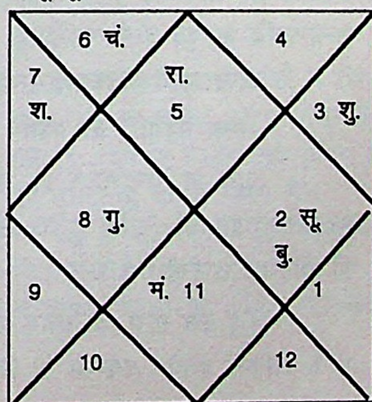
(i) पंचमेश, दशमेश, चतुर्थेश व लग्नेश का नवमेश से संयोग अर्थात् सम्बन्ध बैठे तो मनुष्य हाथी की सवारी करने वाला परम तेजस्वी राजा होता है।

(ii) 4. 10 भावेश यदि पंचमेश से युक्त हों या नवमेश से युक्त हों तो मनुष्य राज्य प्राप्त करता है।

राज्यपाल की कुण्डली



भूतपूर्व अमेरिकन राष्ट्रपति



प्रथम योग का उदाहरण उक्त राज्यपाल की कुण्डली है। 4.5. 10.1 के स्वामी परस्पर सम्बन्धी हैं। नवमेश का सम्बन्ध भी हो जाता तो महाराज होते।

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति की कुण्डली में दशमेश व लाभेश का स्थान सम्बन्ध है, लेकिन सूर्य (लग्नेश) पंचमेश गुरु, नवम चतुर्थेश मंगल, लग्नेश सूर्य परस्पर केन्द्र में हैं। दृष्टि सम्बन्ध भी कइयों का है। अतः नवमेश से योग न होने पर भी अन्य बली सम्बन्ध रहने से भी विशिष्ट राजयोग बना।

सुतेशे धर्मनाथेन युते लग्नेश्वरेण च।
लग्ने सुखेऽथवा याने स्थिते जातो नृपो भवेत्।। 11।।
धर्मस्थाने स्थिते जीवे स्वगृहे भृगुसंयुते।
पंचमाधिपसंयुक्ते जातश्चेदिह राज्यभाक्।। 12।।
दिनार्धाच्च निशार्धाच्च परं सार्धं द्विनाडिका।
शुभावेला तदुत्पन्नो राजा स्यात्तत्समोऽपि वा।। 13।।

(i) 1.5.9 भावों के स्वामी ग्रह यदि 1.4.10 में कहीं सम्बन्धी हों तो राजा होता है।

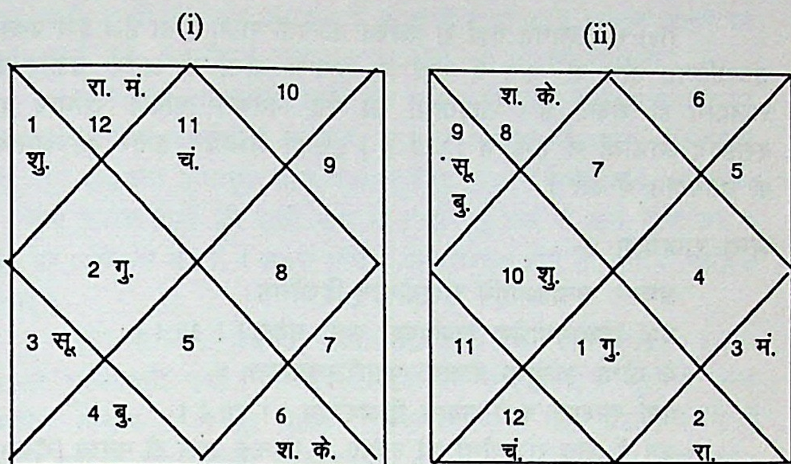
(ii) नवम में गुरु स्वक्षेत्र में शुक्र के साथ हो तथा पंचमेश से भी सम्बन्ध करे तो राजा होता है।

(iii) स्थानीय मध्यान्ह या मध्यरात्रि अर्थात् दिनमान के आधे या मिश्रमान के बराबर इष्ट हो या उससे 2-2 घड़ी आगे पीछे हो अर्थात् स्थानीय दोपहर या अर्धरात्रि से 48 मिनट इधर–उधर के भीतर जन्म हो तो व्यक्ति राजा या राजसदृश होता है। इस योग को उत्तरकालामृत में अध्याय 4, श्लोक 30 में भी कहा गया है। लेकिन इस योग के साथ पूर्वोक्त सम्बन्धादि अवश्य होने चाहिए।

चन्द्रः कविं कविश्चन्द्रमन्योन्यं त्रिभवस्थितः।
मिथः पश्यति वा क्वापि राजयोग उदाहृतः।। 14।।

शुक्र व चन्द्रमा 3.11 भाव में या परस्पर 3.11 में स्थित होकर परस्पर देखते हों (राशि दृष्टि लें) अथवा कहीं भी बैठकर परस्पर देखते हों तो यह राजयोग है।

(i) इस योग का प्रथम उदाहरण ड्यूक ऑफ विंडसर की कुण्डली में है लेकिन इन्होंने स्वेच्छा से सिंहासन त्याग दिया था।



शुक्र चन्द्रमा परस्पर 3. 11 में हैं तथा राशि दृष्टि भी हैं, अतः राजयोग बना। लेकिन स्वेच्छा से राज्य सिंहासन त्याग दिया। दूसरे उदाहरण में शुक्र व चन्द्रमा परस्पर 3. 11 में हैं, लेकिन दृष्टि नहीं है। यह एक मुख्यमंत्री महोदय की कुण्डली है। परमकारक शनि व लग्नेश शुक्र का तृतीय प्रकार का सम्बन्ध आदि है। अतः राजयोग बना। फलस्वरूप योग देखते ही झट से फल मत कहिए, अन्य योगायोगों की भी तुलना अवश्य करें।

चन्द्रे वर्गोत्तमांशस्थे सबलैश्चतुरादिभिः।
ग्रहैर्दृष्टे च यो बालः स राजा भवति ध्रुवम्।। 15।।
त्रिभिरुच्चगतैः खेटैः राजा राजकुलोद्भवः।
अन्यवंशभवस्तत्र राजतुल्यो धनैर्युतः।। 16।।
चतुर्भिः पंचभिर्वापि खेटैरुच्चगतैर्नरः।
हीनवंशोद्भवश्चापि राजा भवति निश्चितम्।। 17।।
षड्भिरुच्चगतैःखेटैश्चक्रवर्तित्वमाप्नुयात्।
एवं बहुविधा राजयोगा ज्ञेया द्विजोत्तम!।। 18।।

(i) यदि वर्गोत्तम नवांशगत या अन्य उत्तम गोपुरादि अंशों में स्थित चन्द्रमा को बलवान् चार या अधिक ग्रह देखें तो मनुष्य राजा होता है। वराहादि ने इस योग को लग्न में भी कहा है। अर्थात् वर्गोत्तमादि लग्न को यदि चन्द्र रहित चार या अधिक ग्रहों की दृष्टि हो तो राजयोग है।

(ii) तीन उच्चगत ग्रहों (बलवान् भी) से राजवंश में उत्पन्न व्यक्ति राजा होता है तथा अन्य वंशोत्पन्न व्यक्ति सुखी व धनी होता है।

(iii) 4. 5 ग्रह उच्चगत होने पर मनुष्य साधारण कुलोत्पन्न होकर भी राजा होता है।

(iv) 6 उच्चगत ग्रहों से व्यक्ति चक्रवर्ती राजा होता है। इस प्रकार उच्चादिगत होने से, भाव व ग्रहों के सम्बन्ध योगों से अनेक प्रकार के राजयोग हो सकते हैं। राजयोगों का भेद विवेचन तार्किक आधार पर वराहादि आचार्यो ने बाद में किया है। इसका अध्ययन हमारे बृहज्जातक के व्याख्यान में करें।

अन्य राजयोग :–

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि राजयोगान् द्विजोत्तम!
येषां विज्ञानमात्रेण राजपूज्यो जनो भवेत्।। 19।।
ये योगाः शम्भुना प्रोक्ताः पुराशैलसुताग्रतः।
तेषां सारमहं वक्ष्ये तवाग्रे द्विजनन्दन।। 20।।

अब मैं अन्य राजयोगों को कहता हूँ, जिनके ज्ञान से मनुष्य (दैवज्ञ) राजपूज्य हो जाता है। इन योगों को पहले भगवान् शंकर ने स्वयं पार्वती जी से कहा था, मैं उन्हीं को सार रूप में आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ।

राजयोग कहाँ देखें ?

चिन्तयेत्कारके लग्ने जनुर्लग्नेऽथवा द्विज !।
राजयोग प्रदातारौ द्वौ द्वौ खेटौ प्रयत्नतः।। 21।।
आत्मकारक पुत्राभ्यां राजयोग प्रकत्थयेत्।
तनुपंचमकाथाभ्यां तथैव द्विजसत्तम !।। 22।।
विलग्नात् पंचमाधीशः पुत्रात्माकारकोद्वयोः।
सम्बन्धात् पूर्णमर्ध वा पादं वीर्यानुसारतः।। 23।।

(i) जन्मलग्न व कारकांश लग्न इन दोनों में प्रयत्नपूर्वक कम से कम दो–दो राजयोग कारक ग्रहों की छानबीन करें। अर्थात् दो या अधिक ग्रह योगकारक होने पर ही राजा होगा अन्यथा धनी ही होगा।

(ii) इसी तरह आत्मकारक व पंचमेश (या पुत्रकारक) के सम्बन्ध से तथा लग्नेश व पंचमेश के सम्बन्ध से भी राजयोग का विचार करें।

(iii) पंचमेश, आत्मकारक व पुत्रकारक इन तीनों के पूर्ण, अर्ध या पाद सम्बन्ध से बलाबलानुसार राजयोग का निश्चय करें।

लग्नेऽथ सप्तमे वापि लग्नेशे सप्तमाधिपे।
पुत्रात्मकारकौ विप्र लग्ने वा सप्तमेऽपि वा।। 24।।
सम्बन्धे च तयोर्विप्रे ! एवं पंचमाधिपे।
उच्चता च नवांशस्थे शुभदृग्योगभावतः।। 25।।
महाराजेति योगोऽयं सोऽत्रजातः सुखी नरः।
गजवाजिरथैर्युक्तः सेनासंगमने तथा।। 26।।

राजा, धनी, सुखी यह सब बलक्रम से होता है। यह योग सम्पूर्ण घटने पर हाथी–घोड़े, रथ, पैदलों से युक्त चतुरंग सेना का स्वामी होता है।

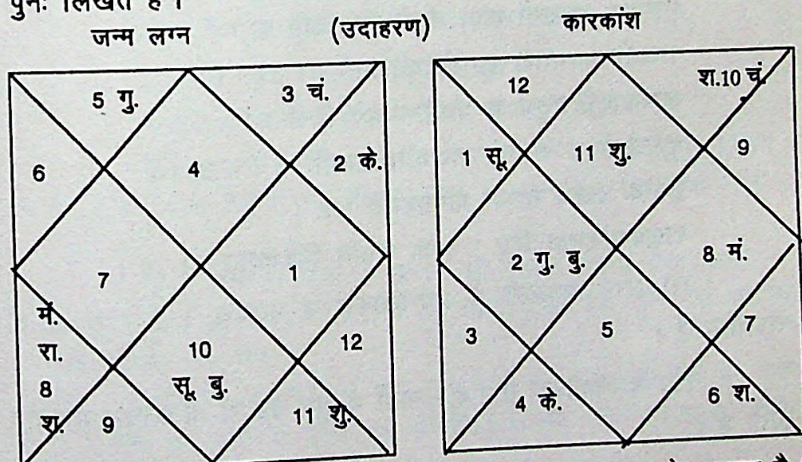
अभी तक राजयोग विचार की मूल सरणि इस प्रकार बताई गई हैं। (i) सर्वप्रथम कारकांश व जन्म लग्न में पूर्वोक्त राजयोग, नाभसादि योग, सूर्य चन्द्रयोग, शुभाशुभ योग, परस्पर केन्द्र त्रिकोण सम्बन्धादि का विचार कर योग कारक ग्रहों की सूची बना लें। दो ग्रह कम से कम योग कारक रहने पर अधिकार देते हैं। उनसे अधिक योग कारक होंगे तो अधिकस्याधिकं फलम्।

(ii) लग्नेश, पंचमेश, सप्तमेश, पुत्रकारक, आत्मकारक इनका परस्पर सम्बन्धादि देखें। नवमेश दशमेश का योग सम्बन्ध पूर्वोक्त केन्द्र त्रिकोण सम्बन्ध में ही आ जाता है, अतः अलग से नहीं कहा। इनमें से जितने अधिक ग्रह परस्पर सम्बन्ध करें व बली हों, उतना ही बड़ा राजा (अधिकारयुक्त) होगा। अतः ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध व बलवान् होना यह राजयोग का एक मात्र आधार है।

दो से कमयोग कारक रहने पर भी व्यक्ति सुचारु रूप से जीवन बिताता है।

सम्पूर्ण विषय को समझने के लिए अपने क्रमिक उदाहरण को यहाँ पुनः लिखते हैं।

जन्म लग्न (उदाहरण) कारकांश



एक साथ केन्द्रेश त्रिकोणेश होने से मंगल साक्षात् योगकारक है। लग्नेश चन्द्रमा, पंचमेश मंगल, सप्तमेश शनि, आत्मकारक शुक्र व पुत्रकारक सूर्य ये ग्रह विचारणीय हैं। लग्न कुण्डली में मंगल स्वक्षेत्री होने से बली है तथा पाप केन्द्रेश शनि से भी सम्बन्ध करता है। अतः मंगल व शनि का अच्छा सम्बन्ध है। सप्तम में सूर्य को उसका राशीश शनि पूर्ण दृष्टि से

देखता है अतः सूर्य व शनि का भी सम्बन्ध बनता है। आत्मकारक शुक्र व चन्द्रमा का विशेष सम्बन्ध नहीं है। लग्नेश चन्द्रमा इस समुदाय से बाहर हो जाने के कारण विशेष व त्वरित फलोदय (राजयोग) अवश्य प्रभावित होगा। मंगल व शनि व सूर्य निश्चय से योगकारक या राजयोगकारक सिद्ध हुए।

कारकांश में लग्नेश शनि, पंचमेश बुध, सप्तमेश सूर्य, नवमेश व चतुर्थेश शुक्र, दशमेश मंगल इन सबका विचार करना अभीष्ट है। मित्रक्षेत्री व वर्गोत्तम नवांशगत शुक्र परमकारक है। मंगल व बुध का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है। सारे शुभ ग्रह केन्द्र में व दशमेश दशम में हैं। केन्द्रगत ग्रहों में कारकत्व विद्यमान है। यहाँ शुक्र, मंगल, बुध विशेष योगकारक दिखते हैं। लेकिन लग्नेश अष्टम में बैठकर कुछ दुर्बलता अवश्य करता है। आगे योगानुसार विचार करते चलेंगे। लेकिन यहाँ तक प्रतीत होता है कि इन योगकारक ग्रह (शनि, मंगल, सूर्य, शुक्र) की दशान्तर्दशा में विशेष धन, सुख व शुभ फल अवश्य होंगे। वर्गोत्तम ग्रह उच्चवत् समझा जाता है। अतः मंगल, शुक्र वर्गोत्तमी व सूर्य उच्च नवांश में रहने से तीन ग्रहों की उच्चता सी हुई। अतः राजवंशेतर जन्मा होने के कारण राजयोग न होकर प्रबल धन, सुख व यश मिलेगा।

भाग्येशः कारको लग्ने पंचमे सप्तमेऽपि वा।
राजयोगप्रदातारौ शुभखेटयुतेक्षितौ।। 27।।
कारकाद्द्विचतुर्थे च पंचमे भावगे द्विज!।
शुभखेटो न सन्देहो राजयोग ददाति च।। 28।।
तृतीये षष्ठभे ताभ्यां पापग्रहयुते नरः।
राजवशांद्भवो विप्र! राजा भवति निश्चयात्।। 29।।

(i) लग्न कुण्डली में आत्मकारक व भाग्येश 1. 5. 7 में हो तो राजयोग है।

(ii) आत्मकारक से 2.4.5 भावों में शुभ ग्रह हो तो अवश्य राजयोग होता है।

(iii) कारक से 3. 6 में पाप ग्रह हों तो भी मनुष्य राजकुल में उत्पन्न हो तो राजा होता है।

लग्नेशात्सप्तमेशाद्वा धने तुर्ये च पंचमे।
शुभखेटयुते वापि राजा भवति ध्रुवम्।। 30।।

तृतीये षष्ठभे पापे मिश्रे मिश्रफलं वदेत्।।

लग्नेश या सप्तमेश से 2.4.5 में शुभ ग्रह हों अथवा इनसे 3.6 में पाप ग्रह हों तो मनुष्य राजा होता है। यदि मिश्रित ग्रह हों तो मिश्रित फल होता है।

नृपनिकटता योग :-

स्वांशे वा पंचमे शुक्रे जीवेन्दुयुतवीक्षिते।

लग्ने लग्नपदे वापि राजवर्गो भवेन्नरः।। 31।।

कारकांश में या कारकांश से पंचम में शुक्र हो अथवा लग्न या लग्न के पद में शुक्र हो तथा गुरु चन्द्र से युत या दृष्ट हो तो मनुष्य राजा के वर्ग का पुरुष अर्थात् राजा का विशेष निकटस्थ, विश्वासी होता है।

जन्मांगे कालहोरांगे लिप्तांगे येन केनचित्।

एकग्रहेण संदृष्टे त्रितये राज्यभाग् भवेत्।। 32।।

जन्म लग्न, होरा लग्न, घटी लग्न इन तीनों को यदि एक ही ग्रह देखे तो मनुष्य राजा होता है।

लग्ने नवांशे द्रेष्काणे वैकखेटयुतेक्षिते।

राजयोगो भवत्येव निर्विशंकं द्विजोत्तम!।। 33।।

लग्नं च सप्तमं विप्र! सममत्र विचारयेत्।।34।।

पूर्णदृष्टे पूर्णयोगमर्धे चार्धं विधीयते।

पादेन पादयोगं च राजयोगमिति क्रमात्।। 35।।

यदि लग्न, नवांश व द्रेष्काण इन तीनों को या इनसे सप्तम भाव को इन्हीं कुण्डलियों में एक ही ग्रह देखे या योग करे तो मनुष्य राजा होता है।

इस प्रसंग में लग्न व सप्तम को समान महत्त्व देना चाहिए। पूर्ण दृष्टि हो तो पूर्ण, आधी दृष्टि हो तो आधा, एक पाद दृष्टि हो तो चौथाई फल समझना चाहिए।

पूर्वोक्त उदाहरण में सूर्य बुध लग्न को पूर्ण, द्रेष्काण को एकपाद व नवांश को त्रिपाद दृष्टि से देखते हैं। अतः शुभ राजतुल्य योग है, राजयोग नहीं है।

लग्नत्रये स्वभोच्चस्थे खेटे राजा भवेद्ध्रुवम्।

यद्वा लग्ने दृकाणेशे स्वोच्चखेटे युते द्विज!।। 36।।

यदि जन्म लग्न होरा लग्न व घटी लग्न तीनों में एक साथ (उच्चगत उपलक्षण से मूल त्रिकोणी, स्वक्षेत्री) ग्रह हो अथवा लग्न, नवांश व द्रेष्काण में उच्चादिगत ग्रह हों तो मनुष्य राजा होता है।

क्रान्तेवागुरुशुक्राभ्यांचन्द्राक्रान्तेविशेषतः ।

दुष्टार्गलग्रहाभावे राजयोगो न संशयः ।। 37 ।।

यदि उक्त तीनों लग्नों (जन्म, होरा, घटी) में या लग्न, नवांश द्रेष्काण में गुरु, शुक्र, चन्द्र आते हों तथा निर्बाध अर्गला हो तो निःसन्देह राजयोग होता है ।

पद लग्न से राजयोग

पदे शुभे सचन्द्रे च धने देवगुरौ तथा ।

स्वोच्चखेटे युते दृष्टे राजयोगो न संशयः ।। 38 ।।

पद लग्न में चन्द्रमा व कोई अन्य शुभ ग्रह हो, द्वितीय में बृहस्पति हो तथा इन्हें उच्चगत कोई ग्रह देखे या योग करे तो अवश्य राजयोग होता है ।

शुभे लग्ने शुभेत्वर्थे तृतीये पाप खेचरे ।

चतुर्थे शुभे प्राप्ते राजा वा तत्समो भवेत् ।। 39 ।।

उच्चस्थो हरिणांको वा जीवो वा शुक्र एव वा ।

बुधो वा धनभावस्थः श्रियं दिशति देहिनाम् ।। 40 ।।

(i) लग्न, द्वितीय व चतुर्थ में शुभ ग्रह तथा तृतीय में पाप ग्रह हों अर्थात् उक्त विधि से 1.2.3.4 भावों में ग्रह हों तो मनुष्य राजा या राजतुल्य होता है ।

(ii) चन्द्रमा, गुरु या शुक्र इनमें एक भी बली व उच्चस्थ होकर द्वितीय में हो तो मनुष्य को विपुल श्री मिलती है । इसी तरह लग्न, पंचम, दशम, नवम, सप्तम में हो तो राज्य मिलता है, यह बात निष्कर्षतः सिद्ध है ।

नीचग्रह से राजयोग :–

लग्नं पश्यन्ति ये खेटास्ते सर्वे शुभदायिनः ।

नीचखेटोऽपि सम्बन्धात् लग्नं पश्येत् भवेन्नृपः ।। 41 ।।

षष्ठाष्टमे तृतीये च यदा नीचगता ग्रहाः ।

लग्नं पश्येत् स्वभोच्चस्थो लग्नपो राज्ययोगदः ।। 42 ।।

(i) जो ग्रह लग्न को देखते हों, वे प्रायः शुभ ही समझे जाते हैं । यह एक सामान्य नियम बताया है । नीचस्थ ग्रह सम्बन्धी होकर लग्न को देखे तो राजयोग है ।

(ii) 3.6.8 भावों में कोई ग्रह नीच में हो तथा लग्नेश स्वक्षेत्री या उच्चस्थ हो व लग्न को देखे तो मनुष्य राजा होता है ।

विपरीत राजयोग :–

षष्ठाष्टमव्ययाधीशा नीचस्था रिपुभेऽस्तगाः ।

उच्चादिगो विलग्नेशः लग्नं पश्येत्तु राज्यदः ।। 43 ।।

6. 8. 12 भावों के स्वामी किसी भी तरह से परस्पर भाव परिवर्तन करके या स्वस्वभाव में नीचगत या शत्रुक्षेत्री या अस्त हों अर्थात् सर्वथा निर्बल हों तथा लग्नेश उच्च, मूल त्रिकोण या स्वक्षेत्री होकर विशेषतया लग्न को देखे (या लग्न में हो) तो यह राजयोग है।

शुभाशुभ ग्रहों से राजयोग :–

केन्द्रत्रिकोणगैः सौम्यैः पापैश्च त्रिषडायगैः ।

विलग्नेशे बलयुते हीनवंशोऽपि राज्यभाक् ।। 44 ।।

स्वोच्चस्वभस्थराज्येशो लग्नं पश्यंश्च राज्यदः ।

यदि लग्नेश सम्बन्धस्तेन स्यात् किमतः परम् ।। 45 ।।

(i) सभी शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में व सभी पाप ग्रह 3. 6. 11 में बलवान् हों तथा लग्नेश बलवान् होकर (शुभ भावों में हों) तो हीन वंशोत्पन्न व्यक्ति भी राजा होता है।

(ii) यदि लग्न पर बलवान् उच्चादिगत दशमेश की दृष्टि हो तो राजयोग है। यदि ऐसा दशमेश लग्नेश से भी कोई सम्बन्ध करे तो इससे बढ़कर क्या हो सकता है ?

शुभराशौ शुभांशे च कारको धनवान् भवेत् ।

तदंश केन्द्रेषु शुभे नूनं राजा प्रजायते ।। 46 ।।

लग्नारूढं दारपदं मिथः केन्द्रगतं यदि ।

त्रिलाभे वा त्रिकोणे वा राजा भवति मानवः ।। 47 ।।

(ii) लग्नपद व दारपद (उपपद) परस्पर केन्द्र, त्रिकोण या 3. 11 में पड़ते हों तो मनुष्य राजा होता है।

विचारणीय प्रकृत पूर्वोदाहृत कुण्डली में कारक राशि व नवांश कुम्भ ही है, उससे केन्द्र में सभी शुभ ग्रह हैं। लग्न पद वृष से दारपद सिंह में पड़ता है। परस्पर केन्द्रगत व स्त्रीपद शुभयुक्त दृष्ट भी है। अतः योग बनता है। बलाबल व कुलानुमान से राजा, राजतुल्य, प्रतिष्ठित, पूज्य, आदि फल कहने चाहिए।

भावहोराघटीलग्नसंज्ञानि च प्रपश्यति ।

स्वोच्च ग्रहो राजयोगो लग्नद्वयमथापि वा ।। 48 ।।

राशे द्रेष्काणतोऽंशाच्च राशेरंशादथापि वा ।

यद्वा राशि दृकाणाभ्यां लग्नद्रष्टातु योगदः ।। 49 ।।

(i) भाव, होरा, घटी लग्नों को कोई उच्च ग्रह देखे तो निश्चय से राजयोग है। यदि दो लग्नों को देखे तब भी राजयोग है।

(ii) इन तीनों लग्नों की राशि, द्रेष्काण, नवांश अथवा राशि द्रेष्काण या राशि नवांश को एक ही बली ग्रह देखे तब भी राजयोग है।

नीचग्रह से अन्य राजयोग :-

तृतीय लाभगे नीचे लग्नं पश्यति लग्नपे ।

लग्नांश केन्द्रेषु शुभे निग्रहानुग्रहक्षमः ।। 50 ।।

3. 11 में नीचगत ग्रह हो और लग्नेश लग्न को देखे एवं लग्न नवांश कुण्डली में केन्द्रों में शुभ ग्रह हों तो मनुष्य दण्ड व कृपा करने में समर्थ अर्थात् अधिकारसम्पन्न होता है।

प्रधान मन्त्री (सलाहकार) योग :-

राज्येशेऽपि जनुर्लग्नऽमात्येशयुतेक्षिते ।

अमात्यकारकेणापि प्रधानत्वं नृपालये ।। 51 ।।

लाभेशेनेक्षिते लाभे पापदृग्योगवर्जिते ।

राज्यभावेऽथवा विप्र ! प्रधानत्वं नृपालये ।। 52 ।।

अमात्य कारकेणापि कारककेन्द्रेण संयुते ।

तीव्र बुद्धियुतो बालो राजमन्त्री भवेद् ध्रुवम् ।। 53 ।।

(i) लग्न से दशमेश व पंचमेश एवं अमात्यकारक का परस्पर योग दृष्टि आदि सम्बन्ध बने तो व्यक्ति राज दरबार में विशेष पद या मान्यता पाता है।

(ii) लाभ को लाभेश देखे या वहीं हो एवं दशम भाव पर पाप ग्रह की दृष्टि या योग न हो अथवा दशमेश दशम को देखे तो भी मनुष्य राजा का विशेष प्रधान या मुख्यमंत्री (सलाहकार) होता है।

(iii) अमात्यकारक व आत्मकारक परस्पर योग करें तो मनुष्य तीव्र बुद्धि वाला एवं राज्य में मंत्री होता है।

अमात्यकारके विप्र ! सबले शुभसंयुते ।

स्वक्षेत्रे स्वोच्चगे वापि राजमन्त्री भवेद्ध्रुवम् ।। 54 ।।

अमात्यकारके लग्ने पंचमे नवमेऽपि वा ।

राजमन्त्री भवेद् बालो विख्यातो विजयी भवेत् ।। 55 ।।

आत्मकारकतः केन्द्रे कोणे वाऽमात्य कारके ।

तदा राजकृपायुक्तो जातो राजाश्रितः सुखी ।। 56 ।।

(i) अमात्यकारक यदि बलवान् शुभ ग्रह से युक्त होकर स्वक्षेत्र, उच्चादि में हो तो मनुष्य मन्त्री होता है ।

(ii) अमात्यकारक यदि 1. 5. 9 में बलवान् होकर स्थित हो तो मनुष्य मन्त्री होता है ।

(iii) आत्मकारक से केन्द्र या त्रिकोण में अमात्यकारक पड़े तो मनुष्य को राजपक्ष की विशेष कृपा व आश्रय मिलता है ।

कारके केन्द्रकोणेषु स्वतुंगे वा स्वभे स्थिते ।

भाग्यपेन युते दृष्टे राजमन्त्री भवेज्जनः ।। 57 ।।

कारके जन्मराशीशे लग्नगे शुभसंयुते ।

मन्त्रित्वे मुख्ययोगोऽयं वार्धके नात्र संशयः ।। 58 ।।

क्रमेण भाग्यवृद्धिस्यान्नृपवेशोऽथवा भवेत् ।

भाग्यारूढपदे लग्ने कारकान्नवमेऽपि वा ।

राजयोग इति प्रोक्तो विख्यातो विजयी भवेत् ।। 59 ।।

(i) आत्मकारक यदि स्वक्षेत्री या स्वोच्चगत हो तथा केन्द्र त्रिकोण में भाग्येश से युतदृष्ट हो अथवा स्वोच्चादि भाग्येश हो तथा आत्मकारक से दृग्योग करे तो मनुष्य राजमन्त्री होता है ।

(ii) आत्मकारक यदि जन्मराशीश हो तथा लग्न में शुभयुक्त हो तो यह विशेष मन्त्री योग है । अथवा कारकेश व जन्मराशीश दोनों ही लग्न में शुभयुक्त हों तो भी यही योग है । इस योग में क्रमशः भाग्यवृद्धि व बुढ़ापे में पद मिलता है । लेकिन व्यक्ति प्रारम्भ से ही राजशाही ढंग से रहता है ।

(iii) नवम भाव का पद यदि लग्न में पड़े अथवा आत्मकारक या अमात्यकारक से नवम में पड़े तो यह राजयोग है । इसमें व्यक्ति विख्यात व विजयी होता है ।

सेनापति योग :–

कारकाच्च तथा रूढात् लग्नाच्च द्विजसत्तम ! ।

तृतीये षष्ठभे पापाः सेनाधीशो भवेन्नरः ।। 60 ।।

आत्मकारक से, पद लग्न से व लग्न से 3.6 में सर्वत्र पापग्रह हों तो मनुष्य सेनानायक होता है ।

राज्यसम्बन्ध योग :–

लग्नेशे राज्यभावस्थे राज्येशे लग्नसंस्थिते ।

प्रबलो राजसम्बन्धयोगोऽयं परिकीर्तितः ।। 61 ।।

लग्नेश दशम में व दशमेश लग्न में गया हो तो यह प्रबल राज्य सम्बन्ध योग है। ऐसा व्यक्ति राज्यपक्ष में महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त करता है।

राजाश्रय से लाभ :–

कारके शुभसंयुक्ते पंचमे सप्तमेऽपि वा ।

दशमे नवमे वापि धनं राजाश्रयाद् भवेत् ।। 62 ।।

लाभेशे लाभभावस्थे पापदृष्टिविवर्जिते ।

कारके शुभसंयुक्ते लाभस्तस्य नृपालयात् ।। 63 ।।

(i) आत्मकारक शुभ ग्रह से युतदृष्ट होकर 5. 7. 9. 10 भाव में कहीं हो तो मनुष्य को राजा से धन प्राप्त होता है।

(ii) लाभेश एकादश में हो तथा पाप दृष्टि योग से वर्जित आत्मकारक या अमात्यकारक शुभयुक्त हो तो राजा से धन मिलता है।

राजचिन्ह व राजमित्रयोग :–

कारकात् तुर्यभावस्थो सितेन्दू द्विजसत्तम ! ।

यस्य जन्मनि जातोऽयं राजचिह्नेन संयुतः ।। 64 ।।

लग्नेशे कारके वापि पंचमेशेन संयुते ।

केन्द्रे कोणे स्थिते तस्मिन् राजमित्रं भवेन्नरः ।। 65 ।।

(i) आत्मकारक से चतुर्थ में शुक्र व चन्द्रमा हों तो मनुष्य राजचिन्ह अर्थात् अच्छी सवारी, बड़ा महल, रुतबा, प्रतिष्ठादि से राजसी होता है।

(ii) लग्नेश या आत्मकारक पंचमेश से युत होकर केन्द्रत्रिकोण में हो तो मनुष्य राजा का मित्र होता है।

राजयोगविचार की विशेष विधि :–

कुबेरश्च पतंगश्च हालांशश्च किरीटिकः ।

विह्वलांशः समायांशो मोहनः किन्नरांशकः ।। 66 ।।

भुजंगेन्द्रांशकौ लीलाकोकिलांशोत्तमः स्मृतः ।

राशीनां द्वादशांशेषु ग्रहस्थित्या फलं वदेत् ।। 67 ।।

केन्द्रांशाश्चैषु शुभदाः राजयोगफलप्रदाः ।

द्विषडष्टैकादशांशा मध्यमाः परिकीर्तिताः ।। 68 ।।

अन्येऽंशास्त्वधमा ज्ञेया एवमंशविनिर्णयः ।

ग्रहाणां चैव लग्नानामंशस्थित्या फलं वदेत् ।। 69 ।।

राजयोग या योगकारक ग्रहों व लग्न (चन्द्र लग्न, पद, भाव, होरा घटी, लग्न भी) के स्पष्ट अंशों में वक्ष्यमाण विशेष 12 भाग (1 भाग = $2\frac{1}{2}$ अंश) मानकर नामकरण करें । जो ग्रह या लग्न नामानुसार शुभ अंशों में हों, वे पूर्ण फल देते हैं । जो अंश लग्न से केन्द्र में पड़ें वे (नाम से अशुभ होते हुए भी) शुभ हैं तथा राजयोग देते हैं ।

2. 6. 8. 11 भावगत अंश मध्यम होते हैं तथा शेष 3. 5. 9.12 गत अंश अधम हैं ।

(i) कुबेर (ii) पतंग (सूर्य या अग्नि) (iii) हाला (शराब) (iv) किरीट (मुकुट) (v) विह्वल (vi) मायावी (vii) मोहन (vii) किन्नर (ix) सर्प (x) इन्द्र (xi) लीला (xii) कोयल या उत्तम । ये अंशों के नाम हैं ।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3. 2°.48′. होरा लग्न 7. 7°. 45′ तथा घटी लग्न 10. 2°. 30′ है ।

लग्न सूर्यांश में है । लग्न की दृष्टि से विह्वल, किन्नर, लीला केन्द्रांश शुभ हैं । चन्द्रमा विह्वलांश में शुभ हुआ । शुक्र (आत्मकारक) मोहनांश में शुभ है । उससे केन्द्रगत अंश इन्द्र, कुबेर, किरीट हैं । होरा लग्न किरीटांश में, भाव लग्न किरीटांश में, घटी लग्न सर्वथा कुबेरांश के अन्त में है । अतः आत्मकारक के अंश विशेष बली शुभ हैं । तदनुसार आने वाले राजयोगों का फल विशेष मिलेगा ।

यह एक दक्षिण भारतीय पद्धति है । कुछ-कुछ नाड्यंश विचार से मिलती-जुलती है । इसकी शक्ति व सीमा की परीक्षा करनी चाहिए ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां राजयोगाध्यायः षट्त्रिंशत्तमः ।।36 ।।

37

।। अथ धनयोगाध्यायः ।।

पराशर उवाच –

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धनयोगं विशेषतः ।

यस्मिन् योगे समुत्पन्नो निश्चितो धनवान् भवेत् ।। 1 ।।

पंचमे भृगुजक्षेत्रे तस्मिन् शुक्रेण संयुते ।

लाभे भौमेन संयुक्ते बहुद्रव्यस्यनायकः ।। 2 ।।

पंचमे तु बुधक्षेत्रे तस्मिन् बुधयुते सति ।

चन्द्रे भौमे गुरौ लाभे बहुद्रव्यस्य नायकः ।। 3 ।।

(i) पराशर बोले– अब मैं विशेषतया धनयोगों को कहता हूँ। जिन योगों में पैदा हुआ व्यक्ति निश्चित रूप से धनवान् होता है।

(ii) पंचम भाव में शुक्र की राशि हो तथा शुक्र वहीं हो एवं लाभ स्थान में मंगल हो तो मनुष्य बहुत धनी होता है। यह योग मिथुन व मकर लग्न में बनेगा।

(iii) पंचम में स्वक्षेत्री बुध हो तथा चन्द्र, मंगल, गुरु एकादश स्थान में हों तो मनुष्य बहुत धनी होता है। यह योग कुम्भ व वृष लग्न में बनेगा।

पंचमे च रविक्षेत्रे तस्मिन् रवियुते सति ।

लाभे शनीन्दू जीवाढ्ये बहुद्रव्यस्य नायकः ।। 4 ।।

पंचमे तु शनिक्षेत्रे तस्मिन् शनियुते सति ।

लाभे रवीन्दुसंयुक्ते बहुद्रव्यस्य नायकः ।। 5 ।।

पंचमे तु कुजक्षेत्रे तस्मिन् कुजयुते सति ।

लाभस्थे भृगुपुत्रे तु बहुद्रव्यस्य नायकः ।। 6 ।।

पंचमे तु शशि क्षेत्रे तस्मिन् शशियुते सति ।

शनौ लाभस्थिते जातो बहुद्रव्यस्य नायकः ।। 7 ।।

(i) पंचम में स्वक्षेत्री सूर्य (मेष लग्नोत्पन्न जातक) तथा लाभस्थान में शनि, चन्द्र व गुरु हों तो मनुष्य बहुत धनी होता है।

(ii) पंचम में शनि स्वक्षेत्री हो अर्थात् कन्या व तुला लग्न हो, लाभ में सूर्य चन्द्र साथ हों तो भी मनुष्य अति धनी होता है।

(iii) पंचम में मंगल, स्वक्षेत्री हो अर्थात् कर्क लग्न या धनु लग्न में जन्म हों तथा एकादश में शुक्र हो।

(iv) पंचम में कर्क राशि में चन्द्रमा अर्थात् मीन लग्न में जन्म हो तथा लाभ में शनि हो तो इन सब योगों में मनुष्य बहुत धनी होता है।

लग्न से धन योग :–

भानुक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भानुयुते सति ।

भौमेन गुरुणा युक्ते दृष्टे जातो युतो धनैः ।। 8 ।।

चन्द्रक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भौमेन संयुते ।

बुधेनगुरुणा दृष्टे युक्ते जातो धनी भवेत् ।। 9 ।।

भौमक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भौमेन संयुते ।

सौम्यशुक्रार्कजैयुक्ते दृष्टे श्रीमान्नरो भवेत् ।। 10 ।।

बुधक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् बुधयुते सति ।

शनि जीवयुते दृष्टे जातो धनयुतो भवेत् ।। 11 ।।

(i) सिंह लग्न से सूर्य, मंगल गुरु से दृष्ट युत हो । (ii) कर्क लग्न में चन्द्रमा, बुध गुरु से दृष्ट या युत हो (iii) मंगल मेष या वृश्चिक में लग्नगत होकर बुध, शुक्र शनि से युक्त या दृष्ट हो । (iv) कन्या या मिथुन में लग्नगत बुध को शनि गुरु देखें या योग करें । इन सब योगों में मनुष्य धनी होता है । कदाचित् पिछले पाँच योगों (पंचमेश पर आधारित) की अपेक्षा इन योगों में अपेक्षया कम धन होते हुए भी जातक धनी ही होता है ।

गुरु क्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् गुरुयुते सति ।

बुधभौमयुते दृष्टे जायते धनवान्नरः ।। 12 ।।

भृगुक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भृगुयुते सति ।

शनिसौम्ययुते दृष्टे जातः स धनिको भवेत् ।। 13 ।।

शनिक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् शनियुतेसति ।

भौमेन गुरुणा दृष्टे युते जातो धनैर्युतः ।। 14 ।।

(i) धनु मीन लग्नस्थ गुरु से बुध मंगल दृग्योग करें । (ii) वृष तुला लग्नस्थ शुक्र पर शनि बुध दृष्टि का योग हो (iii) मकर कुम्भ लग्न में शनि को मंगल व गुरु देखें या योग करें । इन योगों में मनुष्य धनी होता है ।

त्रिकोणेश से धन विचार :–

धनदौ धर्मधीनाथौ ताभ्यां ये वा युता ग्रहाः ।

तेऽपि स्वस्वदशाकाले धनदा नात्र संशयः ।। 15 ।।

रन्ध्रव्ययेशौ खेटाश्च ताभ्यां युक्तेक्षिताश्च ये ।

शोकप्रदा, भवेयुस्ते पुनः मारकनायकैः ।। 16 ।।

ग्रहाणां स्थानभेदेन क्रूरसौम्य विभागतः ।

बलाबल विवेकेन फलं वाच्यं विचक्षणैः ।। 17 ।।

(i) पंचमेश व नवमेश भी धनदायक ग्रह हैं । इन दोनों से युक्त ग्रह भी धनदायक हैं । अतः ऐसे ग्रहों की दशान्तर्दशा में धन लाभ होता है ।

(ii) 8.12 भावेश व इनसे युक्त दृष्ट ग्रह तथा मारकेशों से युक्त ग्रह अपनी दशान्तर्दशा में शोक देते हैं।

(iii) अतः ग्रहों का भावेशत्वानुसार शुभ व अशुभ निर्णय करके उनके बलाबल से फल कहना चाहिए।

विष्णुस्थानं च केन्द्रं स्याल्लक्ष्मी स्थानं त्रिकोणकम्।

तदीशयोश्च सम्बन्धाद्राजयोगः पुरोदितः।। 18।।

पारिजाते स्थितौ तौ चेन् नृपो लोकानुरक्षकः।

उत्तमे चोत्तमो भूपो गजवाजिरथादिमान्।। 19।।

गोपुरे नृपशार्दूलः पूजितांघ्रिनृपैर्भवेत्।

सिंहासने चक्रवर्ती सर्वभूमिप्रपालकः।। 20।।

केन्द्रस्थान विष्णु रूप व त्रिकोण स्थान लक्ष्मी रूप हैं। इन दोनों के स्वामियों के सम्बन्ध से पहले राजयोग कहे गए हैं।

यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश पारिजातादि वर्गोक्त पारिजात में हो तो राजयोग है। ऐसा राजा लोकरक्षक होता है। उत्तमांश में हो तो हाथी घोड़ों से युक्त राजा होता है।

गोपुरांश में हो तो पराक्रमी राजा होता है तथा उसके समक्ष सब राजा नत होते हैं।

सिंहासनांश में हों तो सार्वभौम चक्रवर्ती राजा होता है।

हमारे विचार से पंचमेश दशमेश या नवमदशमेश या लग्नदशमेश से इन योगों का विशेष विचार करना चाहिए।

इन योगों में उत्पन्न प्राचीन राजा :–

अस्मिन् योगे हरिश्चन्द्रो मनुश्चैवोत्तमस्तथा।

बलीर्वैश्वानरो राजा अन्ये चैवतु चक्रपाः।। 21।।

वर्तमानयुगे जातस्तथा राजा युधिष्ठिरः।

भविता शालिवाहाद्यस्तथैव द्विजसत्तम !।। 22।।

नागार्जुनस्तथाभूपस्तदन्ये चैवगोपुरे।

पारावतांशकेऽन्ये च जाता मन्वादयस्तथा।। 23।।

देवलोके च प्रथमे हरेश्चैवावतारणम्।

मत्स्यादि कल्किपर्यन्ताः सर्वे वर्गोद्भवा मताः।। 24।।

द्वितीये देवलोके तु ज्ञेया इन्द्रादयः परे।

ऐरावते च प्रथमे जातः स्वायम्भुवो मनुः।। 25।।

एवं केन्द्रत्रिकोणानां नाथाः सर्वविधायकाः ।

केन्द्रेशा द्वौ त्रिकोणेशौ धनेशश्चेति सप्तमे ।। 26 ।।

ऐरावतादि संस्थेषु जाता लोकोत्तराः समे ।

अनेनैव प्रकारेण वेत्ति सर्वत्र बुद्धिमान् ।। 27 ।।

चार केन्द्रेश, दो त्रिकोणेश व सातवाँ धनेश इन सबके या अधिकांश के पारिजातादि उत्तम वर्गों में रहने पर बड़े बड़े महानुभावों का जन्म हुआ है। गोपुरांश व सिंहासनांश में राजा हरिश्चन्द्र एवं वैवस्वत मनु का जन्म हुआ। राजा बली तथा अन्य अनेक चक्रवर्ती राजा इन्हीं योगों में उत्पन्न हुए हैं।

वर्तमान कलियुगादि व द्वापरान्त में राजा युधिष्ठिर पैदा हो चुके हैं तथा आगे शालिवाहन शकाधिराज यवन राजा नागार्जुन, गोपुरांश में व अन्य मनु आदि पारावतांश में पैदा होंगे।

सब ग्रहों (उक्त सातों भावेशों) के देवलोकांश में रहने पर भगवान् विष्णु के सारे अवतार मत्स्यावतार से कल्कि तक हुए व होंगे।

देवलोकांश में द्वितीय श्रेणी रहने पर इन्द्रादि राजाओं का जन्म हुआ। ऐरावतांश में स्वयम्भू व मनु भी हुए हैं।

इस तरह सभी लोकोत्तर महानुभावों का इनमें ही जन्म हुआ है। इसी तरह से सर्वत्र समझना चाहिए। अर्थात् पूर्वोक्त योगों में जातक भी पूर्वोक्त राजाओं की तरह ही प्रसिद्ध, पराक्रमी आदि व नृपति होता है। इस प्रसंग से पराशर का समय महाभारत काल अर्थात् कलि प्रारम्भ से पहले लगभग 5000 वर्ष से अधिक पूर्व प्रतीत होता है।

पारिजातादि वर्गगत केन्द्रेश :–

केन्द्रेशः पारिजातस्थस्तदा दाताभवेन्नरः ।

उत्तमे ह्युत्तमो दाता गोपुरे पुरुषत्वयुक् ।। 28 ।।

सिंहासने भवेन्मान्यः शूरः पारावतांशके ।

सभाध्यक्षो देवलोके ब्रह्मलोके मुनिर्मतः ।। 29 ।।

ऐरावतांशके तुष्टो दिग्योगो नैव जायते ।

यदि केन्द्रेश (विशेषतया 1.10 भावेश) पारिजात वर्ग में हों तो मनुष्य दानशील, उत्तमांश में श्रेष्ठ दानवीर, गोपुरांश में परम पराक्रमी, सिंहासनांश में सर्वत्र मान्य, पारावतांश में शूरवीर, देवलोक में सभाध्यक्ष, ब्रह्मलोक में मुनि, ऐरावतांश में संतुष्ट, दुःखहीन होता है। दिगंश अर्थात् एक साथ दसवाँ वर्ग श्रीधामांश मानवों के लिए नहीं होता। अर्थात् भूमिलोक में असम्भव है।

पारिजातादिगत त्रिकोणेश :–

पारिजाते सुताधीशे विद्या चैव कुलोचिता ।। 30 ।।

उत्तमे चोत्तमा ज्ञेया गोपुरे भुवनांकिता ।
सिहांसने तथा वाच्या साचिव्येन समन्विता ।। 31 ।।
पारावते च विज्ञेया ब्रह्मविद्या द्विजोत्तम ! ।
सुतेशे देवलोकस्थे कर्मयोगी च जायते ।। 32 ।।
उपासना ब्रह्मलोके भक्तिस्त्वैरावतांशके ।

पंचमेश यदि पारिजातांश में हो तो कुलोचित विद्या, उत्तमांश में उत्तम विद्या, गोपुरांश में जगत्प्रसिद्ध शिक्षा, सिहासनांश में मन्त्रित्व देने वाली विद्या, पारावतांश में ब्रह्मविद्या या आध्यात्मविद्या, देवलोकांश में कर्मयोगी, ब्रह्मलोक में परम उपासक, ऐरावतांश में हो तो प्रबल भक्ति होती है ।

धर्मेशे पारिजातस्थे तीर्थकृत्त्वत्र जन्मनि ।। 33 ।।
पूर्वजन्मन्यपि ज्ञेयस्तीर्थकृच्चोत्तमांशके ।
गोपुरे मखकर्ता च परे चैवात्र जन्मनि ।। 34 ।।
सिंहासने भवेद् वीरः, सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
सर्वधर्मान् परित्यज्य ब्रह्मैकपदमाश्रितः ।। 35 ।।
पारावते च परमो हंसश्चैवात्र जन्मनि ।
लगुडी वा त्रिदण्डी वा देवेलोकेन संशयः ।। 36 ।।
ब्रह्मलोके शक्रपदं याति कृत्वाश्वमेधम् ।
ऐरावते तु धर्मात्मा स्वयं धर्मो भविष्यति ।।
यथा रामः कुन्तिपुत्रस्तथा जातो द्विजोत्तम ! ।। 37 ।।

यदि नवमेश पारिजात वर्ग में हो तो तीर्थकर्ता अर्थात् विशिष्ट शास्त्रकार या विशेष तीर्थ स्थान निर्माता (यथा शंकराचार्य), उत्तमांश में हो तो पूर्वजन्म व वर्तमान में भी तीर्थकर होता है । गोपुरांश में दोनों जन्मों में यज्ञकर्ता, सिंहासनांश में वीर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ब्रह्मनिष्ठ होता है । पारावतांश में परमहंस अर्थात् जीवन्मुक्त होता है । देवलोकांश में दण्डी स्वामी या त्रिदण्डी सन्यासी; ब्रह्मलोकांश में इन्द्रपद को प्राप्त करता है । ऐरावतांश में धर्मात्मा स्वयं धर्म ही होता है । इसके उदाहरण श्रीराम व कुन्तिपुत्र युधिष्ठिर हैं ।

शेष भावेशों का पारिजातवर्गी फल :–

त्रिषडायाष्टरिःफेशाः पारिजाते व्यवस्थिताः ।
फलदास्ते ह्यन्य भवे भावे यत्र व्यवस्थिताः ।। 38 ।।

इहस्वे चोत्तमास्ते ते तृतीये मध्यमा मताः ।
चतुर्थे ते च राजानः पंचमे गुरवो मताः ।। 39 ।।
भूदेवाश्च तथा षष्ठे देवाज्ञेयाश्च सप्तमे ।
अष्टमे पशवो ज्ञेया दुःखदाश्चात्र जन्मनि ।। 40 ।।
दुःस्थाश्चैव भवन्त्येते तदा तेनैव बाधकाः ।
केन्द्रकोणस्थिताश्चैव बाधकाः नात्र जन्मनि ।। 41 ।।

3. 6. 8. 11. 12 भावेशों की पारिजातादि वर्गों में स्थिति हो तो वे जैसे भाव में स्थित हों, तदनुसार पूर्वोक्त फलों को अन्य अर्थात् अगले जन्म में देते हैं। इस जन्म में उनका फलनिर्धारण इस प्रकार होगा। द्वितीय में हों तो शुभ, तृतीय में हों तो मध्यम फलद, चतुर्थ में हों तो राजा, पंचम में हों तो गुरु पद, षष्ठ में हों तो ब्राह्मणत्व, सप्तम में हों तो देवतुल्य, अष्टम में पशु या पशु की तरह आचरण करने वाला दुःखी होता है।

यदि 6. 8. 12 भावेश उक्त वर्गगत होकर किसी भी तरह विपर्यय से अर्थात इन्हीं भावों में अदल–बदल से स्थित हों तो ये अपने–अपने फल के बाधक हो जाते हैं। अर्थात् अग्रिम जन्म में कुछ फल नहीं दे सकेंगे। यदि केन्द्र त्रिकोण में इन भावेशों की स्थिति हो तो शुभ फल का बाध नहीं होता है।

बाधकत्व का निर्णय :–

समे भवेन्नराणां च विषमे स्यान्मृगीदृशाम् ।
षष्ठे वै चोरितं द्रव्यं ह्यष्टमे हननं कृतम् ।। 42 ।।
हननं हरणं रिःफे तृतीये कैतवं कृतम् ।
पौंश्चल्यं बन्धने प्रोक्तं कृतघ्नत्वं च सम्मतम् ।। 43 ।।

(i) स्त्रियों की कुण्डली में 6. 8. 12 भावों की गणना विपरीत क्रम से करनी चाहिए अर्थात् द्वितीय, षष्ठ अष्टमेश को देखें तथा पुरुषों की कुण्डली में सीधी गणना से देखें। शेष भावों की गणना भी इसी तरह विपरीत क्रम से स्त्रियों की कुण्डली में करें।

(ii) उक्त भावेश षष्ठ में हों तो चोर, अष्टम में हत्या करने वाला, द्वादश में वध व बन्धनकारी, तृतीय में धोखेबाज, एकादश में पुंश्चलत्व अर्थात् चरित्रहीनता कृतघ्नता होती है।

भाव युग्मों से विशेष विचार :–

लग्नवित्तौ, स्वदुश्चिक्यौ त्रितुयौ तुर्यपंचमौ ।
द्विषात्मजौ षष्ठमारौ स्त्रीरन्ध्रौ मृतिभाग्यकौ ।। 44 ।।

धर्मकर्मौ खलाभौ च रिःफलाभौ तनुव्ययौ ।
सम्बन्धस्तु द्वयोरेवं कथंचित्फलमुच्यते ।। 45 ।।
लाभयोगो राजभृत्यं चमूपत्वं च मन्त्रिता ।
दारुणं कर्मराजत्वं क्रमात् प्रिया मृतिं तथा ।। 46 ।।
भाग्यव्ययं राजयोगो भूमिद्रव्यमृणं व्ययम् ।
वित्तहानिर्द्वादशैते योगा वै सर्वदा मताः ।। 47 ।।

इन भाव युग्मों (जोड़ों) का विचार करें । जिस जोड़े का परस्पर सम्बन्ध बनता हो तो क्रमशः फल समझें । भावयुग्म 1. 2., 2. 3, 3. 4., 4.5, 5.6, 6.7, 7.8, 8.9, 9.10, 10.11, 11.12, 12.1 हैं ।

लग्नेश व धनेश का सम्बन्ध हो तो लाभयोग । 1. 2. 3 भावेश सम्बन्ध से राजा की नौकरी । 3. 4 भावेशों से सेनापतित्व । 4.5 भावेशों से मन्त्रीपद । 5.6 भावेशों से भयंकर कर्म करने वाला । 6.7 भावेश सम्बन्धी हों तो राजयोग । 7.8 से स्त्री की मृत्यु । 8.9 भावेशों से भाग्य हानि । 9.10 भावेशों से राज भोग । 10.11 भावेशों से भूमि, धन का लाभ । तथा 11.12 भावेशों से ऋण व खर्च । 12.1 भोवशों से सदैव धनहानि होती है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां धनयोगाध्यायः सप्तत्रिंशत्तमः ।।37 ।।

38

।।अथ दरिद्रयोगाध्यायः ।।

निर्धन योग :–

लग्नेशो वै रिःफगते व्ययेशे लग्नमागते ।
मारकेशयुतेदृष्टे निर्धनो जायते नरः ।। 1 ।।
लग्नेशे षष्ठभावस्थे षष्ठेशे लग्नमागते ।
मारकेशयुतेदृष्टे धनहीनः प्रजायते ।। 2 ।।
लग्नेन्दू केतुसंयुक्तौ लग्नपे निधनं गते ।
मारकेशयुतेदृष्टे जातो वै निर्धनो भवेत् ।। 3 ।।
षष्ठाष्टमव्ययगते लग्नपे पापसंयुते ।
धनेशे रिपुभे नीचे राजवंश्योऽपि निर्धनः ।। 4 ।।

(i) लग्नेश द्वादश में व द्वादशेश लग्न में हो तथा इनमें से विशेषतया लग्नेश अथवा कोई मारकेश (2.7 भावेश) से युत या दृष्ट हो ।

(ii) लग्नेश षष्ठ में व षष्ठेश लग्न में मारकेश से युत दृष्ट हो।

(iii) लग्न या चन्द्रमा केतु से युक्त हो तथा लग्नेश अष्टम में, मारकेश से युत दृष्ट हो। इन सब योगों में मनुष्य निर्धन होता है।

(iv) लग्नेश 6. 8. 12 में पापयुक्त हो तथा द्वितीयेश शत्रुक्षेत्री या नीचगत हो तो राजकुल में उत्पन्न व्यक्ति भी निर्धन होता है।

त्रिकेशेन समायुक्ते पापदृष्टे विलग्नपे।
शनियुक्तेऽथवा सौम्यैरदृष्टे निर्धनो नरः।। 5।।
मन्त्रेशो धर्मनाशश्च क्रमात् षष्ठव्ययस्थितौ।
दृष्टौ चेन्मारकेशेन निर्धनो जायते नरः।। 6।।
पापग्रहे लग्नगते राज्यधर्माधिपौ विना।
मारकेश युतेदृष्टे जातः स्यान्निर्धनो द्विज !।। 7।।
त्रिकेशा यत्र भावस्थास्तद्भावेशास्त्रिकस्थिताः।
पापदृष्टयुता बालो दुःखाक्रान्तश्च निर्धनः।। 8।।

(i) लग्नेश के 6. 8. 12 भावेश हों एवं लग्नेश पापदृष्ट हो अथवा शनियुक्त होकर शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो।

(ii) पंचमेश षष्ठ में व नवमेश द्वादश में मारकेश से एक साथ दृष्ट हों तो मनुष्य निर्धन होता है।

(iii) लग्न में पाप ग्रह (नवमेश दशमेश को छोड़कर) मारकेश से युत दृष्ट हो।

(iv) 6. 8. 12 भावेशों की स्थित राशियों के स्वामी 6. 8. 12 में ही हों तथा पाप दृष्ट युत हों तो इन सब योगों में मनुष्य निर्धन तथा दुःखी होता है।

चन्द्राक्रान्त नवांशेशो मारकेशयुतो यदि।
मारकस्थानगो वापि जातोऽत्र निर्धनो नरः।। 9।।
लग्नेश लग्नभागेशौ रिःफरन्ध्रारिगौ यदि।
मारकेशयुतौ दृष्टौ जातोऽसौ निर्धनो भवेत्।। 10।।

(i) चन्द्रमा का नवांशेश यदि मारकेश से युत हो या 2. 7 भावों में स्थित हो।

(ii) लग्नेश व लग्न नवांशेश दोनों ही 6. 8. 12 में मारकेश से युत या दृष्ट हों तो इन योगों में मनुष्य निर्धन होता है।

भूखा मरने का योग :–

शुभस्थानगताः पापाः पापस्थानगता शुभाः।
निर्धनो जायते बालो भोजनेन प्रपीडितः।। 11।।

सभी पापग्रह या पाराशर नियम से पापभावेश त्रिकोण में या केन्द्र में हों व सभी शुभग्रह या शुभभावेश 3.6.8.12. में हों तो मनुष्य निर्धन होता है तथा सदैव भोजन के लिए कष्ट उठाता है।

धन नाशक ग्रह :–

कोणेशदृष्टिहीना ये त्रिकेशैः संयुता ग्रहाः ।
ते सर्वे स्वदशाकाले धनहानिकराः स्मृताः ।। 12 ।।
कारकाद्वा विलग्नाद्वा रन्ध्रे रिःफे द्विजोत्तम ! ।
कारकांगपयोर्दृष्ट्या धनहीनः प्रजायते ।। 13 ।।

(i) त्रिकोणेशों की दृष्टि (या योग) से रहित जो जो ग्रह 6.8.12 भावेशों से युक्त हों, वे सब अपनी दशान्तर्दशा में धन नाशक होते हैं।

(ii) आत्मकारक या लग्न से 8.12 भाव पर लग्नेश या आत्मकारक की दृष्टि हो तो भी मनुष्य धनहीन होता है। यहाँ राशि दृष्टि से दृष्टि विचार करना योग्य है।

अधिक व्ययी योग :–

कारकेशो व्ययं स्वस्मात् लग्नेशो लग्नतो व्ययम् ।
वीक्षते चेत् तदा बालो व्ययशीलो भवेद्ध्रुवम् ।। 14 ।।

आत्मकारक ग्रह जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी यदि कारक से द्वादश भाव को देखे तो मनुष्य खर्चीले स्वभाव का होता है।

दारिद्र्य योग व उनका भंग :–

अथदारिद्र्ययोगांस्तु कथयामि सभंगकान् ।
धनसंस्थौ तु भौमेन्दू कथितौ धननाशकौ ।। 15 ।।
बुधेक्षितौ महावित्तं कुरुतो नात्र संशयः ।
निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं यमेक्षितः ।। 16 ।।
महाधनयुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ ।
शनिश्चापिरवेर्दृष्ट्या करोत्यधनात्मकम् ।। 17 ।।

अब मैं भंग सहित कुछ दारिद्र्य योगों को कहता हूँ। (i) यदि मंगल व चन्द्रमा धन भाव में एक साथ हों तो धननाशक होते हैं। यदि इन्हें बुध देखे तो व्यक्ति महाधनी होता है। सामान्यतः चन्द्र मंगल योग को लक्ष्मी कारक कहा गया है, अतः इसका अपवाद यहाँ समझना चाहिए।

(ii) द्वितीय भाव में सूर्य को शनि देखे तो यह धननाशक बहुत दरिद्रता का योग है। लेकिन द्वितीयस्थ सूर्य को शनि रहित कोई अन्य ग्रह देखे तो महाधनी योग है।

(iii) इसी तरह धन भाव में शनि को सूर्य देखे तो धनहीनता तथा सूर्य के अतिरिक्त ग्रह देखे तो धनी होता है।

बन्धन योग :–

लग्नाद्वा कारकाद् वित्तद्वादशे नवपंचमे ।
एवमेव रिपौ रिःफे तृतीयैकादशे पुनः ।। 18 ।।

चतुर्थे दशमे वापि ग्रहसाम्ये द्वयंद्वयम् ।

तथा त्रयं त्रयं तिष्ठेदिति रीत्या नभश्चराः ।। 19 ।।

वित्ते द्वौ द्वादशे द्वौ च तथा स्याच्च त्रयं मत्रयम् ।

इति क्रमेण साम्येन ग्रहा बन्धनदाः मताः ।। 20 ।।

राशिनां राशिनाथानां शुभ सम्बन्धके द्विज ! ।

निरोधो न भवेदत्र तनुपीडा प्रजायते ।। 21 ।।

द्वादशे द्वितये वापि त्रिकोणे रन्ध्रषष्ठगे ।

लाभे तृतीये खे तुर्ये पापा बन्धनकारकाः ।। 22 ।।

आत्मकारक या लग्न से 2.12, 3.11, 4.10, 5.9, 6.8, इन दो–दो भावों में एक साथ बराबर संख्या में दो दो या तीन तीन अथवा एक एक ग्रह स्थित हों तो यह बन्धन योग है ।

जैसे द्वितीय में दो तथा द्वादश में दो अथवा तीन तीन ग्रह बन्धनप्रद हैं । यदि राशीश व राशियों का शुभ सम्बन्ध बैठे तो बन्धन नहीं होता । केवल रोक लिया जाता है और शरीर पीड़ा होती है ।

इन भावयुग्मों में पापग्रहों, की विशेषतया केन्द्रेश त्रिकोणेश सम्बन्ध के अतिरिक्त सम्बन्ध से स्थिति निश्चय से बन्धनकारक है ।

इस सन्दर्भ में हमारा विचार है कि एक–एक ग्रह विशेष बन्धन कारक नहीं होते । यदि 1-1 ग्रह दो तीन उक्त भावयुगलों में एक साथ हों तथा पूर्वोक्त सब शुभ योग सम्बन्ध न हों तभी बन्धनकारक होंगे । इस विषय में हमारा जातक तत्त्वम् अखिलाक्षरा पृ. 285-290 भी देखें । इन योगों का फल इन इन ग्रहों की दशान्तर्दशा में मिलेगा । वास्तविक कैद या सजा होने के लिए योगकारक ग्रहों का लग्न या लग्नेश प्रभाव आवश्यक है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां दरिद्रयोगाध्याय अष्टत्रिंशत्तमः ।।38 ।।

39

।। अथायुर्दायाध्यायः ।।

पराशर उवाच :–

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।

आयुर्दायगतिं नृणां दुर्ज्ञेयं यत्सुरैरपि ।। 1 ।।

स्वोच्चनीचादि संस्थित्या ग्रहा आयुर्प्रदायकाः ।

स्वस्व वीर्यवशेनैवं नक्षत्राणि च राशयः ।। 2 ।।

हे मैत्रेय ! अब मैं संसार के हित की कामना से आयुर्दाय की विचित्र गति को कहता हूँ। इसे देवता लोग भी कठिनता से समझ पाते हैं।

सभी ग्रह अपने उच्च व नीच में स्थित होकर अपने–अपने बलाबल के अनुसार आयु देते हैं। इसी तरह नक्षत्र व राशियों से भी आयु का निश्चय होता है।

पिण्डायु विचार :–

पिण्डायुः प्रथमं तत्र ग्रहस्थितिवशादहम् ।

कथयामि तदाग्रेऽहं श्रृणुष्वेकाग्रमानसः ।। 3 ।।

क्रमात् सूर्यादयः खेटाः स्वोच्चस्थानगता यदा ।

नन्देन्दवस्तत्त्वमितास्तिथयोऽर्काः शरेन्दवः ।।4 ।।

प्रकृत्यो विंशतिश्चाब्दा आयुः पिण्डाः प्रकीर्तिताः ।

नीचगेष्वेतदर्धं च ज्ञेयं मध्येऽनुपाततः ।। 5 ।।

सर्व प्रथम पिण्डायु साधन कहता हूँ। सावधान होकर सुनो। क्रमशः सूर्यादि सातों ग्रह अपने परमोच्च में रहने पर 19. 25. 15. 12. 15. 21. 20 वर्ष आयु देते हैं। अतः इन्हें आयुः पिण्ड समझना चाहिए। यदि ग्रह परमनीच में हों तो इन वर्षों के आधे वर्षों के बराबर आयु देते हैं। बीच में रहने पर अनुपात से वर्ष जानें।

वराह ने स्पष्टतया यह पिण्डायुः प्रकार पराशर समर्थित (या प्रोक्त) कहा है। 'मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैः' शक्ति पुत्र अर्थात् पराशर। अतः ये आयुः प्रकार निश्चय से पाराशरीय ही हैं। इसी के आधार पर सारावली आदि में भी ये कहे गए हैं।

पिण्डायु का स्पष्टीकरण :–

स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्भादूनो भमण्डलात् ।

स्वपिण्डगुणितो भक्तो भादिमानेन वत्सराः ।। 6 ।।

ग्रह स्पष्ट में उसी ग्रह का परमोच्च मान घटाकर शेष को षड्भाधिक करें। अर्थात् शेष यदि 6 राशियों से अधिक हो तो यथावत् और कम हो तो 12 राशियों में से घटाकर शेष को लें। उसे ग्रह के पूर्वोक्त आयु पिण्ड के वर्षों से गुणा करने पर वर्षादि उस ग्रह की पिण्डायु होती है।

यह श्लोक पिण्डायु के सन्दर्भ में ही मामूली हेरफेर के साथ सारावली में भी आया है। सामान्यतः अपने से पूर्ववर्ती व मान्य ग्रन्थ से उद्धरणार्थ तथा लाघवार्थ श्लोक ले लेना कोई बड़ी बात नहीं थी। मौखिक शास्त्र परम्परा होने से ऐसा होना आश्चर्यजनक नहीं है। पाराशर होरा से बहुत से श्लोक साधारण फेरबदल से या यथावत् अवान्तर ग्रन्थों में मिलते हैं।

हमारे उदाहरण में स्पष्ट सूर्य 9.11.15 में से सूर्य का परमोच्च 0.10.0 घटाया तो शेष 9.1°15′ स्वयं ही षड्भाधिक है। अतः सूर्य के पिण्डायु वर्ष 19 से इसे गुणा किया। 171.19°..285′ को सवर्ण किया तो 14. 3. 23. 45 वर्ष, मास, दिन, घड़ी पलात्मक सूर्य की पिण्डायु है।

चन्द्र स्पष्ट 2. 11°. 21′- चन्द्रोच्च 1.3°.0 = 1.8°21′ को 12 में से घटाया तो 10. 21°. 39′ शेष को चन्द्र आयु वर्ष 25 से गुणा किया 250. 525°. 975′ मिला। कला में 60 का अंश में 30 का व राशि में सर्वत्र 12 का भाग दिया जाएगा। अतः 22. 4. 1.15 चन्द्रमा की पिण्डायु है। मंगल स्पष्ट 7. 14. 12—-मंगलोच्च 9. 28. 0 = 9. 16. 12 स्वयं षड्भाधिक है। अतः मंगल के आयु वर्ष 15 से गुणा किया तो 135. 240. 180° को सवर्ण किया तो 11. 11. 3.0 मंगल की आयु है। इसी विधि से सबकी पिण्डायु निकालकर यहाँ दी जा रही है।

सूर्य 14. 3. 23. 45	बुध 7. 11. 19. 24	शनि 19. 0. 5. 0
चन्द्र 22. 4. 1. 15	गुरु 14. 11. 15. 00	लग्न– 0. 10. 2. 24
मंगल 11. 11. 3. 00	शुक्र 18. 7. 17. 45	

लग्नायुर्दाय की विधि कुछ भिन्न है जो आगे यथावसर बताई जाएगी। तदनुसार साधन करके यहाँ लिखी गई है।

पिण्डायु के संस्कार :–

अस्तगस्तु हरेत्स्वार्धं विना शुक्र शनैश्चरौ।
वक्रचारं विना त्र्यंशं शत्रुराशौ हरेद् ग्रहः।। 7।।

(i) शुक्र व शनि को छोड़कर शेष सभी अस्तंगत की, पूर्वागत आयु का आधा नष्ट हो जाता है।

(ii) वक्री ग्रह को छोड़कर शेष कोई भी ग्रह शत्रु क्षेत्री हो तो उसकी पूर्व प्राप्त आयु का तिहाई अर्थात् $\frac{1}{3}$ भाग नष्ट हो जाता है।

इस सन्दर्भ में कुछ लोग केवल मंगल को ही शत्रुक्षेत्री होने पर हानि नहीं करते। अर्थात् वे 'वक्र' का अर्थ मंगल लेते हैं। पुनश्च बहुमत सम्मत अर्थ ऊपर कह दिया है।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में बुध को अस्तंगत होने से आधी हानि प्राप्त है। शनि व सूर्य शत्रु क्षेत्री इनमें शनि वक्री नहीं है, अतः दोनों को $\frac{1}{3}$ प्राप्त है।

चक्रार्धहानिः—

सर्वार्धत्रिचतुःपंचषष्ठभागं क्रमाद् ग्रहः।
व्ययाद्वामं स्थितः पापो हरेत् सौम्यश्च तद्दलम्।। 8।।

12. 11. 10. 9. 8. 7 इन भावों में स्थित पाप ग्रह क्रमशः $\frac{1}{1}, \frac{1}{2}, \frac{1}{3}, \frac{1}{4}, \frac{1}{5}, \frac{1}{6}$ भाग आयु नष्ट करता है। शुभ ग्रह इसी क्रम से उक्त का आधा $\frac{1}{2}, \frac{1}{4}, \frac{1}{6}, \frac{1}{8}, \frac{1}{10}, \frac{1}{12}$ भाग नष्ट करता है।

एकभेतु बहुष्वेको बली स्वांशं हरेद् ग्रहः।
नात्र क्षीणस्य शशिनः पापत्वं मुनिभिः स्मृतम्।। 9।।

यदि एक राशि में कई ग्रह हों तो उनमें से एक बली ग्रह को ही हानि होगी। इस सन्दर्भ में अर्थात् आयु साधन में क्षीण चन्द्रमा को पापी नहीं माना जाता है।

हमारे उदाहरण में चन्द्रमा को $\frac{1}{2}$, शुक्र को $\frac{1}{10}$ व सूर्य बुध को $\frac{1}{6}$ व $\frac{1}{12}$ चक्रार्ध हानि प्राप्त है। इनमें सूर्य बलवान् है। अतः उसे ही हानि होगी।

बुध की आयु 7.11.19.24 का आधा अस्तंगत संस्कार किया तो बुध की स्पष्टायु 3.11.24.42 है। शनि को शत्रुक्षेत्र हानि $\frac{1}{3}$ प्राप्त है अतः शनि की आयु 19.0.5 में से इसी का तिहाई 6.4.1.40 घटाया तो 12.8.3.20 वर्षादि शनि की आयु रही। सूर्य को भी यही हानि है। अतः उसकी आयु का तिहाई 4.9.7.55 घटाया तो 9.6.15.50 तथा चक्रार्ध हानि तथा पुनः इसका $\frac{1}{6}$ भाग 1.7.2.38 घटाया तो सूर्य की आयु 7.11.13.12 हुई। चन्द्रमा की चक्रार्ध हानि के बाद पूर्वागत की आधी 11.2.0.38 आयु है। शुक्र की $\frac{1}{10}$ चक्रार्ध हानि से 1.10.10.5 घटाने से शेष 16.9.7.40 आयु है।

पापोदय हरण :–

लग्नांशलिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विहगायुषा ।

भाज्या मण्डललिप्ताभिर्लब्धं वर्षादि शोधयेत् ।। 10 ।।

स्वायुषो लग्नगे सूर्ये मंगले च शनैश्चरे ।

तदर्धं शुभसंदृष्टे पातयेद् द्विजसत्तम ! ।। 11 ।।

यदि लग्न में सूर्य, मंगल या शनि इनमें से कोई हो तो लग्न के सम्पूर्ण अंशों की कलाएँ बनाकर अर्थात् कलात्मक लग्न स्पष्ट को प्रत्येक ग्रह की आयुर्दाय से गुणा कर, गुणनफल में 21600 कलाओं का भाग दें। जो वर्षादि लब्धि हो उसे पूर्वागत आयुर्दायों में से घटाना चाहिए। यदि लग्न को साथ ही शुभ ग्रह देखता हो तो आधा ही घटाएँ।

हमारे उदाहरण में लग्न में पाप ग्रह नहीं है। अतः यह संस्कार लागू नहीं है। इस विषय में हमारा बृहज्जातक आयुर्दाय, श्लोक 4 की अभिनव व्याख्या अवश्य देखें।

लग्नायुर्दाय साधन :–

लग्नराशिसमाश्चाब्दा भागाद्यैरनुपाततः ।

मासादिका इतीच्छन्ति लग्नायुःकेऽपि कोविदाः ।। 12 ।।

लग्नदायोऽंशतुल्यः स्यादन्तरे चानुपाततः ।

तत्पतौ बलसंयुक्ते राशितुल्यं च भाधिपे ।। 13 ।।

(i) कुछ आचार्यों का मत है कि लग्न राशि के तुल्य वर्ष तथा आंशादि से अनुपात करके लग्नायु जाननी चाहिए।

(ii) वास्तव में लग्न नवांश के तुल्य वर्षादि जानने चाहिएँ। यदि लग्न राशि भी बलवान् हो तो लग्न राशि तुल्य वर्ष और जोड़ लेने चाहिए।

इनमें द्वितीय प्रकार बहुमतसम्मत है। इस विषय में हमारे बृहज्जातक अभिनव भाष्य का आयुर्दायाध्याय भी देखें। लग्न में जो पहला, दूसरा आदि नवांश उदित हो, उतने ही वर्ष की आयु समझें। अंशादि से अनुपात करें। लग्नस्पष्ट के अंशादि को (राशि के बिना) कलात्मक बनाकर 200 का भाग देकर क्रमशः वर्षादि आयु होगी।

लग्नस्पष्ट $3.2^{\circ}.48'$ का अंश भाग $2^{\circ}.48'$ की कला $168 \div 200 = 0$ वर्ष, शेष $168 \times 12 = 2016 \div 200 = 10$ मास। शेष $16 \times 30 = 480 \div 200 = 2$ दिन। शेष $80 \times 60 = 4800 \div 200 = 24$ घड़ी लग्नायुर्दाय है। लग्न राशि बुध के साथ–साथ सूर्य से भी दृष्ट है। अतः राशि तुल्य वर्ष और नहीं माने गए।

इस प्रकार प्राप्त आयुर्दायों में वृद्धि संस्कार भी किए जाएँगे। वृद्धि संस्कार सभी आयुर्दायों में समान हैं। अतः आयु भेदों के बाद वृद्धि संस्कार यहाँ बताए गए हैं।

निसर्गायु साधन :–

अथ विप्र ! निसर्गायुः खेटानां कथयाम्यहम्।

चन्द्रार ज्ञसिते ज्यार्कशनीनां क्रमशोऽब्दकाः ।।14।।

एकद्व्यकनखा धृत्यो कृतिः पंचाशदेवहि।

जन्मकालात् क्रमाज्ज्ञेया दशाश्चैता निसर्गजाः ।।15।।

अब मैं ग्रहों की निसर्गायुर्दाय कहता हूँ। चन्द्रमा, मंगल, बुध, शुक्र, गुरु, सूर्य, शनि इस क्रम से 1. 2. 9. 20. 18. 20. 50 इतने वर्षों तक जन्म से लेकर 120 वर्षो तक निसर्गायुर्दाय (दशा) रहती है।

इस आयुर्दाय में हानि संस्कार भी पूर्ववत् होते हैं। इसके बाद भी यदि जीवन रहे तो यावज्जीवन लग्न की दशा मानी जाती है। पिण्डायु की तरह ही निसर्गायु भी आएगी। इसी निसर्गायु को ध्रुवायु भी कहीं कहीं पर कहा जाता है।

अंशायुर्दाय साधन :–

नवांशायुः सलग्नानां खेटानां कथयाम्यहम्।

नवांशराशितुल्यानि खेटो वर्षाणि यच्छति ।।16।।

भादिं खगं खगैर्हत्वा सूर्यैश्चतद्भगणादिकम्।

कृत्वार्कशेषितं ज्ञेयमब्दाद्यंशायुषः स्फुटम् ।।17।।

अब मैं ग्रहों की नवांशायु बतलाता हूँ। नवांश राशि के तुल्य वर्ष प्रत्येक ग्रह आयु देता है।

राश्यादि स्पष्टग्रह को 9 से गुणा कर पुनः 12 से गुणा करके सवर्ण करें। तब भगणादि वर्ष 12 से शुद्ध करके अंशायु समझें। इस प्रकार में लग्नायुर्दाय भी इसी विधि से ही जाना जाता है।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3. 2. 48 में नवांश राशि कर्क है। 3. 2. 48×9 = 27. 18. 432×12 = 324. 216°. 5184′ मिलां। इसे सवर्ण किया। अर्थात् ये राशि अंश, कला हैं। अतः 12. 30. 60 से भाग देकर संख्या प्राप्त की। 27. 10. 2. 24 वर्षादि (भगणादि) हैं। वर्ष संख्या 12 से अधिक होने से वर्ष में 12 का भाग दिया तो 3. 10. 2. 24 यह लग्न की अंशायु है।

इसका एक सीधा प्रकार है कि ग्रह नवांश में जिस राशि में हो उससे एक कम राशि संख्या वर्ष हैं। अंशादि की पूर्ववत् त्रैराशिक करने से आयु होगी। अर्थात् ग्रह या लग्न की भुक्त अर्थात् गत नवांश राशि वर्ष है। यहाँ कर्क नवांश वर्तमान तथा मिथुन गत है। अतः गत नवांश तुल्य 3 वर्ष तथा वर्तमान नवांश के $2^\circ.48'$ अंश की कला $168 \times 12 = 2916 \div 200 = 10$ मास। शेष $16 \times 30 = 480 \div 200 = 2$ दिन शेष $80 \times 60 = 4800 \div 200 = 24$ घड़ी अर्थात् 3.10.2.24 वर्षादि पूर्ववत् नवांशायु है।

सूर्यस्पष्ट $9.11^\circ.15'$ वर्तमान नवांश मेष तथा गत नवांश मीन अतः 12 वर्ष रहे। $11^\circ.15'$ से पूर्ववत् कलात्मक बनाकर 200 से भाग दिया तो 4 मास 15 दिन मिले। नवांशायु अधिकतम 12 वर्ष हो सकती है अतः 12 से भाग दिया तो 0.4.15 सूर्य की नवांशायु है। इस विधि से सबकी आयु (अंशायु) इस तरह है।

सूर्य – 0.4.15.0	बुध – 1.9.5.24	शनि 5.3.27.00
चन्द्र–9.4.25.18	गुरु – 1.9.18.0	लग्न 3.10.2.24
मंगल 7.3.3.36	शुक्र–10.11.3.00	

अंशायु में हानि :–

पिण्डायुरिव तत्रापि हानिं कुर्याद् विचक्षणः।
क्रूरोदयस्य पातस्तु नात्रकार्यस्ततो द्विज!।। 18।।
अथापरो विशेषोऽपि कैश्चिद् विज्ञैरुदाहृतः।
साधितायुः खगे स्वोच्चे वक्रे वा त्रिगुणं मतम्।
वर्गोत्तमे स्वद्रेक्काणे स्वर्क्षे च द्विगुणं स्मृतम्।। 19।।
उभयत्रगते खेटे कार्यं त्रिगुणमेव हि।
हानिद्वयेऽर्धहानिः स्यादित्यायुः प्रस्फुटं नृणाम्।। 20।।

पिण्डायु की तरह अस्तंगत हानि, शत्रुक्षेत्र हानि चक्रार्ध हानि आदि संस्कार अंशायु में भी होंगे। लेकिन लग्न गत पाप ग्रह की हानि इस विधि में नहीं होती। इसके बाद आयु में वृद्धि संस्कार होंगे। यदि ग्रह उच्च में या वक्री हो तो प्राप्त आयु को तिगुना करें। यदि वर्गोत्तम नवांश, स्वक्षेत्र या स्वद्रेष्काण में हो तो दुगुनी वृद्धि करें।

यदि एक साथ किसी ग्रह को छोटी व बड़ी हानि या वृद्धि प्राप्त हो तो केवल एक बार ही उनमें से सबसे बड़ी हानि वृद्धि करें। वृद्धि संस्कार अंशायु में ही कहे गए हैं। पिण्डायु में वृद्धि संस्कार नहीं होता।

हमारे उदाहरण में चन्द्रमा को आधी चक्रपात हानि करने से उसकी आयु 4.8.12.21 वर्षादि रही। शुक्र को $\frac{1}{10}$ चक्रपात हानि करने से उसकी आयु 9 वर्ष 10 मास रही।

सप्तमस्थ सूर्य को $\frac{1}{6}$ हानि करने पर 0.3.23 वर्ष तथा शत्रु क्षेत्र हानि करने से 0.2.15 वर्ष आयु रही। बुध की अस्तंगत हानि करने 0.10.17.42 वर्षादि तथा शनि की शत्रु क्षेत्र हानि करने पर 3.6.18 वर्षादि आयु रही। अतः हानि संस्कृत आयु वर्ष उदाहरण में इस तरह रहे।

सूर्य 0.2.15.0 बुध 0.10.17.42 शनि 3.6.18.0
चन्द्र 4.8.12.29 गुरु 1.9.18.0 लग्न 3.10.2.24
मंगल 7.3.3.36 शुक्र 9.10.0.0

अब इनमें वृद्धि करेंगे। यद्यपि उच्च नवांश का ग्रहण ऊपर नहीं किया है तथापि हमारा विचार है कि ऐसा होने पर तिगुनी नहीं तो दुगुनी वृद्धि तो करनी चाहिए। हमारे उदाहरण में इससे साधारण अन्तर ही पड़ेगा। अतः यह संस्कार हम सूर्य को नहीं कर रहे हैं।

मंगल व शुक्र वर्गोत्तमी होने से दुगुनी वृद्धि पाएँगे। मंगल स्वक्षेत्री भी है। अतः दुगुनी वृद्धि इस तरह से भी प्राप्त है। लेकिन नियमानुसार एक बार ही दुगुनी वृद्धि करें। तब 14.6.9 वर्ष आयु मंगल की है। व 19.8 वर्ष शुक्र की है। बुध गुरु को वक्री होने से तिगुनी वृद्धी करेंगे तब 2.7.24 बुध की 5.4.24 गुरु की आयु हुई। वर्गोत्तम लग्न होने से लग्नायु को भी दुगुना करने पर 7.8.5 वर्ष रही। स्पष्टायु चक्र दिया जा रहा है।

अंशायुर्दाय चक्रम् (उदाहरण)

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न	योग
वर्ष	0	4	14	2	5	19	3	7	58
मास	2	8	6	7	4	8	6	8	4
दिन	15	13	8	24	24	0	18	5	17

।।पिण्डायुर्दायचक्रम्।।(उदा.)

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न	योग
वर्ष	7	11	11	3	14	16	12	0	70
मास	11	2	11	11	11	9	8	10	3
दिन	13	0	3	24	15	7	3	2	10
घटी	12	38	0	42	0	40	20	4	0

एवं संसाध्य चान्येषां हन्यात् स्वस्वपरायुषा।
नृणां परायुषा भक्त्वा तेषामायुः स्फुटं भवेत्।। 21।।

उक्त प्रकार से साधितायु मनुष्यों के लिए है। यदि किसी अन्य जन्तु की आयु निकालनी हो तो आगे कहे जा रहे परमायु प्रमाण से पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध आयु को गुणा करके 120 से भाग देने पर उस जीव की आयु स्पष्ट हो जाएगी।

विविध जन्तुओं की परमायु :–

अथायुः परमं वक्ष्ये नानाजातिसमुद्भवम्।
अनन्तसंख्यं देवानामृषीणां च द्विजोत्तम!।। 22।।
गृध्रोलूकशुकध्वांक्षसर्पाणां च सहस्रकम्।
श्येनवानरभल्लूक मण्डूकानां शतत्रयम्।। 23।।
पंचाशदुत्तर शतं राक्षसानां प्रकीर्तितम्।
नराणां कुंजराणां च विंशोत्तरशंत तथा।। 24।।
द्वात्रिंशद् घोटकानां च पंचविंशत् खरोष्ट्रयोः।
वृषाणां महिषाणां च चतुर्विंशति वत्सरम्।। 25।।
विंशत्यायुर्मयूराणां छागादीनां च षोडश।
हंसानां पंचनव च पिकानां द्वादशाब्दकाः।। 26।।
शुनां पारावतानां च कुक्कुटानां समाष्टकम्।
बुद्बुदाद्यण्डजादीनां परायुः सप्त वत्सराः।। 27।।

अब मैं विविध जन्तुओं की परमायु कहता हूँ। गिद्ध, उल्लू, तोता, कौआ व सर्प की 1000 वर्ष। बाज, वानर, भालू, मेंढक की 300 वर्ष।

राक्षसों की 150 वर्ष। मनुष्य व हाथी की 120 वर्ष। घोड़े की 32 वर्ष। गधा व ऊँट की 25 वर्ष। बैल व भैंस की 24 वर्ष। मोर की 20 वर्ष, भेड़ बकरी की 16 वर्ष। हंस की 14 वर्ष, कोयल, कुत्ता व कबूतर की 12 वर्ष। मुर्गे की 8 वर्ष तथा अन्य बुलबुल आदि पक्षियों की 7 वर्ष परमायु है।

आयुः प्रकार का ग्रहण :–

यदेतदधुना प्रोक्तं त्रिधायुर्द्विजसत्तम !।
तेषु किंच कदा ग्राह्यमिति ते कथयाम्यहम्।।28।।
विलग्नपे बलोपेते शुभदृष्टेंश सम्भवम्।
रवौ पिण्डोद्भवं ग्राह्यं चन्द्रे नैसर्गिकं तथा।।29।।
बलसाम्ये द्वयोर्योगदलमायुः प्रकीर्तितम्।
त्रयाणां त्रियुतेस्त्र्यंशसमं ज्ञेयं द्विजोत्तम !।।30।।

पिण्डायु, निसर्गायु व अंशायु ये जो तीन आयु प्रकार कहे हैं, इनमें से कौन सा प्रकार कब लेना चाहिए, इस विषय में अब मैं बताता हूँ। लग्नेश बलवान् हो तो निसर्गायु ग्रहण करनी चाहिए।

यदि सूर्य, चन्द्र व लग्न में से कोई दो बली हों तो उन दोनों की आयु का योग करके आधा कर लें तथा तीनों बली हों तो तीनों प्रकार से आयु निकालकर तीसरा भाग ले लें।

इनके अतिरिक्त अष्टक वर्गायु, रश्मिजायु, नक्षत्रायु (विंशोत्तरी दशा) आदि दशा या आयुर्दाय होते हैं, इन्हें यथावसर तत्तत् प्रकरणों में कहा जाएगा।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा सुबली तथा सूर्य भी बली है। अतः दोनों आयुर्दायों का योग 58.4.17 + 70.3.10 = 128.7.27 ÷ 2 = 64 वर्ष 3 मास 28 दिन आयु रहेगी।

आयुः साधन का अन्य (जैमिनीय) प्रकार :–

अथान्यदपि वक्ष्यामि श्रृणु त्वं द्विजसत्तम !।
यस्य विज्ञानमात्रेण कालज्ञो भवति ध्रुवम्।।31।।
लग्नेशाष्टमनाथाभ्यामायुर्दायं विचिन्तयेत्।
दीर्घमध्याल्पयोगत्वं यथावद् गदतो मम।।32।।

यहाँ से मैं आयु साधन का एक अन्य विशेष प्रकार (जैमिनीय पद्धति के नाम से प्रसिद्ध) कह रहा हूँ, जिसके ज्ञान से मनुष्य वास्तव में कालज्ञ हो जाता है।

लग्नेश व अष्टमेश से आयु का विचार करें। दीर्घ, मध्य व अल्पायु का विचार कैसे होगा यह बताया जा रहा है।

दीर्घायुर्योग :–

चरे स्थितौ यदि स्यातां लग्नरन्ध्राधिपौ यदि।

दीर्घायुर्योगविज्ञेयः निर्विशंकं द्विजोत्तम !।। 33।।

एकः स्थिरेऽपरो द्वन्द्वे दीर्घमायुस्तथैव च।। 34।।

लग्नेश व अष्टमेश दोनों चर में हों तो दीर्घायु योग है। अथवा ये दोनों स्थिर व द्विस्वभाव में स्थित हों तो भी दीर्घायु योग है।

मध्यायुर्योग :–

एकश्चरेऽपरोऽगे चेत् मध्यायुः समुदाहृतम्।

द्वौ द्वन्द्वे स्थितौ स्यातां मध्यमायुस्तदा भवेत्।। 35।।

लग्नेश व अष्टमेश चर व स्थिर में हों अथवा दोनों द्विस्वभाव राशियों में स्थित हों तो मध्यायु योग होता है।

अल्पायुर्योग :–

अंगाधीशे चरे यस्य द्वन्द्वभे रन्ध्रनायके।

विलोमाद्वा स्थिरे द्वौ चेत् तदाल्पायुः प्रकीर्तितम्।। 36।।

दोनों (लग्नेश व अष्टमेश) चर व द्विस्वभाव में हों अथवा दोनों ही स्थिर राशि में हों तो अल्पायु योग होता है।

आदौ लग्नाष्टमेशाभ्यां योगमेकं विचिन्तयेत्।

द्वितीयं लग्नचन्द्राभ्यां तृतीयं मन्दचन्द्रतः।।37।।

संवादादायुषां विप्र ! निर्णयः सर्वदा बुधैः।

द्वयोर्योगेन संग्राह्यं न ग्राह्यं चैकरूपतः।।38।।

योगत्रयं त्रयं रूपं भिन्नं भिन्नं भवेद्यदा।

होरा लग्नविलग्नाभ्यां प्राप्तायुर्योगनिश्चयः।। 39।।

उक्त प्रकार से सर्वप्रथम लग्नेश व अष्टमेश से, पुनः शनि व चन्द्र से पूर्ववत् चर स्थिरादि में स्थिति से आयुर्योग का निश्चय करें। जो आयु दो प्रकार या तीनों प्रकार से आए, उसे ही मानें। यदि तीनों प्रकार से भिन्न आयु मिले तब लग्न व होरा लग्न से अन्तिम निर्णय करें। उनसे प्राप्त आयु ही निश्चित रूप से होती है।

लग्ने वा सप्तमे चन्द्रे ग्राह्यं लग्नेन्दुतस्तदा।

ह्रासो वृद्धिश्च कक्ष्यायाः प्रवक्ष्यामि यथाविधि।। 40।।

यदि लग्न या सप्तम में चन्द्र हो तो लग्न व चन्द्र से प्राप्त आयु को निर्णायक समझें। सभी आयुः प्रकारों में ह्रास व वृद्धि करनी होगी जो आगे विधिवत् बताई जाएगी।

हमारे उदाहरण में लग्नेश द्विस्वभाव में व अष्टमेश स्थिर में है, अतः दिर्घायु योग है। लग्न चर में व चन्द्रमा द्विस्वभाव में, अतः अल्पायु योग है। शनि स्थिर में व चन्द्र द्विस्वमाव में होने से दीर्घायु योग है। इन तीनों में दीर्घायु योग बहुमत प्राप्त है। लेकिन शनि चन्द्र व लग्न चन्द्र को एक ही प्रकार मानने से तीसरा प्रकार लग्न व होरालग्न आता है। हमारे उदाहरण में होरालग्न 7.7.45 है, अतः लग्न चर में व होरा स्थिर में रहने से मध्यायु आती है। बहुमत दीर्घायु के पक्ष में पहले ही जा चुका है।

दीर्घादि आयु के तीन–तीन भेद :–

दीर्घे योगत्रयेणैवं विंशोत्तरशतात्मकम्।
अष्टोत्तरशतं द्वाभ्यां हीने षण्णवतिर्मतम्।। 41।।
मध्ये योगत्रयेऽशीतिर्द्वाभ्यां द्वासप्ततिर्मतम्।
चतुः षष्टिमितं ह्यायु योगेनैकेन चिन्तयेत्।। 42।।
अल्पे योगत्रयेणात्र द्वात्रिंशन्मितवत्सराः।
योगद्वयेन षट्त्रिंशत् योगैनेकेन खाब्धयः।। 43।।
एवं दीर्घ समाल्पेषु खाब्धयो रसवह्नयः।
खण्डा दन्तमितास्तेभ्यः स्फुटमायुः प्रसाधयेत्।। 44।।

(i) यदि तीनों तरह से दीर्घायु हो तो 120 वर्ष, दो तरह से 108 तथा एक तरह से 96 वर्ष आयु है।

(ii) यदि इसी तरह से मध्यायु हो तो क्रमशः 80. 72. 64 ये वर्ष्र हैं।

(iii) अल्पायु यदि तीन तरह से आए तो 32 वर्ष, दो तरह से आए तो 36 तथा एक तरह से आए तो 40 वर्ष समझें।

इन दीर्घ, मध्य व अल्पायु योगों में क्रमशः 40, 36, 32 खण्ड समझने चाहिए। खण्ड गुणक को कहते हैं तथा इसका उपयोग स्पष्टायुः निकालने में आगे होगा।

आयु स्पष्ट करना :–

पूर्णं राश्यादिगे चान्ते हानिर्मध्येऽनुपाततः।
योगकारकखेटांशयोगस्तत् संख्यया हृतः।। 45।।

लब्धांशास्तु यथा प्राप्त खण्डघ्नास्त्रिंशदोद्धृताः ।

लब्धं वर्षादिभिर्हीनं प्राप्तायुः प्रस्फुटं भवेत् ।। 46 ।।

योगकारक ग्रह राशि के प्रारम्भ में पूर्ण आयु तथा अन्त में अपने खण्ड के तुल्य वर्षों की हानि करता है । अतः ग्रह मध्य में स्थित हो तो अनुपात करना चाहिए ।

जिन ग्रहों या लग्नादि से आयु विचार कर खण्ड निश्चय किया हो, उन ग्रहों की राशियों को छोड़कर अंशादिकों का योग करें । उस योग में जितने योगकारक ग्रह हों उनकी संख्या से भाग दें । लब्धि को प्राप्त खण्ड से गुणा (पुनः 12 से गुणा कर) गुणनफल में 30 का भाग दें । लब्धि वर्षादि होगी । उसे दीर्घ, मध्य या अल्प जो भी आयु निश्चय हुई हो उसकी वर्ष संख्या में से घटाने पर स्पष्टायु (जैमिनीय मत) से होती है ।

आयु साधन का यह समस्त विषय हम अपने सम्पूर्ण जैमिनि सूत्र भाष्य के पृ. 86 - 114 पर विस्तार से सोदाहरण स्पष्ट कर चुके हैं । पुनरपि यहाँ संक्षेप में विचार करते हैं ।

कक्ष्याह्रास का विचार :–

योगहेतौ शनौ कक्ष्या ह्रासोऽन्यैर्वृद्धिरुच्यते ।

न स्वर्क्षतुङ्गगे वादि पापदृष्टयुतेक्षिते ।। 47 ।।

पूर्वोक्त प्रकार से आयु का खण्ड (दीर्घ मध्य या अल्प) का निश्चय जब हो जाए, तब आयुर्योग कारक ग्रहों में शनि भी कहीं सम्मिलित हो अर्थात् आयुनिर्णायक हो तो कक्ष्याह्रास अर्थात् प्राप्त आयु खण्ड को एक पग पीछे हटा लेते है । जैसे दीर्घ खण्ड आया हो तो मध्यायु मानें, मध्यायु में अल्पायु व अल्पायु में हीनायु समझकर उक्त गणित क्रिया करें ।

(i) यदि शनि स्वक्षेत्री, उच्चगत या मूलत्रिकोणी हो या केवल पापग्रहों से युत या दृष्ट हो और योगकारक न हो तब कक्ष्या हानि नहीं करेंगे ।

(ii) शनि के योग हेतु होने पर कुछ लोग यथावत् आयु मानते हैं । अर्थात् कक्ष्या हानि नहीं करते, अपितु शनि द्वारा प्राप्त खण्ड को ही अधिक प्रामाणिक समझते हैं । इसके विपरीत कुछ लोग योग कारक शनि होने से आयु में वृद्धि समझते हैं ।

कक्ष्या वृद्धि विचार :–

लग्नसप्तमगे जीवे शुभमात्रयुतेक्षिते ।

कथितस्यायुषो विप्र ! कक्ष्या वृद्धिः प्रजायते ।। 48 ।।

यदि 1.7 भाव में बृहस्पति हो तो वह गुरु केवल शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो प्राप्त खण्ड में वृद्धि होती है। अर्थात् अल्पायु की जगह मध्यायु, व मध्यायु की जगह दीर्घायु तथा दीर्घायु के स्थान पर पूर्णायु या अमितायु मानी जाती है।

कक्ष्याह्रास वृद्धि का लक्षण :–

अनायुश्चेद् भवेदल्पमल्पान्मध्यं प्रजायते।
मध्यमाज्जायते दीर्घं दीर्घायुश्चेत् ततोऽधिकम्।। 49।।
योग हेतो गुरावेवं कक्ष्यावृद्धिः प्रजायते।
एतस्माद्वैपरीत्येन कक्ष्याह्रासः शनौ भवेत्।। 50।।

कक्ष्या वृद्धि आने पर हीनायु को अल्पायु, अल्पायु को मध्य, मध्य को दीर्घ व दीर्घ को अतिदीर्घ समझें। उक्त प्रकार से योग कारक गुरु हो तो कक्ष्या वृद्धि तथा शनि होने से कक्ष्या ह्रास विपरीत क्रम से अर्थात् अतिदीर्घ में दीर्घ, दीर्घ में मध्य व मध्य में अल्प तथा तत्पश्चात् हीनायु मानें।

(i) अपने पूर्वोक्त उदाहरण में दो प्रकार से दीर्घायु आने से हमने दीर्घायु वर्ष 108 मान लिए। यह आयु खण्ड 72 वर्ष से 108 वर्ष तक होता है तथा इसका गुणकखण्ड दोनों का अन्तर 36 वर्ष है।

(ii) लग्न या सप्तम में गुरु नहीं है, अतः कक्ष्या वृद्धि नहीं होगी।

(iii) योग कारक अष्टमेश शनि रहने से कक्ष्याहानि प्राप्त है। अतः इससे निचला खण्ड 36-72 वर्ष तथा गुणक 36 मान लिया। यदि एक साथ हानि वृद्धि प्राप्त हो तो पहले हानि करके पुनः वृद्धि करें अर्थात् यथावत् आयु ग्रहण कर लें।

योगकारक लग्नेशचन्द्र	2. 11°. 21′	
+ योगकारक अष्टमेश शनि	7. 7°. 45′	
	– . 19°. 06′	भुक्तांश योग

योग कारक संख्या 2 है। अतः 19°.6′ ÷ 2 = 9°.33′ मिला। यहाँ शनि व चन्द्र को एक बार लग्नेश अष्टमेश होने से व दूसरी बार शनि चन्द्र के कारण जोड़ते तो 4 से भाग देते। तब भी एक ही बात होती।

9°.33′ × खण्ड 36 = 324 .1188 या 343.58 हुआ। इसे 12 से गुणा किया तो 4116 .576 या 4125. 36 दिन मिले। इन्हें वर्षादि बनाया 4125 ÷ 30 = 137 मास 15 दिन 26 घड़ी हुई। 137 ÷ 12 तो 11 वर्ष 5 मास 15 दिन 36 घड़ी मिली। आयुखण्ड 72 में से इसे घटाया तो शेष 60 वर्ष 6 मास 14 दिन 24 घड़ी आयु स्पष्ट है। यदि योगकारक ग्रहों के

भोग्यांशो से उक्त क्रिया करते तो निचली सीमा 36 वर्ष में यह फल जोड़ते। फल समान ही होता।

एक अन्य प्रकार :–

लग्नाष्टमनाथाभ्यां लग्नकारकयोः पुनः।
अस्तराशिवशाच्चैवमायुषो निश्चयः कृतः।। 51।।
चरे चरे भवेद्दीर्घं स्थिरे मध्यं भवेद्वयः।
द्विस्वभावे तु विप्रेन्द्र ! अल्पायुः सम्प्रकीर्तितम्।। 52।।
चर स्थिरे स्थिरद्वन्द्वे द्वन्द्वे द्वन्द्वे क्रमात् पुनः।
दीर्घमध्याल्पखण्डानि ज्ञेयं भिन्नर्क्षतो द्विज !।। 53।।
तत्र शनावादि भागे राहौ मध्ये तु खण्डके।
केतावन्ते भवेन्मृत्युरिति नैर्याणिको विधिः।। 54।।

(i) लग्नेश व अष्टमेश तथा आत्मकारक व लग्न इन दोनों व इनके सप्तम भाव में स्थित राशि से भी आयु का निश्चय होता है।

(ii) दोनों जगह चर राशि हो तो दीर्घ, स्थिर राशि हो तो मध्य व द्विस्वभाव हो तो अल्पायु होती है।

(iii) चर स्थिर हो तो दीर्घ, स्थिर द्विस्वभाव हो तो मध्य व द्विस्वभाव द्विस्वभाव हो तो अल्पायु होती है।

(iv) यदि उक्त राशि या सप्तम स्थान में शनि हो तो खण्ड के शुरू में, राहु हो तो मध्य में व केतु हो तो अन्त में मृत्यु होती है।

हमारे उदाहरण में लग्न चर व आत्मकारक शुक्र स्थिर में है। अतः दीर्घायु योग है। या लग्न से सप्तम में चर व आत्मकारक से सप्तम में स्थिर होने से भी दीर्घायु योग है।

लग्नेश चन्द्रमा द्विस्वभाव में व अष्टमेश स्थिर में अतः मध्यायु तथा इनसे सप्तम में भी स्वाभाविक रूप से ये ही राशियाँ हैं। अतः मध्यायु योग है। एक बार दीर्घ व एक बार मध्य आने से 64 से 100 तक आयु होगी। इनमें शनि व राहुकेतु स्थित हैं। अतः प्रथमोक्ति से शनि रहने के कारण खण्ड के शुरू में अर्थात् 64 वर्ष के आसपास ही मृत्यु होगी। यह खण्ड हमारे पूर्व सिद्ध गणितायु लगभग 61 वर्ष के आसपास ही है। अतः इस विधि से भी प्रमाणित करना चाहिए।

आयु निश्चय का अन्य प्रकार :–

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रकारमपरं पुनः।
यस्य विज्ञानमात्रेण आयुर्दायं सुनिश्चितम्।। 55।।

अष्मर्क्ष तृतीयं च लग्नादायुरुदाहृतम् ।
द्वितीयं सप्तमं स्थानं मारकस्थानमुच्यते ।। 56 ।।
लग्नेशरन्ध्रपत्योश्च यः खेटः प्रबलो भवेत् ।
स एवात्मस्थितेर्हेतोरायुः निश्चयकारकः ।। 57 ।।
केन्द्रेस्थिते दीर्घमायुर्मध्यायुः पणफरे स्थिते ।
आपोक्लिमे स्थिते स्वल्पमायुर्भवति निश्चितम् ।। 58 ।।

अब मैं आयु खण्ड का त्वरित निश्चय करने का एक अन्य मार्ग भी बताता हूँ। लग्न से 8 व 3 भाव आयु के भाव हैं। इसीलिए इनसे व्यय भावों 2. 7 को मारक स्थान माना जाता है।

लग्नेश व अष्टमेश में से जो ग्रह विशेष बली हो, वह ही आयु निश्चय करता है। उक्त बली ग्रह केन्द्र में हो तो दीर्घायु, पणफर में हो तो मध्यायु तथा आपोक्लिम में हो तो अल्पायु समझनी चाहिए।

इस तरह अनेक प्रकार से निश्चय करके अपने निर्णय को दृढ़ करने हेतु ये प्रकार बताए जा रहे हैं। हमारे उदाहरण में शनि व चन्द्र में अपेक्षया शनि कुछ अधिक बली है। अतः मध्यायु खण्ड आता है।

लग्नेशे च रवे मित्रमायुर्दीर्घ प्रकीर्तितम् ।
समे मध्यं रिपौ स्वल्पमेवमायुर्विनिश्चयः ।। 59 ।।

यदि लग्नेश सूर्य का मित्र हो तो दीर्घायु, सम हो तो मध्यायु तथा शत्रु हो तो अल्पायु होती है।

हमारे उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा सूर्य का मित्र है, अतः इस विधि से दीर्घायु आती है।

एवं रन्ध्रेशखेटाच्च चिन्त्यमथ पुनः श्रृणु ।
लग्नरन्ध्रेशयो र्मित्रराशौ दीर्घ समे समम् ।
शत्रुभे स्वल्पमायुः स्याद्विपरीतं परस्परम् ।। 60 ।।

इसी तरह अष्टमेश से भी विचार करना चाहिए। अर्थात् अष्टमेश या लग्नेश अपने-अपने मित्र राशि में (स्वराशि आदि का भी ग्रहण है) हो तो दीर्घायु, सम की राशि में मध्य व शत्रु क्षेत्र में रहने से अल्पायु होती है। एक दूसरे के मित्र की या एक दूसरे की राशि में हों तो विपरीत क्रम से अर्थात् लग्नेश, अष्टमेश की राशि या उसके मित्र की राशि में हो अथवा अष्टमेश, लग्नेश की मित्रादि राशि में हो तो विपरीत अर्थात् अल्प, मध्य व दीर्घायु समझनी चाहिए।

हमारे उदाहरण में अष्टमेश शनि वृश्चिक में है। वृश्चिकेश मंगल, चन्द्रमा (लग्नेश) का सम है। अतः मध्यायु एवं लग्नेश, अष्टमेश के मित्र

क्षेत्र में है, अतः अल्पायु आती है। इसमें शनि का प्रबल पक्ष है। अतः मध्यायु आती है।

केवल अष्टमेश से आयु विचार :–

स्वभोच्चस्थेन केनापि नभोगेन समन्वितः।

अष्टमेशः शनिर्वापि दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत्।। 61।।

एवं रन्ध्रपतिर्विप्र ! नीच खेटेन संयुतः।

शनिर्वा निर्दिशेत् प्राज्ञः स्वल्पमायुर्विनिश्चयात्।। 62।।

(i) यदि अष्टमेश या शनि किसी उच्च, मूलत्रिकोणी या स्वक्षेत्रीग्रह से युत हो तो इस योग में दीर्घायु कहें।

निर्बल, शत्रुक्षेत्री या अस्तंगत ग्रह के साथ हो तो अल्पायु कहें, यह बात यहाँ स्वयं सिद्ध है।

(ii) यदि अष्टमेश या शनि किसी नीच, शत्रुक्षेत्री, अस्तंगत ग्रह के साथ हो तो अल्पायु योग कहना चाहिए।

तृतीयेश से आयुनिश्चय :–

सहजाधीश भूपुत्रौ द्वौ रन्ध्रेशशनैश्चरौ।

अस्तगौ पापदृग्युक्तौ स्वल्पमायुः प्रयच्छतः।। 63।।

यदि तृतीयेश (द्वितीय आयु स्थानेश) व मंगल ये दोनों अथवा अष्टमेश व शनि ये दोनों ही पापयुक्त दृष्ट होकर अस्त भी हों तो हीनायु तथा एक जोड़ा ग्रह अस्त हो तथा दूसरा पापदृग्युक्त हो तो अल्पायु तथा दोनों ही बलवान् हों तो दीर्घायु होती है, यह तारतम्य स्वयं ऊह्य है। अथवा तृतीयेश व शनि तथा मंगल व अष्टमेश इस तरह जोड़ा बनाकर विचार करना चाहिए।

एवं तृतीयनाथेन रन्ध्रेशस्योक्तवत् सदा।। 64।।

जिस प्रकार अष्टमेश से पूर्वोक्त विधियों द्वारा आयु विचार कहा है, उसी तरह तृतीयेश से भी विचार करना चाहिए।

(i) तृतीयेश या मंगल उच्चादिगत हो या ऐसे ग्रहों के साथ हो।

(ii) तृतीयेश व मंगल शुभस्थानों में शुभयुक्त हो।

(iii) लग्नेश तृतीयेश में से बलीग्रह केन्द्र में हो तो दीर्घ, पणफर में हो तो मध्य तथा आपोक्लिम में हो तो अल्पायु होती है।

लग्नेशाष्टमेश से संयुक्त विचार :–

अथैवं भिन्नमार्गेण ह्यायुर्दायो निरूप्यते।

तनुतन्वीशतद्राशिपत्युर्भानां त्रिकोणके।। 65।।

अल्पमध्यचिरायुष्यं रूपवर्ष प्रमाणतः ।
लग्नरन्ध्राधिनाथौ चेद् युगपल्लग्नादिकोणगौ ।। 66 ।।
अल्पायुष्यं भवे नृणां शम्भुना भाषितं पुरा ।
लग्नेशकोणगौ स्यातां मध्यमायुः प्रकीर्तितम् ।। 67 ।।
लग्नेशाश्रितराशीशात् त्रिकोणे दीर्घजीविनाम् ।। 68 ।।

अब एक अन्य प्रकार से आयु खण्ड का निश्चय बताता हूँ। लग्न, लग्नेश व लग्नेशाश्रितराशीश से त्रिकोण में लग्नेश व अष्टमेश की एक साथ स्थिति हो तो क्रमशः प्रतित्रिकोण 12-12 (रूप) वर्ष के मान से अल्पायु, मध्यायु व दीर्घायु होती है।

(i) लग्नेश व अष्टमेश अलग–अलग या संयुक्त होकर, लग्न से 1. 5. 9 में हों तो अल्पायु वर्ष 12.24.36 होते हैं। अर्थात् लग्न में दोनों हों तो 12 वर्ष, पंचम में 24 वर्ष व नवम में 36 वर्ष होते हैं।

(ii) यदि लग्नेश से 1. 5. 9 में दोनों हों तो क्रमशः 48. 60. 72 वर्ष आयु होती है।

(iii) यदि लग्नेश की आश्रित राशि के स्वामी से 1. 5. 9 में 1. 8 भावेश हो तो क्रमशः 84. 96. 108 वर्ष आयु होती है।

आयुवृद्धि के योग :–

सुयोगैर्वर्धते ह्यायुः कुयोगैर्हीयते तथा ।
अतो योगानहं वक्ष्ये पूर्णमध्याल्पजीविनाम् ।। 69 ।।
केन्द्रे शुभ ग्रहैर्युक्ते लग्नेशे च शुभान्विते ।
दृष्टे युक्ते च गुरुणा पूर्णमायुस्तदा भवेत् ।। 70 ।।
केन्द्रस्थितेविलग्नेशेगुरुशुक्रसमन्विते ।
ताभ्यां निरीक्षिते वापि पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत् ।। 71 ।।
उच्चस्थितैस्त्रिभिः खेटैर्लग्नरन्ध्रेशसंयुतैः ।
अष्टमे पापहीने च पूर्णमायुर्भवे नृणाम् ।। 72 ।।
अष्टमस्थैस्त्रिभिः खेटैः स्वोच्चमित्रस्ववर्गगे ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ।। 73 ।।

कुण्डली में अच्छे योग पड़ने से आयु बढ़ती है तथा कुयोगों से घटती है। अतः पूर्णायु, दीर्घायु, मध्यायु आदि के योगों को कहता हूँ।

(i) सभी शुभ ग्रह केन्द्र में हों तथा लग्नेश शुभयुक्त हो, विशेषतया गुरु से युक्त दृष्ट हो तो पूर्णायु योग है।

(ii) लग्नेश यदि केन्द्र में गुरु शुक्र से युक्त या दृष्ट हो तो पूर्णायु योग है।

(iii) यदि 1.8 भावेश, किसी तरह से तीन उच्चगत ग्रहों से युक्त हों तथा अष्टम में कोई पापग्रह नहीं हो तो मनुष्यों की पूर्णायु होती है।

(iv) अष्टम में तीनग्रह उच्च, स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र या वर्ग में हों तथा लग्नेश बलवान् हो तो दीर्घायु योग होता है।

त्रिषडायगतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणेके।
लग्नेशे बलसंयुक्ते दीर्घुमायुर्भवेद्द्विज !।। 74।।
षट्सप्तरन्ध्रभावेषु शुभखेटयुतेषु च।
त्रिभवेषु च चापेषु पूर्ण मायुर्विनिर्दिशेत्।। 75।।
शत्रु व्ययगताः पापा लग्नेशो यदि केन्द्रग।
रविमित्रं चरन्ध्रेशः पूर्णमायुर्भवेदिह।। 76।।
आयुः स्थानस्थिताः पापाः कर्मेशः स्वोच्चगो यदि।
दीर्घमायुस्तदानूनं ज्ञेयमेतद् विचक्षणैः।। 77।।

(i) 3.6.11 में सभी पाप ग्रह व केन्द्र त्रिकोणों में सभी शुभग्रह हों और लग्नेश बलवान् हो तो दीर्घायु होती है।

(ii) 6.7.8 भावों में सभी शुभ ग्रह हों तथा 3.11 में सारे पाप ग्रह हों तो पूर्णायु होती है।

(iii) 6.12 में पाप ग्रह, केन्द्र में लग्नेश व अष्टमेश सूर्य का मित्र हो तो पूर्णायु योग है।

(iv) अष्टम में कई पापग्रह हों तथा दशमेश उच्चस्थ हो तब भी विद्वानों को दीर्घायु समझनी चाहिए।

द्विस्वभावगृहे लग्ने लग्नेशे केन्द्रसंस्थिते।
स्वोच्चराशित्रिकोणे वा दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत्।। 78।।
द्विस्वभाव गृहे लग्ने लग्नेशाद् बलसंयुतात्।
द्वौ पापौ यदि केन्द्रस्थौ दीर्घमायुस्तदा भवेत्।। 79।।

(i) द्विस्वभाव लग्न में लग्नेश केन्द्र में हो या स्वोच्चगत, मूलत्रिकोणगत या स्वक्षेत्री हो तो दीर्घायु योग है।

(ii) यदि द्विस्वभाव लग्न में, बलवान् लग्नेश से केन्द्र में दो पाप ग्रह हों तो भी दीर्घायु होती है।

षष्ठेऽष्टमे व्यये वापि लग्नेशे पापसंयुते ।
स्वल्पायुरनपत्यो वा शुभदृग्योगवर्जिते ।। 80 ।।
चतुष्टयगते पापे शुभ दृष्टिविवर्जिते ।
बलहीने विलग्नेशे स्वल्पमायुर्विनिर्दिशेत् ।। 81 ।।
व्ययार्थौ पापसंयुक्तौ शुभदृग्योगवर्जितौ ।
स्वल्पमायुस्तदाज्ञेयं निर्विशंकं द्विजोत्तम ।। 82 ।।
लग्नरन्ध्रेशयोरेवं दुःस्थयोर्बलहीनयोः ।
स्वल्पमायुर्बुधैर्ज्ञेयं मिश्रयोगाच्च मध्यमम् ।। 83 ।।

(i) लग्नेश यदि 6. 8. 12 में पापयुक्त हो तथा शुभ ग्रह न देखें, न योग करें तो मनुष्य अल्पायु या पुत्रहीन होता है ।

(ii) केन्द्रों में पापग्रह हों तथा कोई भी शुभ ग्रह उन्हें न देखे और लग्नेश पापयुक्त हो तो अल्पायु होती है ।

(iii) 2. 12 भावों में एक साथ पापग्रह, शुभदृग्योग से रहित हों तो भी अल्पायु होती है ।

(iv) लग्नेश व अष्टमेश यदि अस्तंगत, नीचगत, शत्रुक्षेत्री, पराजित हों तथा 6. 8. 12 में हों तो मनुष्य अल्पायु होता है ।

(v) दीर्घ व अल्पायु के योग साथ–साथ पड़ने पर मध्यमायु समझें ।

आयु के प्रकार

मैत्रेय उवाच–

आयुषो बहवो भेदाः कथिता भवताऽधुना ।
कतिधा सा कदा नूनममितायुर्नरो भवेत् ।। 84 ।।

पराशर उवाच–

बालारिष्टं योगरिष्टमल्पं मध्यं च दीर्घकम् ।
दिव्यं चैवामितं चैव सप्तधायुः प्रकीर्तितम् ।। 85 ।।

मैत्रेय ने पूछा– आयु के अनेक योग आपने कहे हैं । उन योगों में पूर्ण, दीर्घ, मध्य, अल्प आदि कई योगों को कहा । कृपया आयु के कुल प्रकारों के विषय में कुछ कहें तथा कब मनुष्य अतिदीर्घ या अनन्त आयु पाता है, इस विषय में भी कहें ।

पराशर बोले– बालारिष्ट, योगारिष्ट, अल्प, मध्य, दीर्घ, दिव्य व अमितायु इस तरह सात प्रकार की आयु होती है।

बालारिष्टे समा अष्टौ योगारिष्टे च विंशतिः।
द्वात्रिंशद् वत्सरा अल्पे चतुःषष्टिश्च मध्यमे।। 86।।
विंशाधिक शतं दीर्घे दिव्ये वर्षसहस्रकम्।
तदूर्ध्वममितं पुण्यैरमितैराप्यते जनैः।। 87।।

बालारिष्ट की अवधि 8 वर्ष, योगारिष्ट की 20 वर्ष, अल्पायु 32 वर्ष, मध्यायु 64 वर्ष, दीर्घायु 120 वर्ष, दिव्य आयु 1000 वर्ष एवं उससे अधिक अमितायु होती है। अनन्त पुण्यों के फलस्वरूप अनन्त आयु मिलती है।

अमितायुर्योग :–

चन्द्रेज्यौ च कुलीरांगे ज्ञसितौ केन्द्रसंस्थितौ।
अन्ये त्र्यायारिगाः खेटा अमितायुस्तदा भवेत्।। 88।।

चन्द्रमा व गुरु लग्न में, बुध शुक्र केन्द्र में तथा शेष पाप ग्रह 1. 3. 6. 11 में हों तो अमितायु होती है।

दिव्यायुर्योग :–

सौम्याः केन्द्रत्रिकोणस्थाः पापास्त्र्यायारिगास्तथा।
शुभराशौ स्थिते रन्ध्रे दिव्यमायुस्तदा भवेत्।। 89।।

सभी शुभ ग्रह केन्द्र त्रिकोण में तथा सभी पाप ग्रह 3. 6. 11 में हों तथा अष्टम में शुभ ग्रह की राशि हो तो दिव्य आयु होती है।

गोपुरांशे गुरौ केन्द्रे शुक्रे पारावतांशके।
त्रिकोण कर्कटे लग्ने युगान्तायुस्तदा भवेत्।। 90।।
देवलोकांशगे मन्दे कुजे पारावतांशके।
गुरौ सिंहासनांशेऽगे जातो मुनिसमो भवेत्।। 91।।

(i) बृहस्पति केन्द्र में गोपुरांश में हो अर्थात् चार वर्ग कुण्डलियों में उच्चादिगत हो तथा शुक्र केन्द्र में (दश वर्ग में दो जगह) पारावतांश में हो एवं कर्क लग्न में जन्म हो तो युगपर्यन्त आयु होती है।

(ii) शनि देवलोकांश में (दश वर्गों में से सात में उच्चादिगत) हो, मंगल दशवर्गो में पाचों जगह उच्च, स्वर्क्षादि वर्गी हो तो मनुष्य मुनियों के समान लम्बी आयु भोगता है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामायुर्दायाध्याय एकोनचत्वारिंशत्तमः।।39।।

40

। । अथ मारकभेदाध्यायः । ।

मैत्रेय उवाच –

बहुधायुर्भवा योगा भवता परिकीर्तिताः ।
नृणां मारकभेदांश्च कथ्यन्तां कृपया पुनः । ।1 । ।

पराशर उवाच –

अष्टमं मारक स्थानमष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपिव्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ।
तत्राप्याद्यव्ययस्थानादुत्तरं बलवत्तरम् । ।2 । ।

मैत्रेय ने पूछा– आपने अनेक प्रकार से आयु योगों को कहा । अब कृपया मारक ग्रह का लक्षण अर्थात् किस ग्रह के प्रभाव, दशान्तर्दशा या स्थिति से मृत्यु का निर्णय होगा, यह सब कहें ।

पराशर बोले– लग्न से अष्टम स्थान आयु स्थान है । अष्टम से अष्टम अर्थात् तृतीय स्थान भी आयु स्थान है । अतः 3.8 भाव आयु विचारार्थ ग्राह्य हैं तथा इनसे व्यय अर्थात् 2.7 भावों को मुख्यतः मारक स्थान कहा जाता है । इन दोनों में भी पहले व्यय स्थान से बाद वाला बलवान् है । इस सन्दर्भ में विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न मत कहे हैं । अर्थात् किसी के मत से द्वितीय स्थान बलवान् मारक है तथा किसी के मत में सप्तम स्थान । हमें सप्तम वाला अर्थ अभीष्ट है । मुख्य आयु स्थान अष्टम है । अतः अष्टम का व्यय (सप्तम) ही मुख्यतः मारक अर्थात् आयु नाश का स्थान हो सकता है । विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारी लघुपाराशरी विद्याधरी का सम्बद्ध प्रकरण देखें ।

मारक लक्षण :–

तयोरीशौ तत्रगताः पापिनस्तेन संगताः ।
पापिनस्ते च सर्वे हि ज्ञेयाः मारकसंज्ञका । । 3 । ।

(i) 2.7 भावों के अधिपति (ii) 2.7 भावों में स्थित पापी ग्रह (iii) द्वितीयेश व सप्तमेश के साथ रहने वाले पापग्रह ये सब मारक ग्रह कहलाते हैं ।

मारक दशा का निश्चय :–

तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम् ।
अल्पमध्यमपूर्णायुः प्रमाणमिहयोगजम् ।। 4 ।।
विज्ञाय प्रथमं पुंसां ततो मारकचिन्तनम् ।
द्वात्रिंशांत्पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत् ।। 5 ।।
चतुः षष्ट्या पुरस्तात्तु ततोदीर्घमुदाहृतम् ।
उत्तमायुः शतादूर्ध्वं ज्ञातव्यं मुनिसत्तम ! ।। 6 ।।
जैनर्विंशतिवर्षाणामायुर्ज्ञातुं न शक्यते ।
जप होमचिकित्साद्यैर्बालरक्षां तु कारयेत् ।। 7 ।।
म्रियन्ते पितृदोषैश्च केचिन्मातृग्रहैरपि ।
केचित् स्वारिष्टयोगाच्च त्रिविधा बालमृत्यवः ।। 8 ।।

श्लोक 3 में कथित मारक ग्रहों की दशा में मनुष्यों की मृत्यु सम्भव होने पर होती है । सम्भव होने से क्या तात्पर्य है ? पहले आयुर्दायाध्यायोक्त विधि से मनुष्यों का आयु खण्ड निश्चय करें । यदि वह अल्पायु हो तो 32 - 64 के मध्य आने वाली मारक ग्रहों की दशाओं का निर्णय करें । यदि दीर्घायु हो तो 64 से 100 के बीच, उत्तमायु हो तो 100 वर्ष से बाद में आने वाली उक्त मारक दशाओं से मृत्यु का निर्णय करें । यहाँ एक विशेष बात और भी कही है कि बालारिष्ट व योगारिष्टों में प्रायः 20 वर्ष तक निश्चित गणितगत आयु व मारक का विचार विशेष सहायक नहीं होगा । अपितु बाल्यावस्था में समुचित चिकित्सा, टीकाकरण, सावधानी, जप, होम, दान आदि से बालक की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए । बालकों की मृत्यु पिता, माता या अपने दोष से प्रायः होती है । निश्चय हुआ कि मध्यमायु योग में 32 से पूर्व तथा दीर्घायु में 64 से पूर्व मारक ग्रह दशाएँ वास्तव में मृत्यु नहीं देंगीं । इसी आशय को सम्भव शब्द से कहा है ।

अन्य मारक ग्रह :–

असम्भवे व्ययाधीशदशायां मरणं नृणाम् ।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशास्वपि ।। 9 ।।
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित् ।
कल्पनीयं बुधैरेतन्मारकाणामदर्शने ।। 10 ।।
षष्ठभे पापभूयिष्ठे षष्ठेशो मुख्यमारकः ।
सर्वेषां बलवान् खेटो मारक इति निश्चयः ।। 11 ।।

मारका बहवः खेटा यदि वीर्यसमन्विताः ।
तत्तद्दशान्तरे विप्र ! रोगकष्टादि सम्भवम् ।। 12 ।।
षष्ठाधिपदशायां च निधनं भवति ध्रुवम् ।
एवं कारक खेटाच्च सर्वमेतद् विचिन्तयेत् ।। 13 ।।

(i) यदि द्वितीयेश या सप्तमेश या इनके साथ बैठे पाप ग्रहों या इन भावों में स्थित पाप ग्रहों की दशा खण्डानुसार आती न दिखे तब लग्न से व्ययेश अर्थात् द्वादशेश तथा सप्तम से व्ययेश अर्थात् षष्ठेश का विचार करना चाहिए । 6.12 भावेशों का विचार पूर्वोक्त मारक दशाओं की सम्भावना न होने पर ही होगा ।

(ii) मृत्युखण्ड में कभी कभी शुभ अर्थात् लग्नेश, त्रिकोण या केन्द्र के स्वामियों की दशा में भी मृत्यु सम्भव है ।

(iii) अथवा अष्टमेश की दशा का भी विचार करें ।

(iv) यदि ये सब दशाएँ भी अन्यान्य कारणों से मारक प्रतीत न हों तब केवल पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु) की दशा में मृत्यु का निश्चय करें । ये सब ग्रह उपमारक कोटि में आते हैं ।

(v) यदि षष्ठ या द्वादश में कई पाप ग्रह हों तो 6.12 भावेश ही मुख्य कारक हैं । ऐसी स्थिति में अन्य उपमारकों का विचार न करें । अथवा सभी कारकों व उपमारकों में जिसमें सर्वाधिक पापत्व (मारकत्व) हो, वही मुख्य मारक है ।

(vi) यदि बहुत से मारक ग्रह बलवान् हों तो सर्वबली की दशा में मृत्यु व अन्य की दशाओं में रोग व कष्टादि होते हैं ।

(vii) सभी मुख्य मारकों के अभाव में मारक होने के सबसे बड़े अधिकारी षष्ठेश व द्वादशेश ही हैं ।

(viii) इसी तरह आत्मकारक ग्रह से 2.7.12.6.8 आदि ग्रहों की दशाओं का भी मारकत्व के सम्बन्ध में विचार करें ।

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभ भुक्तिषु ।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु ।। 14 ।।

इस प्रकार निश्चित मारक ग्रह का निर्णय करके उसकी दशा में किस अन्तर्दशा में मृत्यु होगी, इस विषय में नियम कहते हैं । मारक ग्रह अपनी दशा में जब भी पाप ग्रह की अन्तर्दशा आएगी, तब निश्चय से मृत्यु देगा । पाप ग्रह से तात्पर्य अन्य मारक, उप मारक या अशुभ भावेश या केवल निसर्ग पाप ग्रह से है । इन ग्रहों का मारकेश से सम्बन्ध हो तब तो

क्या कहना ? सम्बन्ध न होने पर भी मृत्यु होती है। इसी तरह सम्बन्ध होने पर भी, शुभ (केन्द्रेश त्रिकोणोशादि) की अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं होती।

शनि का विशेष नियम :–

मारकैः सह सम्बन्धात् निहन्ता पापकृच्छनिः।

तिरस्कृत्य ग्रहान् सर्वान् भवत्यत्र न संशयः।। 15।।

पापी शनि अर्थात् पाप फलदायी होने पर (नीचास्तंगत, शत्रुक्षेत्री, निर्बल हो तो) यदि मारक ग्रहों से सम्बन्ध बनाए तो सबको पीछे हटाकर स्वयं ही मुख्य मारक बन जाता है। इसमें संशय नहीं है।

मारकनिर्णय का उदाहरण :– हमारे क्रमिक उदाहरण में द्वितीयेश सूर्य व सप्तमेश शनि है। 2.7 में से सप्तम में सूर्य बुध हैं। बुध ही लग्न से द्वादशेश भी है। शनि के साथ परम कारक मंगल व क्रूर ग्रह राहु हैं। पहले मध्यायु योग निश्चय हो चुका है। अतः 32 से ऊपर या 36 से ऊपर आने वाली इन ग्रहों की दशाओं का विचार करना है। शनि की दशा लगभग 28 वर्ष में प्रारम्भ होकर 47 वर्ष तक रहेगी। क्या शनि मारक है ? एतदर्थ शनि का पापफलद होना आवश्यक है। बताया जाएगा कि पापी 2.7 भावेशों की अपेक्षा शुभ ग्रह 2.7 भावेश प्रबल मारक हैं। शनि स्वयं आयुष्यकारक, केन्द्रेश त्रिकोणेश के साथ होने से भी कारक व शुभ दृष्ट है। अतः इसकी दशा में मारकत्व नहीं दिखता। सूर्य की दशा 90 वर्ष के बाद आएगी, तब तक आयु खण्ड नहीं है। इनके बाद व्ययेश की दशा देखेंगे। व्ययेश बुध है, एवं मारकेश सूर्य के साथ है। बुध दशा 47 से 64 वर्ष तक रहेगी। लेकिन बुध चन्द्र लग्नेश भी हैं, अतः एकदम मारक नहीं माना जा सकता। षष्ठेश गुरु व राहु की दशा 32 से पूर्व ही निकल चुकी हैं। अतः प्रथम दृष्ट्या 'बुध की महादशा' में कभी मरण सम्भव है। इसका निश्चय आगे कहे जाने वाले अन्य साधक बाधक प्रमाणों से किया जाएगा।

मारक निश्चयार्थ प्रकारान्तर :–

अथान्यदपि वक्ष्यामि नृणां मारकलक्षणम्।

अल्पायुर्योगजातस्य विपद्भे तु मृतिर्भवेत्।। 16।।

मध्यायुर्योगजस्यैवं प्रत्यरिभे भवेन्मृतिः।

दीर्घायुर्योगजातस्य वधभेतु मृतिर्भवेत्।। 17।।

द्वाविंश त्र्यंशपश्चैव तथा वैनाशिकाधिपः।

विपत्ताराप्रत्यरीशा वधभेशस्तथैव च।। 18।।

स्वान्त्यपौ च विज्ञेयौ चन्द्राक्रान्तगृहाद्द्विज!।

मारकौ पापखेटौ तौ शुभौ रोगप्रदौ मतौ।।19।।

(i) इसके अतिरिक्त भी मारक ग्रह की पहचान हेतु कुछ अलग कहता हूँ। अल्पायु योग में उत्पन्न लोगों की मृत्यु विपत्तारा दशा (जन्म दशा से तीसरी दशा) में, मध्यायु योगों में प्रत्यरि तारा दशा (पाँचवी दशा) में तथा दीर्घायु योगों में वधतारा (सातवीं दशा) में मृत्यु सम्भव होती है।

जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र व अतिमैत्र ये 9 तारादशाओं की सञ्ज्ञाएँ हैं। नक्षत्राश्रित विंशोत्तरी अष्टोत्तरी आदि दशाओं में जन्म दशा से क्रमशः ये संज्ञाएँ होती हैं।

(ii) लग्नगत द्रेष्काण से बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी ग्रह (खर द्रेष्काणेश) तथा वैनाशिक नक्षत्रेश की दशाओं में भी मृत्यु सम्भव होती है। बाईसवाँ द्रेष्काण लग्नगत द्रेष्काण हो तो अष्टम राशि का पहला, लग्न में दूसरा हो तो अष्टमगत दूसरा आदि प्रकार से इस खर द्रेष्काण का निर्णय किया जाता है। मरण विचार में यह मुख्य भूमिका रखता है। वैनाशिक नक्षत्र जन्म नक्षत्र में 22 जोड़ने से प्राप्त होता है। अर्थात् जन्म नक्षत्र से तेईसवाँ नक्षत्र वैनाशिक होता है।

(iii) चन्द्र राशि से 2. 12 भावेश भी यदि पापी हों तो मारक हो सकते हैं। शुभ हों तो रोगप्रद होते हैं।

हमारे उदाहरण में राहुदशा में जन्म है। मध्यायु योग होने से पाँचवी दशा में मृत्यु सम्भव है। वह केतु दशा है। पहले बुध जन्म राशीश की दशा को प्रथम दृष्ट्या मारक कह चुके हैं, लेकिन अन्तिम निर्णय अभी नहीं हुआ है।

लग्न स्पष्ट में प्रथम द्रेष्काण कर्क का ही है। अतः अष्टम में कुम्भ राशि में भी पहला ही द्रेष्काण बाईसवाँ होगा। अथवा जन्म लग्न स्पष्ट 3. 2. 48 + 7 राशि (210 अंश या 21 द्रेष्काण) = 10.2.48 में कुम्भ द्रेष्काण ही बाईसवाँ है। इसका स्वामी शनि अपने गुणादि के अनुसार मृत्यु देगा।

जन्म नक्षत्र आर्द्रा की संख्या 6 + 22 = 28 नक्षत्र अर्थात् अश्विनी 'वैनाशिक' है। अश्विनी का स्वामी 'केतु' है। केतु को एक वोट और मिल गया है।

चन्द्रराशि मिथुन से द्वादश में शुक्रराशि में केतु है। द्वादशेश शुक्र व द्वितीयेश स्वयं चन्द्रमा ही है। शुक्र की दशा खण्डान्त के बाद ही आएगी। केतु साथ ही सप्तमेश व अष्टमेश शनि से पूर्ण दृष्ट है। अतः केतु के पक्ष में पलड़ा अधिक झुकता दिख रहा है।

राहु केतु की विशेषता :–

राहुश्चेदथवा केतुर्लग्ने कामेऽष्टमे व्यये ।
मारकेशान्मदे वापि मारकेशेन संयुतः ।। 20 ।।
मारकः सोऽपि विज्ञेयः स्वदशान्तर्दशास्वपि ।
मकरे वृश्चिके जन्म राहुस्तस्य मृतिप्रदः ।। 21 ।।
षष्ठाष्टरिःफगो राहुस्तद्दाये कष्टदो भवेत् ।
शुभग्रह युतो दृष्टो न तदा कष्टकृन्मतः ।। 22 ।।

(i) राहु केतु 1. 7. 8. 12 में हों या मारकेश से 7 भाव में हों या मारकेश से युक्त हों तो विशेषतया मारक हो जाते हैं। इनका मारकत्व इन्हीं की दशान्तर्दशाओं में होगा।

(ii) मकर या वृश्चिक लग्न में उत्पन्न व्यक्तियों के लिए राहु विशेषतया मारक है।

(iii) 6. 8. 12 भावगत राहु (केतु) यदि पापयुक्त दृष्ट हो तो अपनी दशा में विशेष कष्टप्रद होता है। शुभयुक्तदृष्ट हो तो कष्टकारी नहीं होता है।

उदाहरण में मारकेश शनि से सप्तम में केतु है। चन्द्रमा से द्वादश में भी है। छिद्र ग्रह शुक्र की राशि में, चन्द्र के नवांश में अष्टमेश से दृष्ट है। सभी पाप ग्रहों से दृष्ट है। अतः केतु का पक्ष और प्रबल हुआ। केतु दशा 64 वर्ष के बाद प्रारम्भ होगी। अतः केतु की दशा में शुक्र (छिद्रग्रह व चन्द्र द्वादशेश) सूर्य, (मारकेश) चन्द्रमा (लग्नेश) मंगल (मारकेशयुत व दशमेश) राहु (आत्मसदृश) गुरु (षष्ठेश) शनि (स्वयं मारकेश) बुध (लग्नद्वादशेश व चन्द्रराशि) की सारी अन्तर्दशाएँ लगातार अनिष्टकारक होंगी। अतः दशान्तर्दशा योग से 64 से 71 वर्ष के बीच कभी भी गोचर में शनि का चार, अन्तर्दशा की खराबी, अष्टकवर्ग का समन्वय, निर्याण चन्द्र आदि के आधार पर मृत्यु वर्ष, मास, यहाँ तक कि दिन भी निश्चय किया जा सकेगा। ध्यान दीजिए, पिण्डायुर्दाय सूर्य बली होने से विशेषतया फलीभूत होगी (रवौ पिण्डोद्भवं ग्राह्यम्) वह 71 वर्ष के लगभग ही है। अतः जातक की आयु 65 वर्ष से 71 वर्ष के बीच कहीं रहेगी। इसका समन्वय अन्य दशा प्रकारों से भी किया जाएगा। हमारे विचार से दशेश व अन्तर्दशेश के सम्बन्धादि को ध्यान में रखकर केतु में चन्द्रमा, केतु में राहु, केतु में शनि का विचार आवश्यक है।

बली मारक से क्या तात्पर्य है ? बली अर्थात् षड्बल से समृद्ध नहीं, अपितु जो सबसे अधिक पापी हो (नीचगत, शत्रुक्षेत्री, अस्तंगत, बहु पाप युक्त दृष्ट स्वयं पापी आदि) ऐसा ग्रह ही मृत्यु जैसा परम अनिष्ट फल दे सकता है। इस दृष्टि से स्वयं केतु, राहु व शनि के पक्ष में झुकाव दिखता है।

षष्टाष्टरिःफनाथानामपहारे मृतिर्भवेत्।
तेषामन्तर्दशाधीशास्तेषां मध्ये च यो बली।। 23।।

यदि किसी भी प्रकार से मारक दशा का निर्णय होता न दिखे तो 6.8.12 भावेशों में से जो सबसे बली (खतरनाक) हो वही मारक होता है।

राशिदशा से मरण निर्णय :–

किं दशायां च निधनमिति कर्तुमपेक्षया।
निर्णयं तस्य कुर्वीत तवाग्रे कथयाम्यहम्।। 24।।
स्पष्टं ते प्रवक्ष्यामि मलिने द्वारबाह्ययोः।
नवांशे निधनं तस्य पुरा त्रिशूलिनोदितम्।। 25।।
द्वारद्वारेशयोर्विप्र ! मालिन्यं तन्नवांशके।
जातस्य हि भवेन्मृत्युः सत्यमेव न संशयः।। 26।।

किस राशि की दशा में मृत्यु होगी, यह निर्णय करने के लिए तुम्हारे समक्ष विधि बताता हूँ।

(i) द्वारराशि व बाह्यराशि ये दोनों ही यदि मलिन अर्थात् पापयुक्त दृष्ट हों तो इन राशियों की नवांश दशा में निधन होता है, ऐसा पहले शिवजी ने कहा है।

(ii) यदि द्वारराशि व द्वारराशीश भी स्वयं पापी हों या पापयुक्त दृष्ट हो तो द्वारराशि या द्वारराशीश की अधिष्ठित राशि की नवांश दशा में मृत्यु होती है। इस सन्दर्भ में हमारा 'जैमिनि सूत्र शान्तिप्रिय भाष्य' पृ. 94 से 114 तक अवश्य देखें। द्वार व बाह्य राशि का विवेक बताया जा रहा है।

आयुखण्ड समाप्त होते समय या कभी भी विचारणीय कालखण्ड में जिस राशि की दशा चल रही हो, वही वर्तमान दशा 'द्वारराशि' होती है। 'दशाश्रयो द्वारम्' कहकर जैमिनि ने इसे स्पष्ट कर दिया है।

जन्मकालीन राशि दशा से विचारणीय वर्तमान राशि दशा तक गिनें, जितनी संख्या मिले, विचारणीय दशा से उतनी ही संख्या आगे वाली राशि बाह्य राशि होती है। जिस राशि की दशा हो वह राशि स्वयं तथा

उसकी बाह्य राशि दोनों ही पाप हों तो इनकी नवांश दशा में मृत्यु होगी। अथवा द्वारेश जिस राशि में हो, उस राशि की नवांश दशा में मृत्यु होगी। नवांशदशा संक्षेप में लग्न राशि विषम हो तो, क्रम से तथा लग्न राशि सम हो तो विलोम क्रम से शुरू होती है। इसके दशा वर्ष 9-9 होते हैं।

हमारे उदाहरण में लग्नगत कर्क राशि सम है। अतः विषम क्रम से 9-9 वर्षो की दशा रहेगी।

नवांश दशा (उदाहरण)

	कर्क	मिथु.	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	वृश्चि.	तुला	क.	सिंह
वर्ष	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9
25/1/1956	25.1.65	25.1.74	25.1.83	25.1.92	25.1.2001	25.1.2010	25.1.2019	25.1.2028	25.1.2037	25.1.2046	25.1.2055	25.1.2064

वर्तमान में मीन की दशा है। आने वाली दशाओं में मकर, वृश्चिक ये दो राशियाँ पापयुक्त हैं तथा वृश्चिक सर्वाधिक पापयुक्त है। पहले मकर का विचार करते हैं। कर्क से मकर तक गिनने से सात राशि तथा मकर से सातवीं राशि कर्क है। अतः विचारणीय मकर दशा द्वारराशि व कर्क बाह्य राशि पापयुक्त नहीं है। लेकिन पाप दृष्ट है। नियम 2 के अनुसार द्वारेश व द्वारराशि दोनों ही स्वयं पापी, पापयुक्त हैं। अतः मकर दशा में मृत्यु दिखती है। मकर दशा की समाप्ति 63 वर्ष की समाप्ति व 64 वें के प्रारम्भ पर होती है। इस समय बुध दशा समाप्त होकर केतु दशा प्रायः प्रारम्भ हो चुकी होगी, अतः इस समय मृत्यु प्रतीत होती है। मकर राशि पर गुरु की दृष्टि (राशिवशात्) है, लेकिन वह विशेष रक्षक नहीं दिखती।

अमलिने द्वारबाह्ये शुभदृग्योगगते तदा।
मरणं न भवेन्नृणां कष्टं रोगादिकं भवेत्।। 27।।

यदि द्वार व बाह्य राशि शुभ दृग्योग से युक्त हों या उनका स्वामी शुभ योग में हो तो मृत्यु न होकर रोग या कष्ट होता है।

लग्नाद्यावति यो राशिर्विचार्यो द्वारराशिना।
तस्मात्तावतिथं बाह्यो भवतीति सुनिश्चितम्।। 28।।

लग्न से (या गर्भ कालीन राशि दशा से) जितना आगे वर्तमान राशि हो, उससे उतनी ही आगे बाह्य राशि होती है।

प्रतिराशि नवाब्देन नवांशे तु दशास्थिरम् ।
विशेषरूपं ते प्रोक्तं नवाब्दाद् द्वारबाह्ययोः ।। 29 ।।
पाकभोगद्वयं विप्र ! चिन्तनीयं प्रयत्नतः ।
पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा ।। 30 ।।
स्वयंपापः पापखेटैर्दृष्टो युक्तश्च सम्भवे ।
तन्नवांशदशाकाले मरणं भवति ध्रुवम् ।। 31 ।।

नवांश दशा प्रत्येक राशि में 9-9 वर्षों की होती है । द्वार व बाह्य इन दोनों की विशेष रूप से परीक्षा करनी चाहिए । यदि एक साथ ही द्वार राशि व बाह्य राशि पाप हो, अधिक पापयुक्त दृष्ट हो तो अन्य पापयुक्त या पाप राशि की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है । इस नवांश दशा के क्रम से ही 9-9 महीने की अन्तर्दशाएँ होती हैं ।

साधारण (कम) पापग्रह से युक्त दृष्ट होने पर देहपीडा व मानसिक कष्ट होता है ।

द्वारे पापः निजर्क्षे स्यादुपजीवश्च संस्थितः ।
तत्र देहादि पीडाया बाधो भवति निश्चितम् ।। 32 ।।

यदि द्वार राशि में पाप ग्रह स्वराशि या स्वोच्चादि में हो तथा उसके आस–पास बृहस्पति भी स्थित हो तो उस राशि की दशा में मृत्यु या शरीर कष्ट नहीं होता है । ऐसी स्थिति में 9 वर्ष आयु और मिल जाती है ।

एवं खण्डं समालोच्य मालिन्य द्वार बाह्ययोः ।
सम्यक् विलोक्य वक्तव्यं मरणं तत्र निश्चितम् ।। 33 ।।
ग्रहयोगादिकं सर्वमेतद् विप्र ! विचिन्तयेत् ।
चरादिषु दशास्वेवं त्रिकोणोत्तरदशासु च ।। 34 ।।

(i) जहाँ आयु खण्ड समाप्त होता हो तथा वहीं पर द्वार व बाह्य की मलिनता भी हो तो वहीं पर मृत्यु कहनी चाहिए ।

(ii) इसी विधि से ग्रहयोगादि व द्वार बाह्य का विचार चरादि दशा भेदों व उससे अगली त्रिकोण राशि दशाओं में भी करना चाहिए ।

उक्त नियम का अपवाद :–

लग्नेशे तुंगगे विप्र ! यस्य जन्मनि जायते ।
अथवाष्टमेशे स्वोच्चे अंशवृद्धिः प्रजायते ।। 35 ।।

यदि जन्म समय में लग्नेश व अष्टमेश अपने उच्च में स्थित हो तो द्वारराशि व बाह्यराशि के पापदृग्युक्तादि होने पर भी उसकी नवांश दशा में मृत्यु न होकर अंश (नवांश अर्थात् एकदशातुल्य 9 वर्ष) की वृद्धि हो जाया करती है ।

तदापदेशपाके वा पदांशर्क्षदशासु वा ।

रन्ध्रलग्नेशकोणस्थ राशिपाके मृतिं वदेत् ।। 36 ।।

यदि उक्त अपवाद लागू हो जाए तो पद लग्न के स्वामी की आश्रित राशि की दशा में अथवा पद लग्न गत नवांश राशि की दशा में अथवा लग्नेश व अष्टमेश से 1.5.9 भावगत राशियों की दशा में यथासम्भव (खण्डानुसार) निधन होता है ।

अंशखेटदशानां च फलं ग्राह्यं द्विजोत्तम ! ।

आयुर्योगस्य बलवत्त्वे रन्ध्रारूढानुसारतः ।।37 ।।

अथवोपपदेशस्य दशायां निधनं वदेत् ।

विंशोत्तरी दशारीत्या मुख्यं मारकलक्षणम् ।। 38 ।।

(i) मारक का निश्चय करने में अपवादादि के बाद भी निर्णय न हो तो नवांश, स्थिर व चरादि दशा के साथ ग्रह दशा का भी समन्वय करें ।

(ii) अथवा उक्त श्लोक 36 के अनुसार ही अष्टम भाव के पद से विचार करें ।

(iii) अथवा उपपद के स्वामी से दशानुवार पूर्ववत् निश्चय करें ।

(iv) अन्ततोगत्वा विंशोत्तरी दशा मारक निश्चय में सबसे मुख्य है ।

रव्याारराहू पंगूनां चतुः खेटान्तरे बली ।

तस्य योगानुसारेण जातकस्य मृतिं वदेत् ।। 39 ।।

अष्टमेशेन संयुक्ताः शनी राहुः कुजो रविः ।

न वीक्ष्यते ग्रहैर्वाथ तेषां दाये मृतिं वदेत् ।। 40 ।।

तेषां मध्ये बली यस्तु तस्य राशौ मृतिं वदेत् ।। 41 ।।

सूर्य, मंगल, राहु व शनि ये मारक होते हैं । इनके योगादि से मारक का निश्चय करें । अष्टमेश के साथ इनमें से जो ग्रह हों तथा उनमें जो बली हो उसी की दशा में निधन कहें । यदि ये अन्य ग्रहों से दृष्ट हों तो मृत्यु नहीं होती है ।

शुभग्रहेण सम्बन्धे शनिराह्वोस्तयोरपि ।

तत्तत्स्वामिदशाकाले मरणं च विनिर्दिशेत् ।।

तदाश्रयाद्राशिपाके मृत्युर्भवति निश्चितम् ।। 42 ।।

(i) उक्त प्रकार से शनि राहु आदि का शुभग्रहों से सम्बन्ध बने तो उस सम्बन्धी ग्रह की दशान्तर्दशा में मृत्यु होती है ।

(ii) अथवा सम्बन्धी ग्रह जिस राशि में हो उसकी दशा में मृत्यु होती है ।

हमारे उदाहरण में शनि राहु से दशम में गुरु, चतुर्थ में शुक्र, तथा इनके साथ स्वक्षेत्री मंगल भी है अतः इनमें मारकत्व प्रतीत नहीं होता । इनसे अष्टमस्थ चन्द्र भी शुभ है । अतः शुक्र की अधिष्ठित राशि कुम्भ दशा में या सिंह दशा में या मकर दशा में मृत्यु सम्भव है । इनमें खण्डानुसार मकर कुम्भराशि दशा विशेष कष्ट कारक (मृत्यु कारक) दिखती है ।

राहुकेतु का विशेष नियम :–

द्वादशे दशमे वापि संस्थिते पुच्छनायके ।

पापदृष्टे दशायां हि मरणं निर्दिशेत् द्विज ! ।। 43 ।।

द्वादशे दशमे वापि शुभदृग्योगगः शिखी ।

नायं योगो महाप्राज्ञ ! न कष्टं न तु मृत्युकृत् ।। 44 ।।

(i) 10 या 12 भाव में राहु पाप दृष्ट हो तो अपनी दशान्तर्दशा में प्रबल मारक है ।

(ii) 10.12 भाव में केतु विशेषतया शुभदृष्टयुक्त हो तो साधारण न कष्टप्रद न मृत्युप्रद है । शुभ दृग्युक्त न हो तो कष्टप्रद (मरणप्रद नहीं) है, यह बात अन्यथा सिद्ध है ।

राशि के बलाबल का निर्णय :–

राश्यधीनं बलं ज्ञेयमग्रहात्सग्रहो बली ।

सग्रहादधिकैर्खेटैर्युक्तः ज्यायान् भवेत् पुनः ।।

साम्ये चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः ।। 45 ।।

राशि के बल से ही राशि दशा में बलग्रहण होगा, षड्बलादि नहीं । जिस राशि में ग्रह हो, वह ग्रह रहित से बली है । अधिक ग्रहयुक्तराशि कम ग्रहयुक्त से बली है । यदि सर्वत्र समान संख्यक ग्रह हों तो चर, स्थिर, द्विस्वभाव को उत्तरोत्तर केवल इसी प्रसंग में (राशि बल निर्णय दशाहेतु) बलवान् समझें ।

कारकांश से भी निश्चय :–

कारके शुभसंयुक्ते स्वतुंगे शुभखेचराः ।
कक्ष्या वृद्धिर्भवेत्तत्र निर्विशंकं द्विजोत्तम ! । । 46 । ।
जनुर्लग्ने कारके च शुभखेटो भवेद्यदि ।
कक्ष्यावृद्धिर्न सन्देहो भविष्यति द्विजोत्तम । । 47 । ।

यदि कारकांश आत्मकारक शुभयुक्त हो तथा अन्य शुभ ग्रह भी बली हों तो कक्ष्यावृद्धि (कम से कम 9 वर्ष या इसके गुणक) होती है ।

आत्मकारक की नवांश राशि (कारकांश लग्न) व जन्म लग्न में उभयत्र शुभग्रह हों तो भी कक्ष्या बढ़ जाती है ।

लग्नसप्तमयोर्विप्र ! द्विर्द्वादशकयोरपि ।
षष्ठाष्टमयोर्वापि शुभयोगे भविष्यति । । 48 । ।
कारके शुभमध्यस्थे कारकात्सप्तमेऽपि वा ।
तत् त्रिकोणयोर्वापि वृद्धिर्नात्र संशयः । । 49 । ।

(i) 1.7 या 21.12 या 6.8 में एक साथ शुभ ग्रह हों ।

(ii) आत्मकारक शुभमध्य में हो या आत्मकारक से सप्तम शुभ मध्य में हो अथवा आत्मकारक से 3.11 या 6.9 में उभयत्र शुभ ग्रह हों तो इन सब योगों में कक्ष्यावृद्धि होती है ।

एवं गुरोरपि प्रोक्तं भावेषु शुभता यदि ।
तदापि वृद्धिर्विज्ञेया निःसन्दिग्धं द्विजोत्तम ! । । 50 । ।
पूर्णेन्दु शुक्रयोरेवं स्थितौ वृद्धिः क्रमात्पुनः ।
राशिपाकाब्दतुल्या हि कक्ष्यावृद्धिर्न संशयः । । 51 । ।

(i) इसी तरह बृहस्पति से भी 1.7.5.9.3.11.6.8 आदि भावों में शुभमध्यत्व से कक्ष्यावृद्धि होती है ।

(ii) यदि उक्त भावों में पूर्णचन्द्र या शुक्र हो तब कक्ष्यावृद्धि न होकर केवल राशि दशा तुल्य वर्षों की ही वृद्धि होती है ।

एवं मन्दस्य विज्ञेया राशितुल्या हतिर्द्विज ! ।
अथ कक्ष्याहतेर्योगान् कथयिष्यामि ते पुनः । । 52 । ।
लग्नसप्तमयोर्वापि कारकात् तत् त्रिकोणकाः ।
पूर्ववत् पापसंयुक्ताः कक्ष्याहानिस्तदा भवेत् । । 53 । ।

यदि उक्त स्थानों में शनि हो तो उसे पूर्ण पापी न मानकर कक्ष्या हानि न करें, केवल राशिदशातुल्य वर्षों की हानि करें । अब और भी कुछ

योग कहता हूँ। जिस प्रकार कक्ष्यावृद्धि के यहाँ योग कहे हैं, उन्हीं भावों में विपरीत अर्थात् पापस्थिति होने पर कक्ष्याहानि करें।

गुरौ वा कारके वापि स्वयं नीचादिगे द्विज !
पापयुक्ते च कक्ष्यायां हानिर्नूनं भविष्यति।। 54।।

इसी तरह यदि गुरु या आत्मकारक से उक्त भावों में पापयोग न हो, लेकिन वे स्वयं ही नीचगत, अस्त या अधिक पापयुक्त हों तो भी पूर्ववत् कक्ष्याहानि करें।

मारक दशा निर्णय का अन्य प्रकार :–

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि विशेषेण द्विजोत्तम !।
आलम्ब्य स्थिरदशायां योगान्निधनमेव च।। 55।।
एषा ब्रह्मादितो ज्ञेया चतुःखण्डात्मिका दशा।
त्रिभिस्त्रिभी राशिरेकं खण्डं ज्ञेयं विचक्षण !।। 56।।
सप्ताष्टनवसंख्याकाः क्रमादब्दाः भवेदिह।

अब मैं आयुर्निर्णय का एक और प्रकार भी कहता हूँ। इसका आधार स्थिर दशा है। स्थिर दशा में पूर्वनिर्धारित खण्डानुसार ही मृत्यु का विचार करना है। स्थिर दशा ब्रह्माग्रह की राशि से शुरू होती है तथा इसमें 3-3 राशियों के 4 खण्ड होते हैं। जिस खण्ड में आयु समाप्त होती दिखे, वहीं पर राशियों की पापात्मकता आदि का विचार कर मारक दशा का निश्चय करें। इस दशा में चर, स्थिर, द्विस्वभाव क्रम से 7.8.9 वर्ष होते हैं।

स्थिरादि दशाओं का विवेचन सोदाहरण आगे दशाध्याय में करेंगे।

पापद्वयमध्यगते राशि पाकेमृतिर्भवेत्।। 57।।
त्रिकोणरन्ध्ररिःफेषु पापा यस्माच्च संगताः।
शुभमध्ये मृतिर्नैव पापमध्ये मृतिर्भवेत्।। 58।।
भूयोऽपि निधनार्थाय राशिदोषं वदाम्यहम्।
द्वादशाष्टमयोः पत्यौ दृष्टौ क्षीणेन्दुशुक्रयोः।। 59।।
तद्दशायां च निधनं भवत्येव न संशयः।
एकतरदृष्टियोगेन चापि मृत्युं वदेद् बुधः।। 60।।

स्थिर दशा में मारक राशि का निश्चय इस तरह करें। खण्ड में जो राशि पापग्रहों के मध्य में, जो राशि पापग्रहों से आक्रान्त हो यह पूर्वोक्त भी यहाँ समझें। जिस राशि से 5.8.9.12 में पाप ग्रह हों तो उसी की

दशा में मृत्यु होती है। शुभमध्य में रहने तथा पापयुक्त होने पर भी प्रायः मृत्यु होती है। शुभमध्य किन्तु पाप द्वयमध्यगत होने से मृत्यु हो जाती है।

अष्टमेश व द्वादशेश पर यदि क्षीण चन्द्र या शुक्र या दोनों की दृष्टि हो तो इन्हीं ग्रहों की अधिष्ठित राशि में अथवा 8.12 भावगत राशि में मृत्यु होती है।

प्रसंगवश ब्रह्मा ग्रह का निर्णय :–

अथ ब्रह्मग्रहं वक्ष्ये विशेषेण फलाय वै।
लग्नाद्वा सप्तमाद्वापि रिपुरन्ध्रव्ययाधिपाः।। 61।।
एतेषु बलवान् ब्रह्मा मेषादिविषमर्क्षगः।
लग्नसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवान् भवेत्।। 62।।
तस्मात्पृष्ठस्थितो ब्रह्मा राशिषट्के स्थितो ग्रहः।
कारकादष्टमेशो वा ब्रह्माप्यष्टमभावगः।। 63।।
शनौ पाते च ब्रह्मत्वे ब्रह्मातत्षष्ठखेचरः।
बहवो लक्षणाक्रान्ता ज्ञेयस्तेष्वधिको ग्रहः।। 64।।
अंशसाम्ये बलाधिक्याद् विज्ञेयो ब्रह्मखेचरः।
ब्रह्मणोरुद्रपर्यन्तमायुः स्यात प्राणिनामिति।।65।।

(i) अब मैं मारक विचार में विशेष रूप से ग्राह्य 'ब्रह्मा ग्रह' का निर्णय कहता हूँ। लग्न या सप्तम में जो अधिक बलवान् हो, उससे गणना करके 6. 8. 12 भावों के स्वामियों में से जो बली हो तथा विचारणीय लग्न या सप्तम से पिछली 6 राशियों में विषम राशि में स्थित हो वह ब्रह्मा है।

(ii) अष्टमेश या अष्टमभाव में स्थित ग्रह भी ब्रह्मा है अथवा आत्मकारक से अष्टमेश या अष्टमभावस्थ ग्रह भी ब्रह्मा होने की योग्यता रखता है।

(iii) शनि या राहु यदि ब्रह्मा प्रतीत हों तो उन्हें ब्रह्मा न मानकर उनसे षष्ठस्थ ग्रह को ब्रह्मा समझना चाहिए।

(iv) यदि कई ग्रह ब्रह्मा प्राप्त हों तो उनमें अधिक बलवान्, अधिक ग्रहयुक्त राशिस्थ या अधिक भुक्तांश वाला ग्रह ब्रह्मा होता है।

ब्रह्मा से प्रारम्भ करके महेश्वर (रुद्र) ग्रह तक ही मनुष्य की आयु होती है।

हमारे उदाहरण में सप्तम बली है क्योंकि उसी में ग्रह हैं। सप्तम में सम राशि है अतः विलोम क्रम से गिनने पर शनि, सूर्य व बुध 6. 8. 12 भावेश हैं। इनमें से कोई भी ग्रह विषमस्थ नहीं है। यदि क्रमगणना का

विकल्प भी रखें तो गुरु विषमस्थ है, लेकिन पृष्ठस्थ नहीं है। अतः कारक (शुक्र) से अष्टमेश बुध ही ब्रह्मा सिद्ध होता है। वह मकर में है। मकर से विलोम क्रम से स्थिर दशा होगी। मकर 7 वर्ष, धनु 9 वर्ष, वृश्चिक 9 वर्ष इत्यादि क्रम से आयु सीमा 65 से ऊपर 72 वर्ष के लगभग तय हुई थी। अतः मकर से तीसरे खण्ड में 7+8+9 = 24 वर्ष का एक खंण्ड तो जन्म सन् 1956 + 72 = 2028 से पहले मरण होगा। तब वृष की दशा इस खण्ड में पापयुक्त है। मिथुन से त्रिकोण में पापग्रह नहीं है। वृष में केतु पाप है। उससे नवम में सूर्य बुध हैं। अतः वृषदशा 2020 से 2028 के बीच कभी भी पाप राशि की अन्तर्दशा रहने पर निधन होगा। अथवा महेश्वर ग्रह की राशि में निधन होगा।

महेश्वर ग्रह का निर्णय :–

कारकादष्टमेशस्तु महेश्वरग्रहो मतः।
कारके स्वोच्चगे तस्माद् रिःफरन्ध्राधिपौ ग्रहौ।। 66।।
तयोर्बली महेशः स्याद्बलिनौ तौ महेश्वरौ।
कारकः पातयुक्तः स्यात्तदाषष्ठाधिपो ग्रहः।
महेश्वर इति ज्ञेयः तद्राशिकोणभे मृतिः।। 67।।

(i) कारक (आत्मकारक) से अष्टमेश ग्रह महेश्वर होता है।

(ii) यदि कारक स्वगृही या उच्चगत हो तो कारक से 8.12 भावेशों में से बली ग्रह महेश्वर है।

(iii) यदि कारक के साथ राहु केतु हों तो कारक से षष्ठेश ग्रह महेश्वर होता है।

(iv) महेश्वर ग्रह की अधिष्ठित राशि से 1.5.9 राशियों की दशा में मृत्यु होती है।

हमारे उदाहरण में आत्मकारक शुक्र से अष्टमेश बुध है।

अतः बुध की अधिष्ठित राशि मकर, उससे त्रिकोण वृष या कन्या में मृत्यु होगी। सामान्यतः अल्पायु योग में प्रथम, मध्यायु में पंचम व दीर्घायु में नवम राशि में मृत्यु समझें। इस दृष्टि से मकर से नवम वृष राशि में ही मृत्यु सिद्ध होती है। तब जातक की आयु 64 वर्ष से 72 वर्ष के मध्य होगी जो खण्ड से समन्वित हो जाती है।

इस ब्रह्ममहेश्वर ग्रह का विचार स्थिर दशा में ही होगा। पुनश्च यहाँ वक्तव्य है कि महेश्वर, ब्रह्म, रुद्र आदि ग्रहों का निर्धारण करते समय कई महेश्वर या ब्रह्मा हो सकते हैं। इनसे मारक दशा का विचार विशेष

युक्तियुक्त या व्यावहारिक नहीं है। इसी कारण पराशर के उत्तरवर्ती आचार्यों में से जैमिनि को छोड़कर किसी अन्य ने इस प्रकार को विशेष महत्त्व नहीं दिया है। नक्षत्र दशा से ही मारक विचार मुख्य है।

रुद्रग्रह का निर्णय :–

लग्नादथ कलत्राद् वा मृतीशो बलवान् भवेत्।
प्राणी रुद्रः स विज्ञेयो निर्बलः पापदृग्युतः।। 68।।
शुभदृग्योगतः प्राणी रुद्र आयुः पतिः नृणाम्।
रुद्रशूलान्तमायुः स्यात् त्रिकोणान्तेऽथवा पुनः।। 69।।
लग्नान्ते पंचमान्ते च नवमान्ते स्थलत्रये।
चिन्तनीयं महाप्राज्ञ ! अल्पमध्यादिकं तथा।। 70।।
तयोर्दुर्बलः सोऽपि गौणाख्य इति कथ्यते।
अत्रापि प्राणिरुद्रस्य विशेषं गणयेत्फलम्।। 71।।
व्यर्क पापेनसंयुक्तो न प्रयाणं प्रयच्छति।
शुभदृष्टावुभौ नृणां भवतः निधनप्रदौ।। 72।।

(i) लग्न या सप्तम से अष्टमेशों में जो बली है, वह रुद्र है।

(ii) यदि निर्बल (अपेक्षाकृत) अष्टमेश पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो वह भी रुद्र है। इस तरह दो रुद्र हो सकते हैं।

(iii) यदि बलवान् रुद्र के साथ शुभ ग्रह या सूर्य योग करें या दृष्टि करें तो रुद्र ग्रह की अधिष्ठित राशि की शूल दशा में या इससे 1.5. 9 राशियों की शूल दशा में मृत्यु होती है।

(iv) अल्पायु में प्रथम शूल, मध्यायु में पंचम शूल दशा व दीर्घायु में नवम शूलदशा मृत्युप्रद होती है।

(v) यदि दुर्बल अष्टमेश शुभयुक्त न हो तो उसे भी 'गौणरुद्र' माना जाता है। लेकिन बलवान् रुद्र का विशेषतया विचार करना चाहिए।

(vi) सूर्य रहित अन्य पाप ग्रहों से युक्त रहने पर कोई भी रुद्र मृत्यु नहीं देता, जबकि सूर्य या शुभ ग्रह से युक्त हो तो कोई भी रुद्र मृत्यु दे सकता है। इसका विचार शूल दशा (दशाध्याय देखें) में करना योग्य है।

रुद्रशूलान्त आयु का अपवाद :–

विशुभे रुद्रखेटे तु मन्दारेन्दुनिरीक्षिते।
सपापे वा तथा दृष्टे शुभ खेटनिरीक्षिते।। 73।।
त्रयोयोगा भवन्त्येते ह्यत्रायुः परतो भवेत्।। 74।।

(i) यदि रुद्र ग्रह को मंगल, चन्द्र व शनि देखें तथा रुद्र के साथ कोई शुभ ग्रह न हो।

(ii) रुद्र ग्रह पापयुक्त हो और उक्त तीनों ग्रह उसे देखें।

(iii) रुद्र को उक्त तीनों ग्रहों के साथ–साथ शुभ ग्रह भी देखे। ये तीन योग हैं। इनमें मनुष्य की आयु रुद्रशूल से आगे जाती है।

शुभाशुभ ग्रह विवेक :–

अर्कारमन्दफणिनः क्रमात्क्रूरा यथा त्रयम्।
चन्द्रोऽपि क्रूर एवात्र क्वचिदंगारकाश्रये।।75।।
गुरुः शिखी कविज्ञाश्च यथा पूर्वं शुभग्रहाः।
प्रत्येकं शुभराशिस्थ उच्चस्थो वा बुध शुभः।। 76।।
गुरुशुक्रौ च सौम्यस्थौ ततो ऽन्यत्राशुभाः स्मृताः।
क्रूराश्चैवं महाप्राज्ञ! क्रूरा उत्तरोत्तरम्।।77।।
शुभक्षेत्रगतैः क्रूरैः क्रूरताह्युपशाम्यति।
उक्तक्रमाच्छुभा ज्ञेयाः खेटा उत्तरोत्तरम्।।78।।
क्रूराश्रये सौम्यखेटा सौम्यत्वमुपशाम्यति।।79।।

(i) इस प्रसंग में सूर्य, मंगल, शनि व राहु क्रमशः अधिक अधिक बली हैं। क्रूर ग्रह की राशि में रहने पर ये अधिक क्रूर होते हैं। चन्द्रमा भी मंगल की राशि या योग में पापी ही माना जाएगा। अन्य पाप राशियों में भी साधारण पापी ही रहेगा।

(ii) गुरु, केतु, शुक्र व बुध ये उत्तरोत्तर अधिक शुभ ग्रह हैं। इनमें से शुभराशिस्थ ग्रह विशेष शुभ होंगे। उच्चस्थ बुध विशेष शुभ होगा।

(iii) गुरु व शुक्र की विशेषता है कि शुभ राशि में शुभ तथा पाप राशि में पाप ही हो जाते हैं।

(iv) जबकि अन्य क्रूर ग्रह, शुभ राशि में हों तो अपनी क्रूरता स्थगित कर देते हैं, अर्थात् सम हो जाते हैं। इसी तरह शुभ ग्रह भी क्रूर राशि में अपनी शुभता स्थगित कर सम हो जाते हैं।

हमारे उदाहरण में सम लग्न होने से विलोम गणना होगी। लग्न कर्क से अष्टम भावेश गुरु है। सप्तम से अष्टमेश बुध (उत्क्रम गणना) है। बुध ग्रह सहित है। अतः गुरु की अपेक्षा बुध बली हुआ। बुध बलवान् होने से वही रुद्र है। बलवान् बुध पर केवल गुरु की दृष्टि है। गुरु क्रूर राशिस्थ होने से सम है। अतः बली रुद्र शुभ दृष्ट नहीं माना जाएगा। जिससे आयु रुद्र शूल से भी आगे जाती दिखती है। निर्बल रुद्र गुरु है। उस पर बुध की दृष्टि है। बुध भी सम है। बुध के साथ सूर्य शुभवत् है। अतः रुद्र शूल

का अपवाद नहीं बनता । तब मकर राशि से शूल दशा शुरू होगी । गणना विलोम रहेगी । मकर से पंचम (कन्या) दशा में मृत्यु सम्भावित है । यह जातक की निर्याणशूल दशा होगी । इस दशा में वर्ष स्थिरवत् ही रहते हैं । अतः मकर से त्रिकोणस्थ वृष राशि दशा में मृत्यु होगी । यही दशा महेश्वर ग्रह से भी आयी थी । अतः अधिक संगतं प्रतीत होती है । इससे आयु खण्ड का समन्वय भी हो जाता है । अतः सन् 2020 के बाद जब भी गोचर व विंशोत्तरी दशादि तथा राशि दशाओं का अन्तर विशेष कष्टकारक एक साथ होगा तब मृत्यु होगी । इसकी सत्यता की परीक्षा समय के हाथों में है । अस्तु आयुर्निर्णय के इन नियमों का कई उदाहरण देकर इसे जैमिनिसूत्रों के शान्तिप्रिय भाष्य एवं आयुर्निर्णय नामक ग्रन्थ के अभिनव भाष्य में भी विस्तृत विवेचन किया है ।

अन्त में हमारी सलाह है कि आयु या मृत्यु अदृश्य शक्ति के हाथों में हैं । सर्वशक्तिमान् ही इसे नियन्त्रित करता है । जिस प्रकार वह समय योगिगम्य है, उसी तरह मृत्यु का रहस्य साधारण जन नहीं जान सकते, यह रहस्य महायोगिगम्य है । पिण्डायु, निसर्गायु, जीवशर्मायु, अंशायु, जैमिनीय आयु आदि प्रकार सार्वत्रिक रूप से सम्यक् नहीं हैं । इनके अपवाद हमने अपने जीवन में ही सैकड़ों देखे हैं । अतः आयुविचार को चरम सत्य मानकर जातक को भयभीत कर देना अथवा मृत्यु को बहुत दूर समझकर ज्योतिषागत दीर्घायु वर्षो को ही परम प्रमाण मानकर चलते हुए, स्वयं मृत्यु का वरण करना या आग में कूद पड़ना दोनों ही अतिवादी मार्ग हैं । इन्हें साधन के रूप में ही प्रयोग करें, ये साध्य नहीं हैं ।

मृत्युर्जन्मवतां वीर ! देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ।। (श्रीमद्भागवत)

अतः मृत्यु का रहस्य अभी भी रहस्य ही है । सभी उक्त नियमों व आयु प्रकारों की अपवाद श्रृंखला हमने देखी है । आप भी मृत व्यक्तियों की कुण्डलियों को सामने रखकर अध्ययन करें तो चौंक पड़ेंगे । मृत्यु योगों में केवल कष्ट तथा कष्ट योगों में प्रबल कष्ट या मृत्यु अथवा भीषण योगों में साधारण फल होते देखा जाता है, अतः सारे ही आयु प्रकार सापवाद हैं ।

पिता आदि का निधन विचार :–

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि पित्रादेश्च द्विजोत्तम ! ।
निर्याणयोगान्पूर्वं ये प्रोक्ताः श्रीशम्भुना पुरा ।। 80 ।।
लग्नसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवांस्ततः ।
गणयित्वा नयेद्धीमान् शूलं तत्कोणगे मृतिः ।। 81 ।।

लग्न व सप्तम से क्रम व उत्क्रम से पूर्ववत् गणना करके नवीं राशियों में जो बलवान् हो, उसे आधार बनाकर पूर्ववत् शूलदशा बनाएँ। उस शूल से 1.6.9 राशियों की दशा में पिता की मृत्यु होती है।

हमारे उदाहरण में सम लग्न से उत्क्रम से नवम भाव में वृश्चिक एवं सप्तम से नवम भाव में वृष राशि है। इनमें ग्रहस्थितिवशात् वृश्चिक राशि बलवान् है। अतः वृश्चिक, मीन या कर्क दशा में जातक के पिता का निधन सम्भव है। इसका वास्तविक निश्चय पिता के निजी जन्म चक्र से अवश्य करना चाहिए।

एवमेव चतुर्थात्तु नीत्वा शूलदशां ततः।
तत्त्रिकोणर्क्षपाके तु मातुः मृत्युं विनिर्दिशेत्।। 82।।
तृतीयाच्छूल पाके तु भ्रातृहानिं वदेत्पुनः।
पंचमशूलदाये तु भगीनिपुत्रयोर्मृतिः।। 83।।
एकादशस्थ शूले तु ज्येष्ठभ्रातुर्मृति वदेत्।
तत्तत्कारकखेटाच्च चिन्तयेत्पूर्ववद् द्विज!।। 84।।

(i) इसी तरह लग्न व सप्तम से बलवान् चतुर्थ भाव की 1.5.9 राशि दशा में माता की मृत्यु कहें।

(ii) 1.7 से बलवान् तृतीय भाव से 1.5.9 दशा में भ्राता की मृत्यु, पंचम भाव की 1.5.9 दशा में बहन व पुत्र की मृत्यु तथा ग्यारहवें भाव के 1.5.9 की शूलादि दशा में ज्येष्ठ भाई की मृत्यु कहें।

(iii) उक्त फल का विचार पूर्वोक्त पिता माता, भाई स्त्री आदि के कारक ग्रह से करें।

तृतीय भाव मरणकारण :–

तृतीये भानुनादृष्टे युक्ते वा सबले द्विज!।
राजहेतोश्च मरणं तस्य ज्ञेयं द्विजोत्तम!।। 85।।
तृतीये चेन्दुना दृष्टे युक्ते यक्ष्मणा मृतिः।
कुजेन व्रणशस्त्राग्नि दाहाद्यैर्मरणं भवेत्।। 86।।

(i) तृतीय भाव पर बलवान् सूर्य की दृष्टि हो या युक्त हो तो राजा से सम्बन्धी अर्थात् सरकार मनुष्य का मरण कारण होती है। उदाहरणार्थ राजा की आज्ञा से मृत्यु दण्ड, दण्डार्थ कारावास में बन्धन से मृत्यु, राजा के वाहन से मृत्यु, राजा से शत्रुता के कारण मृत्यु इत्यादि स्वबुद्धि से यथावसर कल्पित करें।

(ii) तृतीय भाव यदि बलवान् चन्द्र से युक्त दृष्ट हो तो अन्दरूनी घाव, फोड़ा, यक्ष्मा अर्थात् भीतरी जख्म देने वाला रोग (आन्त्र विस्फोट),

एपेन्डिसाइटिस, टी. बी., कैंसर, गलपाक, ट्यूमर इत्यादि से मृत्यु होती है। हमारे विचार से यह चन्द्र पाप राशि में या अन्यथा पापी होना चाहिए।

(iii) तृतीय भाव बली मंगल से युत दृष्ट हो तो बाहरी घाव चोट, शस्त्र, अग्नि, दाह आदि से मृत्यु होती है। हमारे विचार से हृदयाघात या भीतरी चोट भी इसमें सम्मिलित है।

जैमिनि सूत्रों में पाराशरीय नियमों का अवलम्बन करके कहलाया है कि कर्मणिपापयुत दृष्टे दुष्टं मरणम्।। शुभं शुभदृष्टियुते। 2.2.12 अर्थात् लग्न या आत्मकारक से तृतीय भाव शुभ दृष्ट युत हो तो सामान्य या स्वाभाविक या पीड़ा रहित मृत्यु होती है। पाप ग्रहों से युत दृष्ट हो तो दर्दनाक मृत्यु होती है। इस पूरे प्रसंग की व्युत्पत्ति हेतु हमारा जैमिनीय सूत्र शान्तिप्रिय भाष्य अवश्य देखें।

तृतीये शनिमान्दिभ्यां युक्तेदृष्टेऽपि वा द्विज !।
विषार्तितो मृतिर्वाच्या जलाद् वा वह्निपीडनात्।। 87।।
शनिना वातरोगात्तु भवेन्मृत्युर्द्विजोत्तम !।
शुक्रेण मेहरोगेण मृतिर्वाच्येति निश्चयः।। 88।।
गुरुणा ज्वरशोफाद्यैररुचिप्रभवा मृतिः।
तृतीये बुधसंयुक्ते ज्वरान्मृत्युर्भवेन्नृणाम्।। 89।।
केतुना जल रोगाद्यै विषूच्याद्यैर्भवेन्मृतिः।
बहुभिर्बहुभवैः रोगैरिति वाच्यं विचक्षण !।। 90।।
तृतीये चन्द्रमान्दिभ्यां यक्ष्म दोषैर्मृतिर्भवेत्।
सर्वत्र चन्द्र दृग्योगादेभिर्मृत्युः सुनिश्चितम्।। 91।।

(i) तृतीय भाव यदि शनि व गुलिक से युतदृष्ट हो तो विष संक्रमण, जल में डूबना या अग्नि पीड़ा से मृत्यु कहें।

(ii) अकेला शनि दृष्टि या योग करे तो वात रोग, वायु विकार, गैस, पेट फूलना या गठिया आदि से मृत्यु होती है।

(iii) यदि उक्त तृतीय भाव शुक्र से युक्त दृष्ट हो तो मेह अर्थात् मधुमेह, प्रमेह (वीर्यरोग, धातुक्षय) या किसी भी कारण से जिसमें शरीर की धातुओं का क्षय हो जाए। उससे मृत्यु होती है।

(iv) यदि तृतीय भाव बृहस्पति से दृष्ट युक्त हो तो बुखार, शरीर पर सूजन, अरुचि आदि के कारण मृत्यु होती है।

(v) तृतीय में बुध की दृष्टि या योग हो तो बुखार से मृत्यु होती है।

(vi) केतु से युक्त दृष्ट हो तो पानी से उत्पन्न विकार (जलज कीटाणु संक्रमण, अमीबियासिस, टायफायड, हैजा, पेट के कीड़े आदि) से मृत्यु होती है।

(vii) यदि कई ग्रहों का योग या दृष्टि आदि हो तो सम्बन्धित अनेक रोगों का मिला–जुला प्रकोप समझना चाहिए ।

(viii) तृतीय में चन्द्रमा व गुलिक साथ हों तो खाने के विकार के कारण (अपच, बदहजमी, वमन, अतिसार, उदरशूल आदि) से मृत्यु होती है ।

उक्त सभी योगों में यदि चन्द्रमा की दृष्टि या योग हो तो उक्तरोगादि का प्रकोप निश्चय से होता है । उक्त सभी योगों को आत्मकारक से तृतीय स्थान में भी देखना चाहिए । साथ ही लग्न पद से या सप्तम पद से तृतीय स्थानों को भी देखें तो विशेष सटीक परिणाम मिल सकते हैं । एतदर्थ हमारे जैमिनीय सूत्र शान्तिप्रिय भाष्य अध्याय 3 पाद 3 भी देखें । वहाँ इसके अन्य अनेक पराशरसमर्थित योग भी दिए गए हैं ।

लग्न व सप्तम पद से तृतीय भाव :–

लग्नारूढात्तृतीये वा सप्तमारूढतः पुनः ।
तृतीये पापयोगे स्यात् सुदुष्टं मरणं भवेत् । । 92 । ।
तत्र पापेषु सज्ञेषु राजकोपान्मृतिं वदेत् ।
पुण्यराशौ तृतीये वा दुष्टां मृति वदेद् बुधः । । 93 । ।
लग्नसप्तमभावेषु तदारूढेषु संगताः ।
पापिनः प्रायशो मृत्युः शूलात्पाशादथापि वा । । 94 । ।
राहुदृष्टौ ध्रुवं मृत्युः यथायोगं भविष्यति ।
एवमेषां तु रन्ध्रेषु योगाश्चिन्त्या यथोक्तवत् । । 95 । ।

(i) लग्नपद या सप्तमपद से तृतीय का अष्टम में पापग्रहों का योग हो तो अस्वाभाविक या खौफनाक मृत्यु होती है ।

(ii) उक्त तृतीय या अष्टम स्थानों में बुध व पापी ग्रह हों तो राज कोप से मृत्यु होती हैं ।

(iii) यदि इन तृतीय या अष्टम स्थानों में पुण्य राशि (चर राशियाँ) हों तो भी अस्वाभाविक मृत्यु होती है ।

(iv) यदि लग्नपद, सप्तमपद, लग्न व सप्तम इन सबसे तृतीय या अष्टम भावों में एक साथ सर्वत्र पापयोग हो तो शूली, फाँसी, मृत्यु दण्ड होता है ।

(v) इन योगों के फल को राहु की दृष्टि से निश्चयता प्राप्त होती है ।

(vi) इसी तरह उक्त सबसे अष्टम भाव को भी देखना चाहिए ।

तत्र तृतीयभावेषु सागौ मन्दे मृतिं वदेत् ।
प्रतिबन्धात् तथा केतुभौमाभ्यामपि सम्भवेत् । । 96 । ।

तत्र राकेशराहुभ्यां राशिगुणधर्मतो मृतिः ।
तत्रमेषस्य वर्गेषु पाषाणाच्च मृतिं वदेत् ।। 97 ।।
वृषवर्गे गण्डमालास्फोटकैर्मिथुने विषात् ।
कर्कांशे कीटसर्पादेः सिंहांशेऽपि तथैव च ।। 98 ।।
तुलांशे दण्डघातादिध वृश्चिकांशे तु मूषकैः ।
एवं हि तत्रवर्गैश्च नृणां मृत्युं वदेद् द्विज ! ।। 99 ।।

(i) यदि लग्नपद, सप्तम पद या लग्न या सप्तम से तृतीय भावों में राहु व शनि साथ हों तो रुकावट, बन्धन, अपहरण, फँसना, मलमूत्र का अवरोध इत्यादि से मृत्यु होती है ।

मंगल व केतु से भी उक्त फल समझना चाहिए ।

(ii) वहाँ चन्द्र व राहु हो तो स्थित राशि के शील स्वभाव या राशि से संकेतित जानवर आदि के कारण मृत्यु होती है ।

(iii) यदि तृतीय भावों में मेषराशि के वर्ग अधिक हों तो पत्थर लगने से, वृष वर्ग हों तो गण्डमाला फटने वाले फोड़े आदि से मृत्यु होती है । मिथुनांश हो तो विषपानादि से मृत्यु होती है ।

(iv) यदि कर्क के वर्ग हों तो कीड़े मकौड़ों के कारण, सिंहांश (सिंह वर्ग) में सर्प के कारण, तुला वर्ग में लाठी की चोट से, वृश्चिक वर्ग में मूषकादि से मृत्यु होती है ।

कारकांश से मृत्युविचार :–

यथाप्रसंगं ते विप्र ! कारकांशविलग्नतः ।
मृत्युं नृणां प्रवक्ष्यामि, सावधानोऽवधारय ।। 100 ।।
कारकांशविलग्नादिध तदीशात्स्वे तृतीयके ।
षट्सप्ताष्टमरिःफेषु पापैर्मृत्युरनिष्टदा ।। 101 ।।
कारकांशेशखेटाद् वा कारकांशात्तुनैधने ।
राशियोगाद् वदेन्मृत्युं यथाशास्त्रं विचक्षण ! ।। 102 ।।
तत्र मेषे शुभे नित्यं वृषे दण्डप्रहारतः ।
मिथुने विषपानाद्वै कर्कटे ज्वरदोषतः ।। 103 ।।
सिंहे शत्रु हतो जातस्तुलायां कुष्ठ दोषतः ।
वृश्चिके बिलवासैस्तु नवमे शस्त्रघाततः ।। 104 ।।
नक्रे दुर्गतितो मृत्युः मीने नैसर्गिकी भवेत् ।

(i) अब मैं कारकांश लग्न से भी मृत्यु का विचार कहता हूँ । कारकांश लग्न व कारकांश लग्न के स्वामी से 2. 3. 6. 7. 8. 12 भावों में पापग्रहों का प्रभाव हो तो अनिष्टकारक मृत्यु होती है ।

(ii) कारकांशेश व कारकांश राशि से अष्टम में यदि मेष राशि हो तो शुभ अर्थात् सामान्य मृत्यु होती है ।

(iii) वृष राशि हो तो दण्डप्रहार, मिथुन हो तो विषपान, कर्क हो तो ज्वर, सिंह हो तो शत्रुओं का आक्रमण, तुला हो तो कुष्ठदोष, वृश्चिक हो तो बिल में रहने वाले जानवरों के कारण, धनु हो तो शरभ प्रहार, मकर हो तो दुर्गति से मृत्यु होती है। यदि मीन व मेष राशि हों तो सामान्य मृत्यु होती है।

मृत्यु का स्थान :–

तृतीये च शुभैर्युक्ते शुभदेशे मृतिर्भवेत्।।
पापैश्च कीकटे देशे मिश्रैर्मिश्रस्थले मृतिः।। 105।।

यदि लग्न या आत्मकारक से तृतीय स्थान में शुभ ग्रहों की दृष्टि–योग हो या शुभ राशि हो तो अच्छे प्रदेशों स्थानों में मृत्यु होती है। अच्छे प्रदेश से तात्पर्य शान्त, सुरम्य, प्रदेश या तीर्थ स्थान, देव भूमि या काशी, कांची, अवन्तिका, प्रयागादि पुण्यभूमि से है। यदि उक्त स्थानों पर पापग्रह या पापराशियाँ हों तो कीकर प्रदेश (निकृष्ट, गर्हित, निन्दित स्थान, प्राचीन काल में मगध आदि प्रदेश) में निधन होता है। यदि मिश्रित ग्रह या राशियों का प्रभाव हो तो मिश्रित प्रदेश, मध्यवर्ती प्रदेशों में मृत्यु होती है।

तृतीये गुरुशुक्राभ्यां युक्ते ज्ञानेन वै मृतिः।
अज्ञानेनान्यखेटैश्च मृतिर्ज्ञेया द्विजोत्तम!।। 106।।
चरराशौ तृतीयस्थे परदेशे मृतिर्भवेत्।
स्थिरराशौ स्वगेहे च द्विस्वभावे पथि द्विज!।। 107।।

(i) यदि तृतीय स्थान में गुरु-शुक्र हों तो मनुष्य की मृत्यु के समय संज्ञा (होश) बनी रहती है। यदि अन्य ग्रहों से युक्त दृष्ट हो तो असंज्ञत्व अर्थात् बेहोशी की स्थिति हो जाती है।

(ii) यदि तृतीय स्थान में चर राशि हो तो घर से बाहर किसी अन्य स्थान या नगरान्तर, देशान्तर में मृत्यु होती है। यदि स्थिर राशि हो तो अपने घर में तथा द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में मृत्यु होती है।

एवं रन्ध्रस्थितैः खेटैरपि चिन्त्यं विचक्षण।
अथान्यदपि वक्ष्यामि रन्ध्रभावस्य ते द्विज!।। 108।।
लग्नादष्टमभावाच्च निमित्तं कथितं बुधैः।
सूर्येऽष्टमेऽग्नितो मृत्युश्चन्द्रे मृत्युर्जलेन वै।। 109।।
शस्त्राद्भौमे ज्वराज्ज्ञे च गुरौ रोगात् मृतिं वदेत्।
पिपासाया भृगौ मन्दे क्षुधायाश्च द्विजोत्तम!।। 110।।

(i) इसी प्रकार जो योग तृतीय स्थान से कहे हैं, वे योग अष्टम भाव से भी देखने योग्य हैं। इनके अतिरिक्त अष्टम भाव से अन्य मरणनिमित्त भी बताते हैं।

(ii) लग्न से अष्टम में सूर्य हो तो अग्नि से (गैस, साक्षात् अग्नि, करंट लगना, तेजाब गिरना, लू लगना बाहरी गर्मी तथा आन्तरिक दाह, क्रोधाग्नि आदि भीतरी अग्नि) मृत्यु होती है। यदि अष्टम में चन्द्रमा हो तो पानी से मृत्यु होती है। पानी में गिरना, डूबना या वर्षा की अधिकता, पानी के दोष, रोगाणु संक्रमण, जल संक्रमण से उत्पन्न टायफायड, हैजा आदि सब स्वबुद्धि से निश्चय करना चाहिए।

(iii) मंगल में शस्त्र प्रयोग (शत्रु द्वारा, स्वयं द्वारा, जान–बूझकर या अनजाने में) से मृत्यु होती है। बुध हो तो ज्वर से मृत्यु होती है। ज्वर के सैकड़ों प्रकार आयुर्वेद में कहे हैं। उनके पृथक्–पृथक् कारण हैं।

(iv) शुक्र हो तो प्यास से मृत्यु होती है। अधिक दस्त वमन होने से शरीर में जल की कमी, वास्तविक प्यास की अधिकता आदि समझें। एवं शनि से भूख, अभाव, दरिद्रता आदि से अथवा किसी कारण आहार विहार छूट जाने से, अति उपवास से मृत्यु होती है।

तीर्थस्थान में मृत्युयोग :–

अष्टमेशुभदृग्युक्ते धर्मपे च शुभैर्युते।
तीर्थे मृतिस्तदा ज्ञेया पापाख्यैरन्यथा मृतिः।। 111।।

यदि अष्टम स्थान में शुभ ग्रहों की दृष्टि या योग हो तथा नवमेश शुभ ग्रहों से युक्त हो तो तीर्थस्थान में मृत्यु होती है। इसके विपरीत पाप दृग्योगादि हो तो अन्यत्र तीर्थातिरिक्त स्थानों में मरण कहें।

शव परिणाम :–

अग्न्यम्बु मिश्रभ त्र्यंशैर्ज्ञेयो मृत्युग्रहाश्रितैः।
परिणामः शवस्यात्र भस्मसंक्लेदशोषकैः।। 112।।
व्यालवर्ग दृकाणैस्तु बिडन्तो भवति ध्रुवम्।
शवस्य श्वश्रृगालाद्यैर्गृध्रकाकादि पक्षिभिः।। 113।।

(i) अष्टम भाव में अग्नि ग्रह का द्रेष्काण (सूर्य, मंगल केतु) हो तो अग्निदाह होता है। यदि जलग्रह (चन्द्र, शुक्र) हों तो जल प्रवाह होता है तथा मिश्रित ग्रहों (शनि, बुध, गुरु या शुभ राशि पापयुक्त हो या पापराशि शुभयुक्त हो तो वैसे ही सूख जाता है।

(ii) यदि सर्पद्रेष्काणादि हो तो मनुष्य का शव विट् अर्थात् विष्ठा रूप अन्त होता है। अर्थात् मिट्टी बन जाता है, ऐसा आशय है। पक्षिद्रेष्काण हो तो पक्षियों द्वारा खाया जाता है।

व्याल द्रेष्काण :–

कर्कटेमध्यमोऽन्त्यश्च वृश्चिकाद्य द्वितीयकौ।
मीनेऽन्तिमस्त्रिभागैश्च व्याल वर्गा प्रकीर्तिताः।। 114।।

कर्क का दूसरा व तीसरा, वृश्चिक का पहला व दूसरा तथा मीन का अन्तिम द्रेष्काण 'सर्प द्रेष्काण' है ।

पूर्वयोनि का ज्ञान :–

रविचन्द्रबलाक्रान्तत्र्यंशनाथेगुरौजनः ।
देवलोकात् समायातो विज्ञेयो द्विजसत्तम ! । । 115 । ।
शुक्रेन्द्वोः पितृलोकात्तु मर्त्याच्च रविभौमयोः ।
बुधार्क्योर्नरकादेवं जन्मकालाद् वदेद् बुधः । । 116 । ।

(i) सूर्य व चन्द्रमा में जो बली हो उसके द्रेष्काण का स्वमी गुरु हो तो अर्थात् बलवान् सूर्य या चन्द्रमा गुरु के द्रेष्काण में हो तो देवलोक से प्राणी आया है ।

(ii) यदि शुक्र व चन्द्रमा के द्रेष्काण में हो तो पितृलोक से, सूर्य मंगल का द्रेष्काण हो तो मृत्युलोक से तथा बुध शनि का द्रेष्काण हो तो नारकीय निकृष्ट लोकों से प्राणी आया था ।

उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में अष्टम में कुम्भ राशि व शुक्र स्थित है । अतः प्यास, जल की कमी, प्रमेहादि से मृत्यु होगी ।

सप्तम से अष्टम भाव में सूर्य द्रेष्काण, लग्नाष्टम में शनि द्रेष्काण तथा तृतीय (अष्टमादष्टम आयु स्थान) में बुध का द्रेष्काण है । यहाँ शव कुछ दिनों तक रहने के बाद दाह होगा, ऐसा कहना युक्त है ।

सूर्य चन्द्र से सूर्य बली है । सूर्य का द्रेष्काण स्वामी शुक्र है । अतः प्राणी पितृ लोक से आया था ।

मरणोत्तर गति विचार :–

गुरुश्चन्द्रसितौ सूर्यभौमौ ज्ञार्की यथाक्रमम् ।
देवेन्दुभूम्यधोलोकान् नयन्त्यस्तारिरन्ध्रगाः । । 117 । ।

यदि लग्न से 6.7.8 भावों में विशेषतया 6.8 में बलवान् गुरु हो तो देवलोक में, चन्द्र-शुक्र हो तो पितृलोक में, सूर्य-मंगल हो तो भूमि लोक में, बुध-शनि हो तो अधोलोक नरकादि में गमन होता है ।

हमारे उदाहरण में सप्तम में सूर्य बुध व अष्टम में शुक्र है । इनमें शुक्र वर्गोत्तमी, भावेश सम्बन्धी, शुभ दृष्ट है । अतः शुक्र के लोक पितृलोक में गमन होगा । अतः पुनर्जन्म होगा ।

अथ तत्रग्रहाभावे रन्धारित्र्यंशनाथयोः ।

यो बली स निजं लोकं नयत्यन्ते द्विजोत्तम ! । । 118 । ।

यदि इन भावों में कोई ग्रह न हो तो 6. 8 भावों के द्रेष्काणेशों में जो बलवान् हो वह उक्त क्रम से अपने लोक में प्राणी को ले जाता है ।

तत्र स्वोच्चादि संस्थित्या वरमध्याधमाः क्रमात् ।

तत्तल्लोकेऽपि संजाता विज्ञेया द्विजोत्तम ! । । 119 । ।

यदि परजन्म का निर्णायक उक्त ग्रह उच्च में हो, मूलत्रिकोण, स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र में हो तो क्रमशः उन लोगों में ऊँची, मध्यम या साधारण स्थिति रखता है । यदि नीचादिगत हो तो नीच स्थिति तथा उच्च नीच के बीच में हो तो मध्यम स्थिति देता है ।

कारकांशाद् व्यये चापि स्वोच्चगः कुरुते ग्रहः ।

शुभलोकादिकं विप्र ! तत्र केतुस्तु मोक्षदः । । 120 । ।

मेषधनुषि मीने वा कर्कटे शिखिनः स्थितिः ।

शुभदृग्योगतो नूनं सायुज्यं कुरुते ध्रुवम् । । 121 । ।

अन्यान् मारकभेदांश्च राशिग्रहकृतान् द्विज ! ।

दशाध्यायप्रसंगेषु कथयिष्यामि सुव्रत ! । । 122 । ।

(i) कारकांश लग्न से व्यय भाव में कोई उच्चगत ग्रह हो तो मनुष्य शुभ लोकों में जाता है । यदि वहाँ केतु हो तो मोक्षप्रद होता है ।

(ii) मीन, कर्क (मेष, धनु) में यदि वहाँ केतु हो तथा शुभ ग्रह देखते हों तो निश्चय से मोक्ष होता है ।

(iii) अन्य मारक भेदों को राशि व ग्रहों के अनुसार आगे दशाध्याय प्रसंग में कहूँगा ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
मारकाध्यायश्चत्वारिंशत्तमः । । 40 । ।

41

। । अथ वृत्ति(व्यवसाय)निर्णयाध्यायः । ।

लग्नादिन्दोश्च दशमं प्रबलं वृत्तिदायकम् ।

तदीशात् तत्रगात् खेटात्तदंशेशाच्च चिन्तयेत् । । 1 । ।

तद्द्रष्टुश्च तद्राशेः स्वभावोत्थं वदेत्पुमान् ।

तेषां वृद्ध्या भवेद् वृद्धिरन्यथान्यत् फलं स्मृतम् ।। 2 ।।

(i) बलवान् लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान से मनुष्य की जीविका, व्यवसाय, कर्म, क्रियाकलापादि का विचार करें ।

(ii) विचारणीय दशम भाव में स्थित राशि, दशमेश, दशमगत, नवांशेश, ग्रह, दशमस्थ ग्रह इनमें से बलवान् ग्रह या राशि के स्वभावानुसार व्यक्ति की वृत्ति कहें ।

(iii) उक्त राशि या ग्रह बलवान् हो तो उत्तम व्यवसाय फल तथा मध्यम बली हो तो मध्यम फल तथा साधारण या हीनबली हो तो क्रमशः साधारण या नाममात्र फल कहें ।

दशमस्थ राशिवर्ग से फल :–

कृष्युद्यानद्यूतादिसेवाव्यापारतोऽथवा ।

रसासवादिवृत्या वा नरा जीवन्ति मेषगे ।। 3 ।।

जांगलैः कर्मभिर्धान्यसंग्रहान्मृगपक्षिणः ।

शकटेभ्यो वदेद्विप्र ! वृषे वृत्तिं तु प्राणिनाम् ।। 4 ।।

मिथुने जलव्यापाराज्जलजैर्वस्तुभाण्डकैः ।

गणितैलिपिकार्यैर्वा रतिजैर्धनजैरपि ।। 5 ।।

शस्त्राग्नियोनिपोषाच्च गणितैर्मृगयादिभिः ।

मणीनां खनिजानां वा कुलीरे च वदेद् धनम् ।। 6 ।।

स्वर्णाभूषणपाषाणरूप्यकूटैश्चतुष्पदैः ।

कृषिगोरक्ष्यधान्यानां व्यापारो वा मृगाधिपे ।। 7 ।।

शाकटाः मणिकारा वा हैरण्या गन्धिकास्तथा ।

गान्धर्वशिल्पलेख्यैर्वा नराः जीवन्ति षष्ठभे ।। 8 ।।

(i) दशम में मेष राशि, नवांश या अधिक वर्ग हों तो कृषि, बाग–बगीचे लगाना, जूआ खेलना, नौकरी, व्यापार, रस बेचना, आसव सुरा शराब आदि का व्यापार होता है ।

(ii) वृष राश्यादि हो तो जंगल से सम्बन्धित कार्य, वनपाल, लकड़ी के ठेकेदार, जंगलात का अधिकार, अन्न संग्रह, पशुपक्षी आदि के सम्बन्ध से व्यवसाय, गाड़ी चलाना, चलवाना इत्यादि कार्य होते हैं ।

(iii) मिथुन राश्यादि हो तो जल से सम्बन्धित व्यापार (ठंडे पेय, पानी बेचना, पानी की शुद्धि, पानी की आपूर्ति आदि) अथवा जल में रहकर

व्यापार, मर्चेन्ट नेवी, नौका चलाना, स्टीमर, पानी के जहाज आदि पर कार्य अथवा जल से उत्पन्न वस्तुओं का व्यवसाय, बर्तनों का व्यवसाय, गणित, लेखन, लिपि, हिसाब,रति क्रिया से सम्बन्धित व्यवसाय (रति रोग चिकित्सा, उन रोगों की दवा बनाना, वेश्याघर चलाना, वेश्याओं की दलाली आदि) अथवा धन (पूँजी) से सम्बन्धित व्यवसाय, बैंकिग, फायनेन्स, सूदखोरी, दलाली, पूँजी निवेश आदि से सम्बन्धित व्यवसाय होता है।

(iv) कर्क राश्यादि में शस्त्र सम्बन्धी कार्य (निर्माण या जाँच–परख या लायसेंस देना शस्त्र प्रयोग नहीं), अग्नि कार्य, तपाना, आक्रामक कार्य, हडताल, आन्दोलन, रेल चलाना, हलवाई गिरी, बेकरी आदि। गणित कार्य (एकाऊन्टेंसी, लेखापरीक्षण, गणिताध्यापक आदि) मणि, खनिज, मूँगा, मोती, जल पक्षी आदि का व्यापार, गोताखोरी आदि से जीविका होती है।

(v) सिंह राश्यादि हो तो सोने, चाँदी, के गहने बनाना, पीतल या मिश्रित धातु के आभूषण, सजावटी सामान का उत्पादन, चौपायों का व्यापार, पशु सम्बन्धी व्यवसाय, कृषि, पशु–पालन, धान्य व्यवसाय आदि से जीविका होती है।

(vi) कन्या राश्यादि हो तो गाड़ी मरम्मत, मणि पिरोना, जड़ना आदि, सोने की कारीगारी, गन्ध खुशबू से सम्बन्धित चीजें, गायन, अभिनय, ड्राइंग, पेंटिंग, शिल्पकला (दस्तकारी) आदि से सम्बन्धित व्यवसाय होता है।

व्यापारैर्बहुभिः पृथुलैः पणिकर्मरताः सदा।
नानापण्यसमृद्धाश्च पशुजीवाः कृषीवलाः।। 9।।
कलाशिल्पप्रयोगैर्वा हिरण्यपरिवर्तनैः।
न्यायाधिकरणाच्चैव तुलायां वृत्तिभागिनः।। 10।।
वृश्चिके सेवकाः पापाश्चौराः लौहकराः नराः।
नारी सम्पर्क विभवाः नित्योद्युक्ताः शठाः अपि।। 11।।
देहचिकित्सकाः कूटप्रयोगेषु रताः खलाः।
वधबन्धनकार्यैर्वा वृत्तिं कुर्वन्ति प्राणिनः।। 12।।
सचिवा दुर्गपाला वा वैद्या वीराः धनुर्धराः।
यन्त्रोपस्करगणिताद्यैः शकुनैर्वाजिकाष्ठकैः।। 13।।
धनुर्धरे शस्त्रविद्यारताः संग्रामिणो नराः।
मकरे जलपण्येन काष्ठशिल्परसायनैः।। 14।।
वृक्षारोहैरुपवनैः नराः कुर्वन्ति जीविकाम्।
कुम्भेशस्त्रास्त्रभेदैश्च चौर्य बाहुबलैरपि।। 15।।

खननाद्दहनाच्चापि भाराद्वा वृत्तिभागिनः ।

मीने मीनाच्च शस्त्राच्च रतिकार्याद् विचक्षण ! । । 16 । ।

सलिलाद् वा तत्सम्पर्कात् वाहाद् वा जीविकां वदेत् ।

राश्यंशवर्गसंयोगात् सर्वं ब्रूयाद् बलाबलात् । । 17 । ।

(i) तुलाराशियादि हो तो अनेक वस्तुओं का बड़ा व्यापार, आढ़त, दलाली, कमीशन एजेंट, सेल एजेन्सी, व्यापार सम्बन्धित सलाहकारी, बाजार में रहकर ही कार्य करना (शेयर दलाली, मण्डियों के कार्य आदि) अथवा मण्डियों में रुपया आदि उधार देना, अनेक प्रकार व विधि से आमदनी करना, पशुविक्रय, कषि कार्य, कला, शिल्प आदि की ठेकेदारी,सोने का लेन-देन (आजकल मुद्रा विनिमय कार्य) न्यायालय में कार्य, न्यायाधिकारी आदि कार्यो से वृत्ति होती है ।

(ii) वृश्चिक राश्यादि में सेवाकार्य, पापकर्म, गुप्त चोरी छिपे होने वाले कार्य, चोरी, लुहारी, स्त्री सम्पर्क से धनागम (स्त्री के साथ व्यवसाय या स्त्रियों का व्यवसाय) धोखेबाजी आदि से वृत्ति होती है । शरीर की कूटचिकित्सा, किसी अनोखे प्रकार से चिकित्सा का व्यवसाय करना, गुप्त प्रयोग, कूटनीतिक चालबाजी, दुष्टता के कार्य, हत्या, मारना, ताड़ना, अपहरण आदि से जीविका कमाता है ।

(iii) धनुराश्यादि हो तो मन्त्री, सचिव, किले के रक्षक, कोटपाल, कोतवाल, थानेदारी, शूरवीरता के कार्य, साहसिक कारनामे, चिकित्सक, शस्त्र प्रयोग करने वाले कार्य, यन्त्र प्रयोग निर्माण व सुधार, गणित प्रयोग, इंजीनियरिंग, शकुन विचार, भविष्य कथन करना, घोड़ों का व्यापार या उनसे सम्बन्धित कार्य, लकड़ी, शस्त्र विद्या सिखाना (मार्शल आर्ट्स आदि भी) युद्ध विद्या आदि से व्यवसाय होता है ।

(iv) मकर राश्यादि में पानी से सम्बन्धित व्यवसाय, जलसंतरण, गोताखोरी, समुद्रतल का अध्ययन आदि, विशेष कलात्मक लकड़ी की चीजें, रसायन निर्माण का व्यापार, वृक्षारोपण, उपवन उद्यान, पार्क आदि लगवाना, देखमाल करना आदि से जीविका होती है ।

(v) कुम्भराशि हो तो शस्त्र व अस्त्रों में गहरे अध्ययन, प्रयोग व निर्माण से सम्बद्ध कार्य, बाहुबल (मजदूरी, पराक्रम, कुलीगिरी, कुश्ती, खेल खिलाड़ी आदि) चोरी–डकैती, राहजनी आदि, खोदना, जलाना, बोझा उठवाना जैसे क्रेन से सम्बन्धित व्यवसाय, कार्गो, कुरियर आदि) से सम्बन्धित व्यवसाय होता है ।

(vi) मीन राश्यादि दशमस्थ हो तो मछली सम्बन्धी कार्य, शस्त्र प्रयोग, आक्रमण, रति क्रिया सम्बन्धी, जलसम्बन्धित या जल सम्पर्क से युक्त

(नदी तटों पर निर्माण कार्य, कूपखनन, ट्यूबवैल लगाना, तरबूज, खरबूजा, सिंघाड़ा कमल आदि उगाना, नाव बनाना, तैराकी सिखाना, स्वीमिंग पूल का अधिकार आदि) भार ढोना आदि से जीविका होती है।

(vii) दशम भाव में स्थित राशि, नवांश या दशवर्गो में पड़ने वाली राशियों की अधिकता से उक्त निर्णय राशि के बलाबलानुसार करें।

दशमेश–नवांशेश से वृत्ति :–

कर्मेशस्थनवांशेशवशाद्वृत्तिं वदेत्पुनः।
सूर्यादौषधपण्येन स्वर्णपान रसायनात्।। 18।।
मुक्तामणीनां सम्बन्धात् तृणदूतोर्णसेवया।। 19।।
मन्त्रोपदेशरसवादविनोदमार्गै –
वृत्तिं जगुः सकलशास्त्रपुराणमार्गैः-
ज्ञानोपदेशपथिभिः क्षितिपालपूज्यो
जीवत्यसौ खलु पुमान् दिन नायकांशे।। 20।।
क्रमाच्छृंगात् कृषेः लिप्यात् चामरादेश्च विक्रयात्।
सेवापैशुन्यवादेभ्यः धनयोगाच्चिकित्सया।
प्रेतकार्याच्च दुष्कार्याद् यात्रायाः पाणिपीडनात्।। 21।।

(i) दशमेश जिस राशि के नवांश में हो, उस नवांशेश से भी मनुष्यों की वृत्ति अर्थात् जीविका का विचार करें।

(ii) यदि सूर्य दशमेश का नवांशेश हो तो औषधि (विक्रय, निर्माण या प्रयोग) से, स्वर्ण विक्रय, पेय पदार्थो का विक्रय, रसायन आदि, मुक्ता, मणि, मोती आदि से, घास फूस (चटाई, नारियल रेशा, बाँस आदि) से निर्मित सामग्री इनका निर्माण आदि, दूतकार्य (सन्देशवाहक, मध्यस्थता, दलाली, सम्पर्क अधिकारी, बड़ी कम्पनियों में मामले निबटवाना आदि अथवा राजदूत, विशेष दूत आदि)। ऊन उत्पादक या ऊनी चीजों का विक्रय या इनसे सम्बन्धित तकनीकी विशेषज्ञता। नौकरी आदि। मन्त्र देना सलाहकारी, उपदेशक, रस विक्रय, वाद–विवाद में वकालत, मनोरंजक कार्य प्रस्तुति, ज्ञानदान, उपदेश मार्ग राजसम्मान (राजा से विशेष योग्यता के आधार पर मासिक या वार्षिक सहायता, वजीफा आदि पाना)। सींग से बने सामान, हड्डी से बने सामान, खेती–बाड़ी, लेखन कार्य, चामर निर्माण (छाता आदि भी), बात इधर उधर करके अर्थात् सूचनाओं के आदान–प्रदान आदि से जीविका (जैसे सट्टा लाटरी के अंक, विशिष्ट गोपनीय सूचना देकर लाभ कमाना, पुलिस आदि का खबरिया आदि) वादविवाद में मध्यस्थता, धन विनियोग (पैसे जमा करके या करवाकर उच्च लाभ कमाना, बीमा एजेंट, बचत योजना एजेंसी आदि)। चिकित्सा, प्रेतकार्य (शवदाह, मृतक संस्कार

या बाधा निवारण) दुष्कर्म, यात्रा या विवाह (संगीतकार्य, टैंट हाउस आदि) से जीविका कमाता है।

नवांशेश चन्द्र फल :–

जलोद्भवानां क्रयविक्रयेण कृषेश्च मृद्वादविनोद मार्गात्।
राजांगनासंशयवृत्तिरूपान्निशाकारांशे वसनक्रयाद्वा।।22।।
सुरते स्त्रीषु मैत्रे वा राज्ञः पुरुषमित्रता।
वस्त्रादिधनसिद्धिश्च ब्राह्मणेन विरोधिता।।23।।
शंखमाणिक्यमुक्तानां खनिजानां च विक्रयात्।
देशत्यागात्तथा युद्धे पराभवबलक्षयात्।।24।।

यदि दशमेश का नवांशेश चन्द्रमा हो तो पानी से उत्पन्न पदार्थो (शंख, मोती, मछली, कमल, समुद्री पौधे, प्रवाल, मूँगा आदि) का व्यापार, कृषि कार्य, मिट्टी (कोमल मिट्टी मुल्तानी, खडिया, प्लास्टर आफ पेरिस, जिप्सम आदि के व्यवसाय, बिजलीघरों की राख से सामग्री बनाना, क्राकरी, चीनी मिट्टी आदि) मनो विनोद के कार्य (हास्य कविता, कार्यक्रम, प्रस्तुति, रचना, अभिनयादि) राजा की स्त्री के समपर्क से (रानी का निजी सचिव, स्टैनो, जनसम्पर्क अधिकारी, सौन्दर्य प्रसाधक, रानी का दर्जी आदि अथवा रानी से प्रेम), संशय वृत्ति (भ्रम पैदा करना, विविध रोशनी के संयोजन से विचित्र प्रभाव पैदा करना, दृश्यसम्मिश्रण, विजन मिक्सिंग, मैसमरिज्म, हिप्नोटिज्म, हाथ की सफाई, ठगी, जुआ, चालबाजी, फुसलाकर उल्लू सीधा करना), वस्त्र व्यवसाय आदि, रति क्रिया (वेश्यावृत्ति अथवा काम साधन आदि का निर्माण व्यवसायादि) स्त्रियों से मित्रता, राजकीय पुरुष से सम्पर्क करके जीविका कमाना (सरकारी दफ्तरों के बाहर बैठने वाले सुविधाकर्मी दलाल), वस्त्रनिर्माण (वस्त्र डिजायन, वस्त्र पेंटिंग, रेडीमेड वस्त्र), धन निवेश के कार्य, ब्राह्मणों का विरोध (ब्राह्मण वर्ग की आलोचना वाले लेख लिखना व छापना, सम्पादन करना आदि या सार्वजनिक निन्दा कर अपना हित साधने का व्यवसाय) खनिज पदार्थो का विक्रय, अपने देश को छोड़कर व्यवसाय करना (अथवा विदेश भेजना, स्वयं विदेश यात्रा करके लाभ कमाना) युद्ध (विवाद, मुकाबला या रण) में हारने या हानि उठाने का मुआवजा देना, दिलवाना आदि। इन कार्यो से मनुष्य जीविका कमाता है।

मंगल नवांशेश फल :–

धातोर्विवादेन रणप्रहारात्स्तब्धाग्निवादात्कलहप्रवृत्या।
जीवत्यसौ साहसमार्गरूपया धरासुतांशे यदि चोरवृत्या।।25।।

स्वर्णताम्रादि संस्कारात् नारीदासादियोगतः ।

बन्धुवादाद्रिपुवर्गात् चांचल्याद् वा बलक्षयात् ।। 26 ।।

बलप्रयोगान्नृपतेः वस्त्रान्नाग्नि गृहक्षयात् ।

पारदशैलभूमेश्च रुधिरादतिसाहसात् ।। 27 ।।

यदि दशमेश मंगल के नवांश में हो तो धातु व्यवसाय (ताँबा, सोना, आदि का संस्कार, विक्रय, धातुओं का खनन आदि) विवाद मुकदमा आदि में गवाही देने का पेशा, वकालत, दण्डाधिकारी, पुलिस, थानेदार, उपभोक्ता फोरम, मजिस्ट्रेट, यातायात पुलिस आदि) युद्ध में सैनिक कर्म, तोपची, लगातार अग्निकर्म करना (भट्ठा उद्योग, चूना भट्टी, परमाणु तापघर, ईंधन झोंकना आदि) बहस, शास्त्रार्थ आदि, कलह करवाकर फूट डालकर लाभ कमाना, साहसिक कारनामे (पर्वतारोहण, आकाश भ्रमण, जंगली जानवरों के साथ करतब सर्कस, आदि फिल्मों के स्टंटमैन), चोरी, (चोरी का माल खरीदना, चोरों का सम्पर्क मुखिया, चोरी के नए नए रास्ते बताना, चोरी के उपयोगी उपकरण बनाना बेचना आदि), सोना, ताँबा आदि (ताँबे का तार खींचना बनाना, कॉपरबाइंडिंग) स्त्री सम्पर्क (औरतों का सेलून, उनकी निजी सामग्री बनाना, बेचना, स्त्री शरीर का व्यवसाय) दास (सेवक, गार्ड्स, चौकीदार, नारे बाज इकट्ठे करना, भीड़ तैयार करने के लिए आदमी रखना, उनकी ठेकेदारी आदि मजदूरों की ठेकेदारी) भाइयों या जातबिरादरियों के लोगों से विवाद आदि में लाभ कमाना (जैसे साझेदारी बनाने व तोड़ने के कागज आदि बनाना, कातिबी करना, अर्जीनवीस आदि) रिपुवर्ग शत्रुवर्ग से विवाह करके झूठे–सच्चे विवादों से लाभ कमाना या उनसे सम्बन्धित कार्यो का व्यवसाय, चंचलता के कार्य अर्थात् चुस्ती, फुर्ती के कार्य करतब आदि, बलक्षय अर्थात् शक्तिदायक औषधि उपकरण आदि का व्यवसाय, बल प्रयोग के कार्य, राजा के सम्बन्ध से व्यवसाय, वस्त्र, अन्न, अग्निकर्म से सम्बन्धित व्यवसाय, घर में आग आदि से उत्पन्न परिस्थितयों का व्यवसाय (बीमा कम्पनी का वह अधिकारी जो नुकसान का अन्दाजा लगाए, घर में बिजली आदि का काम अथवा चूल्हा, ईधन, लायटर, दीपक आदि से सम्बन्धित कार्य) पारे से सम्बन्धित कार्य, पत्थर व पहाड़ी भूमि से सम्बन्धित, खून अति साहस से सम्बन्धित कार्य से जीविका होती है । (खून बेचना, ब्लड बैंक, रुधिर बहने की चिकित्सा, शल्य, खून बढ़ाने की औषधियाँ आदि)

दशम नवांशेश बुध का फल :–

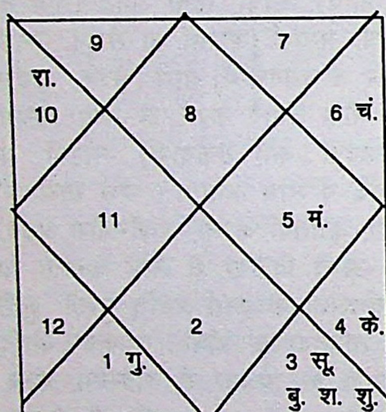
वेदार्थवेदाध्ययनाज्जपाद् वा पुरोहितव्याजवशात् प्रवृत्तिः ।

शिल्पादिकाव्यागमशास्त्रमार्गाज्ज्योतिर्गणज्ञानवशाद् बुधांशे ।। 28 ।।

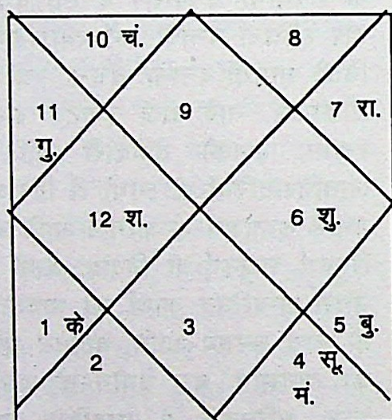
दूतसाचिव्यहास्याद्वा वैद्यकाद्यमपक्षिणः ।
वनस्पतीनां व्यापारात् धनादीनां प्रयोगतः ।। 29 ।।

यदि दशमेश बुध के नवांश में हो तो वेद–शास्त्रों से, वेद का अध्यापन, जप तप करना, पुरोहित कार्य करना, कपटी पुरोहित, शिल्पकला, काव्यरचना, काव्य पढ़ना, दृश्य श्रव्य काव्य का अभिनय, लेखन, प्रकाशन, अध्यापन, आदि, विशेष शास्त्रों का विशेष ज्ञान, ज्योतिष शास्त्र आदि के द्वारा, दूत कार्य, सचिव कार्य, हास्यकार्य, मनोरंजन, वैद्यक चिकित्सा व्यवसाय, पक्षियों के जोड़ों का व्यवसाय अथवा जोड़े बनाने का काम (विवाह कार्य, पशुपक्षियों का जोड़ा बनाना, विवाह का पंजीकरण आदि) वनस्पतियों से सम्बन्द्ध कार्य (पेड़ पौधों की नर्सरी, बीज व्यवसाय आदि) धन प्रयोग, ब्याज बट्टा, पूँजी निवेश आदि का कार्य इन सब में से व्यक्ति की कोई जीविका होती है।

(i)



(ii)



(i) दशमेश सूर्य मेष नवांश (मंगल) में हैं। यह एक फौजी की कुण्डली है।

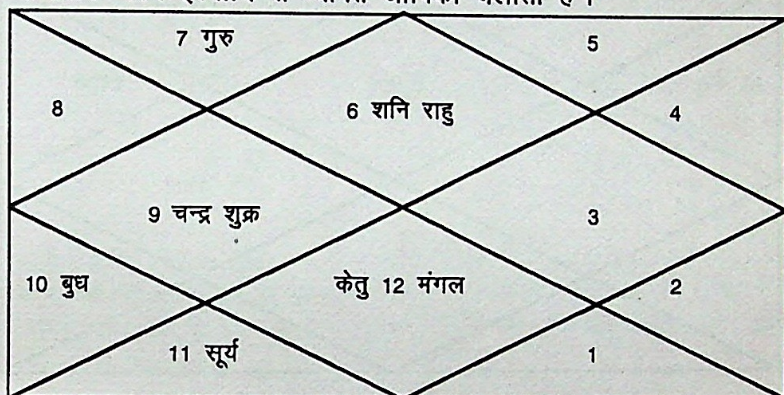
(ii) लग्नदशमेश बुध 18 अंशों पर बुध के ही नवांश में है। आप एक मेडिकल प्रोफेसर व प्रसिद्ध चिकित्सक हैं।

नवांशेश बृहस्पति का फल :–

जीवांशके भूसुरदेवतानामुपासकाध्यापनमार्गभेदात् ।
पुराणशास्त्रागमनीतिमार्गाद् धर्मोपदेशेन कुसीदमाहुः ।। 30 ।।
अधिकाराद्गुरुत्वाद्वा मानासनशयनायनात् ।

गर्भाधानाच्च मांगल्याद् वृत्तिं कुर्वन्ति प्राणिनः ।। 31 ।।

बृहस्पति यदि उक्त नवांशेश हो तो देवता, ब्राह्मणों की उपासना, सेवा, अध्यापन, शास्त्र विशेषज्ञता, पुराण शास्त्र, नीति (राजनीति अर्थ नीति) आदि का अध्ययन, अध्यापन, लेखन, धर्मोपदेश, धार्मिक कार्य, ब्याज कमाने के कार्य (निवेश) अधिकार प्राप्ति, बड़प्पन के कार्य, वाहन, उत्तम फर्नीचर, शयन सम्बन्धी उपकरण, गृहनिर्माण, मरम्मत, सजावट आदि गर्भाधान (संस्कार करना, गर्भचिकित्सा, बाँझपन चिकित्सा, कृत्रिम गर्भाधान आदि) मांगलिक कार्य इत्यादि से व्यक्ति जीविका चलाता है।



चन्द्र व लग्न से दशमेश बुध ही है। वह गुरु के नवांश में है। यह एक प्रोफेसर, विशिष्ट विद्वान की कुण्डली है। जीवनभर अध्यापन करते रहे। व्याकरण के विशिष्ट, शरीर व ज्ञान दोनों से ही भारी विद्वान् थे। इस सन्दर्भ में सर्वत्र कारकांशादि का प्रयोग भी करना चाहिए। फिर भी वृत्ति सम्बन्धी योगों की सटीकता प्रमाणित हो रही है।

नवांशेश शुक्र का फल :–

सुवर्णमाणिक्य गजाश्वमूलाद् गवां क्रयाज्जीवनमाहुरार्याः ।

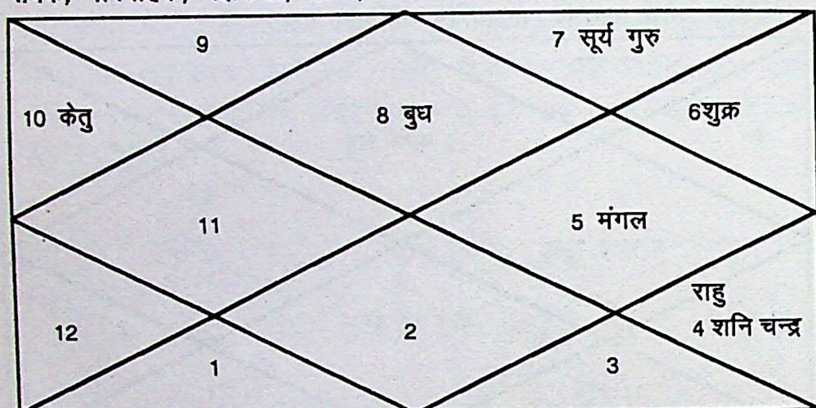
गुडौदनक्षीरदधिक्रयेण स्त्रीणां प्रलोभेन भृगोः सुतांशे ।। 32 ।।

पाठको याजकश्चैव सेनानीस्तीर्थकृत् धनैः ।

अमात्यः सेवकश्चापि भारकः पूर्तकृत् तथा ।। 33 ।।

यदि दशमेश शुक्र के नवांश में हो तो सोना, चाँदी, माणिक, हीरों का व्यवसाय या इनके तकनीकी ज्ञान सम्बन्ध से जीविका, हाथी घोड़ों से सम्बन्धित कार्य (उच्चता में इनका व्यवसाय, घुड़सवारी, रेस, पशुचिकित्सा,

हीनता में घोड़ों की सेवाटहल, हाथी पालन, उनके करतब दिखाना, पशुओं का क्रय–विक्रय, गुड़, धान, खाद्यपदार्थ, दूध के बने पदार्थों का व्यवसाय, स्त्रियों को लुभाकर फुसलाकर उनका दुरुपयोग करना अथवा स्त्रीपक्ष से विशेष सहायता मिलने वाले कार्य, पढ़ने पढ़ाने का कार्य, यज्ञ कराना, करना, सेनापतित्व, तीर्थंकर (विशिष्ट बलवान्, शुक्र हो तो पथ प्रवर्तक, शास्त्रकार गुरु आदि) मध्यम बली होने पर विशिष्ट विद्वान् शास्त्रकार, ग्रन्थकार आदि, धन सम्बन्धी कार्य, सचिव, मन्त्री, विशिष्ट सेवा, हीन बली होने पर हीन सेवक, भारवाहक, यज्ञकर्त्ता, दानी, सदावर्त चलाने वाला आदि होता है।



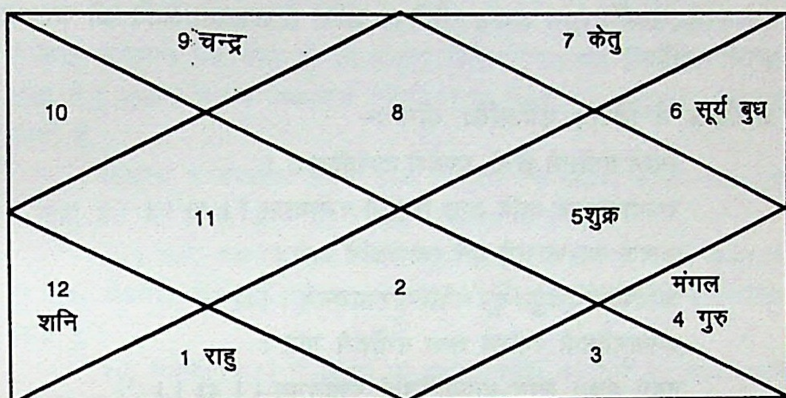
दशमेश सूर्य है लग्न बली होने से उससे विचार किया। वह तुला राशि में 24 अंश में वृष शुक्र नवांश में है। यह एक अध्यापक, ग्रन्थकार, यज्ञकर्ता की कुण्डली है।

नवांशेश शनि फल :–

शन्यंशके कुत्सितमार्ग वृत्या शिल्पादिभिर्दारुमयैर्वधाद्यैः।
विन्यस्तभाराज्जनविप्रलंभादन्योन्यवैरोद्भवमूलमार्गात्।। 34।।
दासवृत्तिःकदन्नानांत्रपुसीसकविक्रयात्।
नीचस्त्रीपण्यसंगादेः भिक्षाया हीनशिल्पतः।। 35।।

यदि दशमेश शनि के नवांश में हो तो कुत्सित प्रायः निम्नस्तरीय कर्म, शिल्पकला, दस्तकारी, मरम्मत टूट–फूट के कार्य, लकड़ी का कार्य, वध बन्धनादि कार्य विशेष स्थानापन्न अधिकारी, बहुत बड़ी जिम्मेवारी का थोपा जाना, धोखेबाजी, शठता, परस्पर वैर करवाना, दासवृत्ति, मोटे अनाज का व्यवसाय, प्रेष्यत्व, सीसा रांगा आदि का व्यवसाय, नीच स्त्री के संग से या बाजार के सम्बन्ध से (बली शनि हो तो ठेकेदारी, हीन बली हो तो

पल्लेदारी, मध्यबली हो तो मध्यम स्थिति) भिक्षावृत्ति (भीख माँगना मध्यम बली हो तो शैलीभेद से मांगना, हीन बली हो तो हाथ पसारकर मांगना तथा उत्तम बली हो तो सफेद पोश होकर माँगना इत्यादि) हीन शिल्प अर्थात् मोटी कारीगरी लोहे आदि का मोटा अकुशल शिल्प कार्य करना इत्यादि से जीविका होती है ।



दशमेश सूर्य कुम्भ नवांश में है । नवांशेश शनि है । यह एक उचित दर दुकान चलाते हैं । मोटे अनाज व मिट्टी का तेल (कुत्सित कर्म) आदि से सम्बन्ध बनता है ।

उच्चादि पंचके खेटः शुभां वृत्तिं करोत्यसौ ।

तदन्यत्रगतो नूनं हीनामिति विनिर्णयः ।। 36 ।।

यदि उक्त दशमेश का नवांशेश उच्च, मूल त्रिकोण, स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र, सम में हो तो क्रमशः कम कम शुभ, मान्य, उत्तम श्रेणी की जीविका उक्त विषयों में से देता है । ततः शत्रु क्षेत्र, अस्तंगत, नीचगतादि होने पर क्रमशः अधिक हीनवृत्ति देता है ।

फलप्राप्ति का समय :-

दशान्तर्दशादीनां फलं ज्ञात्वा मनीषिणः ।

तत्सम्बन्धिभुक्तौ तु तद्दशायां वदेत् फलम् ।। 37 ।।

उक्त जीविका कारक ग्रह की दशा में जब उसके सम्बन्धी ग्रहों की अन्तर्दशा होगी तब फलोदय कहें ।

जीविका में सहायक व्यक्ति :-

विशेषं तु प्रवक्ष्यामि विप्र ! उत्तरखण्डके ।

कर्मेशाध्युषितांशेश ग्रहैर्वा खस्थितैर्पुनः ।। 38 ।।

कारकत्ववशात् पितृमातृभ्रातृकलत्रतः ।
रिपुबन्धुतनूजादेर्धनं वाच्यं यथाविधि ।। 39 ।।

इस विषय में कुछ विशेष नियम उत्तरखण्ड में कहे जाएँगे । दशमेश का नवांशेश या दशमस्थ (या दशमेश) जिस सम्बन्धी का कारक हो उसी सम्बन्धी, पिता, माता, भाई, पुत्र, शत्रु मित्र, स्त्री आदि से यथासमय यथासम्भव धन लाभ, सम्पत्ति लाभ अथवा जीविका प्राप्ति में सहायता आदि की कल्पना करनी चाहिए ।

कार्यक्षेत्र में विशेष उपलब्धि योग :–

स्वांशे वर्गोत्तमे केन्द्रे, पुण्येशे कारकेऽथवा ।
राज्यारूढ़पदे वापि तदा सिद्ध्ये रसायनम् ।। 40 ।।
कारके कारकारूढ़े धने स्वोच्चर्क्षगे खगे ।
ऋद्धिसिद्धियुतं नूनं भवेत्तन्त्ररसायनम् ।।41 ।।
धर्मकर्माधिपौ स्वोच्चे तथा वर्गोत्तमे यदि ।
नवमे पंचमे लाभे राज्याप्तिर्वा रसायनम् ।। 42 ।।
मूलत्रिकोणगे लग्ने कारकेशो द्विजोत्तम ! ।
मन्त्रनाथेन संयुक्तः कीर्तियुक्तरसायनम् ।। 43 ।।
धर्मेशो धर्मलाभस्थः पंचमेशोऽपि पंचमे ।
कारकेन्द्रयुते दृष्टे स्वेच्छापूर्णधनानि च ।। 44 ।।
स्वोच्चादि पदसंयुक्ते कारकांशः शुभालये ।
सततं सुखमाप्नोति धातुभस्मरसायनात् ।। 45 ।।

(i) आत्मकारक या नवमेश या दोनों वर्गोत्तमी (या उच्चनवांशगत) होकर कारकांश लग्न से (या जन्म लग्न से) केन्द्र में हों अथवा दशमेश भाव के पद में हो तो रसायन सिद्धि होती है । अर्थात् जीवनरक्षक, समाज कल्याणकारी, विशिष्ट, बहुजनहितसाधक कार्यसाधन, अन्वेषण या दवा आदि का निर्माण करने का आशय है । फलस्वरूप इन योगों में व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में मानव मात्र हितसाधन करके अपार यश आदि प्राप्त करता है ।

रसायन–रोगनाशक विशिष्ट औषधियाँ । रसायन–सभी प्रकार के विष, रासायनिक पदार्थ । पारा ।

अथवा रसा पृथ्वी को कहते हैं । सारी पृथ्वी है निवास स्थान या गन्तव्य जिसका (अयनं गमनं निवासस्थान वा) ऐसा कोई विश्वव्यापी सर्वत्र उपलभ्यमाण उत्पादन विशेष या ऐसा कार्य जो सम्पूर्ण विश्व में ख्याति दे दे ।

अथवा रस (रसनाग्राह्य स्वाद) है घर जिसका । अत्यन्त स्वादु व विश्वप्रसिद्ध खाद्य पदार्थ । अथवा रसो ब्रह्म वा विष्णुर्वा शिवो वा या परम ब्रह्म ही है । अयन यानि गन्तव्य जिसका परमपद प्राप्ति, मोक्ष । अथवा रसः शिवः कल्याणकर्त्ता ही है निवासस्थान जिसका ऐसा सर्वहितकारी पदार्थ इत्यादि प्रकार से अर्थ ले सकते हैं ।

(ii) यदि कारकांश लग्न, आत्मकारक का पद, इनसे द्वितीय स्थान में कोई उच्चगत ग्रह बैठा हो तो मनुष्य विशिष्ट रसायन सिद्धि से युक्त होता है । अर्थात् अपनी सफलता (सिद्धि) से (ऋद्धि) समृद्धि युक्त हो जाता है ।

नवमेश व दशमेश अपने उच्च या वर्गोत्तम नवांश में हो तथा 5.9 में कहीं बैठे तो राज्य लाभ या रसायन सिद्धि होती है ।

(iv) यदि आत्मकारक अपने मूलत्रिकोण में स्थित होकर लग्न में हो तथा पंचमेश से युक्त हो तो अत्यन्त कीर्ति देने वाली रसायनसिद्धि होती है ।

(v) नवमेश 9.11 में स्थित हो तथा पंचमेश पंचम में हो तथा आत्म कारक से युत या दृष्ट हो तो मनुष्य इच्छानुसार धन कमाता है ।

(vi) यदि आत्मकारक अपने उच्चादि में स्थित होकर किसी अच्छे भाव (केन्द्रत्रिकोण) में हो तो मनुष्य को धातु भस्म आदि (दवाएँ आदि) से सदैव सुख मिलता है ।

प्रसिद्ध चिकित्सक योग :–

सुखेशे मानभावस्थे मानेशे सुखसंयुते ।
लग्नकारकयोर्दृष्टे भिषग्योगोऽति सम्मतः ।। 46 ।।
कर्मेशो नवमे यस्य सुखेशः पंचमेऽपि वा ।
परस्परं तदीशो वा स्वर्णाप्तिस्तत्र कर्मतः ।। 47 ।।

(i) चतुर्थेश दशम में व दशमेश चतुर्थ में बैठे तथा लग्न या आत्म कारक को देखता हो तो यह उत्तम चिकित्सक योग है ।

सामान्यतः यह उत्तम सुखभोग, धन कीर्ति योग ही अधिक प्रतीत होता है ।

(ii) दशमेश नवम स्थान में हो या चतुर्थेश पंचम में हो अथवा नवमेश दशम में हो या चतुर्थ में पंचमेश हो तब सुवर्ण प्राप्ति होती है । सुवर्ण अर्थात् मुद्रा, नोट आदि । अतः यह धनसमृद्धियोग है ।

इसके अतिरिक्त पद, कारकांश, राजयोग प्रभृति विभिन्न योगाध्यायों में भी वृत्ति से सम्बन्धित संकेत किए गए हैं, उनका भी यथासम्भव सर्वत्र इस प्रसंग में उपयोग करना चाहिए ।

भाग्योदय वर्ष निश्चय :–

स्वोच्चादि संस्थितः खेटः षड्वर्गबलवांश्च यः ।
तस्याब्दे परतो नृणां सुखं भाग्योदयं तथा ।। 48 ।।
जातयो जिनका हस्ती हस्ताः नेत्राग्नयः कलाः ।
सिद्धा अंगगुणादन्न वेदाः सूर्यात्क्रमात्समाः ।। 49 ।।

(i) जो ग्रह (वृत्ति प्रसंग में दशमेश, दशमेश का नवांशेश आदि, पुत्रप्रसंग में पंचमेश, भाग्य प्रसंग में भाग्येश इत्यादि) अपने उच्च, स्वक्षेत्र, मूल त्रिकोण आदि में हो या षड्वर्गों में अधिक जगहों पर शुभ स्थानों में हो तो अपने वर्ष में तथा उसके बाद मनुष्यों को उस भाव का सुख व भाग्योदय आदि देता है।

(ii) सूर्य–22, चन्द्र–24, मंगल–28, बुध–32, गुरु–16, शुक्र–24 या 25, शनि–36, राहु केतु–42, इस प्रकार ग्रहों के वर्ष समझें।

भाग्य की महत्ता :–

भाग्यं कर्म च वक्ष्यामि मैत्रेय ! शृणु सुव्रत ! ।
भाग्यादेव नृणां सिद्धिर्भाग्यादेव धनागमः ।। 50 ।।
यशांसि भाग्यतो भाग्यविपर्यासाद् विपर्ययः ।
करिष्यमाण कर्माणि ज्ञातव्यानि प्रयत्नतः ।। 51 ।।

हे मैत्रेय ! अब मैं तुम्हें भाग्य व कर्म का सम्बन्ध बताता हूँ। भाग्य से ही मनुष्यों को सफलता, धनागम, यश आदि होता है तथा भाग्य विपरीत होने पर सब विपरीत रहता है। अतः भाग्य प्रतिकूल होने पर किए गए सब कार्य निष्फल हो जाते हैं।

भाग्य भाव का निर्णय :–

लग्नादिन्दोश्च नवमं भाग्यं बलवशाद् भवेत् ।
शुभपापारिमित्राख्यैर्ग्रहैरेवं शुभाशुभैः ।। 52 ।।
उच्चादिपंचकाद् वृद्धिरन्यस्माद् हानिरिष्यते ।
स्वस्मिन्नन्यत्रविषये स्वदेशेतरदेशयोः ।। 53 ।।

(i) लग्न या चन्द्रमा में से जो बली हो, उसी से नवम भाव भाग्यभवन होता है। इस भाव में शुभ, पाप, शत्रु क्षेत्री, मित्रादि शुभाशुभ ग्रहों से इसका विचार करना चाहिए।

(ii) यदि भाग्यभवन में कोई ग्रह स्वोच्च, स्वक्षेत्र, मूलत्रिकोण अतिमित्र या मित्र की राशि में स्थित हो तो इस भाव की वृद्धि होती है। अन्यथा नीचास्तंगत, शत्रु क्षेत्रादिगत ग्रह हो तो इस भाव की हानि होती है।

(iii) यदि भाग्येश स्वक्षेत्र या अपने वर्गो में हो तो स्वदेश में अन्यथा परदेश (स्थान, नगर, प्रान्त या देश) में भाग्य सफल होता है।

भाग्य की अनुकूलता :–

भाग्यत्रिकोणोपगतैः शुभं स्याद् भाग्यं तु केन्द्रोपगतैः शुभैश्च ।
पापैस्तथा स्यादशुभं च भाग्यं मित्रादिभि स्यान्नियमो विशेषात् । 54 ।

(i) यदि भाग्य भाव से 1.4.5.7.9.10 में शुभ ग्रह (उच्चादिगत कोई भी ग्रह) हो तो भाग्य अनुकूल रहता है।

(ii) भाग्यभवन से उक्त भावों में भाग्येश के मित्र अति मित्र ग्रह हों या भाग्येश को देखते हों तो भी भाग्य अनुकूल रहता है।

हमारे उदाहरण में बली चन्द्र से नवम भाव में शुक्र कुम्भ में वर्गोत्तमी है। भाग्येश शनि, भाग्येश का राशीश मंगल, भाग्येश का नवांशेश बुध ये सब भाग्य के प्रभाव ग्रह हैं। अतः भाग्य अनुकूल रहेगा। भाग्येश परवर्ग में होने से जन्मस्थान देश के अतिरिक्त स्थानों पर भाग्य विशेष सहायक रहेगा।

तत्तत् खेटवशान्नित्यं कर्मभाग्यानुकूलता ।
यथोक्तविधिना विप्र ! सम्यक्संचिन्तयेत्सदा ।। 55 ।।

उक्त ग्रहों व भाग्यगत राशि आदि से पूर्वोक्त प्रकार से राशि व ग्रहों के प्रोक्त कार्य वृत्ति या व्यापारादि में विशेषतया भाग्यवृद्धि होती है। इन्हीं से सदैव भाग्य व कर्म की अनुकूलता का विचार करें।

हमारे उदाहरण में भाग्य भाव में तुला नवांश है। अतः शुक्र भाग्येश शनि के नवांशेश बुध से सम्बन्धित कार्य विशेष अनुकूल होंगे। बुध से 32 वर्ष, शुक्र से 25 वर्ष तथा शनि से 36 वर्ष अवस्था के बाद विशेष भाग्योदय होगा। जातक की जीविका का लाभदायक कार्य उक्त प्रकार से वास्तव में मेल खाते हैं। ध्यान रखिए, नवमेश के अधिष्ठित नवांशादि या नवमगत नवांशादि से प्राप्त कार्यो में भाग्य साथ देता है। दशमेश से प्राप्त वृत्ति वास्तव में मनुष्य को प्रायः करनी पड़ती है।

इसी विधि से अन्य भाव के फल का विचार भी कर सकते हैं। जिस भाव से केन्द्र त्रिकोणों में शुभग्रह (शुभ से तात्पर्य कोई भी बली कारक ग्रह स्वक्षेत्रादिगत ग्रह) हो तथा 3.6.11 में नित्यपापी ग्रह हों, अष्टम में तथा द्वादश में पाप ग्रह न हो तो उस भाव की वृद्धि होती है। जिस भाव में स्वयं भावेश या भावेश के मित्र ग्रह बैठे हों तो उस भाव की भी वृद्धि होती है। लेकिन भावकारक अपने भाव में बैठकर प्रायः भाव का अशुभ करता है।

लग्न व चन्द्र की समानता :–

भावानां चैव सर्वेषां चन्द्र लग्नात्तु लग्नतः ।
अंशदायोक्तवत्कृत्वा शुभपापदृगाहतम् ।। 56 ।।
षष्ट्याप्तं तद्बलाप्तं स्याद् भ्रात्रादीनां च संख्यकाः ।
रश्मिघ्नं च बलाप्तं च त्वनिष्टमपवादनम् ।। 57 ।।

(i) सभी भावों का विचार लग्न या चन्द्र में से जो बलवान् हो, उसी से करें।

(ii) जिस भाव का विचार करना हो उस भाव की अंशायु की तरह आयु वर्ष साधन करें। अर्थात् उसे लग्न समझकर उसके वर्षादि जान लें। पुनः उस वर्षादि संख्या को शुभ दृष्टि व पाप दृष्टि से अलग गुणा कर लें और 60 का भाग दें। जो संख्या मिले वह भाव से सम्बन्धी वस्तुओं की संख्या जैसे भाई, पुत्र, शत्रु, मित्र आदि की संख्या या उस भाव का बल है। शुभ बल अधिक हो तो शुभ तथा पाप बल अधिक हो तो पापफल हो गया। अथवा उक्त अंशायु को रश्मियों (भाव की) से गुणा कर पूर्वसाधित भाव बल (ग्रह भाव बल प्रकरण) से भाग देने पर भाव का शुभाशुभ होगा।

ये श्लोक यथावत् उपलब्ध रूप में रख दिए हैं। पुनश्च इनकी स्थिति सन्देह से परे नहीं है। अंशायुर्दाय की तरह वर्ष निकालकर तथा विचारणीय भाव को लग्न मानकर दशाक्रम निर्धारण करके फलोदय काल जानना कुछ ठीक हो सकता है। भावफलोदय जानने के अनेक प्रकार इसी ग्रन्थ में बताए गए हैं। उन्हें बाद के ग्रन्थकारों ने भी अपनाया है। सुदर्शन, दशा विधि, गोचर, अष्टक वर्ग आदि द्वारा कहीं अधिक प्रामाणिक रूप से भाव फल का समय जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त भावेश व भाव पर या भाव त्रिकोण पर अनुकूल गोचर भी फलोदय करता है। इस विषय में

हमने अपनी भावमंजरी प्रणवाख्या में कई विधियों का उल्लेख किया है, जो इसी प्रकार गणित पर ही आश्रित हैं । इसके अतिरिक्त प्रश्नमार्ग का अध्ययन भी पाठकों को करना चाहिए । उक्तश्लोकोक्त विषय का स्पष्टीकरण इस प्रकार है । यह विधि दक्षिण भारत में बहुत प्रचलित है ।

(i) विचारणीय भाव स्पष्ट के राशिरहित अंशादिकों की कला बना लें ।

(ii) दृष्टि अध्याय में प्रोक्त नियमानुसार उस भाव पर सब शुभ व पाप दृष्टि अलग–अलग निकाल लें । अंशादिकों की कला × शुभदृष्टि × 60 ÷ 20 करें । लब्धि उस भाव से विचारणीय भाई, पुत्र, मित्र, स्त्री, बन्धु आदि की संख्या होगी ।

(iii) इसी तरह उक्त कलात्मक स्पष्ट को पाप दृष्टि से गुणा कर तथा 60 से गुणा कर 200 से भाग देकर प्राप्त संख्या के बराबर भाई आदि का नाश होता है । ऐसा आप्त वृद्धों ने कहा है ।

रश्मियों से फलज्ञान का प्रकार आगे उत्तरार्ध में रश्मि विचार प्रकरण में भी स्पष्ट करेंगे । कई पद्धतियों से जो पुत्रादि संख्या प्राप्त हो उसमें से पंचमेश बली होने पर बड़ी संख्या तथा निर्बल होने पर कम संख्या समझनी चाहिए, ऐसा भी आचार है । इन विधियों का प्रयोग पुत्र व भ्राता आदि के प्रसंग में अधिक सटीक होगा ।

संख्या विचार का अन्य नियम :–

गुरोरष्टकवर्गे तु गुरोः पंचमभावगान् ।
शुभबिन्दून् ततो विप्र ! नीचास्तशत्रुगान् त्यजेत् ।। 58 ।।
शेषा पुत्रादि संख्या स्यादेवं भ्रातृन् वदेत्कुजात् ।
उच्चादिगे त्रिगुणितान् स्वर्क्षे द्विगुणितान् वदेत् ।। 59 ।।

(i) गुरु के अष्टक वर्ग में गुरु के या पंचम भावगत शुभ बिन्दुओं को एक जगह लिख लें । उस संख्या में से जो ग्रह नीचास्तंगत शत्रुक्षेत्री होकर गुरु या पंचम भाव से दृग्योग करें, उनकी अधिष्ठित राशि में प्राप्त बिन्दुओं को घटा लें । शेष पुत्र संख्या है । यदि गुरु या पंचमेश उच्चगत हो तो यह संख्या तिगुनी तथा स्वक्षेत्री हो तो दुगुनी समझें ।

(ii) इसी विधि से मंगल के अष्टक वर्ग से भाइयों की संख्या जान लें। हमारे उदाहरण में सिंह राशि में गुरु है। गुरु के अष्टक वर्ग में पंचम भाव में 4 रेखाएँ हैं। पंचम भाव व पंचमेश के साथ शत्रुक्षेत्री शनि है। पंचमेश स्वक्षेत्री होने से इसकी संख्या दुगुनी कर ली तो 8 संख्या मिली। शनि की वृश्चिक राशि में 6 बिन्दु है। उन्हें घटाने से संख्या 2 मिली। अतः इस जातक के दो पुत्र (या पुत्री) होंगे। पुत्रप्रद ग्रह मंगल पुरुष है तथा गुरु विषम राशि में है। अतः पुत्रयोग अधिक प्रतीत होता है। इत्यादि।

मंगल के अष्टक वर्ग में तृतीय भाव में 2 रेखाएँ हैं। तृतीयेश बुध अस्त है। तृतीय द्रष्टा शनि की रेखाएँ 5 जोड़ीं तो 7 हुईं इनमें से बुध की राशि की सारी रेखाएँ घटाईं तो 50 संख्या मिली। अतः इस जातक के पाँच भाई–बहन होने सम्भव हैं।

इसी तरह मंगल की राशि के बिन्दु 5 हैं। अतः पाँच भाई–बहन हो सकते हैं। गुरु की राशि सिंह में 4 बिन्दु हैं। अतः 4 पुत्र–पुत्री हो सकते हैं। इनमें जीवित मृत सबकी गणना होती है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां वृत्तिनिर्णयाध्याय एकचत्वारिंशः ।। 41 ।।

42

।। अथ ग्रहावस्थाध्यायः ।।

मैत्रेय उवाच–

आदित्यादि ग्रहाणां च ह्यवस्थाया पृथक् पृथक् ।
तासां भेदान् यथायोगं कथय त्वं कृपानिधे ! ।। 1 ।।

पराशर उवाच–

अवस्था विविधाः सन्ति ग्रहाणां च द्विजोत्तम ! ।
मुख्यास्तासां तु बालाद्याः सारभूताः वदाम्यहम् ।। 2 ।।

मैत्रेय बोले–सूर्यादि ग्रहों की अवस्थाओं का उल्लेख आपने किया है। कृपया उनके भेदों को आप यथाप्रसंग कहें।

पराशर बोले–अवस्थाएँ अनेक प्रकार की हैं। उनमें से सारभूत अवस्थाओं का यहाँ वर्णन करता हूँ।

बालादि अवस्थाएँ :–

क्रमाद्बालःकुमारोऽथयुवावृद्धस्तथामृतः ।
षडंशैरसमे खेटः समे ज्ञेयो विपर्ययात् ।। 3 ।।

विषम राशियों में 0–6^0 अंश तक बालावस्था, 12^0 तक कुमारावस्था, 18^0 अंश तक युवावस्था 24^0 अंश तक वृद्ध तथा तत्पश्चात् मृतावस्था होती है ।

सम राशियों में विपरीत क्रम से अर्थात् 6^0 तक मृत, 12^0 तक वृद्ध, 18^0 अंश तक युवा, 24^0 अंश तक कुमार व तत्पश्चात् राश्यन्त तक बालावस्था होती है ।

फलं पादमितं बाले फलार्धं च कुमारके ।
यूनिपूर्णफलं ज्ञेयं वृद्धे किंचित् मृते मृतम् ।। 4 ।।

बालावस्था में ग्रह चौथाई, कुमारावस्था में आधा, युवावस्था में पूरा, वृद्धावस्था में मामूली तथा मृतावस्था में शून्य फल देता है ।

चरराशियों में प्रथमनवांश वर्गोत्तम होता है । वह 0–$3^0 20'$ तक होगा । तब वर्गोत्तम में मृत या बालावस्था सम–विषम भेद से रहेगी । लेकिन वर्गोत्तमी ग्रह उत्तम फलप्रद माना गया है । तब इनका फल समन्वय कैसे होगा ? यह प्रश्न अनुत्तरित है ।

जाग्रदादि अवस्थाएँ –

त्र्यंशदंशे त्रिभागं च कल्पयित्वा पृथक् पृथक् ।
विषमादि क्रमेणैव समे वै विपरीतकम् ।। 5 ।।
विज्ञाय प्रथमं पुंसां जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिकाः ।
विशेषेण परीक्षा स्याज्जाग्रतः कार्यसाधकः ।। 6 ।।
स्वप्नावस्था मध्यफला विज्ञेया मुनिसतम ! ।
निष्फला चरमावस्था फलमेवं हि कल्पितम् ।। 7 ।।

(i) प्रत्येक राशि के 30 अंशों के तृतीयांश अर्थात् 10^0–10^0 अंश की यह अवस्था होती है । विषम राशियों में 10^0 अंश तक जाग्रत, 20^0 अंश तक स्वप्न व तत्पश्चात् सुषुप्ति अवस्था है । सम राशियों में 10^0 अंश तक सुषुप्ति, 20^0 अंश तक स्वप्न व 30^0 अंश तक जाग्रत अवस्था है ।

(ii) जाग्रत अवस्था में पूर्ण फल, स्वप्न में मध्यम फल तथा सुषुप्ति अवस्था में शून्य फल होता है ।

मतान्तर से जाग्रतादि अवस्थाएँ–

स्वभोच्चयोः समसुहृद्भयोः शत्रुभनीचयोः ।
जाग्रतस्वप्न सुषुप्त्याख्या अवस्था नामवत्फलाः ।। 8 ।।

स्वराशि व स्वोच्च (मूलत्रिकोण में भी) में जाग्रत् अवस्था, सम या मित्र के घर में स्वप्नावस्था तथा नीच व शत्रु क्षेत्र में सुषुप्ति अवस्था होती है। इनका फल नामानुसार ही पूर्ण, मध्य व शून्य होता है।

दीप्तादि अवस्थाएँ–

दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनोऽथ दुःखितः ।
विकलश्च खलः कोपीत्यवस्था नवधापराः ।। 9 ।।

दीप्त, स्वस्थ, प्रमुदित या मुदित, शान्त, दीन, दुःखी, विकल, खल व कोपी ये 9 दीप्तादि अवस्थाएँ होती है।

उच्चस्थः खेचरो दीप्तः स्वर्क्षे स्वस्थोऽधिमित्रभे ।
मुदितो मित्रभे शान्तः समभे दीन उच्यते ।। 10 ।।
शत्रुभे दुःखितः प्रोक्तो विकलः पापसंयुतः ।
खलः खलगृहे ज्ञेयः कोपी स्यादर्कसंयुतः ।। 11 ।।
अवस्थात्रितयेपूर्ण द्विके मध्यं ततोऽफलम् ।
यद्भावगो भवेत्खेटस्तथा ज्ञेयं फलं बुधैः ।। 12 ।।

अपने उच्च में दीप्त, स्वराशि में स्वस्थ, अतिमित्र के गृह में मुदित, मित्र के घर में शान्त, समगृह में दीन होता है। शत्रुक्षेत्र में दुःखी, पाप युक्त ग्रह विकल, अति पाप ग्रह की राशि में खल तथा सूर्य के साथ कोपी होता है।

दीप्त, स्वस्थ, मुदित इन तीन अवस्थाओं में पूर्ण फल, शान्त व दीन में मध्य फल तथा शेष अवस्थाओं में साधारण फल देता है।

अवस्थानुसार दशाफल :–

पाके प्रदीप्तस्य धराधिपत्यमुत्साहशौर्यं धनवाहनैश्च ।
स्त्रीपुत्रलाभं शुभबन्धुपूजां क्षितीश्वरान्मानमुपैति विद्याम् ।। 13 ।।

दीप्तावस्था (उच्चगत) गत ग्रह की दशान्तर्दशा में राज्य लाभ, अधिकार प्राप्ति, उत्साह, निडरता, धन, वाहन, स्त्रीपुत्र का लाभ, बन्धुओं में आदरसत्कार तथा राजसम्मान होता है।

स्वस्थस्य खेटस्य दशाविपाके स्वास्थ्यं नृपाल्लब्धधनादिसौख्यम् ।
विद्यां यशः प्रीतिमहत्त्वमाराद्दारार्थभूम्यादिजधर्ममेति ।। 14 ।।

स्वस्थ अर्थात् स्वक्षेत्री ग्रह की दशान्तर्गत स्वास्थ्य, राजपक्ष से धन व सुख, विद्या, यश, प्रीति, महत्त्व, स्त्री, धन, भूमि आदि का लाभ व धर्म भावना होती है।

मुदान्वितस्यापि दशाविपाके वस्त्रादिकं गन्धसुतार्थधैर्यम्।
पुराणधर्मश्रवणादिलाभं गजादियानाम्बरभूषणाप्तिम्।। 15।।

मुदितावस्था (अधिमित्र की राशि) गत ग्रह की दशान्तर्दशा में वस्त्राभूषण गन्धादि, सुत, धन का लाभ, मन में धैर्य, पुराण कथादि श्रवण का लाभ, हाथी की सवारी, आदि फल मिलते हैं।

दशाविपाके सुखधर्ममेति शान्तस्यभूपुत्रकलत्रयानम्।
विद्याविनोदान्वितधर्मशास्त्रं बह्वर्थदेशाधिपपूज्यतां च।। 16।।

शान्तावस्थागत (मित्रक्षेत्री) ग्रह की दशा में सुख, धर्म, भूमि, पुत्र, स्त्री, सवारी, विद्या, विनोद, धर्मलाभ, अनेक देशों के राजाओं से सम्मान मिलता है।

स्थानच्युतिर्बन्धुविरोधिता च दीनस्य खेटस्य दशाविपाके।
जीवत्यसौ कुत्सितहीनवृत्या त्यक्तो जनै रोगनिपीडितः स्यात् ।। 17।।

दीनावस्था (समक्षेत्री) की दशा में स्थानभ्रंश, बन्धुओं से विरोध, निन्दित व हीन वृत्ति संजीविका, लोगों द्वारा त्यक्त व रोगी होकर जीवन व्यतीत करता है।

दुःखार्दितस्यापि दशाविपाके नानाविधं दुःखमुपैति नित्यम्।
विदेशगो बन्धुजनैर्विहीनश्चोराग्निभूपैर्भयमातनोति।। 18।।

दुःखावस्था (शत्रुक्षेत्री) ग्रह की दशा में मनुष्य अनेक प्रकार के दुःख पाता है। विदेश वास, बन्धुओं से रहित, चोर व अग्नि, राजादि से भय प्राप्त करता है।

वैकल्य खेटस्य दशाविपाके वैकल्पमायाति मनोविकारम्।
मित्रादिकानां मरणं विशेषात्स्त्रीपुत्रयानाम्बरचोरपीडाम्।। 19।।

विकलावस्था (पाप ग्रह युक्त) में स्थित ग्रह की दशा में विकलता, मनोविकार, मित्रों की मृत्यु, विशेषतः स्त्री, पुत्र, वाहन व वस्त्रादि की कमी तथा चोरों से पीड़ा होती है।

दशाविपाके कलहं वियोगं खलस्य खेटस्य पितुर्वियोगम्।
शत्रोर्जनानां धनभूमिनाशमुपैति नित्यं स्वजनैश्च निन्दाम्।। 20।।

खलावस्था (पापगृह में) स्थित ग्रह की दशा में कलह, वियोग, पिता से वियोग, शत्रुओं का प्रकोप, धन–भूमि का नाश तथा स्वजनों की निन्दा होती है।

कोपान्वितस्यापि दशा विपाके पापाः समायान्ति बहुप्रकारैः ।

विद्याधनस्त्रीसुतबन्धुनाशं पुत्रादि कृच्छ्रं त्वथ नेत्ररोगम् ।। 21 ।।

कोपी (अस्तंगत) ग्रह की दशा में अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। विद्या, धन, स्त्री, पुत्र व बन्धुओं का नाश, पुत्र को पीड़ा तथा नेत्रों में रोग होता है।

लज्जितादि अवस्था

लज्जितो गर्वितश्चैव क्षुधितस्तृषितस्तथा ।

मुदितः क्षोभितश्चैव ग्रहभावाः प्रकीर्तिताः ।। 22 ।।

पुत्रगेहगतः खेटो राहु केतुयुतोऽथवा ।

रविमन्दकुजैर्युक्तो लज्जितो ग्रह उच्यते ।। 23 ।।

लज्जित, गर्वित, क्षुधित, तृषित, मुदित व क्षोभित ये 6 अवस्थाएँ हैं। अपने पुत्र ग्रह (जैसे सूर्य शनि के घर में, चन्द्र बुध के घर में) की राशि में स्थित ग्रह, राहु केतु से युक्त ग्रह तथा सूर्य, मंगल, शनि से युक्त ग्रह 'लज्जित' होते हैं।

हमारे उदाहरण में मिथुनस्थ चन्द्रमा, मकरस्थ सूर्य, वृश्चिक में मंगल, शनि राहु लज्जितावस्था में हैं।

तुंगस्थानगतो वापि त्रिकोणेऽपि भवेत्पुनः ।

गर्वितः सोऽपि गदितो निर्विशंक द्विजोत्तम ! ।। 24 ।।

शत्रुगेही शत्रुयुक्तो रिपुदृष्टो भवेद्यदा ।

क्षुधितः स च विज्ञेयः शनियुक्तो यथा तथा ।। 25 ।।

(i) स्वोच्चगत, मूल त्रिकोणगत ये दोनों ग्रह 'गर्वित' होते हैं।

(ii) शत्रुक्षेत्री, शुभयुक्त, शुभदृष्ट तथा शनि से युक्त ग्रह 'क्षुधित' होते हैं। हमारे उदाहरण में शत्रुक्षेत्री शनि, शत्रुक्षेत्री व शत्रुदृष्ट सूर्य तथा शनियुक्त मंगल 'क्षुधितावस्था' में हैं।

जलराशौ स्थितः खेटः शत्रुणा चावलोकितः ।

शुभग्रहाः न पश्यन्ति तृषितः स उदाहृतः ।। 26 ।।

जलराशि (कर्क, मीन मतान्तर से वृश्चिक) में स्थित ग्रह यदि शत्रु दृष्ट भी हो तथा शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो 'तृषितावस्था' होती है।

मित्रगेही मित्रयुक्तो मित्रेण च विलोकितः ।

गुरुणा सहितो यश्च मुदितः पश्यन्ति सर्वथा ।। 27 ।।

रविणा सहित्तो यश्च पापाः पश्यन्ति सर्वथा ।

क्षोभितं तं विजानीयाच्छत्रुणा यदि वीक्षितः ।। 28 ।।

(i) मित्रक्षेत्री, मित्रग्रह से युक्त, मित्र से दृष्ट व गुरु से युक्त ग्रह 'मुदित' होता है ।

(ii) सूर्य से युक्त होकर केवल अपने शत्रुग्रह से या कई पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो 'क्षोभितावस्था' होता है ।

हमारे उदाहरण में सूर्य क्षेत्र में गुरु, शनि क्षेत्र में शुक्र निःसन्देह 'मुदित' है ।

फलविचार –

येषु येषु च भावेषु ग्रहास्तिष्ठन्ति सर्वथा ।

क्षुधितः क्षोभितोवापि तद्भावस्य विनाशनम् ।। 29 ।।

जिन भावों में क्षुधित व क्षोभित ग्रह स्थित हों, उन भावों के फल का नाश हो जाता है ।

एवं क्रमेण बोद्धव्यं सर्वभावेषु पण्डितैः ।

बलाबल विचारेण वक्तव्यः फलनिर्णयः ।। 30 ।।

अन्योन्यं च मुदायुक्तं फलं मिश्रं वदेत्पुनः ।

बलहीने तदा हानिः सबले च महाफलम् ।। 31 ।।

इस तरह सब ग्रहों के बलाबल से भाव विचार करते समय अवस्था का फल निर्णय करना चाहिए । यदि मुदित ग्रह के साथ क्षुभित, क्षोभित आदि ग्रह स्थित हों तो मिश्रित फल समझना चाहिए । यदि बलहीन हों तो हानि तथा बलवान् व अवस्था से शुभ ग्रह हो, तो विशेष उत्तम फल होता है ।

कर्मस्थाने स्थितो यस्य लज्जितस्तृषितोऽथवा ।

क्षुधितः क्षोभितो वापि स नरो दुःखभाजनम् ।। 32 ।।

सुतस्थाने भवेद्यस्य लज्जितो ग्रह एव च ।

सुतनाशो भवेत्तस्य एकस्तिष्ठति सर्वथा ।। 33 ।।

क्षोभितस्तृषितश्चैव सप्तमे यस्य वा भवेत् ।

म्रियते तस्य नारी च सत्यमाहुर्द्विजोत्तम ! ।। 34 ।।

(i) दशम भाव में लज्जित, तृषित, क्षुधित या क्षोभित ग्रह हो तो वह व्यक्ति सदैव दुःख उठाता है ।

(ii) पंचम भाव में लज्जित ग्रह स्थित होने पर एक ही पुत्र को जीवित रखता है । अन्य पुत्र नष्ट हो जाते हैं ।

(iii) सप्तम भाव में क्षोभित, तृषित, ग्रह स्थित हो तो उसकी स्त्री मर जाती है। यह सत्य है।

फल कहने से पूर्व ग्रहों के साथ स्थित ग्रह, दृष्टि, बलाबल, भावस्थिति आदि का भी समन्वय करना चाहिए। उदाहरणार्थ हमारे उदाहरण में पंचम में मंगल क्षुधितावस्था में है, लेकिन वह स्वक्षेत्री, गुरु से दृष्ट, त्रिकोणगत कारकेन्द्र होने से अशुभ फल में बहुत कमी करेगा। द्वितीय भाव में गुरु मुदित होने पर शत्रु दृष्ट होने से कुछ कम शुभ फल करेगा।

नृपालयारामसुखं नृपत्वं कलापटुत्वं विदधाति पुंसाम्।
सदार्थलाभं व्यवहारवृद्धिं फलं विशेषादिह गर्वितस्य।। 35।।

भवति मुदित योगे वासशाला विशाला,
विमलवसनभूषा भूमियोषासु सौख्यम्।
स्वजनजनविलासो भूमिपागारवासो,
रिपुनिवहविनाशो बुद्धिविद्याप्रकाशः।। 36।।

(i) गर्वित ग्रह की दशा में नए मकान का सुख, उपवन उद्यान (फार्म हाउस) का सुख, राजयोग, कलाप्रेम व कलायोग्यता, सदैव धनलाभ, व्यापार व सम्पर्क वृद्धि, विशेषतया होती है। हमारे विचार से यह फल ग्रह की दशान्तर्दशा में मिलता है।

(ii) मुदितावस्थागत ग्रह से आवास, बड़े घर द्वार, स्वच्छ उत्तम वस्त्र, आभूषण, भूमि, स्त्री का सुख, अपने लोगों में महत्त्व, राजमहल में रहने का सुयोग, शत्रुओं का नाश, विद्या व बुद्धि की वृद्धि होती है।

दिशति लज्जितभाववशाद्रतिं विगतराममतिं विमतिक्षयम्।
सुतगदागमनं गमनं वृथा कलिकथाभिरुचिं न रुचिं शुभे।। 37।।
संक्षोभितस्यापि फलं विशेषाद् दरिद्रजातं कुमतिं च कष्टम्।
करोति वित्तक्षयमंघ्रिबाधां धनाप्तिबाधामवनीशकोपात्।। 38।।

(i) लज्जितावस्थागत ग्रह से नास्तिकता, बुद्धि की हानि, पुत्र को रोग, वृथा भ्रमण, कलहकारी बातों में रुचि व अच्छे कामों में मन नहीं लगता है।

(ii) क्षोभित ग्रह की दशा में शोक, कुबुद्धि, दरिद्रता, धननाश, पैरों में कष्ट, धनागम में रुकावट, राजपक्ष से कोप होता है।

क्षुधितखगवशाद्वै शोकमोहादिपातः।
परिजनपरितापादाधिभीत्या कृशत्वम्।।

कलिरपि रिपुलोकैरर्थबाधा नराणा-
मखिलबलनिरोधो बुद्धिरोधो विषादात् ।। 39 ।।
तृषितखगभवे स्वांगनासंगमध्ये,
भवति गदविकारो दुष्टकार्याधिकारः ।
निजजनपरिवादादर्थहानिः कृशत्वं
खलकृतपरितापो मानहानिः सदैव ।। 40 ।।

(i) क्षुधितावस्था में ग्रह से शोक, मोह, परिवार को कष्ट, मानसिक विक्षोभ, कमजोरी, कलह, शत्रुओं से वैर, धन बाधा, बल का नाश तथा विषाद के कारण बुद्धि विपर्यय होता है ।

(ii) तृषितावस्था में अपनी स्त्री को रोग, दुष्टतापूर्ण कार्यों में लिप्त होना, अपने लोगों में बदनामी, धनहानि, कमजोरी, दुष्टों से बाधा तथा मानहानि होती है ।

शयनादि अवस्थाएँ :-

शयनं चोपवेशं च नेत्रपाणिः प्रकाशनम् ।
गमनागमनं चाथ सभायां वसतिस्तथा ।। 41 ।।
आगमं भोजनं चैव नृत्यलिप्साम् च कौतुकम् ।
निद्रा ग्रहाणां चेष्टादिं कथयामि तवाग्रतः ।। 42 ।।

(i) 1. शयन 2 उपवेशन 3. नेत्रपाणि 4. प्रकाशन 5. गमन 6. आगमन 7. सभावास 8.आगम, 9. भोजन 10. नृत्यलिप्सा 11. कौतुक 12.निद्रा ये 12 अवस्थाएँ हैं । इनमें चेष्टा, विचेष्टा व दृष्टि भी कहता हूँ ।

यस्मिनृक्षे भवेत्खेटस्तेन तं परिपूरयेत् ।
पुनरंशेन सम्पूर्य स्वनक्षत्रं नियोजयेत् ।। 43 ।।
यातदण्डं तथा लग्नमेकीकृत्य सदा बुधः ।
रविभिस्तु हरेद्भागं शेषं कार्ये नियोजयेत् ।। 44 ।।

(i) ग्रह जिस नक्षत्र में हो, उस अश्विन्यादि नक्षत्र संख्या से ग्रह संख्या (सूर्यादि) को गुणा करें । गुणनफल को ग्रह की नवांश संख्या (नवांश राशि नहीं) से भी गुणा करें । इस गुणनफल में अपने जन्मनक्षत्र की संख्या को जोड़ लें ।

(ii) इष्टघटी व लग्न राशि संख्या को भी उक्त योग में जोड़ लें । योगफल में 12 का भाग देने से शेष संख्या के अनुसार शयनादि 12 अवस्थाएँ होती हैं ।

हमारे उदाहरण में सूर्य श्रवण में हैं। नक्षत्र संख्या 22 × 4 = 88 मिला। 88 + जन्म नक्षत्र आर्द्रा 6 = 94 में इष्टघटी 25 व लग्न संख्या 4 भी जोड़ी तो 123 संख्या मिली। इसमें 12 से भाग दिया तो शेष 3 है। अतः सूर्य 'नेत्रपाणि' अवस्था में है।

चन्द्र स्पष्ट 2.11.21 होने से चन्द्रनक्षत्र आर्द्रा संख्या 6 × ग्रहसंख्या 2 = 12 × नवांश संख्या 4 = 48 + 35 (इष्टघटी + लग्न + जन्म नक्षत्र) = 83 ÷ 12, शेष 11 है। अतः चन्द्रमा कौतुकावस्था में है।

मंगल की नक्षत्र संख्या 17 × ग्रहसंख्या 3 = 51 × नवांश संख्या 5 = 255 + 35 = 260 ÷ 12 शेष 8 अतः 'नवीं अगमावस्था' है। बुध नक्षत्र संख्या श्रवण 22 × ग्रह संख्या 4 = 88 × नवांश संख्या 5 = 440 + 35 = 475 ÷ 12, शेष 7 अतः 'सभावास' अवस्था है। गुरु नक्षत्र संख्या 10 × ग्रहसंख्या 5 = 50 × नवांश संख्या 2 = 100 + 35 = 135 ÷ 12 शेष 3, अतः 'नेत्रपाणि' अवस्था में है। शुक्र नक्षत्र 24 × ग्रहसंख्या 6 = 144 × नवांश संख्या 5 = 720 + 35 = 755 ÷ 12 शेष 11 अतः 'कौतुकावस्था' है। शनि नक्षत्र संख्या 17 × ग्रहसंख्या 7 = 119 × नवांश संख्या 3 = 357 + 35 = 392 ÷ 12 शेष 9 अतः 'आगमावस्था' में है।

राहु नक्षत्र संख्या 18 × ग्रह संख्या 8 = 144 × विपरीत क्रम से नवांश संख्या 3 = 432 + 35 = 467 ÷ 12 शेष 11 'कौतुकावस्था' है। केतु नक्षत्र संख्या 4 × ग्रह संख्या 9 = 36 × नवांश संख्या 3 = 108 + 35 = 143 ÷ 12, शेष 11 'कौतुकावस्था' है।

अवस्था में चेष्टा ज्ञान :–

नाक्षत्रिकदशारीत्या पुनः पूरणमाचरेत्।
नामाद्यस्वरसंख्याढ्यं हर्तव्यं रविभिस्ततः।। 45।।
रवौ पंच तथा देयाश्चन्द्रे दद्याद्द्वयं तथा।
कुजेद्वयं च संयुक्तं बुधे त्रीणि नियोजयेत्।। 46।।
गुरौ बाणाः प्रदेयाश्च त्रयं दद्याच्चभार्गवे।
शनौ त्रयमथोदेयं राहौ दद्याच्चतुष्टयम्।। 47।।
त्रिभिर्भक्तं च शेषांकैः सा पुनस्त्रिविधा मता।
दृष्टिश्चेष्टा विचेष्टा च तत्फलं कथयाम्यहम्।। 48।।

(i) पूर्वागत शेष अर्थात् अवस्था की क्रमसंख्या का वर्ग लें। अर्थात् उस संख्या को उसी से गुणा करें। गुणनफल में प्रसिद्ध नाम का अंक जोड़ें तथा योगफल में 12 का भाग दें। शेष में ग्रह का ध्रुवांक जोड़कर 3 से भाग दें। शेष 1 हो तो दृष्टि, दो शेष हो तो चेष्टा व 0 शेष हो तो विचेष्टा होती है।

उदाहरण सूर्य की अवस्था क्रम संख्या 3 का वर्ग 9 है। पुकारने का नाम सनत्कुमार है। तब 'स' की संख्या (आगे चक्र देखें) 4 इसमें जोड़ा तो 13 ÷ 12 = शेष 1 है। इसमें सूर्य का ध्रुवांक 5 जोड़ा तो 6 ÷ 3 = शेष 0 अतः 'विचेष्टा' हुई। विचेष्टा आने पर अवस्था का शुभाशुभ फल बहुत नहीं होता है।

चन्द्रमा की अवस्था संख्या 11 × 11 = 121 + नामाक्षर संख्या 4 = 125 ÷ 12 शेष 5 है। इसमें चन्द्रमा का ध्रुवांक 2 जोड़ा तो 7 ÷ 3 = शेष 1 अतः 'दृष्टि' है। तब चन्द्रमा की अवस्था का जो भी शुभाशुभ फल है वह मध्यम मात्रा में होगा। इसी प्रकार से सर्वत्र समझा जाएगा।

।। नामाद्यक्षर अंक ।।

1	2	3	4	5		
अ	इ	उ	ए	ओ	सूर्य	5
क	ख	ग	घ	च	चन्द्र	2
छ	ज	झ	ट	ठ	मंगल	2
ड	ढ	त	थ	द	बुध	3
ध	न	प	फ	ब	गुरु	5
भ	म	य	र	ल	शुक्र	3
व	श	ष	स	ह	शनि	3

अवस्था चक्र (उदाहरण)

ग्रह	**अवस्था**	**चेष्टा**
सूर्य	नेत्रपाणि	विचेष्टा
चन्द्र	कौतुक	दृष्टि
मंगल	आगम	विचेष्टा
बुध	सभावास	चेष्टा
गुरु	नेत्रपाणि	विचेष्टा
शुक्र	कौतुक	चेष्टा
शनि	आगम	दृष्टि
राहु	कौतुक	–
केतु	कौतुक	–

दृष्टौ मध्यफलं ज्ञेयं चेष्टायां विपुलं फलम् ।
विचेष्टायां फलं स्वल्पमेवं दृष्टिफलं विदुः ।। 49 ।।
शुभाशुभं ग्रहाणां च समीक्ष्याथ बलाबलम् ।
तुंगस्थाने विशेषेण बलं ज्ञेयं तथा बुधैः ।। 50 ।।

दृष्टि में मध्यम फल, चेष्टा में सम्पूर्ण फल तथा विचेष्टा में मामूली फल होता है। इस तरह सब ग्रहों की अवस्थानुसार शुभाशुभता देखकर व बलाबल–विचार से फल कहें। उच्चस्थान में स्थित ग्रह की अवस्थादि का फल विशेष होता है। अतः उच्चगत, मूल त्रिकोण, स्वक्षेत्री, या मित्रक्षेत्री ग्रह अवस्था में अधिक शुभ होते हैं। यह अनुक्त भी समझ लेना चाहिए।

सूर्य की अवस्थाओं का फल :–

मन्दाग्नि पित्तशूली च श्लीपदी च न संशयः ।
गुह्यस्थाने भवेद् रोगी जायते शयने रवौ ।। 51 ।।
उपवेशेभवेच्छिल्पीदारिद्र्यामयसंयुतः ।
विद्याविरहितो दुःखी परसेवासु तत्परः ।। 52 ।।
पंचमे नवमे वापि दशमे सप्तमेऽपि वा ।
नेत्रपाणौ यदासूर्यः सर्वसौख्यसमन्वितः ।। 53 ।।
बली वित्ताधिपो विद्वान् जातः संजायते पुनः ।
अन्यगृहे भवेत्क्रूरो जलदोषी भवेन्नरः ।
चक्षुरोगी महाक्रोधी परद्वेषी पुमान् सदा ।। 54 ।।

शयनावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य को अपच, मन्दाग्नि, पित्तशूल, पैरों में सूजन व गुप्त रोग होते हैं।

उपवेशनावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य मिस्त्री, कारीगर आदि श्रम कार्य करने वाला, गरीबी से पीड़ित, विद्याहीन, दुःखी व दूसरों का आधीन सेवक होता है।

नेत्रपाणि अवस्था में सूर्य 5.9.7.10 भावों में हो तो मनुष्य सब सुखों से युक्त होता है। वह बलवान्, धनी, विद्वान, भी होता है।

अन्य भावों में उक्त सूर्य हो तो मनुष्य क्रूर स्वभाव वाला, पानी के विकार से पीड़ित, नेत्ररोगी, महाक्रोधी, सबसे द्वेष भाव रखने वाला होता है।

पुण्यवान् धार्मिकश्चैव धनवांश्च प्रकाशने ।
दाता भोक्ता भवेन्मानी राजपुत्रो धनाधिपः ।। 55 ।।

सप्तमे पंचमे वापि प्रकाशे च यदा रविः ।

नाशयेत्प्रथमापत्यं कलत्रं च विशेषतः ।। 56 ।।

प्रकाशनावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य पुण्यवान्, धार्मिक, धनी, दानी, सुख, भोगने वाला, गर्वीला, राजसी कुल में उत्पन्न होने वाला होता है ।

5.7 भाव में उक्त सूर्य हो तो मनुष्य की पहली सन्तान अथवा पत्नी प्रायः नष्ट हो जाती है ।

प्रवासी गमने सूर्यो पादमूले रुजान्वितः ।

निद्रालस्यभयक्रोधैः संयुतो जायते नरः ।।57 ।।

क्रूरः कुबुद्धिः कुशलो दाम्भिकः कृपणस्तथा ।

परदारेष्वभिरुचिर्नरस्यागमने रवौ ।। 58 ।।

सप्तमे द्वादशे वापि यदि सूर्यो भवेत्क्वचित् ।

अपत्यं नाशयेत्तस्य धनमल्पं प्रयच्छति ।। 59 ।।

प्रवासावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य सदैव घर से बाहर रहने वाला, पैरो (टखनों) में रोगयुक्त, निद्रालस्य भय क्रोधादि से युक्त होता है ।

आगमनावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य क्रूर, दुर्बुद्धि, कुशल, दम्भी, कंजूस, परस्त्री में रत होता है ।

7.12 भाव में आगमनावस्था का सूर्य हो तो उसकी सन्तान नष्ट हो जाती है तथा उसके थोड़ा धन होता है ।

धार्मिको धनवांश्चापि नानाविद्यासमन्वितः ।

प्रियदृष्टिः शुचिर्वक्ता सभायां तपने जने ।। 60 ।।

क्षोभितो दुःखितश्चैव नानादुःखप्रदायकः ।

आगमे च भवेन्मूर्खः कुरूपो धनवान् भवेत् ।। 61 ।।

सभावासावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य धार्मिक, धनी, अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त, सुन्दर नेत्रों वाला, पवित्र आचरण वाला व कुशल वक्ता होता है । आगम अवस्था में सूर्य हो तो मनुष्य सदैव दुःखी, सन्तप्त, मूर्ख, कुरूप किन्तु धनी होता है ।

भोजने च यदा सूर्ये स्त्रीपुत्रधनैर्गतः ।

सन्धिरोगी शिरःशूली, दुष्टोऽसत्कार्यतत्परः ।। 62 ।।

नवमे च यदा सूर्यो भोजनस्थो यदा भवेत् ।।

तदा पुण्ये महाविघ्नं करोति च न संशयः ।। 63 ।।

भोजनावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन से रहित, जोड़ों में पीड़ा पाने वाला, सिर में विशेषतया पीड़ा वाला, दुष्ट व असत्कार्य करने

वाला होता है। यदि उक्त सूर्य नवमस्थ हो तो पुण्योदय या भाग्योदय में बहुत विघ्न उपस्थित करता है।

पण्डितः सुन्दरो वाग्मी नृत्यलिप्सा गते रवौ।
शूलरोगी भवेन्नित्यं धनवान् धार्मिको मतः।। 64।।

नृत्यलिप्सा में सूर्य हो तो मनुष्य पण्डित, सुन्दर, वाक्चतुर लेकिन सदैव शूल रोगी (वायु शूल, शिरः शूल, उदर शूल, हृदय शूल आदि) धार्मिक व धनी होता है।

उत्साही च महापुत्री कौतुकस्थे रवौ जनः।
दाता भोक्ता महाभोगी द्विभार्यो बहुभाषकः।। 65।।
क्षतार्तस्तस्य देहः स्याद् दद्रुरोगी भवेच्च सः।
महादक्षो महाक्रोधी जायते च नरोत्तमः।।66।।
सप्तमे पंचमे वापि यदि दैवाद् भवेत्पुनः।
कलत्रं नाशयेत्तस्य प्रथमापत्यं तु निश्चितम्।। 67।।
षष्ठस्थाने भवेद्वापि सर्वशत्रुविनाशनः।
जाड्यं च लभते जातः सभायां कौतुके रवौ।। 68।।

कौतुकावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य उत्साह वाला, महान् पुत्र का पिता, दानी, सुख भोगने वाला, दो पत्नियों वाला, अधिक बोलने वाला होता है।

उसके शरीर पर घाव लगते हैं, उसे त्वचा रोग (दाद आदि) होते हैं। वह महान् कार्यकुशल, अति क्रोधी लेकिन श्रेष्ठ मनुष्य होता है।

5.7 भावों में उक्त सूर्य हो तो स्त्री व ज्येष्ठ सन्तान का नाशक एवं षष्ठ में हो तो सब शत्रुओं का नाश होता है। लेकिन षष्ठस्थ उक्त सूर्य से मनुष्य लोगों के बीच बोलने में झिझकता है।

नित्यं प्रवासी दुःखी च दरिद्रो विकलो महान्।
लिंगान्तर्गुदरोगी स्यात्क्रोधेनारक्त लोचनः।।
निद्रायां च भवेद् भानौ जायाहानिर्विशेषतः।। 69।।

निद्रावस्था में सूर्य हो तो मनुष्य सदैव प्रवास में रहने वाला, लिंग व गुदा के भीतरी भागों में रोगयुक्त, दरिद्र, विकलांग, अति क्रोधी व स्त्री सुख से रहित होता है।

चन्द्रमा का अवस्था फल :–

जनुःकाले क्षपानाथे शयनं चेदुपागते।
मानी शीतप्रधानश्च कामी वित्तविनाशकः।। 70।।

गुह्यस्थाने भवेद्रोगी विलग्ने चेद् विधुस्तदा ।

अन्यभावे यदा जातो न तादृग्दोषभाग् भवेत् ।। 71 ।।

कृष्णपक्षे भवेद् वापि कृपणो दाम्भिकस्तथा ।

भक्षकश्च महाशूरो लम्पटः परनिन्दकः ।। 72 ।।

यदि शयनावस्था में चन्द्र हो तो मनुष्य स्वाभिमानी, सर्दी से जल्दी पीड़ित होने वाला, कामुक व धननाशक होता है। लग्न में उक्त चन्द्रमा हो तो गुप्त रोगी तथा अन्य भावों में हो तो गुप्त रोग नहीं होता।

यदि उक्त चन्द्रमा कष्णपक्ष का हो तो मनुष्य कंजूस, व दिखावे वाला, खूब खाने वाला, दुःसाहसी, लोभी व दूसरों की निन्दा करने वाला होता है। शुकलपक्ष में ऐसा फल नहीं होता यह बात अन्यथा स्पष्ट है।

अपवेशे च रोगी च धनहीनो भवेन्नरः ।

कुटिलः कृपणश्चैव धीजडोऽकार्य तत्परः ।। 73 ।।

उपवेशगत चन्द्रमा से रोगी, निर्धन, चालाक, कंजूस, मन्द बुद्धि व वृथा कार्य करने में सदैव तत्पर होता है।

नेत्रपाणौ क्षपानाथे महारोगी खलो भवेत् ।

अनल्पजल्पको धूर्तः कुकर्मनिरतः सदा ।। 74 ।।

नेत्रपाणि अवस्थागत चन्द्र से मनुष्य बड़े रोग वाला, दुष्ट, बहुत बोलने वाला, चालाक व कुकर्मी होता है।

प्रकाशे खलु राकेशे धनवांश्च भवेन्नरः ।

सिते प्रकाण्डदेहः स्यात्कृपणस्तीर्थरुचिस्ततः ।। 75 ।।

प्रकाशनावस्था में चन्द्रमा हो तथा वह शुक्ल पक्ष का हो तो मनुष्य धनी, लम्बे मजबूत शरीर वाला, कंजूस तथा तीर्थयात्रा से प्रेम करने वाला होता है। कृष्णपक्षीय चन्द्रमा से इससे कम फल समझना चाहिए।

प्रवासी वित्तहीनश्च क्रूरकर्मा सनेत्ररुक् ।

गमने चन्द्रे शूलैः स्तब्धः कृष्णे शुक्ले भयातुरः ।। 76 ।।

विधावागमने मानी पादरोगी नरो भवेत् ।

गुप्तपापरतो दीनो मतितुष्टश्च मायिकः ।। 77 ।।

दाता च धार्मिकश्चैव राजमान्यो भवेत्सदा ।

सभायां च विधौ पुष्टे जायते पुरुषोत्तमः ।। 78 ।।

विधावागमनेऽर्के मर्त्यो वाचालो धार्मिकः सदा ।

कृष्णपक्षे द्विभार्यः स्यात् कन्यासन्तानवांस्तथा ।। 79 ।।

कृष्णपक्ष का चन्द्रमा गमनावस्था (गमनेच्छा) में हो तो मनुष्य प्रवास में रहने वाला, धनरहित, क्रूर कार्य करने वाला, नेत्ररोगी, शूलरोगी होता है। इसके विपरीत शुक्लपक्ष में भयभीत सा रहता है।

आगमनावस्था में चन्द्रमा हो तो मनुष्य स्वाभिमानी, पैरो में पीड़ा व रोग वाला, गुप्त पापी, दीन, अपनी कल्पनाओं में ही सन्तुष्ट रहने वाला तथा मायावी होता है। समावास अवस्था में पुष्ट (पक्षबली) चन्द्रमा हो तो मनुष्य दानी, धार्मिक, राजपूज्य, व पुरुष श्रेष्ठ होता है। कम बिम्ब वाला चन्द्र होने पर उक्त फल आनुपातिक समझना चाहिए। आगमनावस्था में चन्द्रमा हो तो मनुष्य वाचाल व धार्मिक, कृष्णपक्ष में दो पत्नियों वाला तथा अधिक पुत्रियों वाला होता है।

भोजनस्थे विधौ जातः चारुबिम्बे सुखी धनी।
यानस्त्रीसुतसंयुक्तः क्षीणे सर्पाज्जलाद्भयम्।। 80।।

भोजनावस्था में पुष्ट बिम्ब वाला चन्द्र हो तो मनुष्य सुखी, धनी, वाहन स्त्री व पुत्रों से युक्त तथा क्षीण बिम्ब रहने पर सर्प व जल से भय होता है।

नृत्यलिप्सा गते चन्द्रे सबले बलवान्नरः।
दाता भोक्ता तथा मानी धनवांश्च भवेन्नरः।। 81।।
गीतज्ञो हि रसज्ञश्च कृष्णे रोगी महाकृशः।
क्रूरकर्मा प्रवासी च श्लीपदी जायते पुमान्।। 82।।

नृत्यलिप्सा अवस्था में चन्द्रमा बलवान् (बिम्बबली) हो तो मनुष्य ताकतवर, पुष्ट, दानी, भोगी, मानवान् व धनी तथा गीत–संगीत रसादिक का जानकार होता है।

इसके विपरीत क्षीण चन्द्रमा से रोगी, बहुत दुर्बल, क्रूर कार्य करने वाला, प्रवास में रहने वाला, पैरों में रोगयुक्त रहता है।

धनवान् बहुपुत्रश्च दाता च जायते नरः।
कौतुके च भवेद्भूपो नानाविद्यासु तत्परः।। 83।।
नवमे दशमे वापि सर्वसौख्यं प्रयच्छति।
तदा सर्वं शुभं विद्यात् न दरिद्री कदाचन।। 84।।

कौतुकावस्था में चन्द्र हो तो मनुष्य धनी, बहुत पुत्रों वाला, दानी, राजा (या राजतुल्य) अनेक विद्याओं का जिज्ञासु होता है।

नवम या दशम में उक्त चन्द्रमा हो तो सब सुख देता है तथा ऐसा व्यक्ति कभी भी दरिद्री (या मैला कुचैला, घृणित) नहीं रहता।

निद्रायां स्थिते चन्द्रे क्लेशी पापी रुजान्वितः ।

पुत्रशोको महादुःखी कष्टं भ्रमति मेदिनीम् ।। 85 ।।

कर्मस्थाने विशेषेण ज्ञेयमेवं सदा बुधैः ।

अन्यभावे परद्वेषी प्रवासी शूलपीडितः ।। 86 ।।

निद्रावस्था में चन्द्रमा हो तो मनुष्य क्लेश उठाने वाला, पापी, रोगी, पुत्रशोक सहने वाला, बहुत दुःखी तथा सर्वत्र मारा मारा फिरता है। यह फल दशमस्थ चन्द्रमा का विशेषतया समझना चाहिए। अन्यत्र भावों में मनुष्य द्वेषभाव रखने वाला, प्रवासी व शूलरोगी होता है।

सुतस्थाने सप्तमे च भोजने भक्ष्यलुब्धकः ।

विधौ निद्रागते तत्र सर्वभद्रं भवेन्नृणाम् ।। 87 ।।

राहुणासहिते चन्द्रे यदि निद्रामुपागते ।

तदा सर्वविनाशः स्यात् बहुदोषा विशेषतः ।। 88 ।।

यदि 5.7 भावों में भोजनावस्था में चन्द्रमा हो तो मनुष्य सदा खाने–पीने के लिए अधिक लालच करता है।

यदि निद्रावस्थागत चन्द्रमा 5.7 भावों में हो तो सब कल्याण अर्थात् शुभ ही समझना चाहिए।

यदि निद्रागत चन्द्रमा, राहु के साथ हो तो मनुष्य अनेक दोषों की खान, तथा सर्वनाश करने वाला होता है।

मंगल की अवस्थाओं का फल :–

शयने वसुधापुत्रे व्रणयुक्तो भवेन्नरः ।

लग्नस्थे बहुरोगी स्यात् दद्रुकुष्ठविचर्चकैः ।। 89 ।।

पंचमे सप्तमे वापि शयनस्थो यदा कुजः ।

नाशयेत्प्रथमापत्यं नारीं च प्रथमां पुनः ।। 90 ।।

पंचमस्थो यदा भौमो रिपुणा चावलोकितः ।

भुजच्छेदो भवेन्नूनं कर्णच्छेदोऽथवा पुनः ।। 91 ।।

शनिराहुसमायुक्तः स च भौमो यदा भवेत् ।

तदा तस्य शिरच्छेदो ज्ञेयं मुनिपुंगव ! ।। 92 ।।

शयनावस्था में मंगल हो तो मनुष्य को घाव लगते हैं। लग्नस्थ उक्त मंगल हो तो मनुष्य को त्वचा के विभिन्न रोग होते हैं।

पंचम या सप्तम भाव में शयनगत मंगल हो तो पहली सन्तान व पहली पत्नी की मृत्यु हो जाती है। पंचम में ही मंगल यदि शत्रुग्रह से दृष्ट

हो तो हाथ या कान कटने के योग होते हैं। शनि व राहु के साथ मंगल पंचम या सप्तम में हो तो मनुष्य का सिर कटने के योग होते हैं।

उपवेशगते भौमे जायते च नराधमः।

धनवान् निष्ठुरः पापी ज्ञानहीनश्च जायते।। 93।।

धर्महीनः पापशीलः सरोगो विकलो महान्।

यदि लग्ने विशेषेण फलमूह्यं द्विजर्षभ !।। 94।।

नवमे दशमे भौमे तथाभूते तु जायते।

सर्वनाशो विशेषेण जायापुत्रादि सन्ततेः।। 95।।

शुभैर्यदि समायुक्तो मित्रयुक्तो भवेत्कुजः।

बलाबलानुसारेण विपरीतं फलं भवेत्।। 96।।

उपवेशनावस्था में मंगल से मनुष्य बहुत निकृष्ट, धनी, कठोर, निर्दय, पापी व विवेकरहित होता है। वह धर्महीन, पापी, रोगी, विकलांग या बहुत बेचैन होता है। यह फल लग्नस्थ मंगल से विशेषतया समझना चाहिए।

9.10 भाव में मंगल इस अवस्था में हो तो स्त्रीपुत्रादि व धनादि का सर्वनाश होता है। यदि उक्त मंगल शुभ या मित्रग्रहों से युक्त हो तो मंगल व साथी ग्रहों के बलाबलानुसार विपरीत अर्थात् शुभ फल कहें। मंगल व साथ बैठे ग्रह बहुत बली हों तो पूर्ण धार्मिक व उत्तम आय–व्यय बलक्रम से कम, कमतर धर्मादि फल कहें।

यदा भूमिसुतो लग्ने नेत्रपाणिमुपागतः।

चक्षुहीनः कुलत्यक्तः दारिद्र्येणैव दह्यते।।97।।

अन्यस्थाने स्थिते भौमे सर्वसौख्यं वदेत्पुनः।

देहमान्द्यं भवेत् किंचिदौत्पातिकभयं भवेत्।। 98।।

द्वितीये सप्तमे वापि धनहीनो भवेन्नरः।

जाया च म्रियते तस्य भूमिजीवी भवेत्सदा।। 99।।

यदि नेत्रपाणि अवस्था का मंगल लग्न में हो तो मनुष्य नेत्रहीन, कुल परिवार से त्यक्त व दरिद्र व अति पीड़ित होता है।

अन्यत्र स्थित मंगल से सब सुख मिलते हैं, लेकिन व्यक्ति को शरीर में कुछ शिथिलता एवं जल, व्याघ्र आदि उत्पातों से भय होता है।

2.7 भावों में मंगल हो तो मनुष्य धनहीन होता है। उसकी पत्नी की मृत्यु होती है तथा वह जमीन से सम्बन्धित कार्य से जीविका चलाता है।

प्रकाशने कुजे जातः धनवान् क्षणिकः सुधीः ।

क्षतादिर्वामनेत्रे च दारुणं पतनं भवेत् ।। 100 ।।

यत्रतत्रस्थितो भौमः पापयुक्तो भवेद्यदि ।

पतितं तं विजानीयाच्छनियुक्ते तु गोवधः ।। 101 ।।

सुतस्थाने कलत्रे वा यदि भौमो भवेत्तथा ।

तदा सर्वान् सुतान् हन्ति नारीं चैव न संशयः ।। 102 ।।

प्रकाशनावस्था में मंगल हो तो मनुष्य धनी, जल्दी ही तुष्ट होने वाला, तुनकमिजाज, बुद्धिमान्, बायीं आँख में चोट खाने वाला अथवा बहुत खतरनाक ढंग से गिरकर चोट खाने वाला होता है।

यही मंगल किसी भी भाव में पापयुक्त हो तो मनुष्य पतित आचरण वाला, शनि से युक्त हो तो गोहत्या करने वाला होता है। 5.7 भाव में मंगल हो तो सब पुत्र व स्त्री नष्ट हो जाते हैं।

आगमने च संजातः प्रवासी नित्य दुःखितः ।

क्षुद्रकर्मा महाधैर्यः स्त्रीवेषो बहुभाषकः ।। 103 ।।

शरीरे च भवेद्रोगो दद्रुकुष्ठविचर्चिका ।

चक्षुर्ज्वाला शिरोरोगी दन्तशूली भवेन्नरः ।। 104 ।।

एतल्लग्ने भवेच्चैवमन्यभावेषु व्यत्ययात् ।

नानाधनो महादक्षो राजपात्रो भवेन्नरः ।। 105 ।।

किन्त्वस्य देहमान्द्यं स्याच्छरीरे सर्वदा पुनः ।

दाता भोगी भवेच्चैव जायते च नरेश्वरः ।। 106 ।।

आगमनावस्था में लग्न में मंगल हो तो मनुष्य प्रवासी (घर से बाहर रहने वाला) सदा दुःखी रहने वाला, साधारण स्तर का कार्य करने वाला, बहुत धैर्यशाली, स्त्री जैसा वेष धारण करने वाला अधिक बोलने वाला होता है। उसके शरीर में दाद, खाज आदि फोड़े फुन्सी होते हैं। आँखों में जलन, सिर में रोग तथा दाँतों में पीड़ा होती है। यह फल लग्नगत मंगल का है। अन्य भावों में मंगल हो तो विपरीत फल होता है। अर्थात् कम बोलने वाला, जल्दबाज, साधारण वेष वाला सुखी होता है। अपि च धनवान्, कार्य चतुर, राजा का कृपापात्र होता है, लेकिन इसका शरीर शिथिल सा होता है। अर्थात् स्वास्थ्य साधारण होता है। अपि च यह व्यक्ति दानी,

भोगों को भोगने वाला, राजसी जीवन वाला अथवा नरपति (मुखिया, नेता आदि) होता है।

गमने कुरुते भौमो व्रणघातं कलहं स्त्रिया।

गुदा रोगी धनैर्हीनः कुकर्मा जायते पुमान्।। 107।।

गमनावस्था में मंगल हो तो शरीर पर घाव व स्त्री से कलह होती है। मनुष्य निर्धन, गुदा रोगी व कुकर्म करने वाला होता है।

सभायां संस्थिते भौमे धार्मिको बहुसम्पदः।

तुङ्गे सत्त्वाधिको दाता गुणी धर्मध्वजो मतः।। 108।।

नवमे पंचमे भौमे सभायां समुपागते।

विद्याभाग्यविहीनः स्यात् कार्यविघ्नः पदे पदे।। 109।।

अन्यभावगते भौमे सभापूज्यो भवेज्जनः।

अन्ते पुत्रादिभिर्हीनो निर्बले सबलेऽन्यथा।। 110।।

सभावस्था में मंगल हो तो मनुष्य धार्मिक, अधिक सम्पत्ति वाला, उच्चस्थ मंगल हो तो बहुत अधिक सत्त्व (मनोबल) वाला, दानी, गुणी व धर्म प्रवर्तक या धार्मिकों में श्रेष्ठ होता है।

9.5 में मंगल हो तो विद्या व भाग्य से रहित होता है, कदम–कदम पर रुकावटें झेलता है। अन्य स्थानों में उक्त निर्बल मंगल हो तो मनुष्य सभा में सर्वत्र सम्मान पाने वाला, वृद्धावस्था में पुत्रादि से दूर, अलग रहने वाला तथा बलवान् मंगल हो तो पुत्रादि से युक्त रहता है।

आगमे संस्थिते भौमे दक्षश्च धनवान् भवेत्।

देहमान्द्यं सदा तस्य दाता भोगी यशोऽर्थभाक्।। 111।।

आगम अवस्था में मंगल हो तो मनुष्य दक्ष (कार्य चतुर) धनी, ढ़ीला स्वास्थ्य, दानी, भोगी, यश व धन पाने वाला होता है।

भोजने मिष्टभोजी च जनने सबले कुजे।

नीचकर्मकरो नित्यं मनुजो मानवर्जितः।। 112।।

स्वल्पाहारो महाक्रोधी नित्योत्साही धनान्वितः।

सुतस्थाने च रन्ध्रे च भोजने शयनेऽथवा।

तदा तस्यापमृत्युः स्यात् पशुभिर्हन्यते नरः।। 113।।

भोजनावस्था में बली मंगल हो तो मीठा खानें में रुचि रखने वाला, नीच कार्य करने वाला तथा अपमानित सा, कम खाने वाला, महाक्रोधी, अति उत्साही तथा धनी होता है।

5-8 भावों में मंगल भोजन या शयन अवस्था में हो तो मनुष्य की अपमृत्यु (पशुघात) होने का योग होता है। अर्थात् चौपाये जानवरों से आघात होता है।

नृत्यलिप्सागते भौमे धनं तस्य नृपालयात्।
दाता भोक्ता सदा सौख्यं धनेशश्च भवेन्नरः।।
द्वादशस्थे तु पुत्राणां नाशः स्याद् ब्रह्मणोदितम्।। 114 ।।
अष्टमे नवमे वापि नानादुःखप्रदायकः।
अपमत्युर्भवेत्तस्य धर्महानिः प्रजायते।। 115 ।।
लग्ने द्वितीयगो वापि कर्मस्थाने स्थितोऽपि वा।
सप्तमेऽपि यदा भौमः सर्वसौख्यप्रदायकः।। 116 ।।

नृत्यलिप्सा अवस्था में मंगल हो तो राजपक्ष से धन लाभ, दानी, भोगी, सुखी व धनी होता है।

यदि यह मंगल द्वादश भाव में हो तो मनुष्य के पुत्र नष्ट हो जाते हैं, यह ब्रह्माजी ने कहा है।

8.9 भावों में मंगल हो तो अनेक दुःख पाने वाला, धर्महानि से युक्त तथा अपमृत्यु से भय होता है।

1.2.7.10 भावों में ऐसा मंगल हो तो सब प्रकार से सुख ही प्रदान करता है।

कौतुके क्षितिजे जातो मित्रपुत्रादिसंयुतः।
नानाधनसमायुक्तो द्विभार्यो बहुकन्यकः।। 117 ।।
पंचमे सप्तमे धर्मे तथा भूते कुजे पुनः।
सर्वं विलोमतो ज्ञेयमिति प्राग् ब्रह्मणोदितम्।। 118 ।।

कौतुकावस्था में मंगल हो तो मनुष्य मित्रों, पुत्रों व स्त्री से युक्त, अनेक प्रकार की सम्पत्तियों वाला, दो पत्नी व कन्या सन्तान की अधिकता वाला होता है।

5.7.9 में मंगल हो तो सब विपरीत फल अर्थात् सम्पत्ति, स्त्री, पुत्रादि से हीन व पुत्रवान् होता है।

निद्रावस्थां गते भौमे धनहीनः जडः पुमान्।
महाक्रोधी परिभ्रष्टः जायते च नराधमः।। 119 ।।
पंचमे सप्तमे वापि यस्य निद्रागतः कुजः।
तस्यापत्यस्य बाहुल्यं नानादुःखस्य वेदना।। 120 ।।

राहुणा सहितो भौमो यदि निद्रान्वितो भवेत् ।
नाशयेत्प्रथमापत्यं दुःखभागी भवेन्नरः ।। 121 ।।
धनवान् कलत्रबहुलो दाता बहुगुणान्वितः ।
पादमूले सरोगः स्यादिति ज्ञेयं सदा बुधैः ।। 122 ।।

निद्रावस्था में मंगल हो तो मनुष्य धनरहित, मूर्ख बुद्धि, अति क्रोधी, भ्रष्टाचरण करने वाला, नीच पुरुष (नराधम) होता है ।

5.7 में मंगल निद्रावस्था में हो तो अधिक सन्तान व अनेक दुःख होते हैं । राहु के साथ निद्रित मंगल हो तो पहली सन्तान का शोक होता है, अन्यथा धनी, कई स्त्रियों वाला, दानी, गुणी, टखनों में रोग वाला होता है ।

बुध की अवस्थाओं का फल :-

क्षुधातुरो भवेदंगे खंजो गुंजानिभेक्षणः ।
अन्ये लम्पटो धूर्तो मनुजः शयने बुधे ।। 123 ।।

शयनावस्था में स्वगृही बुध हो तो भूख से पीड़ित, लगड़ेपन से युक्त, बहुत छोटी गोल आँखें अन्य ग्रह की राशि में लम्पट, धूर्त होता है ।

उपवेशे च यो जातो स वाग्मी गुणवान् भवेत् ।
कविताशक्तिसम्पन्नो गौरवर्णो महा शुचिः ।। 124 ।।
यदि पापसमायुक्तः शत्रुणा यदि वीक्षितः ।
महापातक योगोऽयं विष्णुना परिकीर्तितः ।। 125 ।।
स्वगृही मित्रसंयुक्तः नानासौख्यप्रदः ध्रुवम् ।
पुण्यवान् धार्मिकश्चैव चक्षुरोगश्च केवलम् ।। 126 ।।

उपवेशावस्था में बुध हो तो मनुष्य वाक् चतुर, गुणी, काव्य करने वालागौरवर्ण व बहुत पवित्र आचरण वाला होता है ।

यदि बुध पापयुक्त या शत्रु दृष्ट हो तो महापातक (महापापी) योग है, ऐसा विष्णु जी ने कहा है ।

यदि बुध स्वराशि में या मित्रग्रहों से युक्त हो तो अनेक सुख देने वाला, पुण्यशील, धार्मिक, केवल नेत्ररोग देता है ।

नेत्रपाणौ बुधे संस्थे पादरोगी तथार्थकः ।
विद्याविनयहीनः स्यात् पुत्रनाशो भवेद् ध्रुवम् ।। 127 ।।

बुध यदि नेत्रपाणि अवस्था में हो तो मनुष्य पैरों में रोगयुक्त, याचक, विद्या–विनय से हीन होता है एवं उसका पुत्र भी नष्ट हो जाता है।

पंचमस्थे यदा सौम्ये नेत्रपाणौ गतस्तदा।
पुत्रस्त्रीसौख्यहीनः स्यात् कन्या च बहुला भवेत्।। 128।।

यदि पंचम स्थान में नेत्रपाणि अवस्था में बुध हो तो मनुष्य स्त्री–पुत्र सुख से रहित और अधिक कन्याओं वाला होता है।

प्रकाशने गते सौम्ये दाता धर्मधनान्वितः।
नाना विद्यायुतो जातः जायते वेदपारगः।। 129।।

जन्म समय में बुध प्रकाशन अवस्था में हो तो मनुष्य दानशील धनिक, अनेक विद्याओं से युक्त व वेदार्थ का ज्ञाता होता है।

गमने संस्थिते भौमे जातो दक्षश्च लम्पटः।
स्त्रीवशो दुष्टभार्यश्च बहुरोगसमन्वितः।। 130।।
नाना दुःखं भवेत्तस्य कामुको बहुभाषकः।
दन्तघाती भवेच्चैव कलहो नित्यमेव च।। 131।।

गमन अवस्था में बुध हो तो मनुष्य कार्यकुशल, अधिक लालची स्त्री के वश में रहने वाला दुष्ट पत्नी वाला व योगी होता है।

उसे अनेक प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है एवं ऐसा व्यक्ति कामुक, बहुभाषी, खराब दाँतों वाला व झगड़ालू होता है।

आगमने च सौम्ये तु जलदोषी भवेन्नरः।
वाणिज्यात् धनलाभश्च स्त्रीनाशो बंधुनाशकः।।
मूर्खोऽथविकलश्चैव सर्पाद्भीतिः जलाद्भयम्।। 132।।

आगमन अवस्था में बुध हो तो मनुष्य को जल विकार होते हैं। वह व्यापार से धन कमाता है, लेकिन स्त्री व बन्धुओं से रहित होता है। साथ ही ऐसा व्यक्ति मूर्ख, बेहाल, सर्पादि व जल से भय प्राप्त करता है।

सभायामपि यो जातः धनवान् धार्मिकस्तथा।
पुण्यवान् जन समृद्धः चिररोगी भवेच्च सः।। 133।।
पंचमे द्वादशे वापि कन्यापत्यं नरस्य च।
सप्तमे तु सुखं विद्यात् कृष्णवर्णो दुरासदः।। 134।।

सभावास अवस्था में बुध हो तो मनुष्य धनी, धार्मिक (पुण्यवान व जनता का समर्थन प्राप्त करने वाला) होता है।

पाँच बारह भावों में ऐसा बुध हो तो मनुष्य को कन्याएँ अधिक होती हैं। सप्तम भाव में यदि ऐसा बुध हो तो मनुष्य को सभी प्रकार के सुख मिलते हैं। किन्तु वह काले रंग वाला और दबंग होता है।

आगमके भवेत्सौम्यः पापशीलो भवेन्नरः।

हीनानां सेवया द्रव्यं पुत्रयुग्मं भवेत्ततः।। 135 ।।

गुह्य स्थाने भवेद्रोगं मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम्।

आगम अवस्था में बुध हो तो मनुष्य पापाचरण करने वाला, नीच संगति से धन कमाने वाला एवं दो पुत्रों वाला होता है। लेकिन उसे गुप्त स्थानों में रोग जैसे–मूत्रकृच्छ्र (मूत्र का रोग) होता है।

भोजने च बुधे जातो धनहानिस्तु वादकः।। 136 ।।

राजभीतिः कृशत्वं च शिरोरोगी विशेषतः।

परद्वेषी प्रवासी च मतिः स्यात्तस्य चंचला।। 137 ।।

भोजन अवस्था में बुध हो तो मनुष्य को वाद–विवाद के कारण धनहानि होती है, राजा से भय और शिर में रोग भी होता है, वह दूसरों से द्वेष करने वाला प्रायः घर से बाहर रहने वाला, कमजोर व चंचल बुद्धि वाला होता है।

नृत्यलिप्सा गते सौम्यः धनवान् पंडितः कविः।

मानी यानव्रजी युक्तः महाह्रष्टो सुखी सदा।

पापक्षेत्रे गते सौम्ये वेश्यागामी भवेन्नरः।। 138 ।।

नृत्यलिप्सा अवस्था में बुध हो तो मनुष्य धनी, विद्वान्, कवि सम्मानित, अनेक वाहनों वाला, प्रसन्नचित्त व सुखी होता है।

लेकिन पापराशि में बुध होता है तो ऐसा मनुष्य वेश्याओं से प्रेम करता है।

कौतुके च यदा सौम्यः भवेत्सर्वजनप्रियः।

गीतविद्यानुगः स्यात् च त्वग्दोषी च न संशयः।। 139 ।।

पंचमे दशमे वापि पुत्रहानिः भवेत्सदा

बहुला कन्यास्तस्य सप्तमे नैधने पुनः।। 140 ।।

वारवध्वा रतिस्तस्य पुण्यभे पुण्यशीलता।

कर्मस्थाने च धर्मे च नानासौख्यं भवेत्सदा।। 141 ।।

कौतुकावस्था में बुध हो तो मनुष्य सबका प्रिय संगीतज्ञ, त्वचा में रोगयुक्त होता है। 5,10 भाव में ऐसा बुध हो तो पुत्रहानि व अधिक कन्याएं

होती है। 7.8 में पाप भाव में पापराशि में बुध हो तो मनुष्य वेश्यागामी, व शुभराशि में हो तो शुभगामी होता है।

9,10 भाव में ऐसा बुध हो तो मनुष्य को सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

निद्रायां च यदा जातः व्याधि योगश्चदारुणम्।
अल्पायुश्च विवादी च धनहानिश्च जायते।। 142।।
न हि निद्रासुखं तस्य सर्वदुःखैक भाजकः
धनमानविनाशः स्यात् बुधे निद्रागते सदा।। 143।।
विलग्ने दशमे वापि फलमेतत् सुदारुणम्।
अन्यस्थाने धनी जातः सर्वसौख्यं च निश्चितम्।। 144।।

निद्रा अवस्था में बुध हो तो मनुष्य को बड़ा रोग होता है। वह अल्पायु, वाद–विवाद करने वाला और धनहानि से युक्त होता है। वह व्यक्ति सुखपूर्वक नहीं सो पाता और सभी प्रकार के दुःख प्राप्त करता है।

1,10 भाव में ऐसा बुध हो तो पूर्वोक्त फल विशेषतया अधिक होता है। अन्य स्थानों में मनुष्य धनी और सब सुखों से युक्त रहता है।

गुरु की अवस्थाओं का फल :–

जीवस्य शयने जातः हीनवाक् दुःखितः सदा
गौरः दीर्घहनुस्तस्य भीतियुक्तो भवेन्नरः।। 145।।
लग्ने सप्तमे चैव नवमे दशमे तथा
पंचमे च तथा जातः धनवान् पंडितः शुचिः।। 146।।

यदि शयन अवस्था में वृहस्पति हो तो जातक कमजोर स्वर वाला, दुःखी, अत्यधिक गोरा, लम्बी ठुड्डी वाला और शत्रुओं से भयभीत रहता है।

ऐसा गुरु यदि 1.7.9.10.5 भावों में हो तो मनुष्य धनी, विद्वान, व पवित्राचरण करने वाला होता है।

उपवेशे गुरौ दुःखी वाचालो रोगवान्भवेत्
राजभीतिः शत्रुभीतिः पदहस्तमुखे व्रणः।। 147।।
द्वितीये द्वादशे वापि तृतीयैकादशे तथा।
सर्वैः गुणैः समायुक्तो नानाविद्यासुतत्परः।। 148।।

उपवेशन अवस्था में गुरु हो तो मनुष्य दुःखी, बहुत बोलने वाला, रोगी, राजभय व शत्रुभय से युक्त एवं मुख हाथ व पैर में घाव वाला होता है।

2, 12. या 3, 11 भावों में ऐसा गुरु हो तो मनुष्य सब गुणों से युक्त व अनेक विद्याओं में रुचि रखता है।

नेत्रपाणौ गुरौ जातः शिरोरोगी धनी भवेत्।

कार्यहानिर्भवेत्तस्य विवर्णोद्भव प्रीतियुक्।। 149।।

गीतिनृत्यप्रियः कामी वियुक्तश्च वरश्रिया।

नवषष्ठाष्टमे शत्रुनाशः तीर्थे मृतिर्भवेत्।। 150।।

नेत्रपाणि अवस्था में गुरु हो तो मनुष्य शिर में रोग वाला, धनी, नीच वर्ण से प्रीति करने वाला व पग–पग पर कार्यहानि से युक्त होता है। संगीत व नृत्य से प्रेम करने वाला, श्रेष्ठ लक्ष्मी से रहित होता है। 9, 6, 8 भाव में यदि ऐसा गुरु हो तो मनुष्य के शत्रुओं का नाश तथा किसी तीर्थस्थान में मृत्यु होती है।

गुरौ प्रकाशे सुगुणी तेजस्वी धनवान्नरः।

गुरुत्वं वा नृपत्वं वा स्यादुच्चस्थे वृहस्पतौ।। 151।।

लग्ने वा दशमे वापि सविशेषं फलं भवेत्।

अन्यस्थाने तु गुह्यांगे सरोगो जायते पुमान्।। 152।।

प्रकाशावस्था में गुरु हो तो मनुष्य गुणवान, तेजस्वी, धनवान होता है, यदि 1, 10 भाव में ऐसा गुरु उच्चगत हो तो मनुष्य जगद्गुरु अथवा राजा होता है लेकिन अन्य स्थानों में नीचादिगत हो तो मनुष्य के गुप्तांगों में रोग होता है।

गमने लम्पटः पापी साहसी मित्रसंयुतः।
सेवाकर्मरतो विद्वान् प्रवासी धनवानपि।। 153।।
द्वितीये पंचमे चैव सप्तमे दशमे तथा
पूर्वोक्तं तद्विजानीयात् अन्यभे तु विलोमतः।। 154।।

गमनावस्था में वृहस्पति हो तो मनुष्य पापी, लालची, अनेक मित्रों वालानौकरी करने वाला, विद्वान् प्रवासी एवं धनी होता है, किन्तु यह फल 2, 5, 7, 10 भावों में स्थित गुरु का ही समझना चाहिए। अन्य स्थानों में यदि ऐसा वृहस्पति हो तो विपरीत फल समझे। अर्थात् तब व्यक्ति पुण्यवान, निजी व्यवसाय करने वाला तथा कम धन वाला होता है।

आगमने च गुरौ जातः सुस्त्रीकः धनसंयुतः।

गुणवान् लोकप्रियो नूनं जायते मुनिपुंगव।। 155।।

आगमन अवस्था में वृहस्पति हो तो मनुष्य अच्छी पत्नी वाला, धनवान, गुणवान, लोकप्रिय होता है।

सभायां तु गुरौ जातः राजसेवा परो नरः।

पण्डितः सुन्दरो वाग्मी धनी वाहनसंयुतः।। 156।।

केन्द्रे देवगुरौ जाते ज्ञेयं सर्व फलं मुनेः।

द्वादशे चाष्टमे नूनं दुःखी सर्वस्वनाशकः।। 157।।

सभावास अवस्था में बृहस्पति हो तो मनुष्य राजा का सेवक या सहयोगी, विद्वान्, सुन्दर, कुशल वक्ता, धनवान एवं वाहन सुख से युक्त होता है।

यदि केन्द्र में बलवान गुरु ऐसी अवस्था में हो तो समपूर्ण पूर्वोक्त फल जानना चाहिए।

8.12 भाव में ऐसी अवस्था में बृहस्पति हो तो मनुष्य बहुत दुःखी रहता है व उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

आगमे हीशपतौ जातः धार्मिकस्तीर्थकृन्नरः।

मृत्यापत्यसुखैर्युक्तः सुमतिः राजतुल्यता।।

बहुगर्वः सुविघ्नश्च उत्साही मानवान् भवेत्।। 158।।

आगम अवस्था में वृहस्पति हो तो मनुष्य धार्मिक, शास्त्रकार नौकर–चाकरों व सन्तान सुख से युक्त सुन्दर बुद्धि वाला एवं राजसी ठाठ–वाट वाला होता है।

ऐसा व्यक्ति बहुत गर्वीला, रमणीय विद्यायुक्त और प्रतिष्ठित होता है।

भोजने देवपूज्ये तु मांस भुक्तौ महारुचिः।

धनी कामी भवेल्लग्ने नरो नूनं सुभोजनः।। 159।।

त्रिकोणे पुत्रधर्माद्यै युक्तो धनपतिर्भवेत्।

गृहान्तरे तु संजातः बहुरोगसमन्वितः।। 160।।

भोजनावस्था में लग्न में बृहस्पति हो तो मनुष्य मांस भक्षण में रुचि रखने वाला, अनेक प्रकार की इच्छाओं से युक्त, महत्त्वाकांक्षी, धनवान, कामुक व उत्तम भोजन करने वाला होता है।

यदि 5, 9 भावों में ऐसा वृहस्पति हो तो मनुष्य सन्तान का सुख पाने वाला, धार्मिक होता है, किन्तु यदि अन्यत्र ऐसा वृहस्पति हो तो व्यक्ति को बहुत से रोग होते हैं।

नृत्यलिप्सा गतो वाग्मी राजमानी धनी भवेत् ।

धर्मवित्पण्डितोवाग्मी शब्दविद्या धरो नरः ।। 161 ।।

लग्ने वा नवमे वापि दशमे पंचमे तथा

एतत्सर्वं विजानीयात् नान्य गेहे कदाचन ।। 162 ।।

नृत्यलिप्सावस्था में वृहस्पति हो तो मनुष्य राजा से सम्मान पाने वाला, धनवान, धर्मतत्व का जानने वाला विद्वान, कुशल वक्ता एवं व्याकरण शास्त्र का ज्ञाता होता है,

यह फल 1, 9, 10, 5 में बृहस्पति होने पर ही समझना चाहिए । अन्य स्थानों में वृहस्पति हो तो यह फल नहीं होता ।

कौतुके च गुरौ जातः धनवान् कुलभास्करः ।

महैश्वर्यः सभाशूरः बलवान् पुत्रसंयुतः ।। 163 ।।

कर्मस्थाने च लग्ने च सप्तमे च वृहस्पतौ,

सर्वमेतत् भवत्येवं दुष्टभावेऽन्यथा फलम् ।। 164 ।।

कौतुकावस्था में वृहस्पति हो तो मनुष्य धनवान्, अपने कुल में अग्रगण्य, अति ऐश्वर्यशाली, सभाओं में कुशलतापूर्वक बोलने वाला, अति शक्तिशाली और पुत्रवान् होता है ।

1, 7, 10 भावों में ऐसा वृहस्पति हो तो उक्त फल विशेषतया मिलता है किन्तु दुष्ट स्थानों (6. 8. 12) में ऐसा वृहस्पति हो तो पूर्वोक्त से विपरीत फल होता है ।

गुरौ निद्रागते यस्य मूर्खता सर्वकर्मणि

दरिद्रता परिक्रान्तः भवनं पुण्यवर्जितम् ।

द्वादशे तु तथा भूतः धनवान् जायते नरः ।। 165 ।।

निद्रावस्था में वृहस्पति हो तो मनुष्य सब कार्यो में मूर्खता दिखाता है, वह गरीबी से हाल बेहाल रहता है, व उसके घर में पुण्य (बरकत) नहीं होती, लेकिन यही वृहस्पति यदि बारहवें (अष्टम भी) भाव में हो तो मनुष्य धनवान होता है ।

शुक्र की अवस्थाओं का फल :–

शुक्रस्य शयने जातो महारोषसमन्वितः ।

दन्तरोगी च दीनश्च विधनो बहुलम्पटः ।। 166 ।।

सप्तमैकादशे वापि शयने च भृगोर्भवेत् ।

तदा सर्वसुखं ज्ञेयं दारिद्र्यं न कदाचन ।। 167 ।।

अपत्यं बहुलं तस्य सप्तपुत्राः बलाबलात् ।

पंचकन्या तथा ज्ञेया अन्यगेहेषु धार्मिकः ।।

धनवांश्च सुखी न्यूनं राजमान्यः सुतक्षयः ।। 168 ।।

लग्न में शयनावस्था में शुक्र हो तो मनुष्य बहुत अधिक क्रोधी, दन्त रोगी, निर्धन (लाचार) व दुर्व्यसनी होता है ।

7-11 भावों में यदि ऐसा शुक्र हो तो सब प्रकार से सुख होता है और दरिद्रता नहीं होती ।

ऐसे व्यक्ति की बहुत सन्तान होती है, शुक्र के बलाबलानुसार सात पुत्र व पाँच कन्याए भी हो सकती हैं ।

अन्य स्थानों में मनुष्य धार्मिक, धनवान, सुखी, राज–सम्मान पाने वाला लेकिन पुत्रशोक से युक्त होता है ।

उपवेशगते शुक्रे बलवान् धार्मिकः धनी ।

दक्षिणांगे व्रणादिश्च सन्धौ भवति वेदना ।। 169 ।।

तुंगगे स्वगृहे न्यूनं मित्रभे संस्थिते भृगौ ।

सुखं नित्यं भवेत्तस्य पुत्रदारधनप्रदः ।। 170 ।।

उपवेशावस्था में शुक्र हो तो बलवान्, धार्मिक, धनी, दाएँ भाग में घाव आदि, जोड़ों में दर्द होता है । यदि उक्त शुक्र उच्च स्थान, अपनी राशि या मित्र राशि में हो तो सदैव सुख प्राप्त होता है और स्त्री–पुत्र–धन का लाभ होता है ।

नेत्रपाणौ भृगौ जातः नेत्रनाशो भवेद्ध्रुवम् ।

सप्तमे वा नभे लग्ने फलमेतत् सुनिश्चितम् ।। 171 ।।

कर्मस्थाने विशेषात्तु नेत्रपाणिं गते भृगौ ।

तदा दारिद्र्य दोषेण समुद्रानपि शोषयेत् ।। 172 ।।

अन्यस्थानगते शुक्रे साहसी राजसेवकः ।

नाना तीर्थकरो मानी विशालं भवनं भवेत् ।। 173 ।।

नेत्रपाणि अवस्था में शुक्र हो तथा ऐसा शुक्र 1-7-10 भाव में स्थित हो तो मनुष्य के नेत्र नष्ट हो जाते हैं ।

दशम भावगत शुक्र से अत्यधिक गरीबी व सर्वनाश का योग भी होता है । ऐसा व्यक्ति धन के समुद्र को भी सुखा देता है ।

अन्य स्थानों में शुक्र यदि इस अवस्था में हो तो मनुष्य साहसी, राजा का कर्मचारी, अनेक तीर्थयात्रा करने वाला, स्वाभिमानी और बहुत बड़े भवन का स्वामी होता है।

प्रकाशनं गते शुक्रे काव्यगीतादि पारगः।

धनवान् धार्मिकश्चैव वाहनव्रजसंयुतः।। 174।।

मित्रगेहस्थितो वापि तुंगस्थानगतोऽपि वा।

स्वभे राज्यास्पदं भुङ्क्ते परमस्थाने विशेषतः।। 175।।

लग्ने सप्तमे वाऽथ द्वितीये नवमेऽपि वा

तथाभूते कवौ नूनं राज्यभाक् जायते नरः।। 176।।

अन्यत्र संस्थिते शुक्रे सर्वरोगसमन्वितः।

नित्यं प्रवासी दुःखी च जायते नीच संस्थिते।। 177।।

प्रकाशन अवस्था में शुक्र हो तो मनुष्य काव्यशास्त्र व संगीत का विद्वान् होता है, ऐसा व्यक्ति धनवान् व धार्मिक और अनेक वाहनों से युक्त भी होता है।

1-2-7-9-10 भावों में शुक्र यदि इस अवस्था में उच्चगत स्वगृही मित्र राशि गत हो तो मनुष्य राज्य प्राप्त करता है।

अन्य किसी राशि या भाव में नीचगत या शत्रु क्षेत्रीय शुक्र हो तो मनुष्य को बहुत से रोग व अनेक दुःख झेलने पड़ते हैं।

गमने जनने शुक्रः तस्य माता न जीवति।

आधीनगो वियोगश्च शैशवे व्याधि संयुतः।। 178।।

आगमने भृगोः पुत्रे पादमूले रुजान्वितः।

नित्योत्साही महाशिल्पी धनी तीर्थेषु तत्परः।। 179।।

आगमन अवस्था में शुक्र हो तो मनुष्य की माता जीवित नहीं रहती तथा उसे मानसिक पीड़ा, बचपन में कोई रोग एवं अपने लोगों का वियोग सहना पड़ता है।

आगमन अवस्था में शुक्र हो तो मनुष्य के पैरों में रोग, सदैव उत्साहित रहने वाला, बड़ा कलाकार, धनी एवं तीर्थयात्रा का प्रेमी होता है।

सभायां च भृगोः पुत्रे राज्यपात्रो धनाधिपः।

कुशलः सर्वकार्येषु केवलं शूलरोगवान्।। 180।।

शत्रुगेहे गते शुक्रे शत्रुयुक्तेऽथ वीक्षिते

तदा सर्वस्व हानिः स्यात् व्याधयश्च पदे-पदे।। 181।।

सभावास अवस्था में शुक्र हो तो मनुष्य राजा का अति विश्वासपात्र, बहुत धनी, सभी कार्यों में बहुत कुशल, लेकिन शरीर में कहीं शूल रोग से युक्त होता है।

शत्रु राशि में अथवा शत्रु युक्त या दृष्ट शुक्र हो तो मनुष्य का सर्वस्व नष्ट होता है और पग–पग पर रोग पीड़ा रहती है।

आगमे भार्गवे जातो धननाशः भयं तथा।

पुत्रशोकः प्रियाभोगहानिस्तस्य ध्रुवं भवेत्।। 182।।

द्वितीये दशमे वापि चतुर्थे चाष्टमे तथा।

सर्वसौख्यं भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा।। 183।।

आगम अवस्था में शुक्र हो तो मनुष्य को बड़ी धनहानि होती है वह सदा भयभीत रहने वाला, पुत्रशोक पाने वाला, स्त्री सुख में कमी अनुभव करने वाला होता है।

2-10-4-8 भाव में यदि ऐसा शुक्र हो तो सब सुख प्राप्त होते हैं इसमें विशेष विचार नहीं करना चाहिये।

शुक्रस्य भोजने जातः मन्दाग्निः परसेवकः।

महाधनीभवेन्नित्यं वाणिज्येनाथ सेनया।। 184।।

भोजन अवस्था में शुक्र हो तो मनुष्य कम पाचन शक्ति वाला, दूसरे की नौकरी करने वाला, नौकरी या व्यापार से बहुत धन कमाने वाला होता है।

नृत्यलिप्सा गते शुक्रे स वाग्मी पण्डितः कविः।

धनी मानी च कामी च नाना योषित्प्रियः सदा।। 185।।

यदि दैवाद्भवे नीचे मूर्खो भवति निश्चितम्।

तुंगस्थाने स्वगेहे च राजपात्रो महाबली।। 186।।

नृत्यलिप्सावस्था में शुक्र हो तो मनुष्य कुशल वक्ता, विद्वान् व कवि होता है। ऐसा व्यक्ति धनवान्, कामुक, स्वाभिमानी, अनेक स्त्रियों का प्यारा होता है।

यदि ऐसा शुक्र नीचगत हो तो मनुष्य महामूर्ख होता है किन्तु स्वक्षेत्री या उच्चगत हो तो मनुष्य राजा का अति निकटवर्ती व शक्तिशाली होता है।

कौतुके भार्गवो जातो नाना सौख्यसमन्वितः।

महाहृष्टो महावक्ता पद्मा वसति तद्गृहे।। 187।।

बहुपुत्रकलत्रश्च कौतुकी सात्विको महान्।

नीचे तद्विपरीतं च दुःखशोकभयानकः।। 188।।

कौतुक अवस्था में शुक्र हो तो मनुष्य अनेक प्रकार के सुखों से युक्त, अति प्रसन्न रहने वाला, कुशल वक्ता, कई पुत्रों वाला, स्त्री सुख से युक्त,

अनेक बार परम्परा के विरुद्ध कार्य करने वाला और बहुत अधिक सात्विक (मनोबल से युक्त) होता है।

यदि ऐसा शुक्र नीच राशि में हो तो मनुष्य को जीवन में बहुत दुःख मिलते हैं।

परसेवारतो नित्यं निद्रामुपगते कवौ ।

परनिन्दापरो वीरो वाचालो विकलो महान् ।। 189 ।।

सप्तमे चाष्टमे वापि यदि निद्रा भृगोरपि

तदा सर्वविनाशः स्याद् विष्णुना परिकीर्तितः ।। 190 ।।

यदि निद्रावस्था में शुक्र हो तो मनुष्य दूसरे की नौकरी करने वाला, दूसरों की निन्दा करने वाला, वीर, अधिक बोलने वाला, बहुत बेचैन रहने वाला होता है।

यदि ऐसा शुक्र 7-8 भावों में हो तो सर्वनाश का योग बनता है। ऐसा विष्णु जी ने कहा है।

शनि की अवस्थाओं का फल :–

क्षुत्पिपासापरिक्रान्तो विश्रान्तः शयने शनौ ।

वयसि प्रथमे रोगी ततो भाग्यवतां वरः ।। 191 ।।

उपवेशे यदा जातः श्लीपदी दद्रुसंयुतः ।

धनहानिर्नरेन्द्राच्च पीड़ा भवति नित्यशः ।। 192 ।।

(i) शयनावस्था में शनि हो तो भूख–प्यास से सदैव पीड़ित, आयु के प्रथम भाग अर्थात् जवान होने तक रोगी व बाद में अच्छे भाग्यवाला होता है।

(ii) उपवेशनावस्था में शनि हो तो मोटे सूजे या वायुविकार से युक्त पैरों वाला, दाद आदि से युक्त, राजपक्ष से धनहानि तथा राजपीड़ा होती है।

नेत्रपाणौ यदा जातो मूर्खो भवति पण्डितः ।

धनवान् धार्मिकश्चैव द्विभार्यो बहुसम्पदः ।। 193 ।।

पित्तशूलीक्षणक्रोधीवह्निभीतिर्जलाद्भयम् ।

शिरोरोगी गुदे रोगी सन्धौ भवति वेदना ।

लग्नेऽथ दशमे चैतद्विपरीतं फलं वदेत् ।। 194 ।।

(i) नेत्रपाणि अवस्था में शनि हो तो मनुष्य मूर्ख होता हुआ भी पण्डितो की तरह मान्य, धनी, धार्मिक, दो पत्नियों वाला, बहुत सम्पत्तियों वाला, पित्तरोगी, जल्दी क्रोध में आने वाला, अग्नि व जल से भय, सिर, गुदा,

व जोड़ों में कष्ट होता है। 1.10 भावों में शनि हो तो धन–स्त्री सम्बन्धी फल विपरीत अर्थात अशुभ होता है, किन्तु स्वास्थ्य प्रायः अनुकूल रहता है।

प्रकाशने गते मन्दे राजपात्रो भवेच्च सः।

नानागुणेन गुणवान् धार्मिकः पण्डितः शुचिः।। 195।।

जायास्थाने च लग्ने च प्रकाशे च यदा शनिः।

तदा सर्वविनाशः स्याज्जातिध्वंसो भवेद् ध्रुवम्।। 196।।

गमनेच्छायां च यो जातो बहुपुत्रो महाधनः।

पण्डितो गुणवान् दाता जायते च नरोत्तमः।। 197।।

(i) प्रकाशावस्था में शनि हो तो मनुष्य राजा का विशेष कृपापात्र, अनेक गुणों से युक्त, धार्मिक, पण्डित व पवित्र होता है।

1.7 भावों में प्रकाशावस्थागत शनि हो तो सर्वनाश और सारे परिवार का नाश होता है।

(ii) (गमन) गमनेच्छावस्था में शनि हो तो माहाधनी, अनेक पुत्रों वाला, पण्डित, गुणी, दानी व श्रेष्ठ मनुष्य होता है।

आगमने शनेर्जातः श्लीपदीरोगसंयुतः।

दन्ताघाती भवेत्क्रोधी कृपणः परनिन्दकः।। 198।।

सुतस्थाने कलत्रे वा पुत्रजायाविनाशनः।

कर्मस्थाने च धर्मे च द्वादशे वा स्थिते शनौ।

तदा सर्वसुखं प्रोक्तं पण्डितोऽपि धनेश्वरः।। 199।।

आगमनावस्था में शनि हो तो मनुष्य पैरों में सूजन या फीलपाँव रोगी, अति क्रोधी, कंजूस, पर निन्दा करने वाला तथा दाँत दबाकर क्रोध दिखाने वाला होता है।

यदि आगमावस्था का शनि 5.7 भावों में हो तो पुत्र व स्त्री का नाशकारक होता है। इसके विपरीत 9.10.12 भावों में उक्त अवस्था का शनि हो तो सब सुख मनुष्य को मिलते हैं तथा वह विद्वान् व धनी होता है।

सभायां च शनौ जातः पुत्रदारधनैर्युतः।

सर्वदा लभते विद्यां नानारत्नसमन्वितः।। 200।।

शत्रुस्थाने गतः सौरिः शत्रुणा यदि वीक्षितः।

तदा सर्वविनाशः स्याद् ब्रह्मणा परिकीर्तितम्।। 201।।

यदि सभावास अवस्था का शनि हो तो मनुष्य पुत्र व धन से युक्त, सदैव सीखने व पढ़ने को तत्पर, अनेक रत्नों से युक्त होता है।

यदि समावासावस्था का शनि षष्ठ भाव में स्थित हो तथा किसी शत्रु ग्रह द्वारा देखा जाए तो सर्वनाश होता है, ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है।

आगमे च शनेर्जातो महाक्रोधी रुजान्वितः।
लग्ने सर्पादिसंतुष्टः भ्रातृनाशो भवेद्ध्रुवम्।। 202।।
द्वितीये वा तृतीये वा पंचमे सप्तमे तथा।
वित्तपुत्रकलत्रैश्च भ्रातृभिः सह मोदते।। 203।।
नवमस्थो यदा सौरिः भवेदागमके पुनः।
तदा पुण्ये भवेद्हानिर्विघ्नं स्याच्चपदे वदे।। 204।।

आगमन अवस्था का शनि लग्न में हो तो मनुष्य बहुत क्रोधी, रोगी होता है। यदि लग्न में हो तो साँप आदि सरीसृपों के सम्बन्ध में ही विचारमग्न रहता है तथा उसके भाई की मृत्यु होती है। 2.3.5.7 भावों में हो तो धन, पुत्र, स्त्री व भाइयों का भावानुसार फल होता है।

नवमस्थ शनि यदि आगमन में हो तो पुण्य हानि होती है तथा पद–पद पर मनुष्य को विशेष विघ्नों व रुकावटों का सामना करना पड़ता है।

भोजने च यदा जातो मन्दाग्निश्च महान् भवेत्।
अर्शरोगी च शूली च चक्षु रोगी भवेच्च सः।। 205।।
तुंगस्थाने स्वगेहे वा भोजने च यदा शनिः।
तदा सर्वं शुभं ज्ञेयं सर्वरोगविवर्जितम्।। 206।।

भोजनावस्था में शनि हो तो मनुष्य को अपच, मन्दाग्नि, भोजन न पचना व कम भूख की बड़ी बाधा होती है। वह बवासीर, वायु शूल या हृदयशूल, नेत्ररोग से युक्त भी होता है। यदि इस अवस्था में शनि स्वोच्च या स्वक्षेत्र में हो तो सब प्रकार से शुभ फल होते हैं। सब प्रकार से नीरोग जीवन रहता है।

नृत्यलिप्सागते मन्देः धनवान् धार्मिको भवेत्।
नानाधनैर्धनी मानी सर्वसौख्यं न संशयः।। 207।।
राजपूज्यो नरो धीरो महावीरो रणांगणे।
पंचमे तु सुतान् सर्वान् हन्ति प्राह दिगम्बरः।। 208।।

नृत्यलिप्सावस्था में शनि हो तो मनुष्य धनी व धार्मिक होता है। विविध सम्पत्तियों से युक्त, सब सुख पाने वाला होता है।

वह राजमान्य, धीर वीर पराक्रमी होता है, लेकिन यही शनि पंचम स्थान में हो तो प्रायः सारे पुत्र नष्ट हो जाते हैं। यह शंकर जी ने कहा है।

कौतुके च यदा मन्दः राजपात्रो महाधनी।।
दाता भोक्ता महादक्षो धार्मिकः पण्डितः शुचिः।। 209।।
पंचमे सप्तमे वापि नवमे दशमेऽथवा।
तदा सर्वविनाशः स्यात् सर्वरोगसमन्वितः।। 210।।

कौतुकावस्था में शनि हो तो मनुष्य राजा का विश्वासपात्र या राज्य पाने वाला, महाधनी, दानी, भोग भोगने वाला, कार्यदक्ष, धार्मिक, पण्डित व पवित्र होता है।

लेकिन उक्त शनि 5-7-9-10 में हो तो सब कर्म नष्ट करने वाला व रोगी बनाता है।

निद्रायां च शनिर्जातो धनवान् पण्डितः शुचिः।
चक्षुरोगी पित्तशूली द्विभार्यो बहुपुत्रकः।। 211।।
कर्मस्थाने यदा सौरिः निद्रायां तद्विनाशकः।
कार्यनाशो धर्मनाशः क्षुधितो दुःखितः सदा।। 212।।
यदि तुंगे त्रिकोणे स्यात् केन्द्रे स्वर्क्षे यदा तदा।
वैपरीत्येन सर्वं हि विचार्यमिति निश्चयः।। 213।।
सुतस्थाने च जायायां यदि निद्राभवेत्पुनः।
तदा सर्वं शुभं विद्याद् द्विनार्यो बहुपुत्रकः।। 214।।

निद्रावस्था में शनि हो तो मनुष्य धनी, विद्वान्, पवित्र आचरण वाला, नेत्र रोगी, पित्त शूल से पीड़ित, दो पत्नियों वाला व कई पुत्रों वाला होता है।

यदि दशमस्थ शनि निद्रावस्था में हो तो मनुष्य के सभी कार्य विनष्ट होते हैं। धर्म, व्यापार व व्यवसाय का नाश हो जाता है। मनुष्य सदैव भूखा सा तथा दुःखी होता है।

यदि त्रिकोण स्थान में उच्चस्थ शनि हो या केन्द्रगत स्वक्षेत्री हो तो (अर्थात् दशमस्थ भी स्वोच्चगत या स्वक्षेत्री) मनुष्य को उक्त अशुभ फल न होकर सब शुभ फल ही मिलते हैं।

5.7 भावों में निद्रा व स्थानगत (स्वक्षेत्री या स्वोच्चगत) शनि हो तो भी सब शुभ होता है तथा दो पत्नियाँ व अनेक पुत्र भी होते हैं।

राहु की अवस्थाओं का फल :–

शयने च यदा राहुः यस्य जन्मनि स्यात्पुनः ।
तस्य क्लेशो महादुःखं जायते न च संशयः ।। 215 ।।
मिथुने च तथा सिंहे कन्यायां वृषभे तथा ।
सर्वसौख्यसमायुक्तः शयने च विधुन्तुदः ।। 216 ।।

यदि जन्म समय में राहु शयनावस्था में हो तो मनुष्य को सदैव महान् दुःख व क्लेश मिलते हैं । लेकिन मिथुन, सिंह व वृष में राहु हो तो शयनावस्था में भी सब सुख प्राप्त हो जाते हैं ।

उपवेशे च यो जातः श्लीपदी दद्रुसंयुतः ।
धनहानिर्भवेत्तस्य बहुमानी च पीडितः ।। 217 ।।

यदि राहु उपवेशनावस्था में हो तो मनुष्य के पैरों में रोग, दाद आदि त्वचारोग, धनहानि व पीड़ा होती है । ऐसा व्यक्ति बहुत घमंडी भी होता है ।

नेत्रपाणावगौ नेत्रे भवतो रोगपीड़िते ।
दुष्टव्यालारिचौराणां भयं तस्य धनक्षयः ।। 218 ।।
अधर्मेषु च चित्तं स्यात्स्त्रीवशो धनवानपि ।
अन्तः क्रूरो महाधैर्यः क्षणिको बहुभाषकः ।। 219 ।।
कोशपार्श्वे भवेद् विघ्नं शैशवे च रुजान्वितः ।
निजबन्धोर्महाद्वेषी बाह्य बन्धोर्महानपि ।। 220 ।।
नेत्रपाणौ यदा राहुर्लग्ने वा सप्तमेऽपि वा ।
तदा सर्वविनाशः स्यात् बहुदुःखप्रदायकः ।। 221 ।।
गुह्यस्थाने भवेद् रोगी जले चैव भवेद्भयम् ।
नवमे दशमे वापि गमनेच्छा भवेत्सदा ।। 222 ।।

यदि राहु नेत्रपाणि अवस्था में हो तो मनुष्य को आँखों में कोई रोग होता है । ऐसे व्यक्ति को दुष्टों, सर्पो, शत्रुओं व चोरों का भय व धन–हानि उठानी पड़ती है ।

ऐसे व्यक्ति का मन सदैव अधर्म में लगने वाला, स्त्रियोचित वेश–भूषा रखने वाला, धनी, भीतर से बहुत क्रूर, अत्यन्त धैर्यशाली, जल्दबाज, बहुत बोलने वाला होता है ।

उसके व्यापार या धन स्थान पर सदैव बाधाएँ होती हैं । वह बचपन में रोगी, अपने व पराए सब से द्वेष रखने वाला होता है ।

यदि ऐसा राहु 1.7 भाव में हो तो सब कार्य असफल करने वाला तथा दुःखदायक होता है। उसे गुप्तस्थानों में कोई रोग, जल से भय होता है तथा 9.10 भावों में हो तो मनुष्य सदैव चलने को तत्पर रहता है तथा बेचैन होता है।

प्रकाशने च यो जातो धनवान् धार्मिको मतः।
नित्यं प्रवासी चोत्साही सात्त्विको राजसेवकः।। 223।।
सिंहे वा कर्कटे वापि यदि राहुः प्रकाशने।
शिरच्छेदकरो योगो शार्ङ्गिणा परिकीर्तितः।। 224।।

यदि प्रकाशनावस्था में राहु हो तो धार्मिक, सदैव देश–विदेशों में घूमने वाला, उत्साही, सात्त्विक व राजकर्मचारी या राजा का विशेष वफादार होता है। कर्क सिंह राशि का राहु यदि इस अवस्था में हो तो मनुष्य के सिर कटने (फटने या भयानक चोट लगने) के योग होते हैं, ऐसा भगवान् विष्णु ने कहा है।

गमने च यदा राहुः बहुसन्तानवान् नरः।
पण्डितो धनवान् दाता राजपूज्यो नरो भवेत्।। 225।।

गमनावस्था में राहु हो तो मनुष्य बहुत सन्तानों वाला, विद्वान्, धनी, दानी व राजमान्य होता है। वह व्यक्ति अनेक रोगों से पीड़ित भी रहता है।

राहावागमने क्रोधी सदा धीधनवर्जितः।
कुटिलः कृपणः कामी नरो भवति सर्वथा।। 226।।

आगमावस्था में राहु हो तो मनुष्य क्रोधी, धन व बुद्धि से रहित, चालाक, कंजूस, कामुक होता है।

सभागतो यदा राहुः कृपणः पण्डितो नरः।
नानागुणेन गुणवान् धार्मिको धनसंयुतः।। 227।।
लग्ने वा दशमे वापि पंचमे च यदा भवेत्।
भार्यापुत्रविनाशः स्यात् वित्तनाशोऽति चंचलः।। 228।।

सभावास अवस्था में राहु हो तो मनुष्य विद्वान्, कंजूस, अनेक गुणों से युक्त धार्मिक व धनी होता है।

लेकिन वही राहु यदि 1.5.10 भाव में हो तो स्त्री व पुत्र का नाश तथा धन हानि बार बार होती है।

आगमने च नरो जातः सर्वदुःखप्रदायकः ।

सुहृद्बन्धुविनाशः स्यान् नानाक्लेशसमन्वितः ।। 229 ।।

आगम अवस्था में राहु हो तो मनुष्य को सब प्रकार के दुःख मिलते हैं। उसके मित्रों व बन्धुओं का नाश होता है तथा सदैव कलह पीड़ित होता है।

भोजने भोजनेनालं विकलो मनुजो भवेत् ।

मन्दबुद्धिः क्रियाभीरुः स्त्रीपुत्रसुखवर्जितः ।। 230 ।।

यदि दैवाद् भवेद्राहुः लग्ने वापि धनेऽथवा ।

पतितं तं विजानीयाद् द्विजवंशोद्भवोऽपि चेत् ।। 231 ।।

सप्तमे दशमे वापि भोजने च यदा तमी ।

नारीं ना नियतं हन्ति पुण्ये विघ्नं करोति च ।। 232 ।।

भोजनावस्था में राहु हो तो मनुष्य को भोजन करना (भोजन की कमी या रोग मन्दाग्नि आदि से) मुश्किल होता है। वह बेहाल या विकलांग, मन्दबुद्धि, काम में हिचकिचाने वाला, स्त्री व पुत्र के सुख से रहित होता है।

यदि 1.2 भाव में राहु इस अवस्था में हो तो उत्तम वंश में उत्पन्न मनुष्य भी पतित होता है।

7.10 भावों में यह राहु हो तो मनुष्य स्त्री को निश्चय से मारता है तथा सभी पुण्य कार्यो में बाधा खड़ी करता है।

नृत्यलिप्सागते राहौ महाव्याधिविवर्धनम् ।

लग्ने चेन्नेत्ररोगी धनधर्मक्षयो नृणाम् ।। 233 ।।

अन्यग्रहे यदा जातो धनवान् बहुसम्पदः ।

गुणी सुखी द्विभार्यश्च बहुपुत्रो भवेन्नरः ।। 234 ।।

नृत्यलिप्सा अवस्था में लग्न में राहु हो तो मनुष्य को कोई बड़ी बीमारी होती है। उसके नेत्रों में बड़ी विषमता व उसके धन व धर्म का नाश होता है।

अन्य भावों में यदि यह राहु हो तो मनुष्य धनी, सम्पत्तिशाली, गुणवान्, सुखी, दो पत्नियों वाला व कई पुत्रों का पिता होता है।

कौतुके च यदा राहुः सर्वगुणसमन्वितः ।

नानाधनेन धनवान् पित्तशूली भवेन्नरः ।। 235 ।।

विहत्य पंचमं स्थानं सप्तमं दशमं तथा ।

नानादुःखं भवेत्तस्य पुत्रदारविवर्जितः ।। 236 ।।

कौतुकावस्था में राहु यदि 5.7.10 स्थानों में हो तो मनुष्य सब गुणों से युक्त, अनेक प्रकार के धनों से युक्त (विद्याधन, चौपायाधन, वाहन, पुत्र, यश, कीर्ति, स्त्री आदि) होता है, लेकिन उसे पित्त रोग (पेट में गर्मी, एसिड आदि) होती है । यदि अन्य स्थानों में राहु हो तो मनुष्य अनेक दुःखों को भोगता है तथा स्त्री पुत्र से रहित होता है ।

युग्मे धनुषि कन्यायां मीने वा वृषभे यदि ।

तदा सर्वं शुभं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ।। 237 ।।

यदि किसी भी स्थान में राहु 2.3.6.9.12 राशियों में हो तो सब शुभ ही फल होता है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए ।

निद्रावस्थां गते राहौ जातः शोकरुजान्वितः ।

कान्ता सन्तानवान् धीरो गर्वितो बहुवित्तवान् ।। 238 ।।

नवमे दशमे वापि यदि निद्रा भवेत्पुनः ।

तदा दारिद्र्यदोषेण कृत्स्नां भ्रमति मेदिनीम् ।। 239 ।।

यदि निद्रावस्था में राहु हो तो मनुष्य को जीवन में बहुत से शोक झेलने पड़ते हैं । वह व्यक्ति स्त्री पुत्रों को पाने वाला, धैर्यशाली, गर्वीला व बहुत धनी होता है । 9.10 भावों में निद्रागत राहु हो तो मनुष्य गरीबी के कारण सर्वत्र मारा–मारा घूमता है ।

केतु की अवस्थाओं का फल :–

मेषे वृषेऽथवा युग्मे कन्यायां शयनं गते ।

केतौ धनसमृद्धिः स्यादन्यभे रोगवर्धनम् ।। 240 ।।

उपवेशं गते केतौ दद्रुरोगविवर्धनम् ।

अरिवातनृपव्याल चौरशंका समन्ततः ।। 241 ।।

नेत्रपाणिं गते केतौ नेत्ररोगः प्रजायते ।

दुष्टसर्पादिभीतिश्च रिपुराजकुलादपि ।। 242 ।।

केतौ प्रकाशने जातः धनवान् धार्मिकः सदा ।

नित्यं प्रवासी चोत्साही सात्त्विको राजसेवकः ।। 243 ।।

गमने च यदा केतुर्बहुपुत्रो महाधनः ।

पण्डितो गुणवान् दाता जायते च नरोत्तमः ।। 244 ।।

शयनावस्था का केतु 1.2.3.6 राशियों में धनवर्द्धक तथा अन्य राशियों में रोगवर्धक होता है।

उपवेशनावस्था का केतु त्वचारोगदायक, शत्रु, राजा चोर आदि व सर्पादि की शंका से पीड़ित करता है।

नेत्रपाणि अवस्था में केतु नेत्रों में रोग व दुष्टों, सरीसृपों एवं राजादि से पीड़ा देता है।

प्रकाशावस्था का केतु हो तो मनुष्य धार्मिक, धनी, सदैव प्रवास में रहने वाला, उत्साही व राजसेवक होता है।

गमनावस्था (गमनेच्छा) का केतु हो तो मनुष्य के बहुत पुत्र, बहुत धन, होता है तथा वह विद्वान्, गुणी, दानी होता है।

आगमने च यदा केतुर्नानारोगो धनक्षयः।
दन्तघाती महारोगी पिशुनः परनिन्दकः।। 245।।
सभावस्थांगते केतौ वाचालो बहुगर्वितः।
कृपणो लम्पटश्चैव धूर्तविद्याविशारदः।। 246।।
यदागमे भवेत्केतुः केतुः स्यात्पापकर्मणाम्।
बन्धुवादरतो दुष्टो रिपुरोग निपीडितः।। 247।।
भोजने च जनो नित्यं क्षुधयापरिपीडितः।
दरिद्रो रोगसन्तप्तः केतौ भ्रमति मेदिनीम्।। 248।।
नृत्यलिप्सां गते केतौ व्याधिना विकलो भवेत्।
बुदबुदाक्षो दुराधर्षो धूर्तोऽनर्थकरो नरः।। 249।।
कौतुकी कौतुके केतौ नटवामारतिप्रियः।
स्थानभ्रष्टो दुराचारी दरिद्रो भ्रमते महीम्।। 250।।
निद्रावस्थां गते केतौ धनधान्यसुखं महत्।
नानागुणविनोदेन कालो गच्छति जन्मिनाम्।। 251।।

आगमनावस्था में केतु हो तो मनुष्य को अनेक रोग, धन की हानि, दाँतो में पीड़ा, कोई बड़ा रोग, चुगलखोर व निन्दक होता है।

सभावस्था का केतु मनुष्य को वाचाल व घमंडी बनाता है। वह कंजूस, लालची, धूर्तता (ठगी) में बहुत निपुण होता है।

आगम अवस्था में केतु हो तो मनुष्य पाप कार्यो को करने में अग्रगण्य, बन्धुओं से विवाद करने वाला, शत्रु व रोग से पीड़ित होता है।

भोजनावस्था के केतु से मनुष्य सदैव भूख से पीड़ित, दरिद्र, रोगी, सर्वत्र धक्के खाने वाला होता है।

नृत्यलिप्सा में केतु हो तो मनुष्य रोग के कारण विकलांग हो जाता है। उसकी आँखें चिपचिपी सी रहती हैं। बहुत पलक झपकाने वाला होता है। वह न दबने वाला धूर्त व अनर्थकारक होता है।

कौतुकावस्था में केतु हो तो मनुष्य नाचने वाली या किसी अभिनेत्री से प्रेम करने वाला, अपने स्तर से गिरा हुआ, दुराचारी, दरिद्री होता है।

निद्रावस्था में केतु हो तो धनधान्य का खूब सुख, गुणों व कलाओं के ज्ञान से युक्त होकर जीवन बिताता है।

शयने यत्र भावेषु यस्य तिष्ठन्ति सद्ग्रहाः।
नित्यं तस्य शुभं ज्ञेयं निर्विशंकं वदेद्बुधः।। 252।।
भोजने येषु भावेषु पापास्तिष्ठन्ति सर्वदा।
तदा सर्वविनाशः स्यात् नात्र कार्या विचारणा।। 253।।
निद्रायां च यदा पापो जाया स्थाने शुभं वदेत्।
यदि पाप ग्रहे दृष्टौ न शुभं च कदाचन।। 254।।
शुभ ग्रहेण यदा दृष्टः शुभ ग्रह समन्वितः।
नारी च म्रियते तस्य प्रथमा च विशेषतः।। 255।।
शत्रु दृष्टयुते कान्ताः म्रियन्ते सकलाऽपि।

जिस स्थान में शुभ ग्रह शयनावस्था में हो तो उस भाव से सम्बन्धित सभी शुभ फल होते हैं।

जिस भाव में भोजनावस्था में पाप ग्रह हों उस भाव का सर्वनाश होता है।

निद्रावस्था में यदि पाप ग्रह सप्तम स्थान में हो तो शुभ फल होता है। किन्तु सप्तमस्थ पापग्रह अन्य पाप ग्रहों से दृष्ट और शत्रुगृही हो तो मनुष्य की सभी पत्नियाँ नष्ट हो जाती हैं। यदि वही पाप ग्रह शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो एक पत्नी का नाश होता है।

सुतस्थाने स्थितः पापो निद्रायां शयनेऽपि वा।
तदा शुभं भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा।। 256।।
तुंगस्थाने स्वगेहे वा त्रिकोणे वा यदा भवेत्।
अपत्यस्य तदा नाशो जायते नात्र संशयः।। 257।।

शुभग्रहो यदा तत्र शुभो वा पापवीक्षितः ।
तदापि प्रथमापत्यः नाशो भवति निश्चितम् ।। 258 ।।

पंचम स्थान में यदि पाप ग्रह निद्रावस्था में या शयनावस्था में हो तो शुभ फल होता है, यदि वही पाप ग्रह अपनी उच्च राशि, अपनी राशि, मूल त्रिकोण राशि में हो तो सन्तान नष्ट हो जाती है । यदि पंचम स्थान में शुभ ग्रह हो या पाप ग्रह को शुभ ग्रह देखता हो तो भी पहली सन्तान का नाश होता है ।

मृत्युस्थानस्थितः पापो निद्रायां शयनेऽपि वा ।
तदा तस्यापमृत्युः स्यात् राजतः परतस्तथा ।। 259 ।।
शुभ ग्रहे यदा युक्तः शुभेर्वा यदि वीक्षितः ।
तदा च मरणं तस्य गंगादौ च विशेषतः ।। 260 ।।
अन्ये पापग्रहे दृष्टः अष्टमः पापसंयुतः ।
तदा तस्य शिरच्छेदो ब्रह्मणा परिकीर्तितः ।। 261 ।।
अष्टमस्थो शनिकुजौ तमो वा तत्र निद्रितः ।
शयनेऽपि शिरच्छेदः अपमृत्युर्वा भविष्यति ।। 262 ।।

यदि अष्टम स्थान में पाप ग्रह निद्रावस्था या शयनावस्था में हो तो मनुष्य की अकालमृत्यु राजा या शत्रु द्वारा होती है ।

यदि अष्टम स्थान में शुभ ग्रह हो या शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो मनुष्य की मृत्यु गंगादि तीर्थो में होती है ।

अष्टम में स्थित पाप ग्रह को अन्य पाप ग्रह देखता हो तथा निद्रा या शयनवस्था हो तो मनुष्य का सिर कटता है– ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ।

अष्टम स्थान में शनि व मंगल अथवा राहु हो तो मनुष्य की अकाल मृत्यु शिर कटने–फटने से होती है ।

कर्मस्थाने यदा पापः शयने भोजनेऽपि वा ।
तदा दारिद्र्य दोषेण सर्वान् भ्रमति मेदिनीम् ।। 263 ।।

कर्मस्थाने शुभः खेटो निद्रायां गमनेऽपि वा

तदा कर्मविपाकः स्यात् नाना दुःखप्रदायकः ।। 264 ।।

दशमस्थो निशानाथः कौतुके च प्रकाशने

तदैव राजयोगः स्यात् निर्विशंकं द्विजोत्तम ।। 265 ।।

दशम स्थान में यदि पाप ग्रह शयन या भोजनावस्था में हो तो मनुष्य गरीबी के कारण सर्वत्र मारा–मारा फिरता है।

दशम स्थान में यदि पाप ग्रह निद्रा या गमनावस्था में हो तो मनुष्य अपने कर्मो से अनेक दुःख पाता है।

दशम स्थान में चन्द्रमा यदि कौतुक या प्रकाशन अवस्था में हो तो मनुष्य का राजयोग होता है।

अवस्थाओं का सामान्य फल :–

शयनाद्येकभावेषु यस्य तिष्ठन्ति सद्ग्रहाः ।

नित्यं तस्य शुभज्ञानं ब्रह्मणा परिकीर्तितम् ।। 266 ।।

भोजनाद्येकभावेषु पापास्तिष्ठन्ति सर्वदा ।

तदा भावविनाशः स्याद् नात्र कार्या विचारणा ।। 267 ।।

एवं क्रमेण बोद्धव्यं सर्वभावेषु बुद्धिमन् ।

बलाबलविचारेण ज्ञातव्यं च शुभाशुभम् ।। 268 ।।

किसी भी भाव में शुभ ग्रह शयनादि आठ अवस्थाओं में हो तो उस भाव का शुभ फल होता है। इसके विपरीत भोजन आदि आठ अवस्थाओं में पाप ग्रह जहाँ हो उस भाव का शुभ फल नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार हे बुद्धिमान् मैत्रेय ! सब भावों के शुभाशुभ फलों को ग्रहों के बलाबलानुसार समझना चाहिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां ग्रहावस्थाध्यायो द्विचत्वारिंशः ।। 42 ।।

43

।। अथ ग्रहभावबलाध्यायः ।।

ग्रह दृष्टि :–

एका राशिवशाद् दृष्टिः पूर्वमुक्ता च या द्विज ।!

अन्या खेटस्वभावोत्था स्फुटां तां कथयाम्यहम् ।। 1 ।।

त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे ।
पादवृद्ध्या प्रपश्यन्ति त प्रयच्छन्ति फलं तथा ।। 2 ।।
पूर्णं च सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजाः पुनः ।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमान् ।। 3 ।।
इति सामान्यतो दृष्टिः कथिता पूर्वसूरिभिः ।
स्फुटान्तरवशाद्या च दृष्टिः साऽतिस्फुटा मता ।। 4 ।।

पहले राशि दृष्टि अध्याय में राशि से राशि पर दृष्टि कही गई है । राशि में स्थित ग्रह भी दृष्ट राशिगत ग्रह को देखता है, यह ग्रह की राशिवशाद् दृष्टि है । इसे यहाँ कहता हूँ।

सभी ग्रह 3.10 को एकपाद (चौथाई) 5.9 द्विपाद (आधी) 4.8 को त्रिपाद (पौनी) एवं सप्तम को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं । इसी के अनुसार ग्रहों की दृष्टि का फल भी चौथाई या आधा या पौना या पूरा मिलता है ।

शनि, गुरु व मंगल सप्तम के अतिरिक्त 3.10, 5.9 व 4.8 को भी क्रमशः पूर्ण दृष्टि से देखते हैं । अर्थात् शनि 3.7.10 पर, गुरु 5.7.9 पर व मंगल 4.7.8 पर पूर्ण दृष्टि रखते हैं ।

यह सामान्य अर्थात् सब जगह लागू होने वाली ग्रहों की दृष्टि पूर्वजों ने कही है । इस दृष्टि को अनुपातादि के आधार पर गणित द्वारा स्पष्ट कर लेना चाहिए । तब यह अति स्फुट दृष्टि होती है ।

दृष्टि का स्पष्टीकरण :–

दृश्याद् विशोध्य द्रष्टारं षड्राशिभ्योऽधिकान्तरम् ।
दिग्भ्यः संशोध्य तद्भागाः द्वाभ्यां भक्ता दृगस्ति वै ।। 5 ।।

द्रष्टा ग्रह (देखने वाला) को दृश्य भाव या ग्रह में से घटाकर शेष यदि 6 राशियों से अधिक हो तो उसे 10 राशि में से घटाकर शेष के अंशों का दुगना करने पर स्पष्ट दृष्टि होती है ।

पंचाधिके विना राशिं भागाद्विघ्नाश्च दृक् स्फुटा ।
वेदाधिके त्यजेद् भूतात् भागा दृष्टिस्त्रिभाधिके ।। 6 ।।
विशोध्यार्णवतो द्वाभ्यां लब्धं त्रिंशद्युतं च दृक् ।
द्व्यधिके तु विना राशिं भागास्तिथियुतास्तथा ।। 7 ।।
रूपाधिके विना राशिं भागाद्व्याप्ताश्च दृक् भवेत् ।

यदि द्रष्टा व दृश्य का अन्तर 5 राशि से अधिक हो तो राशि को छोड़कर केवल अंशों को दुगुना करने से स्पष्ट दृष्टि होती है ।

यदि उक्त शेष 4 से अधिक हो तो 5 राशि में से घटाकर शेष दृष्टि है। यदि शेष 3 राशि से अधिक हो तो उसे 4 में से घटाकर शेष का आधा व 30 जोड़ने से स्पष्ट दृष्टि है।

यदि शेष 1 राशि से अधिक हो तो राशि रहित अंशों में 15 जोड़ने से दृष्टि होगी।

यदि शेष 1 राशि से अधिक हो तो राशि रहित अंशों को 2 से भाग देने पर लब्धि स्पष्ट दृष्टि होती है।

यदि अन्तर 10 राशि से अधिक या एक राशि से कम हो तो कोई दृष्टि नहीं होती, यह अतिरिक्त ध्यातव्य है।

इस प्रकार प्राप्त दृष्टि का मान कलात्मक होता है। इसमें 60 से भाग देने पर लब्धि अंश व शेष कला होंगी तथा इसे अंशात्मक कहा जाएगा। यही ग्रहों का दृष्टिबल या दृग्बल कहा जाता है। उक्त विधि आनुपातिक ह्रास वृद्धि पर आधारित है। यदि दोनों दृश्य व द्रष्टा में 180° या 6 राशि अन्तर है तो 1° अंश या 60′ कला दृष्टि होती है। इसे आप अंशात्मक, प्रतिशतात्मक या दशमलव विधि से यथेच्छ प्रकट कर सकते हैं। एतदर्थ विचारणीय कुण्डली के भाव स्पष्ट व ग्रह स्पष्ट करके एक जगह लिख लेने योग्य हैं।

उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में स्पष्ट सूर्य 9. 11°. 15′ तथा स्पष्ट गुरु 4.6.0 है। यहाँ सूर्य द्रष्टा माना गया है। अतः द्रष्टा को दृश्य में से घटाया तो $4.6^\circ.0 - 9.11^\circ.15' = 7.25.45$, अन्तर 6 राशियों से अधिक है। अतः इसे 10 राशि में से घटाया तो $2.34^\circ.15'$ शेष बचा। इसे अंशादि बनाया $94^\circ.15' \div 2 = 47^\circ.7'.30''$ अंशादि दृष्टि है। यह सप्तम से आगे रहने से क्षय अर्थात् घटती हुई दृष्टि है।

यदि बृहस्पति की सूर्य पर दृष्टि जाननी हो तो $9.11^\circ.15'$ दृश्य सूर्य – द्रष्टा गुरु $4.6^\circ.0' = 5.5^\circ.15'$; यह अन्तर 5 राशि से अधिक है। अतः नियमानुसार राशि रहित केवल अंश $5^\circ.15'$ का दुगुना $10^\circ.30'$ अंशादि दृष्टि है। इसी प्रकार ग्रह या भावों की स्पष्ट दृष्टि जानी जा सकती है।

शनि की दृष्टि में संस्कार :–

एवं राश्यादिके शेषे शनौ द्रष्टरि भो द्विज ! ।। 8 ।।

एकभे नवमे भागा भुक्ता भोग्या द्विसंगुणाः ।

द्विभेंऽशार्धोनिताः षष्टिरष्टभे खाग्नियुक् लवाः ।। 9 ।।

हे मैत्रेय ! यदि द्रष्टा शनि हो तो कुछ शेषों में विशेष संस्कार करना पड़ता है। ऐसा पूर्वोक्त शनि आदि की विशेष दृष्टि के कारण होता

है। यदि द्रष्टा व दृश्य का अन्तर करने पर 1 राशि बचे तो राशि रहित अंशों का दुगुना करें। यदि 9 राशि शेष हो तो राशि के आगे के अंशों को 30 में से घटाकर शेष को दुगुना करें।

यदि दो राशि हो तो भुक्तांशों का आधा 60° में से घटा लें। यदि 8 राशि शेष हो तो भुक्तांश को 30 में जोड़ने से स्पष्ट दृष्टि होती है।

उदाहरणार्थ प्रकृत उदाहरण में स्पष्ट शनि द्रष्टा 7.7°.45′ को दृश्य गुरु 4.6°.0′ में से घटाया तो शेष 8.28°.15′ बचा। यहाँ राशि स्थान में 8 है। अतः अंशों में 30 जोड़ने से 58′.15″ कलादि दृष्टि शनि की गुरु पर हुई।

मंगल का विशेष संस्कार :–

त्रिसप्तभेतु भौमस्य षष्टिरत्र लवोनिता।
सार्धांशास्तिथिसंयुक्ता द्विभे रूपं सदाऽङ्गभे।।10।।

मंगल के सन्दर्भ में 3.7 राशि शेष बचने पर अंशों को 60 में से घटा लें।

यदि 2 राशि हों तो अंशों को तीन से गुणा कर 2 का भाग दें अर्थात् ड्यौढ़ा कर लें। यदि 6 राशि हों तो पूरा 60 कला दृष्टि बल समझें। शेष स्थानों पर पूर्वोक्त सामान्य नियम से ही क्रिया होगी।

हमारे उदाहरण में मंगल स्पष्ट 7.14°.12′ द्रष्टा है तथा शुक्र स्पष्ट 10.16°.25′ पर दृष्टि जाननी है। दृश्य–द्रष्टा = 3.2°.13′ मिला। यहाँ राशि स्थान पर 3 होने से भुक्तांश 2°.13′ को 60 में से घटाया तो 57′.47″ कलादि दृष्टि हुई।

गुरु दृष्टि संस्कार :–

त्रिसप्तमेतु जीवस्य भागार्धं शरवेदयुक्।
द्विगुणैस्तु लवैश्चोनाः खरसाश्चतुरष्टभे।।11।।

गुरु की दृष्टि साधन करते समय दृश्य व द्रष्टा का अन्तर यदि 3.7 राशि हो तो अंशों के आधे में 45 जोड़ने से तथा 4.8 शेष हो तो भुक्तांशों को 60 में से घटाने पर स्पष्ट दृष्टि होती है।

उदाहरण में गुरु स्पष्ट द्रष्टा 4.6°.0′ को दशम भाव दृश्य 11.24°.5′ में से घटाया तो 7.18°.5′ बचा। यहाँ सात राशि रहने से अंशों का आधा 9°.3′ है। इसमें 45 जोड़ने से 54′.3″ कला दृष्टि गुरु की दशम भाव पर हुई।

शनि गुरु मंगल के लिए अन्य संस्कार :–

शरवेदाःखरामाश्च तिथयो योजिताः क्रमात् ।

शनिदेवेज्य भौमानामादौ दृष्टिः स्फुटा भवेत् ।। 12 ।।

यह इन ग्रहों में संस्कार का एक अलग प्रकार है । पहले श्लोक 5.6.7 के आधार पर शनि गुरु मंगल की भी साधारण प्रकार से दृष्टि निकाल लें । उस दृष्टि में शनि के लिए 45 , गुरु के लिए 30 व मंगल के लिए 15 जोड़ने से स्पष्ट दृष्टि होती है । इस स्थिति में श्लोक 9.10.11 का प्रयोग नहीं होगा । यह सरल विधि है, किन्तु दोनों प्रकारों से दृष्टि निकालने में थोड़ा अन्तर रह जाता है ।

उच्चादि बल विचार :–

अथ स्पष्टबलं वक्ष्ये स्थानकालादि सम्भवम् ।

नीचोनं खचरं भार्धाधिकं चक्राद् विशोधयेत् ।। 13 ।।

भागीकृत्य त्रिभिर्भक्तं लब्धमुच्चबलं भवेत् ।

अब ग्रहों के स्थान, दिक, काल, चेष्टा आदि बलों का निरूपण किया जा रहा है । स्थान बल के अंगभूत उच्चबल को सर्वप्रथम बताया जा रहा है ।

ग्रह स्पष्ट में से ग्रह के परम नीच को घटाएँ । यदि घटाफल 6 राशि (भार्ध अर्थात् राश्यर्ध 180°) से अधिक हो तो 12 राशि में से घटाकर शेष का ग्रहण करें । उस षड्भाल्प शेष को अंश बनाकर 3 का भाग देने से लब्धि कलादि उच्च बल होता है ।

हमारे विचार से ग्रह स्पष्ट व परम नीच दोनों को घटाते समय, जो अधिक हो, उसमें से कम को घटाकर शेष राशि का ग्रहण कर लें तो उसे 12 में से घटाकर षड्भाल्प (षट् = 6 भ=राशि से अल्प) करने की आवश्यकता ही नहीं होगी ।

हमारे प्रकृत उदाहरण में सूर्य स्पष्ट 9.11°.15′ व परम नीच 6.10°.0′ होता है । अतः 9.11°.15′-–6.10°.0 = 3.1°.15′ बचा । इसे अंशात्मक बनाया तथा 91°.15′÷3 किया तो 30′.25′′ कलादि सूर्य का उच्च बल हुआ । इसी पद्धति से उदाहरण में अन्य ग्रहों का उच्च बल जानकर आगे दिया जा रहा है ।

।। उच्चबल चक्रम् ।। (उदाहरण)

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंश	0	0	0	0	0	0	1^0
कला	30′	47′	35′	20′	49′	46′	5′
विकला	25″	03″	24″	2″	20″	28″	25″

सप्तवर्ग बल :–

स्वत्रिकोणस्वगेहाधिमित्रमित्र समारिषु ।। 14 ।।

अधिशत्रुगृहे चापि स्थितानां क्रमशो बलम् ।

भूताब्धयः खाग्निनखास्तिथ्यो दशयुगाः कराः ।। 15 ।।

यदि ग्रह अपने मूल त्रिकोण में हो तो 45 कला (भूताब्धि), स्वगृह में हो तो 30 (खाग्नि) अधिमित्र की राशि में हो तो 20 (नखाः) मित्र राशि में 15 (तिथि) सम की राशि में 10 शत्रु राशि में 4 (युग) व अधि शत्रु की राशि में 2 (कर) होता है ।

एवं होरा दृकाणाद्रिभागांक द्वादशांशजम् ।

त्रिंशांशजं तदैक्यं च सप्तवर्गसमुद्भवम् ।। 16 ।।

इसी पद्धति से राशि, होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश में मूल त्रिकोणादि राशि में स्थितिवशात् ग्रहों का बल जानकर इकठ्ठा करने से 'सप्तवर्गज बल' होता है ।

उदाहरणार्थ सूर्य शनि की राशि में है । सूर्य, शनि का शत्रु है । अतः 4 कला बल राशि में मिला । होरा में सूर्य चन्द्रमा की होरा में है, चन्द्रमा सूर्य का मित्र है । अतः 15 कला बल हुआ । द्रेष्काण में शुक्र की राशि में है, शुक्र सम है, अतः 10 कला बल है । नवांश में अधिमित्र मंगल की राशि में है, अतः 20 कला, सप्तांश में बुध (अधि शत्रु) की राशि में 2 कला, द्वादशांश में सम शुक्र की राशि में 10 कला त्रिंशांशों में अधिशत्रु बुध की राशि में 2 कला बल है । इन सबका योग 63 कला या $1^\circ.3'$ है । यही सूर्य का सप्तवर्गबल हुआ । इसी विधि से सब ग्रहों का सप्तवर्गैक्य बल जाना जाता है ।

सप्तवर्गैक्य बल की मात्रा में पद्धतिकारों ने थोड़ा भेद बताया है। अधिमित्र की राशि में 22'.30'' व सम की राशि में 7'.30'', कला माना जाता है। लेकिन पाराशर मतानुसार ऊपर श्लोक में बताया ही गया है। यह स्थान बल का ही भेद है। उच्च बल पूर्ण 1 अंश होता है। अधिमित्रादि की राशि में $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{8}$, $\frac{3}{4}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{16}$, $\frac{1}{32}$ आदि कहा है। 1 अंश $= 60'$ सम में $\frac{60é}{8} = \frac{15}{2}$ या 7'.30'' कहते हैं, लेकिन इतने भेद से विशेष भेद नहीं होता। वास्तव में उच्च, मूलत्रिकोण, स्वगृह, अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु की राशियाँ क्रमिक उतार वाली हैं। अतः उच्चादि में समानुपातिक ह्रास करके पद्धितिकारों ने कहा है।

युग्मायुग्म बल :–

शुक्रेन्दूसमभांशेऽन्येविषमेऽङ्घ्रिमितंबलम्।।

केन्द्रादिषु स्थिताः खेटाः पूर्णार्धांघ्रिमितं क्रमात्।।17।।

शुक्र व चन्द्रमा सम राशि व सम नवांश में एवं शेष ग्रह विषम राशि नवांश में 1 चरण या 15' कला युग्मायुग्म बल देते हैं।

यदि कोई ग्रह राशि व नवांश से एक साथ यह बल प्राप्त करे तो 30' कला बल एक जगह होने से 15' कला बल पद्धतिकार मानते हैं, लेकिन मूल में राशि या नवांश में कहीं भी रहने पर 15' तथा उभयत्र रहने पर क्या होगा, इसका स्पष्ट संकेत नहीं है।

केन्द्रगत ग्रह 60' कला, पणफरगत 30' कला व आपोक्लिमगत 15' कला केन्द्रादि बल पाता है।

द्रेष्काण बल :–

आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु स्थिताः क्रमात्।

पुंनपुंसक योषाख्या दद्युरंघ्रिमितं बलम्।।18।।

पुरुष ग्रह (सूर्य, मंगल, गुरु) पहले द्रेष्काण में, नपुसंक ग्रह (बुध, शनि) मध्य द्रेष्काण में व स्त्री ग्रह (चन्द्र, शुक्र) तृतीय द्रेष्काण में 15 कला बल पाते हैं।

इस प्रकार उच्च बल, सप्तवर्ग बल, युग्मायुग्म बल, केन्द्रादि बल व द्रेष्काण बल इन पाँचों के योग को 'स्थान बल' कहते हैं।

विषय को स्पष्ट करने के लिए अपने पूर्वोक्त उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा का स्थान बल निकालते हैं।

उच्च बल	0. 47'. 3''	
सप्तवर्गैक्य बल	1. 2'. 0''	
युग्मायुग्म बल	0. 15'. 0''	(समनवांश में होने के कारण)
केन्द्रादि बल	0. 15'. 0''	(आपोक्लिमगत)
द्रेष्काण बल	0. 0. 0	(मध्य द्रेष्काणगत)
योग	2. 19. 3	

दिग्बल ज्ञान :-

सूर्यात् कुजात् सुखं जीवात् ज्ञाच्चास्तं लग्नमार्कितः।
दशमं च भगोश्चन्द्रात प्रोज्झ्य षड्भाधिके सति।। 19।।
चक्राद् विशोध्य तद्भागास्त्रिभिर्भक्ताश्च दिग्बलम्।

सूर्य मंगल स्पष्ट में से चतुर्थ भाव को, गुरु बुध स्पष्ट में से सप्तम भाव को, शनि स्पष्ट में से लग्न स्पष्ट को व शुक्र चन्द्र स्पष्ट में से दशम भाव को घटाकर उसे आवश्यकता हो तो षड्भाल्प (12 राशि में घटाएँ, यदि घटाफल 6 राशि से अधिक हो) करके अंश बनाकर 3 का भाग देने से 'दिग्बल स्पष्ट' होता है।

बुध गुरु लग्न में पूर्ण दिग्बल (1 अंश) तथा सप्तम में 0 बल पाते हैं। शुक्र चतुर्थ में पूर्ण बली, शनि सप्तम में व सूर्य मंगल दशम में पूर्ण बली होते हैं। अन्यत्र भावों में रहने से ऊपर अनुपात प्रक्रिया बताई गई है।

हमारे उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा स्पष्ट $2.11^\circ.25'$ में से दशम भाव $11.24^\circ.5'$ घटाया तो शेष $2.17^\circ.16'$ के अंश $77^\circ.16' \div 3 = 25'.45''.20'''$ चन्द्रमा का दिग्बल है।

पद्धतिकारों ने उक्त अंशों को 3 के स्थान पर 6 से विभाजित करना लिखा है। इससे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। श्रीपति पद्धति में 10800 कला से केशवीय पद्धति में 6 राशि से भाग देना कहा है। 6 राशि $= 180^\circ$ अंश $= 10800'$ एक ही बात है। 10800 से भाग देने पर बल अंशादि प्राप्त होता है। उसे भाग देने पर कलादि प्राप्त होगा, परिणाम एक ही होता है। 6 से भाग देने में अंश बनाने की आवश्यकता नहीं होती, राशि से ही भाग देना शुरू करते हैं। इन विधियों में गणित का फैलाव बहुत होता है। जबकि परिणाम वही रहता है।

कालबल :–

इष्टावधिनिशीथात्तून्नतं त्रिंशच्च्युतं नतम् ।। 20 ।।

चन्द्रभौमशनीनां च नतं द्विघ्नं कलादिकम् ।

षष्टिशुद्धं तदन्येषां सदा रूपं बुधस्य हि ।। 21 ।।

काल बल के भागरूप नतोन्नत बल का साधन बताया जा रहा है । मध्य रात्रि (निशीथ) से इष्टकाल तक का अन्तर 'उन्नत' व उन्नत को 30 में से घटाने से 'नत' होता है । घट्यादि नतकाल को दुगुना करने से चन्द्र, मंगल, व शनि का नतोन्नत बल होता है । उसे 60 में से घटाने पर शेष ग्रहों का नतोन्नत बल होता है । बुध का यह बल सदैव बिना गणित के ही 1 अंश या 60 कला रहता है ।

जो लोग नत काल से दशम भाव (मध्य लग्न) निकालते हैं । उनके लिए तो नत काल पहले से ही ज्ञात होता है । लेकिन साम्पातिक कालादि से दशम साधन करने पर नत साधन करना पड़ता है । नत काल क्या है ? आधीरात या 0.0 घंटे से 12.00 बजे दोपहर तक पूर्वनत अर्थात् A.M में जब समय बताया हो तो पूर्वनत होगा । इसके अतिरिक्त P.M. में व्यक्त समय यानि 12.00 बजे दोपहर से आधी रात तक पश्चिम नत होता है । नत को 30 घड़ी में से घटाने पर 'उन्नत काल' आ जाता है । इसे आप घंटा मिनट में भी रहने दें तो भी कोई हानि नहीं है ।

रात्रि में चन्द्र, मंगल व शनि बली होते हैं, बुध सदा बली व शेष ग्रह दिन में बली होते हैं, यह वराह ने कहा है । **'निशिकुजसौराः सर्वदा ज्ञोऽह्निचान्ये'** इत्यादि । इसी आधार पर उक्त अनुपात विधि कही है । रात्रि बली का मध्य रात्रि में पूर्णबल व दिवाबली का मध्यान्ह में पूर्ण बल होगा । यह काल बल का प्रथम घटक (Factor) है ।

हमारे उदाहरण में सूर्योदय 7.17 बजे, सूर्यास्त 17.50 बजे, जन्म समय 5.10 बजे है । दिनमान (सूर्यास्त–सूर्योदय $\times \frac{5}{2}$) = 26.23 घड़ी है । इसका आधा 13.12 दिनार्ध है । इष्ट घटी 24.43 –दिनार्ध 13.12 = 11.31 पश्चिमनत है । (दिनार्ध को सदैव अपने इष्ट में से घटाएँ । शेष यदि 30 घड़ी से कम हो तो वह पश्चिम नत है । अधिक हो तो 60 में से घटाएँ शेष पूर्वनत होगा) । नत $\times$ 2 = 23′.2″ कला चन्द्रमा, मंगल व शनि का नतोन्नत बल है । इसे 60 में से घटाने पर 36′.58″ शेष ग्रहों का नतोन्नत बल है । बुध का 60′ कला ही रहेगा ।

पक्षबल विचार :–

अथ पक्षबलं वक्ष्ये सूर्यचन्द्राद् विशोध्य च ।
षड्भाधिके विशोध्यार्काद् भागीकृत्य त्रिभिर्भजेत् ।। 22 ।।
पक्षजं बलभीन्दुज्ञशुक्रेज्यानां तु षष्टितः ।
विशोध्य तद्बलं ज्ञेयं पापानां पक्षसम्भवम् ।। 23 ।।

अब पक्ष बल बताया जा रहा है। चन्द्र स्पष्ट में से सूर्य स्पष्ट को घटा लें। यदि वह 6 राशि से अधिक हो तो उसे 12 में से घटाकर षड्भाल्प करें। शेष अंशादि को 3 से भाग देने पर शुभ ग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) का पक्ष बल होता है। इसे 60 कला में से घटाने पर पाप ग्रहों का पक्ष बल होता है।

शुक्ल पक्ष में शुभ ग्रहों को व कृष्णपक्ष में पाप ग्रहों को पक्षबल मिलता है। इसी को अनुपात द्वारा स्पष्ट किया गया है। पूर्णिमा को शुभ ग्रहों को पूर्ण बल तो अभीष्ट तिथि में कितना ? सूर्य व चन्द्रमा का अन्तर ही तिथि है। अतः जन्म की प्रतिपदा, द्वितीयादि तिथि का इस पक्ष बल से बहुत गहरा सम्बन्ध है। अमावस्या को पाप ग्रह पूर्ण पक्षबली, पूर्णिमा को शुभ ग्रह पूर्ण पक्षबली होते हैं। यह कालबल का द्वितीय अंग है।

हमारे उदाहरण में चन्द्र स्पष्ट 2.11°21′ – रवि स्पष्ट 9.11°.15′ = 5.0°.6′ के अंश 150°.6′÷3 = 50′.2″; यह शुभ ग्रहों का पक्ष बल है। इसे 60 में से घटाया तो 9′.58″ पाप ग्रहों का पक्ष बल है।

दिनरात्रि त्रिभागबल :–

दिव्त्र्यंशेषु सौम्यार्कशनीनां निट्त्रिभागके ।
चन्द्रशुक्रकुजानां च बलं पूर्णं सदा गुरोः ।। 24 ।।

यह भी काल बल का अंग है। दिनमान व रात्रिमान के समान 3-3 भाग करें। दिन में प्रत्येक त्रिभाग में क्रमशः बुध, सूर्य, शनि तथा रात्रि के त्रिभागों में चन्द्र, शुक्र, मंगल बली होते हैं। गुरु सदैव बली है।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में नतोन्नत बल के प्रसंग में दिनमान 26.23 है अथवा सूर्यास्त 17.50 – 7.17 सूर्योदय = 10.33 घंटे दिनमान है। दिन में जन्म है। अतः 10.33 का तिहाई 3.31 घंटे हुआ। दिन के तीसरे भाग में जन्म है। अतः सूर्योदय + 10.48 बजे तक बुध को, 10.48 + 3.31 = 14.10 घंटे तक सूर्य को तथा तदुपरि 5.50 बजे तक शनि को 1° या 60′ बल मिलेगा। तब शनि व गुरु को 1°-1° बल यहाँ मिला। शेष ग्रहों का यह बल 0 होगा।

वर्षेशादि बल :-

वर्षमासदिनेशानां तिथ्यस्त्रिंशच्छरार्णवाः ।

होरेशस्य बलं षष्टिरुक्तं नैसर्गिकं पुरा ।। 25 ।।

वर्षेश को 15′ (एक चरण) मासेश को पूरे मास में 30′ (दो चरण) वारेश को पूरे दिन में 45′ (तीन चरण) एवं होरेश को अपनी होरा में 60′ कला बल मिलता है । निसर्गबल पहले ग्रह स्वरूपाध्याय में बता चुके हैं ।

जिस वर्ष में जन्म हो उस पूरे वर्ष में वर्षेश को बल मिलता है । संवत् प्रवेश के पहले दिन जो वारेश है, अर्थात् संवत् में जो राजा हो वही वर्षेश कहलाता है ।

जिस दिन जन्म हो उस वारेश को ही दिनेश या वारेश कहते हैं । जिस मास में जन्म हो उस मास के प्रथम वारेश को मासेश कहते हैं ।

हमारे उदाहरण में विक्रम संवत् 2012 प्रवेश गुरुवार को हुआ है । पौषकृष्ण प्रतिपदा को गुरुवार है । होरापति गुरु है (देखें ज्योतिषसर्वस्व), क्योंकि वही सूर्योदय से ग्यारहवें घंटे या होरा का स्वामी है । अतः वर्षेश गुरु को 15′ मासेश गुरु को पुनः 30′ कुल 45′ तथा दिनेश बुध को 45′ कला एवं होरेश गुरु को 60′ कला बल मिला । गुरु तीनों जगहों पर बल प्राप्त करता है अतः उसे अधिकतम 60′ कला बल दिया गया ।

इसके अतिरिक्त पद्धतियों में सृष्टि के आदि से व्यतीत दिन संख्या जानकर (अहर्गण) या कलियुगादि से अहर्गण लाकर उससे वर्षेश मासेशादि जानना बताया है । उससे गणित का बड़ा जंजाल खड़ा तो जाता है तथा उपलब्धि साधारण और कभी-कभी कुछ नहीं होती । अहर्गण संख्या में सूर्यसिद्धान्तादि सिद्धान्तों या करणों को अपनाने पर भेद रह ही जाता है । विक्रम संवत् की प्रवृत्ति अनिश्चित होने से मेषार्क का वारेश (उदाहरण में बुघ) वर्षपति माना जा सकता है । अहर्गण का नियामक वार है । जन्मवार में संशय नहीं होता । जबकि अहर्गण द्वारा प्राप्त वार में 1 का अन्तर रहना सम्भव है । तब क्या होगा ? अतः उक्त विचार ही संगत है । कलियुगाद्यहर्गण हमारे उदाहरण के दिन 1847198 है । यह अलग गणित करके निकाला गया है । इससे वर्षेश मासेश लाते हैं ।

अहर्गण से मासेश वर्षेश लाने की विधिः- कलियुगाद्यहर्गण को 373 कम करें । शेष में 2520 का भाग दें । अर्थात् $\frac{(\text{कलियुगाद्यहर्गण} - 373)}{2520}$ करें । शेष को दो जगह रखें । पहले स्थान पर 360 से व द्वितीयं स्थान पर 30 से भाग दें । लब्धियों को दुगुना व तिगुना करें । पहली त्रिगुण लब्धि को

7 से भाग देने पर वर्ष प्रवेश से पिछला वार तथा दूसरे स्थान पर 7 से भाग देने पर मास प्रवेश का पिछला वार होता है।

उदाहरण में अहर्गण $\frac{(1847198 - 373)}{2520}$ = लब्धि 732., शेष 2185 है। शेष को 360 से भाग दिया तो लब्धि 6 है। पुनः 2185 को 30 से भाग दिया तो लब्धि 72 है। पहली लब्धि में 3 से गुणा कर 1 जोड़ा तो 19 मिला। दूसरी लब्धि में 2 से गुणा कर एक जोड़ा तो 145 मिला। $\frac{19}{7}$ = शेष 5 वर्षपति (गुरु) वर्षेश है। $\frac{145}{7}$ = शेष 5 ही गुरु मासेश है। गुरुवार को ही प्रतिपदा प्रारम्भ होकर नया संवत् प्रवेश हो चुका था। अतः यह ठीक है। यहाँ प्राप्त गुरु भी मासेश बिल्कुल ठीक है। मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा गुरुवार को लगभग 6 घड़ी है। अतः पौष प्रवेश (पौष ही जन्म मास है) गुरु को ही हो चुका है।

अतः पंचांग में जन्मसंवत् प्रारम्भ का वार जो है वही वर्षेश है। जो मासारम्भ (चैत्रादि) का वार है वही मासेश है तथा जो जन्मवार है, वही दिनेश है। यह प्रामाणिक सिद्ध हुआ। यदि कभी–कभी भेद भी हो तो वह अकिंचित्कर ही है। सरलता, लाघव व निश्चितता के कारण उक्त विधि अधिक व्यवहार्य होगी।

निसर्गबल का साधन :–

तन्मानं सप्तहृत्षष्टिरेकद्येकोत्तरैर्हताः।
शकुबुगुशुचंरादि खेटानां क्रमशो बलम्।।26।।

60 कला में 7 का भाग देकर लब्धि 8'.34'.17''' या 8'.34'' को 1. 2. 3. 4. 5. 6. 7 से गुणा करने पर क्रमशः शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, रवि का निसर्ग बल होता है।

यह बल सब कुण्डलियों में समान ही होता है। अतः निसर्गबल साधित करके यहाँ दिया जा रहा है– सूर्य का 1 अंश, चन्द्रमा का 0.51'26'', मंगल का 0.17°.9', बुध का 0.25'.43'', गुरु का 0.34'.17'', शुक्र का 0.42'.51'' व शनि का 0.8'.34'' निसर्ग बल है। इन्हें स्थूल रूप से 60. 51. 17. 26. 34. 43. 9 कला भी कह सकते हैं।

अयन बल साधन :–

पंचाब्धयः सुराः सूर्याः खण्डकांशाः क्रमादमी।
सायनग्रहतोराशितुल्यखण्डयुतिश्च सा।।27।।

भागादिकहृतादेष्यात्त्रिंशल्लब्धयुतालवाः ।

स्वमृणं तुलमेषादौ शनीन्द्वोश्च त्रिराशिषु ।। 28 ।।

तथाऽऽरार्केज्यशुक्राणां व्यस्तं ज्ञस्य सदा धनम् ।

तद्भागाश्च त्रिभिर्भक्ता ज्ञेयमायनजं बलम् ।। 29 ।।

अयन बल के लिए 45, 33,12 ये तीन खण्डांक हैं। सायन ग्रह स्पष्ट (ग्रहस्पष्ट + अयनांश) का भुज बना लें। भुज में जो राशि हो उसके बराबर खण्ड समझें। अर्थात् 1 राशि से पहला खण्ड, दो राशि से दूसरा इत्यादि।

जितने गत खण्ड हों उनका योग करें। अंशादिक को अगले खण्डांक से गुणा करें। लब्धि को 30 का भाग दें। उसे पूर्वागत खण्डयोग में मिला लें।

(i) शनि व चन्द्रमा यदि तुला से लेकर मीन तक ही हों तो 3 राशि में उक्त योग जोड़ा।

(ii) यदि मेषादि 6 राशियों में हों तो उक्त योग को 3 राशि में से घटाएँ।

(iii) रवि, मंगल, गुरु, शुक्र के विषय में, ये मेषादि 6 राशियों में हों तो 3 राशि जोड़ें, तुलादि 6 राशियों में हों तो 3 राशि में से घटाएँ।

(iv) बुध के विषय में सदैव 3 राशि में उक्त फल को जोड़ें।

उक्त योगफल के अंशादि में 3 का भाग देने से अयन बल होता है। पहले विषय को समझ लें। अयन से उत्पन्न बल अयन बल होता है। शुक्र,मंगल गुरु, सूर्य उत्तरायण में व शनि चन्द्र दक्षिणायन में यह बल पाते हैं। बुध सदैव यह बल पाता है। क्रान्ति की हानि वृद्धि से यह बल भी घटता–बढ़ता है। परम क्रान्ति 24′ अंश है। अतः दक्षिण क्रान्ति परम होने पर शनि चन्द्र का परम बल तथा सूर्यादि का परमोत्तर क्रान्ति से पूर्ण बल 60′ होगा। इसीलिए ग्रह स्पष्टों के आस–पास या कहीं अन्यत्र मान्य पंचांगों में सब ग्रहों की क्रान्ति दी होती है।

अयन बल का सरलतम प्रकार – अभीष्ट ग्रह की उत्तर क्रान्ति को 24° में जोड़ें व दक्षिण क्रान्ति हो तो 24° में से घटाएँ। प्राप्त संख्या में उसी का चौथाई जोड़ दें। प्राप्त फल ग्रह का अयन बल होगा।

(i) उक्त श्लोकों में विषय को जटिल ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पहले सायनग्रह प्राप्त किए। अयनांश जोड़ने से निरयण स्पष्ट ग्रह सायन बन जाएँगे।

(ii) सायन स्पष्ट ग्रह को भुज या भुजा बना लें। भुज अर्थात् तीन राशि से कम 'दोस्त्रिभोनं। अतः स्पष्ट ग्रह तीन राशि से कम है तो

वह स्वयं ही भुज है। यदि अधिक है तो 6 राशि में से घटाकर या 6 राशि घटाकर या 12 राशियों में से घटाकर त्रिभाल्प (भुज) करें। भुज में जो राशि है तदनुसार खण्डांक 45 या 33 या 12 चुन लें।

(iii) गत खण्डांकों का योग करें तथा भुज के अंशादि को अगले खण्डांक से गुणा करें।

(iv) लब्धि को गत खण्डांक योग में जोड़ लें। इसे सायनग्रह तुलादि में हो तो अलग प्रकार से व मेषादि में हो तो उक्त अलग प्रकार से 3 राशि में जोड़ घटा लें।

(v) जो लब्धि हो उसका तीसरा भाग तृतीयांश या तिहाई 'अयन बल' होता है।

अपने उदाहरण में मंगल स्पष्ट 7.14°.12′ तथा अयनांश 23°.14′.58″ है। इसे जोड़ने पर सायन मंगल 8. 7°, 27′ है। यह तीन राशि से अधिक है, अतः इसमें से 6 राशियाँ घटा लीं तो 2.7°.27′ मंगल का भुज है। भुज में राशि 2 है। अतः दो खण्ड हुए। दोनों खण्डों 45+33 का योग 78 है। भुजांश 7°.27′ को अगले खण्डांक 12 से गुणा किया तो 89°.24′ मिले। इसे 30 का भाग देकर लब्धि 2°.59′ मिली। इसमें पूर्वोक्त खण्डांक का योग 78 जोड़ा तो 80°59′ अंशादि हुए। इसे राश्यादि क्रिया तो 2.20°59′ हुए। मंगल तुलादि षट्क में रहने से 3 राशियों में से इसे घटाया तो 0.9°.1 इसके अंशादि 9 में पुनः तीन का भाग दिया तो 3 कला ही 'अयन बल' हुआ।

इसे दूसरे सरल प्रकार से जानते हैं। पंचांग से मंगल की दक्षिण क्रान्ति21°.38′ प्राप्त की। इसे दक्षिण क्रान्ति होने से 24° में घटाया तो 2°.22′ मिला। इसमें इसी का चौथाई 35 कला जोड़ा तो 2.57 कलादि या 0. 2. 57 कलादि या 0. 2. 57 अंशादि या लगभग 3 कला ही बल प्राप्त हुआ। इसी पद्धति से सूर्य चन्द्र सहित सबका अयन बल जाना जा सकता है। विशेष विवरण हेतु हमारा ज्योतिष सर्वस्व या आयुर्निर्णय देखें।

चेष्टा बल :–

यद्रवेरायनं वीर्यं चेष्टाख्यं तावदेवहि।
विधोः पक्षबलं यावत् तावच्चेष्टाबलं मतम्।। 30।।

सूर्य का अयन बल ही चेष्टा बल भी होता है तथा चन्द्रमा का पक्ष बल ही चेष्टा बल है। अतः चेष्टा बल लिखते समय सूर्य के अयन बल का दुगुना व चन्द्रमा के पक्ष बल का दुगुना लिखने से 'स्पष्ट चेष्टा बल' होगा।

मंगलादि ग्रहों का चेष्टा बल :–

मध्यमस्फुटयोगार्ध हीनं स्वस्व चलोच्चकम् ।
षड्भाधिकं च्युतं चक्राच्चेष्टाकेन्द्रं स्मृतं कुजात् ।।31।।
भागीकृतं त्रिभिर्भक्तं लब्धं चेष्टाबलं त्विति ।
स्थानदिक्काल दृक् चेष्टा निसर्गोत्थं च षड्विधम् ।। 32 ।।

मध्यम ग्रह व स्पष्ट ग्रह को जोड़कर उसका आधा यदि ग्रह के शीघ्रोच्च में से घटाया जाए तो मंगलादि पाँचों ग्रहों के चेष्टा केन्द्र होते हैं। यदि यह 6 राशि से अधिक हो तो 12 राशि में से घटाने पर चेष्टाकेन्द्र होगा।

अंशात्मक चेष्टाकेन्द्र को उसे भाग देने पर चेष्टा बल होता है। इस तरह स्थान, दिक्, काल, दृक्, चेष्टा व निसर्ग ये मिलकर षड्बल कहलाते हैं।

मंगलादि पाँच ग्रह जब वक्री होते हैं तो बड़े बिम्ब वाले होते हैं। ये प्रायः नीच के आसपास आकर ही वक्री होते हैं। परम नीच पर परम बिम्ब रहने से इनका चेष्टा बल पूरा होता है। परमोच्च पर चेष्टा बल 0 होता है। जब ग्रह नीच के आस पास होता है तो शीघ्रकेन्द्र 6 राशियों के लगभग होता है तथा उच्च पर शीघ्रकेन्द्र 0 होता है। अतः शीघ्रोच्च व ग्रह के अन्तर से चेष्टा बल घटता–बढ़ता है। शीघ्रोच्च व ग्रह का अन्तर ही चेष्टाकेन्द्र होता है। तब स्पष्ट ग्रह व मध्यम ग्रह के योग का आधा क्यों ग्रहण किया गया है, इसमें आगम अर्थात् शास्त्र ही प्रमाण है।

इस प्रसंग में सबसे बड़ी कठिनाई सामान्य जनों को मध्यम ग्रह जानने में हो सकती है। एतदर्थ हमने ज्योतिषसर्वस्व में 1.1.93 के मध्यम ग्रह देकर आगे मध्यमगति से अनुपात द्वारा ज्ञान करना लिखा है। वैसे मध्यम ग्रह अहर्गण द्वारा जाने जाते हैं।

हमने अपने आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य में नवीन केतकीय गणित से अहर्गणसाधन की सारिणी उद्धृत की है। तदनुसार हमारे उदाहरण में केतकीय इष्ट अहर्गण 632 है। अब इस अहर्गण से केतकीय पद्धति से मध्यम मंगल साधित किया तो 7. 25. 46 तथा केतकीय बुध 10. 26. 43 एवं मध्यम सूर्य 9. 10. 35 आया है। मंगल का चेष्टा बल निकालेंगे। मध्यम मंगल 7.25°.46′ + स्पष्ट मंगल 7.14°.12′ का योग 15.9°.58′ का आधा 7. 19°. 59′ है।

मध्यम सूर्य ही मंगल व शनि गुरु का शीघ्रोच्च होता है। अतः 9. 10°.35′ मध्यम सूर्य (मंगल का शीघ्रोच्च) में से 7.19°.59 घटाया तो 1.20°.36′ मिला। इसे अंशात्मक बनाकर 50°.36′ तीन से भाग दिया तो 16′.52″ कलादि या 0.16′.52″ मंगल का चेष्टा बल है।

सभी मंगलादि ग्रहों के चेष्टा बल में अयन बल जोड़ने से स्पष्ट चेष्टाबल होता है। अतः मंगल का पूर्व साधित अयनबल लगभग 3 कला जोड़ने से 19'.52'' स्पष्ट चेष्टा बल है।

मंगल अपने नीच कर्क से काफी आगे निकल चुका है तथा उच्च मकर के अपेक्षाकृत पास है, अतः चेष्टाबल क्रमशः घटता हुआ तथा कम ही है। सूर्य का चेष्टा बल हमारे उदाहरण में $0.50'.2'' \times 2 = 1^{\circ}.40'.4''$ सिद्ध होता है।

ग्रहों की गति से बल का अनुमान :–

वक्रानुवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।

चराचातिचरेति च ग्रहाणामष्टधा गतिः।। 33।।

वक्रा, अनुवक्रा, विकला, मन्दा, मन्दतरा, समा, चरा व अति चरा ये ग्रहों की आठ प्रकार की गतियाँ हैं।

यह सिद्धान्त का विषय है। सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है कि अति चर या अतिचारी या अतिशीघ्र गति, शीघ्र (चरा), मन्द व मन्दतरा व सम ये पाँच गतियाँ मार्गी रहने पर ही होती हैं। इसके विपरीत वक्रा, अनुवक्रा, कुटिला ये गति वक्री रहने पर होती हैं। हम चेष्टा बल के सम्बन्ध में महले स्पष्ट कर चुके हैं कि वक्री रहने पर व नीच के पास रहने पर चेष्टा बल सर्वाधिक होता है। इस चेष्टा बल के सन्दर्भ में ये श्लोक बड़े काम के हैं।

षष्टिवक्रगतेवीर्यमनुवक्रगतेर्दलम्।

पादो विकलयुक्तेः स्यात् तथा मध्यगतेर्दलम्।। 34।।

पादो मन्दगतेस्तस्य दलं मन्दतरस्य च।

चरभुक्तेस्तु पादोनं दलं स्यादति चारिणः।। 35।।

वक्रगति ग्रह का (चेष्टा बल) 60', अति वक्र का इससे आधा 30', विकलगति का 15' होता है। पुनः मध्य गति का 30' मन्द गति का 15' व मन्दतर का 7'.30'' होता है।

चर गति का 45', अतिचारी का 30', कला बल होता है। उक्त बल मान त्वरित अनुमान के लिए है। सूक्ष्मता के आग्रही जनों को तो पूर्वोक्त प्रकार से ही चेष्टा बल जानना ठीक है।

वक्रगति :– जब राशि चक्र में ग्रह उल्टा चले तथा जिस राशि में वक्री हुआ हो, उसी में रहे।

अनुवक्रा – वक्री होकर पिछली राशि में चला जाए।

कुटिला –गति शून्य हो तब यह गति होती है।

मध्यमगति – औसत गति । यह सिद्धान्तोक्त ग्रह भगणों से अनुपात द्वारा जानी गई है । यही समा गति है ।

मन्दा – औसत मान से कम गति हो ।

मन्दतरा –औसत गति की अपेक्षा लगातार घटती हुई गति ।

चरा – मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह आगे हो ।

अतिचरा – मध्यम ग्रह से पहले ही अगली राशि में जाना ।

हमारे उदाहरण में मंगल वक्री नहीं है । मध्यम मंगल से स्पष्ट मंगल पीछे है, अतः मन्दा गति हुई । इसमें पराशर ने चौथाई बल कहा है । अर्थात् लगभग 15 कला । हमारा गणितागंत बल 16 कला 52 विकला है । अतः त्वरितानुमान के लिए ये श्लोक बड़े उपयोगी हैं ।

दृक्बल संस्कार :–

पापदृक्पादहीनं तत् शुभदृक्पादयुक्तथा ।

बलैक्यं ज्ञेज्यदृग्युक्तमेवं खेटबलं भवेत् ।। 36 ।।

पहले दृष्टि बल साधन बताया जा चुका है । पूर्वोक्त स्थान, दिक, काल, चेष्टा, निसर्ग बल का योग करके विचारणीय ग्रह पर जितने शुभ ग्रहों की दृष्टि सिद्ध हो, उस दृष्टिबल का चौथाई जोड़ दें । पाप दृष्टि का चौथाई घटा दें, तब षड्बल होता है ।

युद्धसंस्कार :–

अथतारग्रहाणां तु युद्ध्यतोश्च द्वयोर्मिथः ।

बलान्तरं विजेतुः स्वं निर्जितस्य बले त्वृणम् ।। 37 ।।

मंगलादि पाँचों तारा ग्रहों में जिन दो ग्रहों के राशि, अंश, तुल्य हों उनमें परस्पर युद्ध माना जाता है । जिन दो ग्रहों में युद्ध हो उनके कुल षड्बल का अन्तर कर लें । वह अन्तर विजेता ग्रह के बल में जोड़ दें तथा पराजित के बल योग में से घटा लें । यह युद्ध संस्कार है ।

उत्तर दिशा में जो ग्रह स्थित हो अर्थात् जो ग्रह आगे निकल चुका हो, तेजस्वी हो और बड़े बिम्ब वाला हो वह विजयी होता है । शुक्र प्रायः विजयी ही रहता है । विजयी ग्रह की पहचान पंचांगों में दिए गए ग्रहों के शर से सरलता से हो सकती है । शर (Latitude) उत्तर रहने पर ग्रह विजयी होता है । यह प्रायः क्रान्ति (DECLINATION) के साथ ही दिया होता है । क्रान्ति वृत्त या राशि चक्र के धरातल वृत्त से अभीष्ट ग्रह कितने अंश उत्तर या दक्षिण है ? यही शर होता है ।

यदि युद्ध न हो तो यह संस्कार लागू नहीं होगा । कुल सब बलों स्थान, दिक, काल, चेष्टा व निसर्ग बल का योग करके उसमें दृष्टि संस्कार करने पर स्पष्ट षड्बल होता है । उदाहरण में पाँचों बलों का योग 6°.29′.22″

है। इसमें दृष्टि संस्कार होगा। मोटे तौर पर मंगल शनि से अष्टम, सूर्य बुध से षष्ठ व शुक्र से चतुर्थ में रहने पर पापदृष्टि अधिक होगी। अतः 6° अंश के लगभग ही बल रहेगा। ग्रह 6° तक मध्यबली माना जाता है। लेकिन चन्द्रमा इतने पर भी सुबली होता है। अतः लग्नेश बली ही है।

भाव बल स्पष्ट :–

> **एवं ग्रहबलं प्रोक्तमथभावबलं शृणु।**
> **कन्यायुग्मतुला कुम्भचापाद्यार्धाच्च सप्तमम्।। 38।।**
> **गोऽजसिंह मृगाद्यार्धचापान्त्यार्धात् सुखं त्यजेत्।**
> **कर्कवृश्चिकतो लग्नं मृगान्त्यार्धाज्झषाच्चखम्।। 39।।**
> **शोध्यमंगाधिकं चक्राच्युतं भागीकृतं त्रिहृत्।**
> **सद्दृष्टिपादयुक् पापदृष्टिपादविवर्जितम्।। 40।।**
> **ज्ञेज्यदृष्टियुतं तच्च स्वस्वामिबलान्वितम्।**
> **इति भावबलं प्रोक्तं सामान्यं तु पुरोदितम्।। 41।।**

(i) अब ग्रह बल के पश्चात् भाव बल का स्पष्टीकरण सुनो। जिस भाव का बल जानना हो उस भाव की राशि कन्या, मिथुन, तुला, कुम्भ व धनु का पूर्वार्ध हो तो उसमें से सप्तम भाव को घटा लेना चाहिए।

(ii) वृष, मेष, सिंह, मकर, धनु का उत्तरार्ध यदि भाव में पड़े तो चतुर्थ भाव को उसमें से घटाना चाहिए।

(iii) यदि भाव में कर्क व वृश्चिक राशि हो तो उसमें से लग्न को घटाएँ तथा मकर का उत्तरार्ध या मीन हो तो उसमें से दशम भाव को घटाना चाहिए।

शेष यदि 6 राशि से अधिक हो तो उसे 12 राशि में से घटाकर शेष का ग्रहण करें। उसे अंशात्मक बनाकर 3 का भाग देने से बल प्राप्त होता है।

उस भाव पर दृष्टि साधन करके शुभ ग्रहों की दृष्टि का चौथाई जोड़ें व पाप ग्रह की दृष्टि का चौथाई घटा लें।

यदि भाव पर बुध या गुरु की दृष्टि हो तो उनकी सारी दृष्टि को जोड़ लें व उसमें भावेश ग्रह के षड्बलैक्य को जोड़ लें। तब भाव का स्पष्ट बल होता है। सामान्यतः यह बल पहले कहा जा चुका है, सम्प्रति बल का स्पष्टीकरण प्रकार कहा है।

भाव को तीन प्रकार का बल प्राप्त होता है–– (i) अपने स्वामी का बल, कहा गया है कि 'भावानां बलमीशजम्' (ii) भाव दिग्बल। पहले कह चुके हैं कि कीट राशि (4.8) सप्तम में, नर राशि अर्थात् जिनमें पुरुषाकृति दिखती हो (मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ व धनु का पूर्वार्ध) लग्न

में बली हैं। इसी तरह जलचर राशियाँ (मकर का उत्तरार्ध व मीन) चतुर्थ में, व पशुराशियाँ (मेष, वृष, सिंह, धनु उत्तरार्ध मकर पूर्वार्ध) दशम भाव में पूर्ण दिग्बली होती हैं। अन्यत्र अनुपात करने के लिए तत्तत् राशियों में से 1. 4. 7. 10 भाव स्पष्टों को घटाते हैं।

(iii) दृग्बल :–

दृष्टि बल। भाव पर कुल शुभ ग्रहों की दृष्टि का चतुर्थांश जोड़ें एवं पाप दृष्टि का चतुर्थांश घटाएँ। उक्त तीनों का योग मध्यम भाव बल है।

भाव बल में संस्कार – (i) जिस भाव पर बुध, गुरु की पूर्ण दृष्टि हो, उस भाव के बल में इन दोनों का सारा दृष्टि बल भी मिला लें।

(ii) भावेश का सारा षड्बल उसमें जोड़ें। तब स्पष्टभाव बल होता है, ऐसा सभी कहते हैं। लेकिन आगे दो अन्य संस्कार भी कहे हैं।

(iii) जिस भाव में बुध गुरु स्थित हों, उसके पूर्वागत बल में 60′ जोड़ें एवं मंगल, सूर्य, शनि से युक्त भाव के कुल बल में से 60′ घटाएँ।

(iv) दिन में शीर्षोदय राशि में, सन्ध्या में उभयोदय एवं रात्रि में पृष्ठोदय राशि के कुल पूर्व सिद्ध बल में 15′ कला और जोड़ें। तब पाराशरमत से स्पष्ट भाव बल होता है।

अपने क्रमिक उदाहरण में लग्न का भावबल साधित करके दिखाते हैं। लग्न स्पष्ट 3.2°.48′ है। इसमें कर्क राशि कीट संज्ञक है। कीट राशि में से लग्न को ही घटाया तो शेष 0.0.0 बचा। इसे अंशादि करके इसे भाग दिया तो 0 कला इस भाव का 'दिग्बल' है। इस भाव का स्वामी चन्द्रमा उसका षड्बल 6 अंश है। इसे जोड़ा तो लग्न 6.0.0 बल मिला। अब इस पर दृष्टि बल जानेंगे।

(i) द्रष्टा सूर्य 9.11°.15′ को लग्न 3.2°.48′ में से घटाया तो 5.210. 33′ शेष है। नियमानुसार राशि रहित अंशों का दुगना 43.′6′′ लग्न पर सूर्य की दृष्टि है।

(ii) दृश्य लग्न 3. 2. 48– द्रष्टा मंगल 7.14°.12′ = 7. 18. 36 शेष को 10 में से घटाया तो 2.11.24 शेषा है। इसके अंशों में 71°.24′÷3 किया तो 24 कला स्वल्पान्तर से दृष्टि बल मिला।

(iii) दृश्य लग्न 3.2.48– द्रष्टा बुध 9.15.53 = 5.16.55 के केवल अंशों की दुगुनी 31′.46′′ दृष्टि है।

(iv) दृश्य लग्न 3.2.48– द्रष्टा शनि 7.7.45 = 7.25.3, इसे 10 में से घटाया तो 2. 4. 57 के अंशों 64°.57′÷3 = 21′.39′′ शनि कला की दृष्टि है।

(v) दृश्य लग्न 3.2.48 – द्रष्टा शुक्र 10.16.25 = 4.16.23 इसे 5 में से घटाने पर शेष अंश के समान 13′.37″ दृष्टि हुई।

इस पर सूर्य दृष्टि 43′.6″ + मंगल दृष्टि 24′.0″+ शनि दृष्टि 21′.39″ = 88′.45″ कला पाप दृष्टि है।

बुध दृष्टि 31′.46″ + शुक्र दृष्टि 13′.37″=45′.23″ शुभ दृष्टि है। इन दोनों का अन्तर 43′.22″ व इसका चतुर्थांश लगभग 11 कला ऋण (–) दृष्टि संस्कार है। पापदृष्टि अधिक होने से घटाया जा रहा है। तब 5. 29°. 49′ यह दृग्बल संस्कृत लग्न भाव बल है।

इसमें बुध की पूरी दृष्टि जोड़ी तो 5.29°.40″ + 32′ = 6.0.21 लग्न का स्पष्ट भाव बल है। सन्ध्या में यह उभयोदय राशि नहीं है। अतः भाव का काल बल इसमें नहीं जोड़ा गया। यह भाव बली ही माना जाएगा।

षड्बलैक्य में बली निर्णय :–

अंकाग्नयोऽगरामाश्च खाग्नयो नेत्रसागराः।
नवाग्नयः सुरास्त्रिंशद् दशसंगुणिताः क्रमात्॥ 42॥
रव्यादीनां बलैक्यं चेत् तदा सुबलिनो मताः।
अधिकं पूर्णमेव स्याद् बलं चेद् बलिनो द्विज !॥ 43॥

सूर्य का कुल षड्बल योग 390′, चन्द्र 360′, मंगल– 300′, बुध 420′, गुरु 390′, शुक्र 330′ शनि 300′ कला रहने पर ये ग्रह सुबली अर्थात् ठीक–ठीक सन्तोषजनक बली तथा इससे अधिक रहने पर पूर्णबली होते हैं। ये कलाएँ मध्यबल व पूर्ण बल की सन्धि सीमाएँ हैं। मध्य बल की चरम सीमा व पूर्ण बल की आरम्भ सीमा हैं।

गुरुसौम्यरवीणां च भूतषट्केन्दवो द्विज !।
पंचाग्नयः खभूतानि करभूमिसुधाकराः॥ 44॥
खाग्नयश्च क्रमात्स्थानदिक् चेष्टा समयऽयने।
सितेन्द्वोस्त्र्यग्निचन्द्राश्च खेषवः खाग्नयः शतम्॥ 45॥
चत्वारिंशत् कला भौममन्दयोः षण्णवा क्रमात्।
त्रिंशत् खवेदाः सप्ताङ्गा नखाश्चेत्युदिता द्विज !॥ 46॥

स्थान बल में सूर्य, बुध व गुरु 165 कलादि, दिक्बल में 35′, चेष्टाबल में 50, काल बल में 112 व अयन बल में 30 कला बल पर सुबली होते हैं।

इसी तरह शुक्र व चन्द्रमा क्रमशः 133.50, 30, 100, 40 कला स्थानदिक् चेष्टा, काल व अयन में सुबली होते हैं।

मंगल व शनि क्रमशः 96, 30, 40, 67, 20 कला बल पाने पर स्थान, दिक, चेष्टा, काल व अयन में बली हैं। इन सब स्थानादि बलों की कलाओं का कुल योग ही स्वल्पान्तर से श्लोक 41.42 में कहा है।

फल निश्चय का प्रकार :-

एवं कृत्वा बलैक्यं च ततश्चिन्त्यं फलं द्विज !।
भावस्थानग्रहैः प्रोक्तयोगे ये योग हेतवः ।। 47 ।।
तेषां मध्ये बली कर्ता स एवास्य फलप्रदः ।
योगेष्वाप्तेषु बहुषु नीतिरेवं प्रकीर्तिताः ।। 48 ।।

इस तरह सब ग्रहों का अलग अलग बल निश्चय करके फल कहना चाहिए। किसी भाव व ग्रह के सम्बन्ध से बनने वाले योगों में जो योग निर्माता ग्रह सबसे बली होगा, वही अपने स्वभाव, बलाबल व गुणधर्मानुसार फल देगा। उक्त विचार तभी करना योग्य है, जब एक ही स्थान में कई ग्रह हों।

फलकथन का अधिकारी :-

गणितेषु प्रवीणो यः शब्दशास्त्रे कृतश्रमः ।
न्यायविद्बुद्धिदेशज्ञदिक्कालज्ञो जितेन्द्रियः ।।49 ।।
ऊहापोहपटुर्होरास्कन्धश्रवणसम्मतः ।
मैत्रेय सत्यतां याति तस्य वाक्यं न संशयः ।। 50 ।।

जो व्यक्ति सिद्धान्त के अव्यक्त व व्यक्त गणित में निपुण हो, व्याकरण शास्त्र को खूब पढ़ा हो, न्याय शास्त्र (तर्कशास्त्र) को जानता हो, बुद्धिमान्, देश, काल, परिस्थिति को समझता हो, इन्द्रियाँ वश में हों, स्वयं कल्पना करने में चतुर, होराशास्त्र को श्रद्धापूर्वक जिसने पढ़कर मनन किया हो, ऐसे ही व्यक्ति की वाणी सत्य होती है। प्रसंगानुसार यहाँ दैवज्ञ का लक्षण कहा है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां ग्रहभावबला-ध्यायस्त्रिचत्वारिंशः ।। 43 ।।

44

।। अथेष्टकष्टाध्यायः ।।

अथ चेष्टमनिष्टं च ग्रहाणां कथयाम्यहम् ।

यद्वशाच्च प्रयच्छन्ति शुभाशुभदशाफलम् ।। 1 ।।

पराशर बोले– अब मैं ग्रहों के इष्ट व कष्ट का साधन बता रहा हूँ। इसी के अनुसार ही ग्रह अपनी दशान्तर्दशा में (या भाव) शुभ या अशुभ फल देते हैं।

उच्च रश्मि साधन :–

नीचोनं तु ग्रहं भार्धाधिक्ये चक्राद् विशोधयेत् ।

उच्चरश्मिर्भवेद्राशिः सैको द्विघ्नांशसंयुतः ।।2 ।।

इष्ट कष्ट निकालने के लिए पहले उच्च रश्मि का साधन किया जाता है। एतदर्थ, ग्रह स्पष्ट में से उसका परम नीच घटा लें। यदि वह 6 राशि से अधिक है तो 12 राशि में से घटाकर उसे षड्भाल्प कर लें। जो शेष मिले उसकी राशि में 1 जोड़ें व अंशादि को दुगुना कर लें। यही उस ग्रह की उच्च रश्मि होगी।

उदाहरण में चन्द्र स्पष्ट 2.11.21 – नीच 7.3.0 = 7.8.21; षड्भाल्प करने पर 4.21.39 मिला। अथवा ग्रह स्पष्ट या नीच में से जो घट सके ततः 7.3.00 – 2.11.21 = 4.21°.39′ ही मिला। राशि में एक जोड़ा तो 5 तथा अंशों का दुगुना किया तो 5. 43.18 चन्द्रमा की 'उच्च रश्मियाँ हैं।

चेष्टा रश्मि साधन :–

चेष्टाकेन्द्राच्च तद्रश्मिं साधयेदुच्चरश्मिवत् ।

चेष्टाकेन्द्रं कुजादीनां पूर्वमुक्तं मया द्विज ! ।। 3 ।।

सायनार्कस्त्रिभोऽर्कस्य व्यर्केन्दुश्च विधोस्तथा ।

चेष्टाकेन्द्रं रसाल्पं तच्चक्राच्छोध्यं रसाधिके ।।4 ।।

ग्रह के चेष्टा केन्द्र से उच्च रश्मि की तरह ही चेष्टा रश्मि भी ज्ञात कर लें। मंगलादि ग्रहों का चेष्टा केन्द्र पहले चेष्टा बल साधन के प्रसंग में बता चुके हैं। अब सूर्य व चन्द्रमा का चेष्टाकेन्द्र सुनो। सायन सूर्य में तीन राशि संयुक्त करने से सूर्य का एवं चन्द्रमा में से सूर्य को घटाने से चन्द्रमा

का चेष्टाकेन्द्र होता है। यह चेष्टाकेन्द्र षड्भाल्प होना चाहिए, यदि 6 राशि से अधिक हो तो चक्र (12 राशि) में से घटा लें।

हमारे उदाहरण में सूर्य स्पष्ट 9.11°.15′ + अयनांश 23°.14′.58″ = 10.4°.29′.58″ ; सायन सूर्य में तीन राशि जोड़ी तो 1.4°.29′.58″ सूर्य का चेष्टा केन्द्र है। यह स्वयं षड्भाल्प है। अतः उच्चराशि की तरह राशि+1 एवं अंशादि ×2 करने पर 2.10°.0′ सूर्य की चेष्टा रश्मियाँ हैं।

चन्द्र स्पष्ट 2.11°.21′ − सूर्य स्पष्ट 9.11°.15′ = 5.0.6 चन्द्रमा का स्वयं षडभाल्प चेष्टाकेन्द्र है। राशि + 1 तो 6.0.12 चन्द्रमा की चेष्टारश्मियाँ हैं।

शुभ व अशुभ रश्मि का निश्चय :–

चेष्टोच्चरश्मियोगार्धं शुभरश्मिः प्रकीर्त्यते।

अष्टभ्यश्च विशुद्धोऽसावशुभाख्यश्च कथ्यते।।5।।

पूर्वोक्त प्रकार से सब ग्रहों की चेष्टा व उच्च रश्मियों का योग करके उसकी आधी 'शुभ रश्मि' होती हैं तथा शुभ रश्मियों को 8 में से घटाने पर 'पाप रश्मि' या अशुभ रश्मि होती हैं।

उदाहरण में चन्द्रमा की उच्च रश्मि 5.43.18 + चेष्टारश्मि 6.0.12 = 11.43.30, चेष्टोच्चरश्मि योग का आधा 5. 51. 45 या 5.52 चन्द्रमा की 'शुभ रश्मियाँ' हैं। इन्हें 8 में से घटाया तो 2.8 अशुभ रश्मियाँ हैं।

रश्मि से इष्ट कष्ट साधन :–

उच्चचेष्टाकरान् व्येकान् दिग्भिर्हत्वा तु योजयेत्।

तदर्धमिष्टसंज्ञं स्यात् कष्टं तत्षष्टितश्च्युतम्।।6।।

पूर्व साधित चेष्टारश्मि व उच्च रश्मियों में से 1-1 घटाकर शेष को 10 से गुणा कर आपस में जोड़ लें। इसका आधा 'दृष्ट' व इष्ट को 60 में से घटाने पर कष्ट होता है।

हमारे उदाहरण में उच्च रश्मि 5.43.18 − 1 = 4.43.18×10 = 40.430. 180 या 47. 13. 0 तथा चेष्टारश्मि को भी इसी तरह करने से 5.0.12×10 = 50.0.120 या 50.2.0; इनका योग 97.15.0 का आधा 48.37 चन्द्रमा का इष्ट है। इसे 60 में से घटाने पर 11.23 चन्द्र का कष्ट है।

सप्तवर्गों में शुभाशुभ साधन :–

स्वोच्चे मूलत्रिकोणे च स्वभेऽधिसुहृदीष्टभे।

समभे शत्रुभे चाधिशत्रुभे नीचभे क्रमात्।।7।।

षष्टिरिष्वब्धयस्त्रिंशदाकृतिस्तिथयो गजाः ।
चत्वारौ द्वौ च शून्यं च शुभमेतत्फलं गृहे ।। 8 ।।
षष्ठितः पतितं चैतच्छेषं स्यादशुभं गृहे ।
तदर्धमन्यवर्गेषु ज्ञेयं विप्र ! शुभाशुभम् ।। 9 ।।

स्वोच्च, मूलत्रिकोण, स्वराशि, अधिमित्र की राशि व मित्र की राशि ये इष्ट राशियाँ या शुभ पंचक हैं। समगृह, शत्रु राशि, अधिशत्रु की राशि एवं नीच राशि ये तीन अशुभ पंचक हैं।

स्वोच्च में 60, मूलत्रिकोण में 45, स्वगृह में 30, अधिमित्र की राशि में 22, मित्र राशि में 15 एवं समराशि में 8, शत्रु राशि में 4, अधिशत्रु की राशियों में 2 तथा नीच में 0 अंक समझें। इन्हें 60 में से घटाने पर अशुभ अंक होंगे। होरादि शेष वर्गों में इनका आधा–आधा समझना चाहिए।

यहाँ सप्तवर्गो में शुभाशुभ निश्चय की विधि बताई गई है। यह जातक पद्धतियों का विषय है। एतदर्थ उदाहरण में हम पहले ही सप्तवर्गो का साधन कर चुके हैं। तदनुसार ही राशि कुण्डली में ग्रह जिसकी राशि में हो, उसके अनुसार उक्त अंकों को तथा होरादि वर्गों में इनका आधा रखकर जोड़ लेना चाहिए। उदाहरण में सूर्य गृह में शनि की राशि में है। शनि सूर्य का सम है, अतः 8 स्थापित किया। होरा में सूर्य सम चन्द्र की राशि में है, अतः 8 का आधा 4, द्रेष्काण में सम शुक्र की राशि में भी 4, सप्तमांश में अधिशत्रु बुध की राशि में अतः 1, नवांश में अधिमित्र मंगल की राशि में लेकिन उच्च में है अतः 30, द्वादशांश में शुक्र की सम राशि में है अतः 4, त्रिंशांश में अधिशत्रु बुध की राशि में है। अतः 1 अंक रखा गया। इसी पद्धति से सब ग्रहों का सप्तवर्ग शुभ जाना गया है।

।। सप्तवर्गज शुभचक्रम् ।। (उदाहरण)

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
ग्रह	8	8	30	15	8	22	2
होरा	4	4	4	4	4	1	1
द्रेष्काण	4	2	11	11	4	11	1
सप्तमांश	1	4	11	11	1	15	11

नवांश	30	2	15	11	1	11	11	
द्वादशांश	4	2	22.30	1	1	4	22.30	
त्रिशांश	1	11	11	2	7.30	2	11	
शुभ योग	52	33	104.30	54	26.30	76	59.30	कलादि
अशुभ योग	98	117	45.30	96	123.30	74	90.30	" "

गृह के शुभ को 60 कला व शेष 6 वर्गों के शुभ को 30-30 कला या कुल योग को इनके कुल योग 150′ कला में से घटाने पर अशुभ प्राप्त होता है। मंगल का शुभ योग अधिक होने से वही सर्वाधिक शुभ ग्रह है।

पंचस्विष्टफलं दद्यात् समं षष्ठे ततः परम।
अशुभं त्रिषु विज्ञेयमिति शास्त्रेषु निश्चितम्।। 10।।

उच्च, मूलत्रिकोण, स्वगृह, अधिमित्र व मित्र की राशि ये 5 शुभ हैं। छठा सम है तथा शेष तीन अशुभ हैं। यह शास्त्रों में निश्चित किया गया है।

दिग्बलं दिनफलं तस्य तथा दिनफलं भवेत्।
तयोः फलं शुभं प्रोक्तमशुभं षष्टितश्च्युतम्।। 11।।
शुभेऽधिके शुभं ज्ञेयमशुभं त्वशुभेऽधिके।
दशाफलं नभोगस्य तथा भावफलं द्विज!।। 12।।

दिग्बल व दिनबल के आधार पर शुभाशुभ जानना चाहिए। शुभ को 60 में से घटाने पर अशुभ होता है। शुभ अधिक हो तो शुभ फल की अधिकता व अशुभ अधिक हो तो अशुभ फल की अधिकता रहती है। इस तरह भावगत व दशा का फल समझना चाहिए।

इष्ट कष्ट या शुभाशुभ की स्पष्टता :–

बलैः षड्भिः समेधित्वा बलैक्येन भजेत् पृथक्।
तत्तद्बलफलानि स्युरशुभानि शुभानि च।। 13।।
शुभपापफलाभ्यां च हन्याद् दृष्टिं बलं तथा।
दृष्टी ते शुभ पापाख्ये बलेस्यातां शुभाशुभे।। 14।।

पूर्वागत गृह व होरादि के शुभ बल अशुभ बल को अलग–अलग उनके स्वामियों के शुभाशुभ से गुणा कर षड्बलैक्य का भाग देने से लब्धि शुभ या अशुभ स्पष्ट होती है।

अपने–अपने शुभाशुभ फल से दृष्टि को गुणा करने से शुभाशुभ दृष्टि व बल से गुणा करने से शुभाशुभ बल होता है।

इसका विस्तृत स्पष्टीकरण हम अपने आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य में कर चुके हैं। पाठक वहाँ से अथवा केशवीय पद्धति आदि ग्रन्थों से देख लें। विस्तार भय से यहाँ नहीं दिया जा सका है।

भाव फल विवेक :–

भावानां च फले प्रोक्ते पतीनां च फले उभे।
राशौ शुभ नभोगश्चेद् भावसाधनसम्भवम्।। 15।।
फलं तस्य शुभे युंज्याद् अशुभे वर्जयेत् तथा।
पापश्चेदन्यथा चैवं बले दृष्ट्यां तथैव च।। 16।।

ग्रहों के अनुसार ही भावों के भी शुभाशुभ फल होते हैं। लेकिन भाव का अपना व भावेश का मिलाने पर भाव का पूरा फल है। यदि भाव में कोई शुभ ग्रह हो तो घटाएँ। इसी तरह से शुभाशुभ दृष्टि रहने पर भी उक्त क्रिया करें।

युंज्यादुच्चादिगे खेटे फलं नीचादिके त्यजेत्।
एवं शुभाशुभं ज्ञात्वा जातकस्य फलं वदेत्।। 17।।
अष्टवर्गफलं चैवं स्थाने च करणेऽन्यथा।
राशिद्वयगतेभावे तद्राश्यधिपतेः क्रिया।।18।।
स्थानाधिकेन भावेन भावलाभः प्रकीर्तितः।

यदि किसी भाव में उच्चादिगत ग्रह हो तो भावफल को शुभ में जोड़ें व अशुभ में घटाएँ। नीचगत ग्रह हो तो शुभ में घटाएँ व अशुभ में जोड़ें। अष्टक वर्गो में भी शुभाशुभ फल में क्रमशः जोड़ना व घटाना है।

यदि एक भाव में दो राशि पड़ें (भाव स्पष्टानुसार) तो दोनों राशीशों के अनुसार क्रिया करनी चाहिए। उन दोनों राशियों में जिसका शुभाशुभ अधिक हो तदनुसार फल होगा।

तत्समाने च तद्भावे तदानीं स्थानदान् ग्रहान्।। 19।।
संयोज्यस्थानसंख्याया दलमेतत्समं फलम्।
एवं सखेटभावानां फलं ज्ञेयं शुभाशुभम्।। 20।।

यदि दोनों राशियों में समान रेखाएँ हों तो ग्रह फल का आधा आधा होता है । इस तरह भाव में स्थित ग्रहों से अष्टकवर्ग के द्वारा भावफल जानना चाहिए ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्याया-
मिष्टकष्टाध्यायश्चतुश्चत्वारिंशः ।। 44 ।।

45

।। अथ दशाध्यायः ।।

मैत्रेय उवाच –

महर्षे ! त्वं समर्थोऽसि कृपया करुणानिधे ।
दशाः कति विधाः सन्ति तन्मे कथय तत्वतः ।। 1 ।।

पराशर उवाच–

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दशाभेदाननेकशः ।
दशाः बहुविधास्तासु मुख्या विंशोत्तरी मता ।। 2 ।।
अष्टोत्तरी दशा चाथ कथिता षोडशोत्तरी
द्वादशाब्दोत्तरी चात्र दशा पंचोत्तरी तथा ।। 3 ।।

मैत्रेय बोले– हे महर्षि ! आप सब कुछ बतलाने में समर्थ हैं । कृपया मुझे दशाओं के भेद या प्रकार के विषय में बताएँ ।

पराशर बोले– अब मैं दशाओं के अनेक प्रकारों को कहता हूँ । यद्यपि दशाएँ कई प्रकार की होती हैं, लेकिन सब दशाओं में विंशोत्तरी दशा सर्वमुख्य है ।

अष्टोत्तरी दशा, षोडशोत्तरी दशा, द्वादशाब्दोत्तरी तथा पंचोत्तरी दशा भी होती हैं ।

दशाशतसमा तद्वत् चतुरशीतिवत्सरा ।
द्विसप्ततिसमा षष्टिसमा षट्त्रिंशद् वत्सराः ।। 4 ।।
नक्षत्राधारिकाश्चैताः कथिताः पूर्वसूरिभिः ।
अथ कालदशा चक्रदशा प्रोक्ता मुनीश्वरैः ।। 5 ।।
कालचक्रदशा चान्या मान्या सर्वदशासु या ।
दशाऽथ चरपर्याया स्थिराख्या च दशा द्विज ! ।। 6 ।।

केन्द्राद्या च दशा ज्ञेया कारकादिग्रहोद्भवा ।

ब्रह्मग्रहाश्रितर्क्षाद्या दशा प्रोक्ता तु केनचित् ।। 7 ।।

शतवार्षिकी दशा, चतुरशीति समा, द्विसप्तति समा, षट्त्रिंशद् वर्षा, ये दशाएँ जन्म नक्षत्र (या लग्न नक्षत्र) पर आधारित हैं । ऐसा पूर्व विद्वानों ने कहा है । इसके अतिरिक्त कालदशा, चक्रदशा तथा कालचक्रदशा भी कहते है । यह कालचक्रदशा सब दश भेदों में अपना फल देती हैं ।

चरपर्यायदशा, स्थिरदशा, केन्द्रादिदशा, कारकदशा, ब्रह्मदशा भी किसी ने (जैमिनि) कही हैं ।

माण्डूकी च दशा नाम तथा शूलदशा स्मृता ।

योगार्धजदशा विप्र! दृग्दशा च ततः परम् ।। 8 ।।

त्रिकोणाख्या दशा नाम तथा राशिदशमता ।

योगार्धजदशा विप्र ! विज्ञेया योगिनी दशा ।। 9 ।।

पिण्डांशायुर्दशे विप्र ! नैसर्गिक दशा तथा ।

अष्टवर्गदशा सन्ध्यापाचकाख्ये दशे तथा ।

अन्यास्तारादशाद्याश्च न सर्वाः सर्वसम्मताः ।। 10 ।।

मण्डूकदशा, शूलदशा, योगार्धदशा, दृग्दशा, त्रिकोण दशा, राशि दशा, पंचस्वर दशा, योगिनी दशा, पिण्डायुर्दशा, अंशायुर्दशा, निसर्गदशा, अष्टवर्गदशा, सन्ध्यादशा, पालकदशा भी हैं ।

इसके अतिरिक्त तारादशाएँ भी हैं, लेकिन ये सब दशाएँ सर्वसम्मत नहीं हैं ।

सर्वमुख्य विंशोत्तरी दशा :–

कृत्तिकातः समारभ्य त्रिरावृत्य दशाधिपाः ।

सूर्येन्दू भूमिपुत्रश्च तमो वाक्पति मन्दगौ ।। 11 ।।

बुधकेतू कविश्चैते क्रमाज्ज्ञेया दशाधिपाः ।

कलौ विंशोत्तरी ज्ञेया दशा मुख्या द्विजोत्तम ।। 12 ।।

विंशोत्तरशतं पूर्णमायुः पूर्वमुदाहृतम् ।

दशा समाः क्रमादेषां षड्दशाश्वागजेन्दवः ।

भूपतिर्नवचन्द्राश्च नगचन्द्रा नगा नखाः ।। 13 ।।

कृत्तिका नक्षत्र से गिनकर 9–9 नक्षत्रों की तीन आवृत्तियों में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र की दशाएँ होती हैं । कृत्तिका से जन्म नक्षत्र तक गिनकर दशेश जानना चाहिए । दशेशों के इस क्रम को

आ. चं. भौ. रा. जी. श. बु. के. शु. इस सूत्र द्वारा याद रखते हैं। कलियुग में विंशोत्तरी दशा ही सब में मुख्य है। इसी से फल मिलता है, ऐसा आशय है। इसी दशा में मनुष्य की परमायु के 120 वर्ष पूरे होते हैं। 6. 10. 7. 18. 16. 19. 17. 7. 20 ये इनके क्रमशः दशावर्ष होते हैं।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में जन्म नक्षत्र आर्द्रा तक कृत्तिका से गिना तो 4 संख्या मिली। इसे 9 से भाग दिया तो शेष 4 ही रहा। अतः चौथी राहु की दशा जन्म समय में विद्यमान थी। जन्मनक्षत्र के भयात–भभोग द्वारा अथवा चन्द्रस्पष्ट द्वारा जन्म कालीन दशा का भुक्त वर्षादि व भोग्य वर्षादि जान लेना प्रसिद्ध ही है। सभी नक्षत्राधारित दशाओं में दशा का भुक्त व भोग्य जानना आवश्यक है। एतदर्थ हम अपने 'ज्योतिष सर्वस्व' में लिख चुके हैं।

दशामानं भयातघ्नं भभोगेन ह्रतं फलम्।

दशाया भुक्तवर्षादि भोग्यं मानाद् विशोधितम्।। 14।।

अपने जन्म नक्षत्र के भयात को दशा वर्ष से गुणा कर भयोग से भाग देने पर लब्धि दशा भुक्त होता है। दशा भुक्त को दशा वर्ष में से घटाने पर दशा भोग्य आ जाता है।

इस क्रिया में जन्म स्थान के अक्षांश देशान्तर पर प्राप्त नक्षत्र घटिकाओं से ही गणित करना चाहिए। अन्यथा दशा भोग्य में भेद रहेगा।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में चन्द्र स्पष्ट 2.11°.21′ केतकीय है। इससे क्रिया करने पर दशा भोग्य वर्ष 11.8.4 मिलते हैं। राहु की दशा इतने वर्ष ही रहेगी, ततः गुरु, शनि, बुध आदि की दशाएँ पूर्वोक्त पूरे वर्षों तक रहेंगीं।

अष्टोत्तरी दशा :–

लग्नेशात्केन्द्र कोणस्थे राहौ लग्नं विना स्थिते।
अष्टोत्तरी द्विधा प्रोक्ता रौद्राद्याः कृत्तिकादितः।। 15।।
चतुष्कं त्रितयं तस्मात् चतुष्कं त्रितयं पुनः।
एवं स्वजन्मभं यावद् विगणय्य यथाक्रमम्।। 16।।
लग्ने सग्रहे रौद्राद् विग्रहे कृत्तिकादितः।
सूर्यश्चन्द्रः कुजः सौम्यः शनिर्जीवस्तमो भृगुः।
एते दशाधिपा विप्र ! ज्ञेयाः केतुं विना ग्रहाः।। 17।।
रसाः पंचेन्दवो नागाः सप्त चन्द्राश्च खेन्दवः।
गोऽब्जाः सूर्याः कुनेत्राश्च रव्यादीनां दशा समाः।। 18।।

यदि लग्नेश से 4. 5. 7. 9. 10 भावों में राहु हो तो कुछ आचार्य अष्टोत्तरी दशा का ग्रहण करते हैं। यह अष्टोत्तरी दशा आर्द्रा व कृत्तिका इन दोनों नक्षत्रों से गिनी जाने से दो प्रकार की होती हैं।

लग्न में कोई ग्रह हो तो आर्द्रा से तथा लग्न ग्रह रहित हो तो कृत्तिका से दशा गिननी चाहिए।

इस दशा भेद में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि, गुरु, राहु व शुक्र इस क्रम से आठ दशेश होते हैं। इसमें केतु की दशा नहीं होती है।

6. 15. 8. 17. 10. 19. 12. 21 क्रमशः ये दशा वर्ष होते हैं। इनका योग 108 वर्ष होने से इसे अष्टोत्तरी दशा कहते हैं।

भारतवर्ष में बहुत से प्रदेशों में अष्टोत्तरी दशा को ही मुख्य दशा मानते हैं। आर्द्रादि दशा का विशेष प्रचार है।

दशा साधन हेतु 4. 3. 4. 3. इत्यादि क्रम से आर्द्रा (या कृत्तिका) से पापग्रह में 4 नक्षत्र व शुभ ग्रह में 3 नक्षत्र समझें।

।।अष्टोत्तरी दशाबोधक चक्र।।(आर्द्रादि)

दशेश	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	शनि	गुरु	राहु	शुक्र
वर्ष	6	15	8	17	10	19	12	21
नक्षत्र	आर्द्रा	मघा	हस्त	अनुरा.	पू. षा.	धनिष्ठा	उ. भा.	कृत्तिका
	पुन	पू. फा.	चित्रा	ज्येष्ठा	उ. षा.	शतभिषा	रेवती	रोहिणी
	पुष्य	उ. फा.	स्वाति	मूल	अभि.	पू. भा.	अश्वि.	मृगशि.
	श्लेषा		विशाखा.		श्रवण		भरणी	

कृष्णपक्षे दिवा जन्म शुक्ल पक्षे तथा निशि।
अष्टोत्तरी तदा चिन्त्या फलार्थं च विशेषतः।। 19।।
विंशोत्तरी वदेवात्र भुक्तं भोग्यं च साधयेत्।
एकैकभे चतुर्थांशं तृतीयांशं च कल्पयेत्।। 20।।

कृष्ण पक्ष में दिन में तथा शुक्ल पक्ष में रात में जन्म हो (सन्ध्यासमय में हो तो क्या ?) तो अष्टोत्तरी दशा को फलादेश में लेना चाहिए। विंशोत्तरी दशा की तरह ही यहाँ भी भुक्त–भोग्य साधन करना चाहिए। लेकिन यहाँ विशेषता यह है कि पापग्रह की दशा का चौथाई तथा शुभ ग्रह की दशा का तिहाई ही दशा मान समझकर भुक्त–भोग्य निकालना चाहिए। अभिजित् का विचार भी करना आवश्यक है।

हमारे उदाहरण में जन्म नक्षत्र आर्द्रा है । अतः सूर्य की दशा हुई । सूर्यदशा 6 का चौथाई 18 मास हैं । भयात को जब दशामान से गुणा कर भभोग से भाग देंगे तो दशामान 18 मास माना जाएगा ।

अन्य उदाहरण से विषय को स्पष्ट करते हैं । माना किसी का जन्म नक्षत्र मृगशिरा तथा भयात 30.25 तथां भभोग 60.40 है । मृगशिरा से जन्म दशा शुक्र की है । शुक्र शुभ ग्रह है । अतः इसके दशा वर्षो का तिहाई 21÷3 = 7 वर्ष है । कृत्तिका, रोहिणी मृगशिरा ये तीन नक्षत्र शुक्र दशा के हैं । भयात 30.25 के पल 1825×7 वर्ष (21 नहीं) = 12775 मिला । भभोग 60.40 के पल 3640 हैं । अतः 12775 ÷ 3640 = लब्धि 3 वर्ष है । शेष 1855 को 12 से गुणा किया तो 12600÷3640 = लब्धि 6 मास, शेष 420 को 30 से गुणा किया तो 12600÷3640 = लब्धि 3 दिन हैं । अब 3.6.3 वर्ष + कृत्तिका के 7 वर्ष + रोहिणी के 7 वर्ष = 17 वर्ष 6 मास 3 दिन दशा भुक्त है । 21 वर्ष में से घटाने पर 3 वर्ष 5 मास 27 दिन दशा भोग्य रहा । यह क्रिया विंशोत्तरी की अपेक्षा इसमें विशेष है ।

अभिजित् नक्षत्र के लिए भी उ. षा. नक्षत्र का चौथाई (भभोग ÷ 4) तथा श्रवण भभोग का 15वाँ भाग जोड़कर अभिजित् भभोग मानें तथा उससे क्रिया करें । माना पंचांग से उ. षा. का सम्पूर्ण भभोग 62.48 है । श्रवण का भभोग 63.30 है । तब उ.षा. का अन्तिम चतुर्थांश 62.48÷4= 15.42 है । 62.48 – 15.12 = 47.36 ; यही उ. षा. का भभोग होगा । इसी के चार भाग करके नक्षत्र चरण जानेंगे । 63.30÷15 = 4 घड़ी 8 पल श्रवण का 15 वाँ भाग + उ. षा. का अन्तिम चतुर्थांश 5.12 = 19 घड़ी 20 पल, यही अभिजित् का भभोग होगा । इसी से सब क्रियाएँ करें ।

षोडशोत्तरी दशा :–

कृष्णे चन्द्रस्य होरायां सूर्यहोरागते सिते ।
लग्ने नृणां फलार्थं तु विचिन्त्या षोडशोत्तरी ।। 21 ।।
पुष्यभाज्जन्मभं यावद् गणयित्वा वसुतष्टिते ।
रविर्भौमोगुरुर्मन्दः केतुश्चन्द्रबुधो भृगुः ।। 22 ।।
इति क्रमाद् दशेशाः स्यु राहुं हित्वा द्विजोत्तम ! ।
रुद्रादेकोत्तराः संख्या धृत्यन्तं वत्सराः स्मृताः ।। 23 ।।

कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की होरा में तथा शुक्ल पक्ष में सूर्य की होरा में लग्न हो तो फलादेश में 'षोडशोत्तरी' दशा लेनी चाहिए ।

पुष्य से शुरू कर जन्म नक्षत्र तक गिनकर 8 से भाग देने पर शेष दशा होती है । सूर्य, मंगल, गुरु, शनि, केतु, चन्द्र, बुध, शुक्र ये 8 दशेश क्रमशः

होते हैं। इनमें राहु का ग्रहण नहीं है। अर्थात् राहु की षोडशोत्तरी दशा नहीं होती। 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18 ये क्रमशः 11 से एक एक वर्ष अधिक 18 तक दशा वर्ष होते हैं। इनका योग 116 वर्ष (16 ऊपर 100) होने से सार्थक नाम है।

माना किसी का जन्म मृगशिरा नक्षत्र में कृष्ण पक्ष में 7.14°.45′ लग्न स्पष्ट पर है। तब लग्न में चन्द्रमा की होरा रहेगी। अतः पुष्य से जन्म नक्षत्र मृगशिरा तक गिना तो 25 मिला। 25÷8 = शेष 1 होने से सूर्य की दशा में जन्म है।

।। षोडशोत्तरी दशाबोध ।।

दशेश	सूर्य	मंगल	गुरु	शनि	केतु	चन्द्र	बुध	शुक्र
वर्ष								
नक्षत्र	पुष्य	श्लेषा	मघा	पू.फा.	उ. फा.	हस्त	चित्रा	स्वाति
	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल	पू. षा.	उ.षा.	श्रवण	धनिष्ठा
	शतभिषा	पू. भा.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी
	मृग.	आर्द्रा	पुर्नवसु					

द्वादशोत्तरी दशा :–

नवमांशे तु शुक्रस्य जाते द्वादशोत्तरी।
विचिन्त्या जन्म नक्षत्रादाषौष्णं वसुतष्टिता ।। 24 ।।
सूर्यो गुरुः शिखी ज्ञोऽगुः कुजो मन्दो निशाकरः।
शुक्रहीना दशाधीशा द्विचयात्सप्ततः समाः ।। 25 ।।

यदि जन्म लग्न में शुक्र का नवांश हो तो फलादेश के लिए द्वादशोत्तरी दशा का विचार करना चाहिए।

जन्म नक्षत्र से शुरू कर रेवती तक गिनें। प्राप्त संख्या में 8 का भाग दें। शेष दशेश होता है।

सूर्य, गुरू, केतु, बुध, राहु, मंगल, शनि, चन्द्र, ये आठ (शुक्र रहित) क्रमशः दशेश होते हैं।

सात से शुरू कर 2-2 वर्ष बढ़ाकर इनके दशा वर्ष होते हैं। अर्थात् 7.9.11. 13. 15. 17. 19. 21 यी दशा वर्ष क्रमशः हैं। इनका योग 112 वर्ष होने से द्वादश उत्तर (अधिक) सौ वर्ष वाला 'द्वादशोत्तरी' नाम सार्थक है।

पंचोत्तरी दशा :–

कर्क लग्ने निजार्कांशे दशा पंचोत्तरी गुरौ।
मैत्रभात् जन्मभं यावत् संख्या सप्त विभाजिता।।
शेषाद्दशेशा विज्ञेया राहु–केतू विना द्विज!।। 26।।
रविर्ज्ञोऽर्कसुतोभौमःशुक्रश्चन्द्रोवृहस्पतिः
एकोत्तराच्च विज्ञेया द्वादशाच्चः क्रमात्समा!।। 27।।

गुरु यदि कर्क में एवं कर्क के ही द्वादशांश में हो तो पंचोत्तरी दशा का ग्रहण करना चाहिए। अनुराधा नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर सात का भाग देने से शेष दशापति होता है, इसमें राहु और केतु की दशा नहीं होती।

सूर्य, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, चन्द्रमा, बृहस्पति क्रमशः दशेश होते हैं। बारह से शुरू कर एक-एक वर्ष बढ़ते हुए इनके दशा वर्ष होते हैं। अर्थात् 12 13. 14. 15. 16. 17. 18 क्रमशः दशा वर्ष हैं।

पंचोत्तरी दशा बोध

दशेश	सूर्य	बुध	शनि	मंगल	शुक्र	चन्द्र	गुरु
वर्ष	12	13	14	15	16	17	18
नक्षत्र	अनु.	ज्येष्ठा	मूल	पू. षा.	उत्तराषाढ	श्रवण	घनिष्ठा
	शत.	पूभा.	उ. भा.	रेवती	अश्वि.	भर.	कृति.
	रो.	मृग.	आ.	पुन.	पु.	आश्ले.	मघा.
	पू. फा.	उ. फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	–

कर्क राशि या लग्न में या कर्क द्वादशांश में वृहस्पति होने से पंचोत्तरी दशा जानी जाती है, कर्क लग्न में कर्क का ही द्वादशांश हो केवल तभी पंचोत्तरी दशा की तरह भुक्त भोग्य निकाल लेना चाहिए। जिस दशा में अलग प्रकार होगा तब उसका उल्लेख यथावसर कर दिया जाएगा।

शताब्दी दशा :–

वर्गोत्तमगते लग्ने दशा चिन्त्या शताब्दिका ।
पौष्णभात् जन्मपर्यन्तं गणयेत् सप्तभिर्हरेत् ।
शेषांके रवितोर्ज्ञेया दशा शतसमाभिधा ।। 28 ।।
रविश्चन्द्रो भृगुर्ज्ञश्च जीवो भौमः शनिस्तथा ।
क्रमादेते दशाधीशा बाणा–बाणा दिशो दश ।।
नखाः नखाः खराभाश्च समा ज्ञेया द्विजोत्तम ।। 29 ।।

जन्म लग्न में यदि वर्गोत्तम नवांश हो तो शत वार्षिकी दशा का विचार करना चाहिए, रेवती से जन्म नक्षत्र तक गिनकर सात का भाग देने से शेष दशापति होता है ।

सूर्य चन्द्रमा शुक्र, बुध बृहस्पति मंगल शनि ये सात दशापति हैं । इनके दशा वर्ष क्रमशः 5. 5. 10. 10. 20. 20. 30 होते हैं ।

दशेश	सूर्य	चन्द्रमा	शुक्र	बुध	वृहस्पति	मंगल	शनि
वर्ष	5	5	10	10	20	20	30
नक्षत्र	रेवती	अश्वि.	भर.	कृ.	रो.	मृग.	आर्द्रा
	पुन.	पुष्य	आश्ले.	म.	पू. फा.	उ. फा.	हस्त
	चित्रा	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मूल	पू. षा.
	उ. षा.	श्र.	धनि	शत.	पू.भा.	उ. भा.	–

चतुरशीति समा दशा :–

कर्मेशे कर्मगे ज्ञेया चतुरशीति दशा ।
पवनाज्जन्मभं यावत् या संख्या सप्तभाजिता ।। 30 ।।
शेषे रवीन्दु भौमज्ञा गुरु–शुक्र–शनैश्चराः ।
दशाधीशा क्रमादेषां ज्ञेया द्वादशवत्सराः ।। 31 ।।

दशमेश यदि दशम में हो तो चतुरशीति समाः (चौरासी वर्ष) दशा का साधन करना चाहिए, स्वाति नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनने पर सात का भाग दें, शेष संख्यक दशापति होता है ।

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, क्रमशः दशापति होते हैं और सभी ग्रहों के दशा वर्ष बारह-बारह वर्ष होते हैं।

दशेश	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
वर्ष	12	12	12	12	12	12	12
नक्षत्र	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये	मू.	पू. षा.	उ.षा.
	श्र.	धनि.	शत.	पू. भा.	उ. भा.	रे.	अश्वि.
	भर.	कृ.	रो.	मृग.	आ	पुन.	पु.
	आश्ले.	मघा	पू. फा.	उ.फा.	ह.	चि.	–

द्विसप्तति समा (72) दशा :–

लग्नेशे सप्तमे यस्य लग्ने वा सप्तमाधिपे
चिन्तनीया दशा तस्य द्विसप्ततिसमाभिधाः ।। 32 ।।
मूलाज्जन्मर्क्षपर्यन्तं गणयेदष्टभिर्भजेत्
शेषाद्दशाधिपाः ज्ञेया अष्टौ रव्यादयः क्रमात् ।। 33 ।।
नववर्षाणि सर्वेषां विकेतूनां नभःसदाम्
विंशोत्तरीवदत्राऽपि भुक्तं भोग्यं च साधयेत् ।। 34 ।।

यदि लग्नेश सप्त में अथवा सप्तमेश लग्न में हो तो द्विसप्तति (72)समा वर्षाः का विचार करना चाहिए, मूल नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर आठ का भाग दें, शेष संख्या के अनुसार क्रमशः दशेश होते हैं।

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु ये क्रमशः दशेश होते है, सब के दशा वर्ष नौ-नौ होते हैं, विंशोत्तरी दशा की तरह ही यहाँ भुक्त भोग्य साधन करना चाहिए।

द्विसप्ततिसमा दशा चक्र

दशेश	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि,	राहु
वर्ष	9	9	9	9	9	9	9	9
नक्षत्र	मू.	पू. षा.	उ.षा.	श्र.	धनि.	शत.	पू. भा.	उ. भा.
	रे.	अश्वि.	भर.	कृ.	रो.	मृग.	आर्द्रा	पुन.
	पु.	श्ले.	म.	पू.फा	उ. फा.	ह.	चि	स्वा.
	वि.	अनु	ज्ये					

षष्ठि वर्षादशा :–

यदार्को लग्नराशिस्थश्चिन्त्या षष्ठि समा तदा ।
दास्रात् त्रयं चतुष्कं च त्रयं चेति पुनः पुनः ।। 35 ।।
गुर्वर्क भूसुतानां च दशा दश दशाब्दकाः ।
ततः शशिज्ञशुक्रार्क पुत्रागूनां रसाब्दकाः ।। 36 ।।

जब लग्न में सूर्य हो तो षष्ठिवर्षा दशा का विचार करना चाहिए । अश्विनी नक्षत्र से शुरू कर क्रमशः तीन नक्षत्र फिर चार, फिर तीन, और पुनः चार इस प्रकार नक्षत्रों को स्थापित करने से क्रमशः वृहस्पति, सूर्य, मंगल, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, शनि व राहु दशेश होते हैं ।

इनमें वृहस्पति सूर्य व मंगल के दशावर्ष दश व शेष चन्द्र बुध, शुक्र, शनि, राहु के छः-छः वर्ष होते हैं ।

इस दशा में भुक्त भोग्य साधन के लिए अष्टोत्तरी दशा के समान क्रिया करनी चाहिए । अर्थात् चार नक्षत्रों में दशा के चार भाग व तीन नक्षत्रों में बराबर तीन भाग करके उसे त्रिभाग या चतुर्थ भाग से भुक्त भोग्य साधन करेंगे । विशेष क्रिया पीछे अष्टोत्तरी दशा साधन में देखें ।

दशेश	वृह	सूर्य	मंगल	चन्द्रमा	बुध	शुक्र	शनि	राहु
वर्ष	10	10	10	6	6	6	6	6
नक्षत्र	अश्वि.	रो.	पु.	पू.फा.	स्वा.	ज्ये.	अभि.	शत.
	भर.	मृ.	श्ले.	उ.फा.	वि.	मू.	श्र.	पू. भा.
	कृ	आर्द्रा	मघा.	ह.	अनु.	पू.षा.	धनि.	ड. भा.
		पुन		चि.		उ.षा.		रे.

षटत्रिंशत्वर्षा दशा :–

लग्ने दिनेऽर्कहोरायां चन्द्रहोरागते निशि ।
षट्त्रिंशत्समा ज्ञेया दशा वै द्विज सत्तम ! ।। 37 ।।
श्रवणाज्जन्मभं यावत् संख्या वसु विभाजिता ।
शेषे चन्द्र रवीज्यारबुधार्किभृगुराहवः ।
क्रमशः दशेशाः विज्ञेया एकाद्येकोत्तराः समाः ।। 38 ।।

दिन में सूर्य की होरा हो और रात्रि में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तो षट्त्रिंशत् (36) वर्षीया दशा देखनी चाहिए। श्रवण नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर आठ का भाग दें तो क्रमशः शेष संख्यानुसार चन्द्रमा सूर्य बृहस्पति मंगल बुध शनि शुक्र व राहु दशेश होते हैं, सब ग्रहों के दशावर्ष एक से प्रारम्भ कर क्रमशः दशा वर्ष होंगे।

षट्विंशत्वर्ष दशा चक्र

दशेश	चन्द्र	सूर्य	गुरु	मंगल	बुध	शनि	शुक्र	राहु
वर्ष	1	2	3	4	5	6	7	8
नक्षत्र	श्र.	धनि.	श.	पू. भा.	उ. भा.	रे.	अश्वि.	भर.
	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पुन.	पु.	श्ले	म.
	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	अनु	ज्ये
	मू.	पू.षा.	उ. षा.	–	–	–	–	–

अथ काल दशा साधन :–

सूर्यस्याऽर्धास्ततः पूर्वं परस्तादुदयादपि।
पंच पंच घटी सन्ध्या दश नाडी प्रकीर्तिता।। 39।।
सन्ध्याद्वयं च विंशत्याः नाडिकाभिः प्रकीर्तितम्।
दिनस्य विंशतिर्घट्यः पूर्णसंख्या उदाहृताः।। 40।।
निशाया मुग्धसंज्ञाश्च घटिका विंशतिश्च या।
सूर्योदये च या सन्ध्या खण्डाख्या दशनाडिका।। 41।।
अस्तकाले च या सन्ध्या सुधाख्या दशनाडिका
पूर्णमुग्ध घटीमाने द्विगुणे तिथिभिर्भजेत्।। 42।।
तदा खण्ड सुधा घट्योश्चतुर्घ्ने तिथिभिर्भजेत्।
लब्धं वर्षादिकं मानं सूर्यादीनां खचारिणाम्।। 43।।
एकादि– संख्यया निघ्नं दशामानं पृथक् क्रमात्।
राहु–केतु युतानां च नवानां कालसंज्ञकम्।। 44।।

सूर्योदय व सूर्यास्त से पूर्व पाँच घटी व बाद की पाँच घटी इस तरह दस–दस घटी की प्रातः व सायं सन्ध्याएँ होती हैं।

इस तरह दोनों सध्याएँ मिलकर 20 घटी होती हैं।

दिन की शेष 20 घटियों का नाम पूर्णा व रात्रि की शेष 20 घटियों का नाम मुग्धा है।

सूर्योदय की सन्ध्या का नाम खण्डा है और सायंकालीन सन्ध्या का नाम सुधा है।

पूर्णा या मुग्धा में जन्म हो तो उसकी गत घटियों को दो से गुणा कर पन्द्रह से भाग दें और खण्डा या सुधा में जन्म हो तो 4 से गुणा कर पन्द्रह से भाग दें। लब्धि वर्ष होती है।

इस लब्धि को सूर्यादि ग्रहों की क्रम संख्या (9. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9.) से क्रमशः गुणा करने पर सूर्य से केतु पर्यन्त ग्रहों के दशामान प्राप्त हो जाते हैं।

सामान्यतः 30 घटी का दिन व 30 घटी की रात्रि मानकर उक्त विभाग किया गया है। यदि दिनमान 30 घटी से कम या अधिक हो तो सूर्योदय सूर्यास्त से दो घण्टे पूर्व व बाद तक सन्ध्या काल मानकर शेष दिन या रात्रि को अलग वर्ग रख लेना चाहिए, सूर्योदय की दश घटी या चार घण्टे का नाम खण्डा है, अस्तकालीन दश घटियों की सन्ध्या का नाम सुधा है, शेष रात्रि का नाम मुग्धा व शेष दिन का नाम पूर्णा है। यह ध्यान रखें। यह यहाँ दशोपयोगी परिभाषाएँ हैं, सार्वत्रिक नहीं हैं।

दिनशेष या रात्रिशेष में 2 से गुणा करके एवं दोनों सन्ध्याओं में 4 से गुणा कर 15 का भाग देंगे।

उदाहरणार्थ– किसी का जन्म सायं 5 बजकर 15 मिनट पर और उस दिन सूर्यास्त 5-50 पर होता है, सूर्योदय 7-17 पर हो तो 25 घटी इष्टकाल है अतः सायं सन्ध्या में जन्म है।

दिनमान 26-23 – 5 = 21-23 इष्टकाल से सायं सन्ध्या आरम्भ हो गई है, सायं सन्ध्या की गत घटी ज्ञान के लिए इष्टकाल 25 घटी – 21-23 = 3-37 सायं सन्ध्या का गत समय हुआ। तब 3-37×4 = 14-28÷15 = 0.5.18×1 = 0.5.18 सूर्य की काल दशा हुई। इसी प्रकार सब ग्रहों की काल दशा जान लेनी चाहिए।

अथ चक्र दशा :–

रात्रौ लग्नाश्रिताद्राशेर्दिने लग्नेश्वराश्रितात्।

सन्ध्यायां वित्तभावस्थान्नेया चक्रदशा बुधैः ।।45।।

दशवर्षाणि राशीनामेकैकस्य दशामितिः ।

क्रमाच्चक्रस्थितानां च विज्ञातव्या द्विजोत्तम! ।। 46 ।।

रात्रि में जन्म हो तो लग्न राशि से शुरू करके व दिन में जन्म है तो लग्नेश की राशि से शुरू करके व सन्ध्या समय जन्म है तो द्वितीय भाव गत राशि से प्रारम्भ कर क्रमशः सब राशियों की दशा होती है। सभी राशियों की दशा का मान दस–दस वर्ष होता है।

हमारे उदाहरण में कर्क लग्न में सायं सन्ध्या में जन्म है। अतः द्वितीय भावस्थ सिंह राशि से सभी राशियों की दशाएँ होंगी।

।।चक्र महादशा ।।

दशेश	सिं.	क.	तु.	वृ.	धनु	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.
दशा वर्ष	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10
जन्म सं. 1956	1966	1976	1986	1996	2005	2016	2026	2036	2046	2056	2066	2076

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां दशाध्यायः पंचचत्वारिंशः ।। 45 ।।

46

।।अथ कालचक्रदशाध्यायः ।।

कालचक्र दशा साधन :–

पराशर उवाच–

अथऽहं शंकरं नत्वा कालचक्रदशां ब्रुवे ! ।

पार्वत्यै कथिता पूर्वं सादरं या पिनाकिना ।। 1 ।।

तस्याः सारं समुद्धृत्य तवऽग्रे द्विजनन्दन ! ।
शुभाशुभं मनुष्याणां यथा जानन्ति पण्डिताः ।। 2 ।।

पराशर बोले :–

हे मैत्रेय ! मैं शंकर जी को प्रणाम करके अब काल चक्र दशा को कहता हूँ, जो पहले शंकर जी ने पार्वती जी से कही थी। उसी का सारांश यहाँ प्रस्तुत है, इससे मनुष्यों के सभी शुभाशुभ फलों का ज्ञान हो जाता है।

द्वादशारं लिखेच्चक्रं तिर्यगूर्ध्वसमानकम् ।
गृहा द्वादश जायन्ते सव्याऽसव्ये द्विधा द्विज ! ।। 3 ।।
द्वितीयादिषु कोष्ठेषु राशीन् मेषादिकान् लिखेत् ।
एवं द्वादशराश्याख्यं कालचक्रमुदीरितम् ।। 4 ।।

बारह-बारह खड़ी व तिरछी रेखाओं के दो चक्र सव्य व अपसव्य नामक लिखें। दूसरे कोष्ठक से शुरू करके मेषादि बारह राशियों को लिख दें। उसके बाद आगे बताई जाने वाली विधि से नक्षत्रों का न्यास करें, इस प्रकार बारह राशियों वाला काल चक्र निर्मित हो जाता है।

नक्षत्र न्यास की विधि :–

अश्विन्यादित्रय सव्यमार्गे चक्रे व्ययस्थितम् ।
रोहिण्यादित्रयं चैवमपसव्ये व्यवस्थितम् ।। 5 ।।
एवमृक्षविभागं हि कृत्वा चक्रं समुद्धरेत् ।
अश्विन्यदिति हस्तर्क्ष मूलप्रोष्ठपदाभिधाः ।। 6 ।।
वह्निवातादि–विश्वर्क्षरेवत्यःसव्यतारकाः ।
एतद्दशोडुपादानामश्विन्यादौ च वीक्षयेत् ।। 7 ।।

अश्विनी आदि तीन नक्षत्र सव्य चक्र में पुनः रोहिणी आदि तीन नक्षत्र अपसव्य चक्र में लिखें। पश्चात् आगे के तीन-तीन नक्षत्र सव्य व अपसव्य चक्र में लिखते चलें, इस तरह सव्य चक्र में पन्द्रह व अपसव्य चक्र में बारह नक्षत्र आ जाते हैं।

अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वा भाद्रपद, कृत्तिका, श्लेषा, स्वाति, उ. षाढ़ व रेवती ये सव्य चक्र के नक्षत्र हैं। इन नक्षत्रों के चरणों को अश्विनी नक्षत्र के चरणों के समान ही देखना चाहिए।

देह जीवनिर्णय विधि :–

देहजीवौ कथं वीक्ष्यौ नक्षत्राणां पदेषु च ।
विशदं तत्प्रकारं च मैत्रेय, कथयाम्यहम् ।। 8 ।।

हे मैत्रेय ! नक्षत्रों के चरणों में देह व जीव का विचार कैसे होगा इसका निर्णय विस्तारपूर्वक कहता हूँ।

देहजीवौ मेषचापौ दास्राद्यचरणस्य च ।
मेषाद्याश्चापपर्यन्तं राशिपाश्च दशाधिपाः ।। 9 ।।

अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण में मेष राशि देह व धनु राशि जीव होती है तब मेष से धनु तक नौ राशियों के स्वामी क्रमशः दशापति होते हैं।

मृगयुग्मौ देहजीवौ द्वितीयचरणे स्मृतौ ।
क्रमात् मिथुनपर्यन्तं राशिपाश्च दशाधिपाः ।। 10 ।।

अश्विनी के द्वितीय चरण में मकर राशि देह व मिथुन राशि जीव होती है तथा मकर से मिथुन तक सभी राशीश क्रमशः दशेश होते हैं।

दास्रादिदशताराणां तृतीयचरणे द्विज ।
गौर्देहो मिथुनं जीवो द्वयेकार्केशदशाङ्कपा ।। 11 ।।
क्वाक्षि रामर्क्षनाथाश्च दशाधिपतयः क्रमात् ।
अश्विन्यादि दशोडूनां चतुर्थचरणे तथा ।। 12 ।।
कर्कमीनौ देहजीवौ कर्कादि नवराशिपाः ।
दशाधीशाश्च विज्ञेया नवैते द्विजसत्तम ! ।। 13 ।।

अश्विनी से मघा नक्षत्र तक के तृतीय चरण में वृष राशि देह और मिथुन राशि जीव होती है तथा वृष से प्रारम्भ कर विपरीत गणना से 2. 1. 12. 11. 10. 9. 1. 2. 3 इन राशियों के स्वामी क्रमश दशेश होते हैं।

इसी प्रकार अश्विनी आदि दश नक्षत्रों के चौथे चरण में कर्क राशि देह व मीन राशि जीव होती है, कर्क से मीन तक क्रमशः राशियों के स्वामी दशापति होते हैं।

भरणी आदि पाँच नक्षत्रों का देह जीव :–

यमेज्यचित्रातोयर्क्षाऽहिर्बुध्न्याः सव्यतारकाः ।
एतत्पंचोडुपादानां भरण्यादौ विचिन्तयेत् ।। 14 ।।

भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़ उत्तरा भाद्रपद ये पाँच नक्षत्र भरणी के समान ही देह व जीव वाले होते हैं ।

याम्य प्रथमपादस्य देहजीवावलिर्झषः ।
नागागर्तु–पयोधीषु रामाक्षीन्द्वर्कभेश्वरर : ।। 15 ।।

भरणी के प्रथम चरण में वृश्चिक राशि देह व मीन जीव होती है ।
8. 7. 6. 4. 5. 3. 2. 1. व 12 राशियों के स्वामी क्रमशः दशेश होते हैं ।

याम्य द्वितीय पादस्य देहजीवौ घटाङ्गने ।
रुद्रदिङ्नन्द–चन्द्राक्षि–रामाब्धीष्वङ्गभेश्वरा16।। ।

भरणी नक्षत्र के दूसरे चरण में कुम्भ राशि देह व कन्या जीव होती है । 11. 10. 1. 2. 3. 4. 5. 6. के स्वामी क्रमशः दशापति होते हैं ।

याम्य तृतीय पादस्य देहजीवौ तुलाङ्गने ।
सप्ताष्टाङ्गदिगीशार्क–गजाद्रिरसभेश्वराः ।।17 ।।

भरणी के तृतीय चरण में तुला राशि देह व कन्या जीव होती है तथा 7. 8. 9. 10. 11. 12. 8. 7. 6 इन राशियों के स्वामी दशापति होते हैं ।

कर्को देहो धनुर्जीवो याम्यतुर्य पदे द्विज ! ।
वेद वाणाग्नि नेवेन्दु–सूर्येशाशाङ्कभेश्वराः ।। 18 ।।

भरणी के चतुर्थ चरण में कर्क राशि देह व धनु जीव होती है । इसमें 4. 5. 3. 2. 1. 12. 11. 10. 9 इन राशियों के स्वामी दशेश होते हैं ।

सव्यमेवं विजानीयादसव्यं कथयाम्यहम् ।
द्वादशारं लिखेच्चक्रं पूर्ववद् द्विजसत्तम ! ।। 19 ।।
द्वितीयादिषु कोष्ठेषु वृश्चिकाद् व्यस्तमालिखेत् ।
रोहिणी च मघाद्वीश ! कर्णश्चेति चतुष्टयम् ।। 20 ।।
उक्तं चाऽसव्यनक्षत्रं पूर्वाचार्यैर्द्विजोत्तम ! ।
एतद् वेदोडुपादानां रोहिणीवन्निरीक्षयेत् ।। 21 ।।

इस प्रकार यह मैंने सव्य चक्र बताया है । अब अपसव्य चक्र बताता हूँ ।

पहले की तरह लिखे गए बारह कोष्ठक वाले अपसव्य चक्र में द्वितीय कोष्ठक से प्रारम्भ कर विपरीत क्रम से 8. 7. 6. आदि राशियों को लिखें ।

इस चक्र में रोहिणी, मघा, विशाखा व श्रवण इन चार नक्षत्रों में देह जीव का निर्णय रोहिणी के समान समझें।

रोहिण्यादि पदे देहजीवौ कर्किधनुर्धरौ।

नवदिग्रुद्रसूर्येन्दूनेत्राग्नीष्वधिभेश्वराः।।22।।

रोहिणी के प्रथम चरण में कर्क देह व धनु जीव है इसमें 9. 10. 11. 12. 1. 2. 3. 5. 7. इन राशियों के स्वामी क्रमशः दशेश होते हैं।

धातृ द्वितीयचरणे देहजीवौ तुलस्त्रियौ।

अङ्गांगवसु–सूर्येश–दिगंके वसुजूकपाः।।23।।

रोहिणी के द्वितीय चरण में तुला राशि देह व कन्या जीव है, इसमें 6. 7. 8. 12. 11. 10. 9. 8. 8 इन राशियों के स्वामी दशापति होते हैं।

तृतीय चरणे ब्राह्मे देहजीवौ घटाङ्गने।

षड्बाणाब्धिगुणाक्षीन्दु–नन्द दिगरुद्रभेश्वराः।।24।।

रोहिणी के तृतीय चरण में कुम्भ राशि देह व कन्या जीव होती है, इसमें 6. 5. 4. 3. 2. 1. 9. 10. 11 राशियों के स्वामी दशापति होंगे।

रोहिण्यन्तपदे देह–जीवावलिझषौ स्मृतौ।

सूर्येन्दु–द्विगुणेष्वब्धि–तर्क–शैलाष्ट–भेश्वराः।। 25।।

रोहिणी के चतुर्थ चरण में वृश्चिक राशि देह व मीन जीव होती है, इसमें 12. 1. 2. 3. 5. 4. 1. 7. 8 राशियों के स्वामी दशापति होते है।

चान्द्ररौद्र–भगार्यम्ण–मित्रेन्द्र–वसुवारुणम्।

एतत्ताराष्टकं विज्ञैर्विज्ञेयं चान्द्रवत् क्रमात्।।26।।

मृगशिरा, आर्द्रा, पू. फा., उ. फा., अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा व शतभिषा इन नक्षत्रों में मृगशिरा के समान देह जीव समझना चाहिए।

कर्को देहो झषो जीवो मृगाद्यचरणे मृगे।

त्रिद्वयेकाङ्क दिशीशार्क– चन्द्राक्षि भवनाधिपाः।।27।।

मृगशिरा के प्रथम चरण में कर्क राशि देह व मीन जीव होती है, विपरीत क्रम से मीन से कर्क तक यानि 12. 11. 10. 9. 8. 6. 5. 4 इनके स्वामी क्रमशः दशेश होते हैं।

देहजीवौ नक्रयुग्मे तृतीयचरणे मृगे।

त्रिबाणाब्धि–रसागाष्ट–सूर्येश–दशमेश्वराः।। 28।।

मृगशिरा के द्वितीय चरण में वृष राशि देह व मिथुन जीव होती है। इसनें 3. 2. 1. 9. 10. 11 12. 1. 2 राशियों के स्वामी देशेश होते हैं।

मेषो देहो धनुर्जीवो चतुर्थ चरणे मृगे।
व्यस्ताच्चापादि–मेषान्त राशिपाश्च दशाधिपाः।। 29।।

मृगशिरा के चतुर्थ चरण में मेष राशि देह व धनु राशि जीव होती है, इसमें विपरीत क्रम से धनु से मेष तक क्रमशः 9. 8. 7. 6. 5. 4. 3. 2. 1. राशियों के स्वामी दशापति होते हैं।

पराशर उवाच –

अपसव्यगणे त्वेवं देहजीवदशादिकम्।
पार्वत्यै शम्भुना प्रोक्तमिदानीं कथितं मया।। 30।।

पराशर बोले–

इस प्रकार अपसव्य नक्षत्रों के चरणों में देह, जीव व दशापतियों के क्रमों को जैसा महादेव जी ने पार्वती को कहा था उसी तरह मैंने यहाँ कहा है।

मैत्रेय उवाच–

केषां च कति वर्षाणि दशेशानां महामुने ! ?
दशाया भुक्तभोग्याद्ये तदारम्भं प्रचक्ष्व मे।। 31।।

मैत्रेय बोले–

हे महामुनि ! किस दशापति की कितने वर्ष की दशा होती है दशा का आरम्भ कैसे जाना जाता है व उसमें भुक्त भोग्य वर्ष कैसे जाने जायँगे यह सब मुझे कृपा कर बताएँ।

कालचक्र दशा के वर्ष

पराशर उवाच–

भूतैकविंशगिरयो नवदिक्षोडशाब्धयः।
सूर्यादीनां दशाब्दाः स्यू राशीनां स्वामिनो वशात्।। 32।।

पराशर बोले–

5. 21. 7. 9. 10. 16. 4 ये वर्ष क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के दशा वर्ष होते हैं। जिस राशि का जो स्वामी है, उसी राशि स्वामी ग्रह के वर्ष दशा में समझने चाहिए।

काल चक्र दशा बोध

राशि	मेष.	वृ.	मि.	कर्क	सिंह	क.	तुला	वृ.	धनु	म.	कुम्भ	मीन
स्वामी	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.
वर्ष	5	16	9	21	5	9	16	7	10	4	4	10

दशारम्भ ज्ञान :–

नरस्य जन्मकाले वा प्रश्नकाले यदंशकः ।
तदादि–नवराशीनामब्दास्तस्यायुरुच्यते ।। 33 ।।
सम्पूर्णायुर्भवेदादावर्धमंशस्य मध्यके ।
अंशान्ते परमं कष्टमित्याहुरपरे बुधाः ।। 34 ।।

मनुष्य जन्म या प्रश्न के समय जो अंश (चरण) वर्तमान हो उसी से प्रारम्भ करके पूर्वोक्त 9 राशियों के जितने वर्ष हों उतने ही वर्ष मनुष्य की पूर्णायु होती है। बहुत से विद्वानों ने कहा है कि अंश के प्रारम्भ में पूर्णायु अंश के मध्य में मध्यायु व अंश के अन्त में अल्पायु व परम कष्ट प्राप्त होता है।

नक्षत्र चरण (अंश) ज्ञान :–

ज्ञात्वैवं स्फुटसिद्धान्त राश्यंशं गणयेद् बुधः ।
अनुपातेन वक्ष्यामि तदुपायमतः परम् ।। 35 ।।

इसी सिद्धान्त के अनुसार नक्षत्रों के अंशों के अनुसार आयु जाननी चाहिए। अब मैं अनुपात द्वारा अंश साधन की विधि बताता हूँ।

गततारास्त्रिभिर्भक्ताः शेषं चैव चतुर्गुणम् ।
वर्तमान पदेनाढ्यं राशीनामंशको भवेत् ।। 36 ।।

गत नक्षत्र की संख्या में 3 का भाग देकर शेष को चार से गुणा करें। इस संख्या में वर्तमान नक्षत्र के वर्तमान चरण की संख्या भी जोड़ लें। इस प्रकार जो संख्या प्राप्त हो उसी से गिनने पर क्रमशः वही अंश राशि समझें। सव्य में मेष से सीधी, अपसव्य में वृश्चिक से गणना करें।

मेषे शतं वृषेऽक्षाष्टौ मिथुने त्रिगजाः समा ।

कर्कटेऽङ्ग गजाः प्रोक्तास्तावन्तस्तत् त्रिकोणयोः ।। 37 ।।

मेषांश में सौ, वृषांश में 85, मिथुन में 83, कर्कांश में 86 वर्ष, पूर्णायु होती है, इन राशियों की त्रिकोण राशियों में इतने ही वर्ष पूर्णायु रहती है, उदाहरणार्थ– आर्द्रा नक्षत्र के द्वितीय चरण में किसी का जन्म हो तो गत नक्षत्र संख्या 5÷3 = शेष 2×4 = 8+2 (वर्तमान चरण संख्या) = 10 संख्या मिली । अतः जन्म समय में दसवाँ अंश वर्तमान था । इसका पूर्णायु मान 83 वर्ष है । आर्द्रा अपसव्य नक्षत्र होने से वृश्चिक से उल्टे चल कर दसवाँ अंश कुम्भ का है ।

दशारम्भ ज्ञान :–

जनो यत्रांशके जातो गतनाडीपलादिभिः ।

तदंशस्य हताः स्वाब्दाः पंचभूमिविभाजिताः ।। 38 ।।

एवं महादशारम्भो भवेदंशाद्यथा क्रमात् ।

गणयेन्नवपर्यन्तं तत्तदायुः प्रकीर्तितम् ।। 39 ।।

मनुष्य का जिस अंश में जन्म हो उस चरण की गत घटी पलों से दशा वर्षो को गुणा करके 15 का भाग दें । लब्धि भुक्त वर्षादि होते हैं, इन्हीं भुक्त वर्षों को सम्पूर्ण वर्षमान में से घटाने पर भोग्य वर्ष शेष रहते हैं । इन्हीं भोग्य वर्षो से विंशोत्तरी दशा की तरह अगली राशियों की उक्त क्रमानुसार महादशा लिखनी चाहिए ।

ध्यान रखें, अगली-अगली राशि दशाओं की गणना अपसव्य नक्षत्रों में जीव से देह तक व सव्य नक्षत्रों में देह से जीव तक करनी चाहिए । आवश्यक होने पर पुनरावृत्ति कर सकते हैं ।

दशा का मुक्त भोग्य जानने का प्रकार आगे सोदाहरण बताया जा रहा है । सव्य व अपसव्य में गणना प्रकार पहले बता चुके हैं । अश्विनी से तीन–तीन नक्षत्र क्रमशः सव्य व अपसव्य होते हैं अतः अपने से प्रत्येक सातवाँ सातवाँ नक्षत्र क्रमशः सव्य व अपसव्य होता जाता है । सव्य नक्षत्रों में जन्म हो तो पूर्वोक्त देह राशि से जीव तक उक्त क्रमानुसार तथा अपसव्य नक्षत्रों में जीव से देह तक कहे गए क्रमानुसार गणना होती है । तीन नक्षत्रों में 4×3=12 राशियों के अंश बीत जाते हैं ।

।। सव्य काल चक्र बोध ।।

सव्य नक्षत्र	चरण	देह	राशि व दशा वर्ष								जीव	देह यति	जीव यति	वर्ष योग	अंश
अश्विनी पुनर्वसु	I	मेष 7	वृष 16	मिथुन 9	कर्क 21	सिंह 5	कन्या 9	तुला 16	वृश्चिक 7		धनु 10	मंगल	गुरू	100	मेषांशं
हस्त	II	मकर 4	कुम्भ 4	मीन 10	वृश्चिक 7	तुला 16	कन्या 9	कर्क 21	सिंह 5		मिथुन 9	शनि	बुध	85	वृषांशं
मूल पू. भाद्र	III	वृष 16	मेष 7	मीन 10	कुम्भ 4	मकर 4	धनु 10	मेष 4	वृष 16		मिथुन 9	शुक्र	बुध	83	मिथुनशं
	IV	कर्के 16	सिहं 5	कन्या 9	तुला 16	वृश्चिक 7	धनु 10	मकर 7	कुम्भ 4		मीन 10	चन्द्र	गुरू	86	कर्कांशं
भरणी	I	वृश्चिक 7	तुला 16	कन्या 9	कर्क 21	सिंह 5	मिथुन 9	वृष 16	मेष 7		मीन 10	मंगल	गुरू	100	सिंहांशं
पुष्य चित्रा	II	कुम्भ 4	मकर 4	धनु 10	मेष 4	वृष 16	मिथुन 9	कर्क 21	सिंह 5		कन्या 9	शनि	बुध	85	कन्यांशं
पूर्वाषाढ	III	तुला 16	वृश्चिक 7	धनु 10	मकर 7	कुम्भ 4	कन्या 10	वृश्चिक 7	तुला 16		कन्या 9	शुक्र	बुध	83	तुलांशं
उ भाद्र	IV	कर्कं 21	सिंह 5	मिथुन 9	वृष 16	मेष 7	कन्या 10	कुम्भ 4	मकर 4		धनु 10	चन्द्र	गुरू	86	वृश्चिकांशं
कृत्तिका	I	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक		धनु	मंगल	गुरू	100	धनुशं
श्लेषा स्वाती	II	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह		मिथुन	शनि	बुध	85	मकरांशं
उ. षा.	III	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष		मिथुन	शुक्र	बुध	83	कुम्भांशं
रेवती	IV	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ		मीन	चन्द्र	गुरू	86	मीनांशं

।। अपसवा काल चक्र योध ।।

अनसव्य नक्षत्र	चरण	जीवेश	राशि व दशा वर्ष									देहेश	वर्ष योग	अंश
रोहिणी	I	गुरू	धनुं 10	मकर 4	कुम्भ 4	मीन 10	मेष 7	वृष 16	मिथुन 9	सिंह 5	कर्कं 21	चन्द्र	86	वृश्चिकांश
मघा	II	बुध	कन्या 9	तुला 16	वृश्चिक 7	मीन 10	कुम्भ 4	मकर 4	धनु 10	वृश्चिक 7	तुला 16	शुक्र	83	तुलांश
विशाखा	III	बुध	कन्या 9	सिंह 5	कर्क 21	मिथुन 9	वृष 16	मेष 7	धनु 10	मकर 4	कुम्भ 4	मीन	85	कन्यांश
श्रवण	IV	गुरू	मीन 10	मेष 7	वृष 16	मिथुन 9	सिंह 5	कर्क 21	कन्या 9	तुला 16	वृश्चिक 7	मंगल	100	सिंहांश
मृगशिरा	I	गुरू	मीन 10	कुम्भ 4	मकर 4	धनु 10	वृश्चिक 7	तुला 16	कन्या 9	सिंह 5	कर्क 21	चन्द्र	86	कर्कांश
पू. भा.	II	बुध	मिथुन 9	वृष 16	मेष 7	धनु 10	मकर 4	कुम्भ 4	मीन 10	मेष 7	वृष 16	शुक्र	83	मिथुनांश
अनुराधा	III	बुध	मिथुन 9	सिंह 5	कर्क 21	कन्या 9	तुला 16	वृश्चिक 7	मीन 10	कुम्भ 4	मकर 4	शनि	85	वृषांश
धनिका	IV	गुरू	धनु 10	वृश्चिक 7	तुला 16	कन्या 9	सिंह 5	कर्क 21	मिथुन 9	वृष 16	मेष 7	मंगल	100	मेषांश
भार्द्रा	I	गुरू	मीन 10	कुम्भ 4	मकर 4	धनु 10	वृश्चिक 7	तुला 16	न्या 9	सिंह 5	कर्क 21	चन्द्र	86	मीनांश
उ.षा.	II	बुध	मिथुन 9	वृष 16	मेष 7	धनु 10	मकर 4	कुम्भ 4	मीन 10	मेष 7	वृष 16	शुक्र	83	कुम्भांश
ज्येष्ठा	III	बुध	मिथुन 9	सिंह 5	कर्क 21	कन्या 9	तुला 16	वृश्चिक 7	मीन 10	कुम्भ 4	मकर 4	शनि	85	मकरांश
सततिपा	IV	गुरू	धनु 10	वृश्चिक 7	तुला 16	कन्या 9	सिंह 5	कर्क 21	मिथुन 9	वृष 16	मेष 7	मंगल	100	धनुरंश

पदस्य भुक्त घट्याद्यैः स्वाब्दमानं हतं ततः ।
भभोगाङ्घ्रिहृतं भुक्तं भोग्यं मानाद् विशोधितम् ।। 40 ।।

वर्तमान नक्षत्र चरण की भुक्त घटियों को वर्ष संख्या से गुणा करके उसमें भभोग के चौथाई (औसत मान से 60÷4=15 घड़ी) से भाग दें। लब्धि वर्षादि भुक्त होंगे भुक्त को दशामान से घटाने पर शेष भोग्य वर्षादि होता है।

भुक्त भोग्य साधन की अन्य विधि –

चन्द्रांकांश कला भुक्ताः स्वाब्दमानहता हृतः ।
द्विशत्या भुक्तवर्षाद्यं भोग्यं ज्ञेयं ततो बुधैः ।। 41 ।।

जन्म समय में चन्द्रमा जिस नवांश में स्थित हो उस नवांश की गत कलाओं को स्वदशा वर्ष से गुणा कर गुणनफल में 200 का भाग दें। लब्धि भुक्त दशा वर्षादि होंगे। भुक्त को सम्पूर्ण दशा में से घटाने पर भोग्य होता है।

हमारे उदाहरण में चन्द्रमा आर्द्रा नक्षत्र में है। चन्द्र स्पष्ट 2.11°.21′ है। इसकी कलाएँ 4281 हैं। इन्हें 800 कला से भाग दिया तो लब्धि 5 शेष 281′ कलाएँ हैं। अतः पाँच नक्षत्र गत हैं तथा वर्तमान नक्षत्र की 281 कलाएँ बीत चुकी हैं। एक चरण 200 कला का होने से आर्द्रा के प्रथम चरण का मान 200 कला घटाने पर आर्द्रा के द्वितीय चरण की गत कला 81 हैं। 81 कलाओं को वर्षमान 83 से गुणा किया तो 6723 संख्या मिली। इसे 200 से भाग दिया तो भुक्त वर्षादि 33 वर्ष 7 मास 11 दिन मिला।

आर्द्रा अपसव्य नक्षत्र है। अतः जीव से देह तक दशाएँ होंगीं। अतः चक्र से जीव राशि मिथुन के वर्ष 9+ वृष के 16+मेष के 7+धनु के 10 = 42 वर्ष हुए। पूर्वागत भुक्त वर्षादि जितनी दशाओं के वर्षों में से घट सकें, वहीं तक जोड़ना होता है। 42 – 33 – 0.7.11 = 8.4.19 वर्ष गुरु या धनु का भोग्य रहा। अथवा 9 + 16 + 7 = 32 वर्ष को पूर्वागत वर्षों में से घटाने पर 1.7.11 वर्षादि गुरु का भुक्त है। गुरु या धनुदशा के 10 वर्ष में से 1. 7. 11 घटाने पर पुन 8. 4. 19 वर्ष ही गुरु का भोग्य मिला।

।। काल चक्र दशा ।। (उदाहरण)

दशेश	गुरु	शनि	शनि	गुरु	मंगल	शुक्र	बुध	शुक्र	मंगल
दशा राशि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष
वर्ष	8	4	4	10	7	16	9	16	7
मास	4								
दिन	19								
2012	2021	2025	2029	2039	2046	2062	2071	2087	2094
9	2	2	2	2	2	2	2	2	2
सूर्य									
11	00	0	0	0	0	0	0	0	0

देह जीव गणना का निश्चय :–

सव्याख्ये प्रथमांशो यः स देह इति कथ्यते ।
अन्त्यांशो जीवसंज्ञः स्याद् विलोममपसव्यके ।। 42 ।।
देहादिं गणयेत् सव्ये जीवादिमपसव्यके ।
एवं विज्ञाय दैवज्ञस्ततस्तत्फलमादिशेत् ।। 43 ।।

सव्य नक्षत्रों में प्रथम अंश देह व अन्तिम जीवसंज्ञक होता है। अपसव्य नक्षत्रों में प्रथमांश जीव व अन्तिमांश देहसंज्ञक होता है।

इसी कारण सव्यचक्र में देहादि से व अपसव्य में जीवादि से गणना करके दैवज्ञ को फलादेश करना चाहिए।

काल चक्र की गति के भेद :–

कालचक्रगतिः प्रोक्ता त्रिधा पूर्वमहर्षिभिः ।
मण्डूकाख्या गतिश्चैका मर्कटीसंज्ञका परा ।। 44 ।।
सिंहावलोकनाख्या तु तृतीया परिकीर्तिता ।
उत्प्लुत्य गमनं विज्ञा मण्डूकाख्यं प्रचक्षते ।। 45 ।।

पृष्ठतो गमनं नाम मर्कटीसंज्ञकं तथा ।

बाणाच्च नवपर्यन्तं गतिः सिहावलोकनम् ।। 46 ।।

प्राचीन महर्षियों ने कालचक्र गति तीन प्रकार की कही है । मण्डूका, मर्कटी व सिंहावलोकन ये उनके नाम हैं ।

एक राशि छोड़कर राशि में जाना 'मण्डूक गति । उल्टे क्रम से पीछे की ओर की राशियों में जाना 'मर्कटी गति' एवं परस्परा (9.5) त्रिकोण राशि में जाना 'सिंहावलोकन गति' कहलाती है । इनकी दशाएँ प्रायः अशुभ होती हैं । फलकथन में इनका उपयोग है ।

कन्याकर्कटयोः सिंहयुग्मयोर्मण्डुकी गतिः ।

कर्किकेसरिणोरेवं कथ्यते मर्कटीगतिः ।। 47 ।।

मीनवृश्चिकयोश्चापमेषयोः सैंहिकी गतिः ।

इति संचिन्त्य विज्ञेयं कालचक्र दशाफलम् ।। 48 ।।

मण्डूकी गति का उदाहरण–जैसे–कन्या से कर्क में आना अथवा सिंह से मिथुन में आना । सिंह से कर्क में आना मर्कटी गति कहलाता है । कर्क से वृश्चिक में या मेष से धनु में अर्थात् परस्पर नवम पंचम राशि में आना सिहावलोकन गति कहलाती है । इस प्रकार कालचक्र की गति का विचार करके ही फलादेश करना चाहिए ।

मण्डूकगति काले हि सव्ये बन्धुजने भयम् ।

पित्रोर्वा विष–शस्त्राग्नि ज्वर–चौरादिजं भयम् ।। 49 ।।

केसरीयुग्ममण्डूके मातुर्मरणमादिशेत् ।

स्वमृतिं राजभीतिं वा सन्निपातभयं वदेत् ।। 50 ।।

सव्य चक्र की दशा में यदि एक राशि छोड़कर राशियों की दशा अर्थात् मण्डूक गति हो तो बन्धुओं व मित्रों को कष्ट, माता–पिता को कष्ट व स्वयं को विष–भय, शस्त्र–अग्नि ज्वर–चोरभय आदि होता है ।

यदि सिंह से मेष की दशा आए तो ऐसे में माता की मृत्यु, स्वयं की मृत्यु, राज्यमद सन्निपात (मस्तिष्क ज्वर) का भय होता है ।

मर्कटी गमने सव्ये धन–धान्य–पशुक्षयः ।

पितुर्मरणमालस्यं तत्समानां च वा मृतिः ।। 51 ।।

सव्य चक्र में मर्कटी गति की दशा हो तो ऐसी स्थिति में धन–धान्य की हानि, पशु (चौपाया धन) हानि, पिता की मृत्यु, आलस्य अथवा पिता के समान (ताऊ, चाचा, श्वसुर) लोगों की मृत्यु होती है ।

सव्ये सिंहावलोके तु पशुभीतिर्भवेन्नृणाम् ।

सुहृत्स्नेहादिनाशश्च समानजन पीडनम् ।। 52 ।।

पतनं वापि कूपादौ विषशस्त्राग्निजंभयम् ।

वाहनात् पतनं वापि ज्वरार्तिः स्थाननाशनम् ।। 53 ।।

सव्य चक्र में ही सिंहावलोकन गति की दशा हो तो मनुष्यों को पशुधन अर्थात् वाहनादि की हानि होती है। मित्रों से मित्रता में कमी और अपने वर्ग के लोगों को पीड़ा होती है।

कूप अथवा गढ्ढे आदि में गिरने का भय, विष–शस्त्र आदि का भय, वाहन से गिरना, बुखार से पीड़ा व स्थान हानि, (पद प्रतिष्ठा आवास या व्यावसायिक स्थान की हानि) होती है।

मण्डूकगमने वामे स्त्री–सुतादि–प्रपीडनम्।
ज्वरं च श्वापदाद् भीतिं वदेत् विज्ञः पदच्युतम्।। 54।।
मर्कटीगमने वापि जलभीतिं पदच्युतिम्।
पितुर्नाशं नृपक्रोधं दुर्गारण्याटनं वदेत्।। 55।।
सिंहावलोकने वामे पदभ्रंशः पितुर्मृतिः।
तत्समानमृतिर्वाऽपि फलमेव विचिन्तयेत्।। 56।।

अपसव्य चक्र में मण्डूक गति वाली राशियों की दशा में स्त्री-पुत्र आदि परिवारजनों को पीड़ा, ज्वरभय, कुत्ते आदि से कष्ट व पद नाश होता है।

अपसव्य चक्र में ही मर्कटी गति की दशा में जल भय, पदनाश, पिता को मृत्युतुल्य कष्ट, राजभय और गुप्त स्थानों पर छिपने का संकट आ जाता है।

इसी प्रकार अपसव्य चक्र में सिंहावलोकन की दशा हो तो पद हानि, पिता या पिता–तुल्य लोगों की मृत्यु होती है।

राशि विशेष से दशा फल :–

मीनात्तु वृश्चिके याते ज्वरो भवति निश्चितः।
कन्यातः कर्कटे याते भ्रातृबन्धुविनाशनम्।। 57।।
सिंहात्तु मिथुने याते स्त्रिया व्याधिर्भवेद्ध्रुवम्।
कर्कटाच्च हरौ याते वधो भवति देहिनाम्।। 58।।
पितृबन्धुमृतिं विद्याच्चापान्मेषे गते पुनः।
भयं पाप खगैर्युक्ते शुभखेटयुते शुभम्।। 59।।

मीन से वृश्चिक की दशा आए तो ज्वर पीड़ा होती है, कन्या से कर्क की दशा आए तो भाइयों व मित्र वर्ग का नाश होता है, सिंह से मिथुन की दशा आए तो स्त्री को रोग होता है, कर्क से वृश्चिक की दशा आए तो मनुष्यों की मृत्यु होती है।

दशा राशि यदि पापग्रह से युक्त हो तो विशेष अशुभ फल होता है। यदि शुभ ग्रह से युक्त हो तो शुभ फल होता है।

दिशानुसार फल भेद :–

शुभं वाऽप्यशुभं वापि, कालचक्रदशाफलम्।
राशिदिग्भागतो वापि पूर्वादिदिग्नभश्चरात्।। 60।।

तद्दिग्विभागे वक्तव्यं तद्दशासमये नृणाम् ।

यथोपदेश मार्गेण सर्वेषां द्विजसत्तम ! । । 61 । ।

हे मैत्रेय ! काल चक्र दशा में जो भी शुभ या अशुभ फल हो तो उसका विशेष निश्चय राशियों व ग्रहों की दशानुसार करना चाहिए ।

जिस राशि की दशा हो उसकी दिशा में आगे कहे जाने वाली विधि से फल का निश्चय करना चाहिए ।

कन्यातः कर्कटे याते पूर्वभागे महत्फलम् ।

उत्तरं दिशमाश्रित्य शुभा यात्रा भविष्यति । । 62 । ।

सिंहात्तु मिथुने याते पूर्वभागं विवर्जयेत् ।

कार्यान्तेऽपि च नैर्ऋत्यां सुखं यात्रा भविष्यति । । 63 । ।

कर्कटात् सिंहभे याते कार्यहानिश्च दक्षिणे ।

दक्षिणां दिशमाश्रित्य प्रत्यगागमनं भवेत् । । 64 । ।

कन्या से कर्क राशि की दशा आए तो पूर्व देश (दिशा) में विशेष शुभ फल मिलता है और उत्तर दिशा की ओर यात्रा लाभदायक होती है ।

सिंह से मिथुन की दशा में पूर्व में हानि होती है और बिना कार्य के भी नैर्ऋत्य कोण की यात्रा सुखदायक होती है ।

कर्क से सिंह की दशा में दक्षिण दिशा में कार्य हानि होती है, दक्षिण से पश्चिम की ओर लौटना पड़ता है ।

मीनात्तु वृश्चिके याते उदग् गच्छति संकटम् ।

चापाच्च मकरे याते सङ्कटे जायते ध्रुवम् । । 65 । ।

चापान्मेषे तु यात्रायां व्याधिर्बन्धो मृतिर्भवेत् ।

वृश्चिके च सुखं सम्पत् स्त्रीप्राप्तिश्च द्विजोत्तम । । 66 । ।

सिंहाच्च कर्कटे याते पश्चिमां वर्जयेद्दिशम् ।

शुभयोगे शुभं ब्रूयादशुभे त्वशुभं फलम् । । 67 । ।

मीन से वृश्चिक राशि की दशा में उत्तर दिशा में संकट होता है, धनु से मकर की दशा आने पर उत्तर दिशा में संकट निश्चय से आता है ।

धनु से मेष की दशा में यात्रा में रोग, बन्धन अथवा मृत्यु होती है, धनु से वृश्चिक राशि की दशा में सुख–सम्पति व स्त्री लाभ होता है ।

सिंह से कर्क की दशा में पश्चिम की यात्रा स्थगित करनी चाहिए । इन सभी राशियों में पाप ग्रह होने पर अशुभ फल विशेष होता है, शुभ ग्रह रहने पर कम अशुभ फल होगा ।

कालचक्र के अंश का फल :–

शूरश्चौरश्च मेषांशे लक्ष्मीवांश्च वृषांशके ।

मिथुनांशे भवेज्ज्ञानी कर्कांशे नृपतिर्भवेत् । । 68 । ।

सिंहांशे राज्यमान्यश्च कन्यांशे पण्डितो भवेत् ।
तुलांशे राजमन्त्री स्याद् वृश्चिककांशे च निर्धनः ।। 69 ।।
चापांशे ज्ञान सम्पन्नो मकरांशे च पापकृत् ।
कुम्भांशे च वणिक्कर्मा मीनांशे धन-धान्यवान् ।। 70 ।।

यदि कालचक्र मेष नवांश में हो तो मनुष्य शूर–वीर होता है । वृष नवांश में धनवान्, मिथुन राशि के नवांश में ज्ञानी और कर्क के नवांश में मनुष्य राजा होता है ।

सिंह राशि के नवांश में राजपक्ष से पूज्य एवं कन्या के नवांश में विद्वान्, तुला नवांश में मन्त्री, वृश्चिक नवांश में निर्धन, धनु नवांश में ज्ञानी, मकरांश में पाप कार्य करने वाला होता है ।

कुम्भांश में व्यापार करने वाला या व्यापारिक बुद्धि युक्त और मीनांश में धन–धान्य से युक्त रहता है ।

देह जीव राशिगत ग्रह फल :–

देहो जीवोऽथवा युक्तो रविभौमार्कि राहुभिः ।
एकैकयोगे मृत्युः स्याद् बहुयोगे तु का कथा ।। 71 ।।
क्रूरैर्युक्ते तनौ रोगं जीवे युक्ते महद्भयम् ।
आधी रोगो भवेद् द्वाभ्यामपमृत्युस्त्रिभिर्भवेत् ।। 72 ।।
चतुर्भिर्मृतिमापन्नो देहे जीवे शुभैर्युते ।
युगपद् देहजीवौ च क्रूरग्रहयुतौ तदा ।। 73 ।।

यदि देह राशि या जीव राशि सूर्य मंगल शनि व राहु में से एक से भी युक्त हो तो इन राशियों की दशा में अथवा अल्पायु में मृत्यु होती है । यदि इन चारों में से कई ग्रह उस राशि पर हों तब निश्चय से मृत्यु होती है ।

सामान्यतया देह राशि कई क्रूर ग्रहों से युक्त हो तो मनुष्य को बड़ा रोग होता है और जीव राशि में पाप ग्रह हों तो महान भय होता है । दो पाप ग्रहों से युक्त हो तो व्यक्ति को चिन्ता व मानसिक शोक, तीन से युक्त हो तो अपमृत्यु और चार पापग्रहों से किसी प्रकार से देह व जीव युक्त हो तो निश्चय से मृत्यु होती है ।

राजचौरादिभीतिश्च मृतिश्चापि न संशयः ।
बह्नि बाधा रवौ ज्ञेया क्षीणेन्दौ च जलाद्भयम् ।। 74 ।।
कुजे शस्त्रकृतापीड़ा वायुबाधा बुधे भवेत् ।
गुल्मबाधा शनौ ज्ञेया राहौ केतौ विषाद् भयम् ।। 75 ।।
देह जीव गृहे यातो बुधो जीवोऽथवा भृगुः ।
सुखसम्पत्कराः सर्वे रोगशोकविनाशनाः ।। 76 ।।
मिश्रग्रहैश्च संयुक्ते मिश्रं फलमवाप्नुयात् ।

देह जीव राशि के पाप युक्त रहने पर राजदण्ड का भय और मृत्यु भी हो सकती है ।

देह जीव में यदि सूर्य हो तो अग्नि से पीड़ा, क्षीण चन्द्रमा हो तो पानी से भय, मंगल हो तो हथियार की चोट, पापी, बुध हो तो वायु विकार होता है।

शनि यदि इन राशियों में हो तो जिगर तिल्ली आदि का रोग और राहु केतु हो तो शरीर में किसी भी प्रकार से विषैला संक्रमण होता है।

देह जीव राशि में शुभ बुध गुरु या शुक्र हो तो सब प्रकार की सुख सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं और मनुष्य रोग शोक से रहित रहता है। मिश्रित ग्रहों से मिश्रित फल ही समझना चाहिए।

पापक्षेत्रदशा काले देहजीवौ तु दुःखितौ।
शुभ क्षेत्र दशाकाले शुभं भवति निश्चितम्।। 77।।
शुभयुक्ता शुभक्षेत्रदशा मिश्रफला स्मृता।
क्रूरयुक्तशुभक्षेत्रदशा मिश्रफला तथा।।78।।

पापग्रह की राशि की दशा हो तो मनुष्य का तन व मन दुःखी रहता है। इसके विपरीत शुभ ग्रह की राशि की दशा हो तो मनुष्यों को शुभ फल ही मिलता है।

शुभ ग्रह से युक्त लेकिन पाप ग्रह की राशि की दशा हो या पाप ग्रह से युक्त शुभ ग्रह से युत राशि की दशा हो तो शुभाशुभ मिश्रित फल ही होते हैं।

भावगत राशि के अनुसार दशा फल :–

जनानां जन्मकाले तु यो राशिस्तनुभावगः।
तस्य चक्रदशाकाले देहारोग्यं सुखं महत्।। 79।।
शुभे पूर्णसुखं, पापे देहे रोगादि सम्भवः।
स्वोच्चादिगतखेटाढ्ये राज्यमानधनाप्तयः।। 80।।

जन्म लग्न की राशि की दशा हो तो मनुष्य को शरीर सुख, मन में उत्साह सम्पत्तियाँ व निरोगता रहती है। लेकिन यह राशि शुभ ग्रह की हो तो पूरा शुभ फल और पाप ग्रह की राशि हो तो कम शुभ फल व रोगोत्पत्ति की सम्भावना होती है।

जन्म लग्न में यदि कोई ग्रह स्वक्षेत्री या उच्चगत हो तो इसकी दशा में राज्य लाभ, सम्मान व धन लाभ होता है।

धनभावे च यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि।
तदा सुभोजनपुत्रस्त्रीसुखं च धनाप्तयः।। 81।।
विद्याप्तिर्वाक्पटुत्वं च सुगोष्ठ्या कालयापनम्।
शुभर्क्षे फलमेवं स्यात् पापभे फलमन्यथा।। 82।।

जन्म समय में जो राशि धन भाव में स्थित हो उसकी कालचक्र दशा में उत्तम भोजन की प्राप्ति, स्त्री–पुत्र व परिवार का सुख व धन लाभ होता है। इसके साथ ही विद्या लाभ, वाणी की कुशलता और आनन्ददायक प्रसंगों में व्यस्तता रहती है। शुभ ग्रह की राशि हो तो उक्त फल पूर्ण मिलता है। अन्यथा उसमें यथावसर कमी हो जाती है।

तृतीयभावराशेस्तु कालचक्रदशा यदा।
तदा भ्रातृसुखं शौर्यं धैर्य चापि महत्सुखम्।। 83।।
स्वर्णाभरणवस्त्राप्तिः सम्मानं राजसंपदि।
शुभर्क्षे फलमेवं स्यात् पापर्क्षे फलमन्यथा।। 84।।

तृतीय भावस्थ राशि की कालचक्र दशा में भ्रातृ सुख, शूरता, पराक्रम, बुद्धि, मन में धैर्य, कोई बड़ा सुख, धन व वस्त्र का लाभ अथवा सोने की प्राप्ति (साक्षात्–धन, सोने के गहने) या स्वर्ण पदक मिलता है।

शुभ ग्रह की राशि होने पर सम्पूर्ण फल और पाप ग्रह की राशि रहने से आनुपातिक रूप से कम फल होता है।

सुख भावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
तदा बन्धुसुखं भूमि–गृहराज्य–सुखाप्तयः।। 85।।
आरोग्यमर्थलाभश्च वस्त्रवाहनजं सुखम्।
शुभर्क्षे शोभनं ज्ञेयं पापभे फलमन्यथा।। 86।।

चतुर्थभावस्थ राशि की दशा हो तो भाई बन्धुओं का सुख, सम्पत्ति का लाभ, घर की प्राप्ति और राज्य सुख मिलता है। स्वास्थ्य लाभ, धन लाभ और खाने, पहिनने का सुख होता है। यह शुभ ग्रह की राशि हो तो पूर्ण सुख अन्यथा स्वबुद्धि से कम सुख समझना चाहिए।

सुतभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
सुतस्त्रीराज्यसौख्याप्तिरारोग्यमित्रसंगतः।। 87।।
विद्या बुद्धि यशो लाभो धैर्यं च विक्रमोदयः।
शुभ राशौ शुभं पूर्णं पापर्क्षे फलमन्यथा।। 88।।

पंचम भावगत राशि की दशा हो तो पुत्र–स्त्री–राज्य, सुख, नीरोगता, मित्रों का सहयोग, विद्या बुद्धि व यश का लाभ, पराक्रम व प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। यदि यह राशि शुभ ग्रह की हो तो पूर्ण शुभ तथा पाप राशि हो तो मिश्रित फल होता है।

रिपुभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
तदा चौरादिभूपाग्निविषशस्त्रभयं महत्।। 89।।
प्रमेहगुल्मपाण्ड्वादिरोगाणामपि संभवः।
पापर्क्षे फलमेव स्याद् शुभर्क्षे मिश्रमादिशेत्।। 90।।

षष्ठ भावगत राशि की कालचक्रदशा में चोर–भय, राजा की ओर से भय, अग्नि, विष या शस्त्र से आघात का भय, प्रमेह रोग, (मधुमेह आदि) जिगर तिल्ली बढ़ना, कामला (पीलिया) आदि रोगों की सम्भावना होती है। यदि यह राशि शुभ ग्रह की हो या बलवान शुभ ग्रहों से युत हो तो अशुभ फल की सम्भावना नगण्य होती है।

जायाभावगतर्क्षस्य कालचक्र दशा यदा।
तदा पाणिग्रहः पत्नी–पुत्रलाभादिकं शुभम्।। 91।।
कृषि–गो–धन–वस्त्राप्तिर्नृपपूजा महद्यशः।
शुभराशौ फलं पूर्णं पापराशौ च तद्दलम्।। 92।।

सप्तम भावगत राशि की कालचक्रदशा में सम्भव होने पर विवाह योग, स्त्री पुत्र आदि का लाभ, परिवार–सुख, सम्पत्ति–धन–वाहन व व्यवसाय में वृद्धि, राज–सम्मान व खूब यश होता है। शुभ राशि या शुभ युक्त होने पर पूर्ण फल प्राप्त होता है और पाप राशि होने पर बलाबलानुसार कम शुभ फल होता है।

मृत्युभावस्थितर्क्षस्य कालचक्रदशा तदा।
स्थाननाशं महद्दुःखे बन्धुनाशं धनक्षयम्।। 93।।
दारिद्र्यमानविद्वेषमरिभीतिं च निर्दिशेत्।
पापराशौ फलं पूर्णं शुभ राशौ च तद्दलम्।। 94।।

अष्टम स्थान में स्थित राशि की दशा में स्थान (कार्यालय, आवास या पदवी) का नाश, महान् दुःख, बन्धु–बान्धवों को कष्ट, धननाश, दरिद्रता, अन्न से अरुचि, द्वेषमाव में वृद्धि, शत्रु से भय होता है।

यदि उक्त राशि पाप ग्रह का क्षेत्र हो तो विशेष अशुभ तथा शुभ क्षेत्र हो तो उसका आधा फल होता है।

धर्मभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
तदा पुत्रकलत्रार्थ–कृषिगेहसुखं वदेत्।। 95।।
सत्कर्मधर्मसंसिद्धि महज्जनपरिग्रहम्।
शुभराशौ शुभं पूर्णं पापराशौ चतद्दलम्।। 96।।

यदि नवम भावगत राशि की कालचक्रदशा हो तो पुत्र, स्त्री, धन, कृषि, गृह, जायदाद आदि का सुख होता है।

समी सत्कार्यों की सफलता, बड़े लोगों की कृपा होती है। यदि यह राशि शुभ ग्रह का क्षेत्र हो तो पूरा शुभ अन्यथा आधा शुभ (मिश्रित) फल होता है।

कर्मभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
राज्याप्तिर्भूपसम्मानं पुत्रदारादिजं सुखम्।। 97।।
सत्कर्मफलमैश्वर्यं सद्गोष्ठ्या कालयापनम्।
शुभराशौ फलं पूर्णं पापराशौ च मिश्रितम्।। 98।।

दशम भावगत राशि की काल चक्र दशा हो तो राज्य लाभ, राज सम्मान, स्त्री पुत्रादि का सुख, सत्कार्य, ऐश्वर्य, सत्संगति में समय व्यतीत होता है। शुभ राशि होने पर पूर्ण शुभ तथा पाप राशि होने पर मिश्रित फल होता है।

लाभभावस्थितर्क्षस्य कालचक्र दशा यदा ।

पुत्रस्त्रीबन्धुसौख्याप्तिर्भूपप्रीतिर्महत्सुखम् ।। 99 ।।

धनवस्त्राप्तिरारोग्यं सतां संगश्च जायते ।

शुभराशौ फलं पूर्णं पापराशौ च खण्डितम् ।। 100 ।।

लाभ भाव में स्थित कालचक्र की दशा हो तो पुत्र–लाभ, स्त्री–सुख, बन्धु-बान्धवों का सुख, राजा से सम्बन्ध, महान् सुख, धन–वस्त्र आदि भौतिक सुखों की प्राप्ति एवं सज्जनों की संगति होती है। यदि यह राशि शुभ क्षेत्र हो तो पूर्ण सुख एवं पाप राशि होने पर मिश्रित फल होता है।

व्ययभावस्थितर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा ।

उद्योगभंगमालस्यं देहपीडां पदच्युतिम् ।। 101 ।।

दारिद्र्यं कर्मवैकल्यं तथा व्यर्थ व्ययं वदेत् ।

पापराशौ फलं पूर्णं शुभराशौ च तद्दलम् ।। 102 ।।

द्वादशभावगत राशि की दशा रहने पर परिश्रम के पूरे फल का अभाव, शरीर में आलस्य, शरीर कष्ट, पद हानि, दरिद्रता, असफलता और व्यर्थ में धन व्यय होता है। पाप राशि की दशा हो तो पूरा अशुभ फल और शुभ राशि की दशा हो तो मिश्रित फल होता है।

निष्कर्ष यह है कि 6-8-12 भावों में स्थित राशि की दशा अनिष्ट कारक होती है। यदि 6-8-12 भावगत राशि पापग्रह की हो, पापग्रह या नीचाधिपति ग्रह से युक्त हो तो विशेष अशुभ होती है। यदि इन्हीं राशियों की दशा, मण्डूक या मर्कटी या सिंहावलोकन वाली हो तो अति अशुभ तथा शेष भावगत राशियों की दशा प्रायः शुभ होती है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां कालचक्रदशाध्यायः षट्चत्वारिंशः ।। **46** ।।

।। अथ विभिन्न दशाअध्यायः ।।

चर दशा :–

लग्नादि व्यय पर्यन्तं भानां चरदशां ब्रुवे ।
तस्मात् तदीशपर्यन्तं संख्यामत्र दशां विदुः ।। 1 ।।
मेषादि–त्रित्रिभिर्ज्ञेयंपदमोजपदे–क्रमात् ।
दशाब्दानयने कार्या गणना व्युत्क्रमात् समे ।। 2 ।।

लग्न से लेकर बारह भाव तक स्थित राशियों की चर दशा होती है। राशि से लेकर राशि स्वामी तक जितने भाव बनें उतने ही वर्ष की चर दशा होती है। इसी कारण प्रत्येक कुण्डली में चर दशा के वर्ष अलग–अलग हो जाएँगे।

सभी राशियों में वर्ष गणना के लिए विषम वृत्ति अर्थात् विपरीत क्रम से गणना होगी। उदाहरणार्थ, सम राशियों में मीन कुम्भ मकर इत्यादि क्रम से गणना होगी, लेकिन विषम राशियों में सीधे क्रम से गणना की जाएगी।

वृश्चिकादिपतौ द्वौ च केतु–भौमौ स्मृतौ द्विज ! ।
शनि–राहू च कुम्भस्य स्वामिनौ परिकीर्तितौ ।। 3 ।।

इस प्रसंग में वृश्चिक राशि के मंगल व केतु दो स्वामी माने जाएँगे और कुम्भ के शनि व राहु ये दो स्वामी होंगे।

द्विनाथक्षेत्रयोरत्र क्रियतेनिर्णयोऽधुना ।
द्वावेवाधिपती विप्र ! युक्तौ स्वर्क्षे स्थितौ यदि ।। 4 ।।
वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकादि चिन्तयेत् ।
एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः ।। 5 ।।
तदऽन्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत् ।
द्वावप्ययन्यर्क्षगतौ चेत् तयोर्मध्ये च यो बली ।। 6 ।।

अब दो स्वामियों वाली राशि की दशा के वर्षो का निर्णय कहता हूँ।

यदि दोनों स्वामी ग्रह अपनी ही राशि में अर्थात् मंगल केतु वृश्चिक में और शनि राहु कुम्भ में हों तो बारह वर्ष की दशा मानी जाएगी।

यदि एक स्वामी ग्रह दूसरी राशि में व दूसरा अन्य राशि में हो तो अन्यत्र स्थित ग्रह के आधार पर दशा वर्ष निर्धारित होंगे।

यदि दोनों ही स्वामी स्वक्षेत्र में न हों तो दोनों में से बलवान् ग्रह का निर्णय करके बली ग्रह तक गिनकर दशा वर्ष जानेंगे।

बलवान् ग्रह का निर्णय करने के लिए निसर्ग बल तथा अन्य युक्त ग्रह को बलवान् माना जाएगा। ग्रहों के बल का निर्णय आगे बताया जा रहा है।

तत एव दशा ग्राह्या क्रमात् वोत्क्रमतो द्विज ! ।
बलस्यात्र विचारे स्यादग्रहात् सग्रहो बली ।। 7 ।।
द्वावेव सग्रहौ तौ चेद् बली तत्राधिक ग्रहः ।
ग्रहयोगसमानत्वे ज्ञेयं राशिबलाद् बलम् ।। 8 ।।
ज्ञेयाश्चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमतो बलशालिनः ।
राशिसत्व समानत्वे बहुवर्षो बली भवेत् ।। 9 ।।

दशा वर्ष की गणना के लिए क्रम व उत्क्रम की गणना की बात पहले कह चुके हैं। बल विचार के लिए ग्रह रहित से ग्रह युक्त बलवान् माना जाता है।

यदि दोनों ही विचारणीय ग्रह अन्य ग्रहों से युक्त हों तो जिसके साथ अधिक ग्रह होंगे उसे बलवान् समझा जाएगा।

यदि दोनों स्थानों पर समान संख्यक ग्रह हों तो राशि बल से निर्णय करेंगे।

चर राशि की अपेक्षा स्थिर एवं स्थिर की अपेक्षा द्विस्वभाव राशि बलवान् समझी जाएगी।

यदि दोनों का राशिबल भी समान हो तो अधिक वर्ष वाला ग्रह बलवान् होता है, अर्थात् जिस ग्रह तक गिनने तक अधिक वर्ष आयें उसी से दशा वर्षों का निर्णय होगा।

यह व्यवस्था केवल कुम्भ व वृश्चिक राशि के लिए ही है।

उक्त नियम का अपवाद :–

एकः स्वोच्चगतश्चान्यः परत्र यदि संस्थितः ।
ग्रह्णीयात् उच्च खेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै ।। 10 ।।

यदि एक स्वामी अपने उच्च में तथा दूसरा अन्यत्र स्थित हो तब अधिक वर्ष वाले नियम को छोड़कर उच्चस्थ ग्रह तक ही गिनकर दशा वर्ष जानेंगे।

उच्च नीच से वर्ष शोधन :–

उच्चखेटस्थ सद्भावे वर्षमेकं विनिक्षिपेत् ।
तथैव नीचखेटस्य वर्षमेकं विशोधयेत् ।। 11 ।।

उच्च ग्रह से दशा वर्ष का निर्णय होने पर दशा वर्षों में एक वर्ष और जोड़ना चाहिए, तथा नीचगत ग्रह की वर्ष संख्या में से एक वर्ष कम करके दशा वर्ष समझे जाएँगे।

क्रम गणना का अपवाद :–

क्रमाद् वृषे वृश्चिकके च व्युत्क्रमात् कुम्भ सिंहयोः ।
एवं सर्व समालोच्य जातकस्य फलं वदेत् ।। 12 ।।

वृष व वृश्चिक में क्रम गणना एवं कुम्भ सिंह में विलोम गणना होगी । अर्थात् वृष व वृश्चिक राशि सम होने से यहाँ विलोम गणना प्राप्त थी ; लेकिन क्रम गणना होगी । यह सामान्य नियम का अपवाद हुआ । इसी प्रकार सिंह कुम्भ विषम होने से क्रम गणना प्राप्त होने पर विलोम गणना होगी । यह दूसरा अपवाद हुआ ।

इस दशा में प्रत्येक कुण्डली में दशा वर्ष चलायमान अर्थात् अलग–अलग होते हैं । इसी कारण इसे चर दशा कहते हैं ।

राशि स्वामी अपनी राशि से जिस भाव में हो उससे एक कम वर्ष दशा के होंगे । अर्थात् द्वितीय भाव में हो तो एक वर्ष, तृतीय में दो वर्ष, चतुर्थ में तीन वर्ष इत्यादि प्रकार से समझें ।

अपनी राशि में स्थित ग्रह के बारह वर्ष माने जाएँगे और द्वादशस्थ ग्रह से ग्यारह वर्ष समझें ।

स्वर्क्षसंस्थितखेटस्य वर्षाणि द्वादशैव ।
धनस्थे चैक वर्षं तु तृतीये वत्सरद्वयम् ।। 13 ।।
वर्ष त्रयं चतुर्थे च चतुर्वर्षिणी पंचमे ।
षष्ठे स्युः पंचवर्षाणि षड्वर्षाणि सप्तमे ।। 14 ।।
एवं क्रमात् व्ययस्थे तु रुद्रवर्षात्मिका दशा ।
एवं लग्नादि राशीनां भाधिपान्त्तं विकल्पयेत् ।। 15 ।।

स्वराशि में राशि स्वामी हो तो बारह वर्ष, राशि से दूसरे भाव में होने से एक वर्ष, तीसरे भाव में दो वर्ष, चौथे भाव में तीन वर्ष, पंचम भाव में चार वर्ष, षष्ठ भाव में पांच वर्ष, सप्तम भाव में 6 वर्ष इत्यादि क्रम से द्वादश भाव में राशि स्वामी रहने पर ग्यारह वर्ष की दशा होती है । इस प्रकार लग्नादि राशियों में राशि से राशीश तक गिनकर दशा वर्षों की कल्पना करनी चाहिए ।

दशाक्रम का निर्धारण :–

क्रमादुत्क्रमतोयऽपिधर्मभावपदक्रमात् ।
लग्नराशिंसमारभ्य विज्ञश्चैवं दशां नयेत् ।। 16 ।।

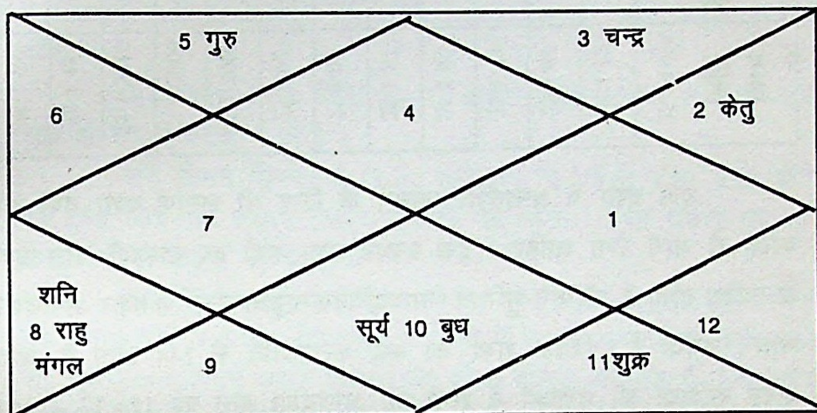
लग्न से नवम भाव में यदि विषम पद राशि हो तो क्रम से तथा सम पद राशि हो तो विलोम गणना से लग्नादि भावगत राशियों की दशा होती है ।

प्रथम पद– मेष, वृष, मिथुन । द्वितीय पद–कर्क; सिंह, कन्या । तृतीय पद–तुला, वृश्चिक, धनु । चतुर्थ पद– मकर कुम्भ, मीन । प्रथम तृतीय पद की राशियों को विषम पद और द्वितीय चतुर्थ पद की राशियों को सम पद कहते हैं । पद अर्थात् चौथा भाग, चौथाई हिस्सा या चरण । बारह

राशियों का चतुर्थांश तीन राशि होने से मेषादि तीन–तीन राशियों में विषम, सम पद माने जाते हैं।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में चर दशा का साधन इस प्रकार से होगा।

उदाहरण कुण्डली



नवम भाव में मीन राशि सम पद है। अतः विलोम गणना होगी। अर्थात् कर्क, मिथुन, वृष, मेष, मीन, कुम्भ, मकर आदि राशियों की क्रमशः होगी। चन्द्रमा मिथुन में है, अतः उलटे क्रम से गिनने पर दूसरे भाव में हुआ। तब कर्क राशि की दशा एक वर्ष रहेगी। सिंह का स्वामी सूर्य मकर में है, उलटे क्रम से गिनने पर सूर्य तक 7 वर्ष होते हैं। कन्या राशीश बुध मकर में है, अतः 8 वर्ष की दशा रहेगी। तुलानाथ शुक्र कुम्भ में है, क्रम गणना से इसकी दशा 4 वर्ष है। वृश्चिक का स्वामी मंगल व राहु दोनों वृश्चिक में ही हैं और दूसरा स्वामी केतु वृषभ में है, अतः केतु तक गणना होगी, अतः वृश्चिक से वृष तक विलोम गणना से 6 वर्ष हुए, धनु का स्वामी गुरु सिंह में है, अतः सीधी–सीधी गणना से आठ वर्ष मिले। मकर का स्वामी शनि वृश्चिक में है, अतः विलोम गणना से 2 वर्ष हुए, कुम्भ के स्वामी शनि व राहु वृश्चिक में ही हैं। अतः सीधी गणना से तीन वर्ष हुए। मीन का स्वामी गुरु शनि में है, अतः विलोम गणना से सात वर्ष हुए, मेष का स्वामी मंगल वृश्चिक में है, अतः सीधी गणना से सात वर्ष हुए। वृषभ का स्वामी शुक्र कुम्भ में है। यहाँ अपवाद लागू होने से क्रम गणना से नौ वर्ष मिले। मिथुन का स्वामी बुध मकर में है, अतः सात वर्ष मिले।

चर दशा चक्रम् (उदाहरण)

दशेश	कर्क	मि.	वृ.	मे.	मी.	कु.	म.	ध	वृ.	तु.	क.	सिं.
दशा वर्ष	1	7	9	7	7	3	2	8	6	4	8	7
जन्म तिथि 25.1.1956	25-1-57	25-1-64	25-1-73	25-1-80	25-1-87	25-1-90	25-1-92	25-1-2000	25-1-2006	25-1-2010	15-1-18	25-1-25

इस दशा में अन्तर्दशा जानने के लिए भी सम्पूर्ण दशा वर्षों को बारह से भाग देना चाहिए। इस प्रकार दशा वर्षों का बारहवाँ भाग एक अन्तर्दशा होती है, जैमिनि मुनि ने "यावद्विवेकमावृत्तिर्भानां" कहकर अन्तर्दशा साधन बतया है। विवेक शब्द का अर्थ कटपयादि से 144 होता है, अतः बारह राशियों की दशाओं में सभी की अन्तर्दशा होने पर 12×12 = 144 ही होता है। कहा गया है –

"कृत्वार्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद् वदेत्"।

हमारे उदाहरण में वर्तमान में धनु राशि की चर दशा है, धनु राशि के दशा वर्ष 8 को 12 से भाग दिया तो 8 मास मिले। निश्चय हुआ कि जितने वर्षो की राशि दशा हो उतने ही मासों की अन्तर्दशा होती है, अन्तर्दशा का क्रम निर्धारण करने के लिए भी अलग पद्धति है जो आगे बताई जा रही है।

लग्न सप्तमयोर्मध्ये प्राणित अन्तर्दशा तथा।
चरेऽनुज्झित मार्गः स्यात् षष्ठ षष्ठाधिकाः स्थिरे।। 17।।
उभये कण्टकाज्ज्ञेयाः लग्नपंचम भाग्यतः।
चरस्थिर द्विस्वभावेषु ओजेषु प्राक् क्रमो मतः।। 18।।
तेष्वेषु त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यम् व्युत्क्रमतोऽखिलम्।
एवमालिखितो राशिः पापराशिरुदीर्यते।। 19।।
तदिदं चरपर्याय स्थिरपर्याययोर्द्वयोः।
त्रिकोणाख्य दशायां च एवं पाकप्रकल्पनम्।। 20।।

लग्न या सप्तम में जो बलवान् हो उसी बलवान् राशि की पहली अन्तर्दशा होगी।

यदि वह बलवान् राशि सम–चर हो अर्थात् कर्क या मकर हो तो पहली दशा उसी की तथा आगे की अन्तर्दशाएँ विपरीत गणना से रहेंगी।

विषम चर राशि (1-17) हो तो सीधी गणना से क्रमानुसार सारी अर्न्तदशाएँ छठी–छठी राशि की होंगी। जैसे वृष–धनु कर्क आदि क्रम से होंगी।

यदि विषम स्थिर राशि (5-11) हो तो सीधी गणना से छठी–छठी राशियों की अन्तर्दशाए होंगी।

यदि विषम द्विस्वभाव (2-9) राशि हों तो पहली दशा उसी राशि की तथा आगे की दशाए (5-9) राशियों की होंगी। इसी प्रकार हर बार केन्द्र भाव से गणना करनी होगी।

सम द्विस्वभाव (6-12) राशि हो तो विपरीत क्रम से (1-5-9) राशियों की दशाए होंगी। अर्थात् द्विस्वभाव राशियों में पहली अन्तर्दशाएँ उसी राशि की, दूसरी अन्तर्दशाएँ उससे पंचम राशि की व तीसरी अन्तर्दशाएँ नौवी–नौवीं राशियों की रहेंगी, तत्पश्चात् चतुर्थ केन्द्र से (1-5-9) राशियों की, फिर, लग्न या सप्तम केन्द्र राशि (1-5-9) की दशा रहेगी।

विषम राशि से सीधी गणना द्वारा व सम में विलोम रचना द्वारा (1-5-9) राशियों का निर्णय होगा। इसी रीति से चर दशा, स्थिर दशा व त्रिकोण दशा में अन्तर्दशाओं का निर्णय रहेगा। इस समस्त विषय का विशेष स्पष्टीकरण हमने अपने जैमिनिसूत्रम्–शान्ति–प्रियभाष्य में पृष्ठ 120–123 व पृ. 131 से 134 तक किया है। हमारे उदाहरण में लग्न व सप्तम में से सप्तम बलवान् है। सप्तम में मकर राशि स्थित है। अतः मकर राशि सम–चर है। अतः पहली दशा मकर की, पुनः धनु, वृश्चिक, तुला, कन्या क्रम से राशियों की गणना रहेगी। वर्तमान में धनु राशि विषम द्विस्वभाव की दशा चल रही है, अतः पहली अन्तर्दशा धनु राशि की, दूसरी धनु से पंचम मेष राशि की, तीसरी उससे नवम सिंह राशि की अन्तर्दशाएँ रहेंगी। चौथी अन्तर्दशा का विचार धनु से चतुर्थ केन्द्रगत मीन राशि से होगा। अतः चौथी अन्तर्दशा मीन की, पाँचवीं कर्क की और छठी वृश्चिक की होगी। सातवीं अन्तर्दशा का विचार महादशा राशि से सप्तम केन्द्रगत राशि मिथुन से होगा। अतः सातवीं अन्तर्दशा मिथुन की, आठवीं अन्तर्दशा मिथुन से पंचम तुला की, नौवीं अन्तर्दशा कुम्भ की होगी। दसवीं अन्तर्दशा कन्या की, ग्यारहवीं मकर की और बारहवीं वृषभ की होगी। सभी अन्तर्दशाओं का मान आठ–आठ महीने पहले सिद्ध हो गया है। इसके अनुसार चक्र

बना देना चाहिए। यदि अन्तर्दशा और महादशा की दोनों राशियाँ पाप ग्रह से पीड़ित हैं तो मनुष्य को शारीरिक व मानसिक पीड़ा होती है।

धनुर्महादशा में अन्तर्दशा विभाग

दशेश	ध.	मे.	सिं	मी	कर्क	वृ.	मि.	तु.	कु.	क.	म.	वृ.
दशा मास	8	8	8	8	8	8	8	8	8	8	8	8
प्रारम्भ तिथि 25-1-92	25-9-92	25-5-93	26-1-94	25-9-94	25-5-95	25-1-96	25-9-96	25-5-97	25-1-98	25-9-98	25-5-99	25-1-2000

स्थिर दशा– पराशर उवाच–

अथाहं संप्रवक्ष्यामि स्थिरसंज्ञां दशां द्विज।
चरे सप्त स्थिरे चाऽष्टौ द्वन्द्वे नव समाः स्मृताः।। 21।।
स्थिरत्वाच्च दशाब्दानां स्थिराख्येति निगद्यते।
ब्रह्मखेटाश्रितर्क्षादिर्दशेयं परिवर्तते।। 22।।

हे मैत्रेय ! अब मैं स्थिर दशा के विषय में बताता हूँ। इस दशा में चर राशि की दशा सात वर्ष, स्थिर राशि की आठ वर्ष तथा द्विस्वभाव राशि की दशा नौ वर्ष की होती है।

इस दशा में सभी कुण्डलियों में दशा वर्ष एक जैसे ही होते हैं। अतः इसे स्थिर दशा कहते हैं। इस दशा का प्रारम्भ ब्रह्मा ग्रह की आश्रित राशि से होता है।

मैत्रेय उवाच–

योऽसौ ब्रह्मग्रहः प्रोक्तः कथं स ज्ञायते मुने!।
इति स्पष्टतरं ब्रूहि कृपया मुनिपुंगव।। 23।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्मा ग्रह कौन है और इसका निर्णय कैसे होता है, इस विषय में कृपा करके स्पष्टतापूर्वक कहें।

पराशर उवाच–

षष्ठाष्टव्ययनाथेषु यो बली विषमर्क्षगः।
प्रष्ठस्थितो भवेद्वापि बलिनो लग्न जाययोः।। 24।।
कारकादष्टमेशो वा ब्रह्माप्यष्टमभावगः।
शनौ पातौ च ब्रह्मत्वे ब्रह्मा तत्र षष्ठ खेचरः।। 25।।

बहवो लक्षणाक्रान्ता ज्ञेयः तेष्वधिकांशकः ।

अंशसाम्ये बलाधिक्यात् विज्ञेयो ब्रह्मखेचरः ।। 26 ।।

लग्न या सप्तम में से जो बलवान् हो उससे 6.8.12 राशीशों को देखें। उनमें से जो ग्रह विषम राशि में है वही ब्रह्मा है।

लग्न या सप्तम से पिछली 6 राशियों में जो ग्रह विषम राशि में हो वह भी ब्रह्मा हो सकता है।

आत्मकारक से आठवीं राशि का स्वामी भी ब्रह्मा हो सकता है। अथवा अष्टम भाव में स्थित ग्रह भी ब्रह्मा हो सकता है।

यदि शनि राहु या केतु को ब्रह्मत्व प्राप्त हो तो इनसे छठा ग्रह ब्रह्मा होता है। यदि कई ग्रहों को ब्रह्मत्व प्राप्त हो तो बलवान को या अधिक अंश वाले ग्रह को ब्रह्मा मानना चाहिए। अंशों में समानता होने पर बल देखेंगे।

पूर्वोक्त उदाहरण में बलवान सप्तम से 6-8-12 भावों के स्वामी सूर्य, बुध, व शनि हैं, इनमें से कोई भी विषम राशि में नहीं है। इनमें से शनि सप्तम की पिछली 6 राशियों में है किन्तु वह सम राशि में होने से ब्रह्मा नहीं हो सकता है। अतएव आत्मकारक शुक्र से अष्टमेश बुध पर विचार करेंगे। आत्मकारक से अष्टम में कोई ग्रह नहीं है। सप्तम से अष्टम में चन्द्रमा विषम राशि में है लेकिन अष्टमेश बुध ही है। अतः चन्द्रमा व बुध में से निर्णय करना होगा। इनमें चन्द्रमा 11° पर और बुध 15° पर है। इसीलिए बुध ही बलवान् हुआ। चन्द्रमा अकेला है और बुध के समान सूर्य है, इस दृष्टि से भी बुध की आश्रित राशि मकर से स्थिर दशा चलेगी। मकर राशि सम होने से विपरीत क्रम से गणना होगी।

।। स्थिर दशा चक्र ।। (उदाहरण)

राशि	मक.	धनु	वृ.	तुला	क.	सि.	क.	मि.	वृ.	मे.	मी.	कुं
वर्ष	7	9	8	7	9	8	7	9	8	7	9	8
जन्म तिथि 25.1.1956	25-1-63	25-1-72	25-1-80	25-1-87	25-1-96	25-1-2004	25-1-11	25-1-20	25-1-28	25-1-35	25-1-44	25-1-52

योगार्घ दशा :–

योगार्धे च दशामानं द्वयोर्योगार्धसम्मितम् ।

लग्नसप्तमप्राण्यादिर्दशेयं च प्रवर्तते ।। 27 ।।

चर दशा व स्थिर दशा के जितने वर्ष मिलें उन दोनों का योग करके उसका आधा मान इस दशा में होता है। योग अर्थात् चर स्थिर दशा के वर्षों के योग का अर्ध अर्थात् आधा दशा वर्षमान होता है।

लग्न व सप्तम में से जो राशि अधिक बली हो, उसी से शुरु करके विषम राशि में क्रम से व सम राशि में उत्क्रम से गणना करके दशा का क्रम निश्चय किया जाता है।

जैमिनि सूत्रों में भी यह दशा है तथा इसकी विधि यही है। विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारा जैमिनि सूत्र (सम्पूर्ण) शान्ति प्रिय भाष्य पृ. 141 देखें।

पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में लग्नापेक्षया सप्तम बली है। वहाँ मकर राशि है। सम होने से उत्क्रम या विलोम गणना रहेगी। अतः मकर, धनु, वृश्चिक आदि क्रम से दशाएँ होंगीं। मकर राशि में चर दशा वर्ष 2 तथा स्थिर दशा वर्ष 7, दोनों का योगार्ध 4 वर्ष 6 मास योगार्धदशा रहेगी। इसी विधि से सब राशियों के दशा वर्ष निश्चय करके चक्र लिखा गया है।

।। योगार्ध दशा चक्र ।। (उदा.)

दशेश	मक.	धनु	वृ.	तुला	क.	सिंह	कर्क	मि.	वृष	मेष	मीन	कुं
वर्ष	4	8	7	5	8	7	4	8	8	7	8	5
मास	6	6	0	6	6	6	0	0	6	0	0	6
25.1.1956 ई० से	25.7.1960	25.1.1969	25.1.1976	25.7.1981	25.1.1990	25.7.1997	25.7.2001	25.7.2009	25.1.2018	25.1.2025	25.1.2033	25.7.38

केन्द्रदशा ज्ञान :–

लग्नसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवान् भवेत्।
ततो दशा हि राशीनां क्रमव्युत्क्रमभेदतः ।।28।।
प्रतिभं नववर्षाणि चरेऽनुज्झितमार्गतः।
द्वितीये षष्ठतो ज्ञेया ततो राशेः क्रमोत्क्रमात् ।।29।।

उभये कष्टकाज्ज्ञेया लग्नपंचमभाग्यतः ।
चरस्थिरद्विस्वभावेषु ओजेषु प्राक्क्रमो मतः ।
तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम् ।।30 ।।

लग्न–सप्तम में से जो राशि बलवान् हो, उससे केन्द्रदशा शुरू होती है। यदि वह सम राशि हो तो विलोम क्रम से तथा विषम राशि हो तो सीधे क्रम से गणना होती है। इस दशा में प्रत्येक राशि के 9-9 वर्ष दशा वर्ष होते हैं।

यदि वह चर राशि हो तो क्रमोत्क्रम से सीधी 12 राशियों की दशाएँ होंगी। अर्थात् सम चर हों तो विपरीत क्रम से लगातार दशाएँ होंगी तथा विषम चर (7.1) हों तो सीधे क्रम से लगातार (अनुज्झित मार्ग) दशाएँ होंगीं।

यदि वह बलवान् प्रथम राशि स्थिर हो तो उससे छठी–छठी राशियों की यथापूर्व क्रमोत्क्रम से दशाएँ होंगी।

यदि वह द्विस्वभाव राशि हो तो क्रमोत्क्रम से 1.5.9 राशियों की दशाएँ रहेंगी।

चर स्थिर द्विस्वभाव सभी राशियों में सम राशि में उत्क्रम से व विषम राशि में क्रम से गणना होती है।

प्रचलित बृहत्पाराशर के संस्करणों में इस दशा के विषय में सब कपोल कल्पित बातें बताई गई हैं। यहाँ बताया गया दशा प्रकार जैमिनि सूत्रों से प्रमाणित है। एतदर्थ हमारे जैमिनि सूत्र शान्ति प्रियभाष्य का पृ. 132-138 देखें।

हमारे उदाहरण में सप्तमस्थ मकर राशि बलवान है। अतः पहली दशा मकर की होगी। यह सम चर राशि है। अतः अनुज्झितमार्ग से विलोम गणना करके मकर, धनु, वृश्चिक आदि राशियों की दशाएँ रहेंगी।

यह लग्नादि केन्द्रदशा है। क्रम व्युत्क्रम से गिनने पर लग्नगत या सप्तमगत राशि विषम हो तो केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम यह क्रम तथा सम राशि हो तो केन्द्र, आपोक्लिम, पणफर यह क्रम स्वयमेव सिद्ध हो जाता है।

दशा वर्षों के विषय में प्रचलित संस्करणों में कहा गया है कि चर दशा के वर्ष ही यहाँ होते हैं, इस विषय में वृद्ध कारिकाओं में प्रत्येक राशि के 9-9 वर्ष ही कहे हैं, जो यहाँ हमने माने हैं। जब सारी दशा विधियाँ जैमिनि व पराशर ने समान कही हैं, तब यहाँ पर कल्पनाओं का सहारा क्यों लेना चाहिए ?

हमारे उदाहरण में सप्तमस्थ मकर राशि से दशाएँ प्रारम्भ होंगी तथा प्रत्येक राशि की 9 वर्ष की दशा रहेगी।

।। केन्द्रादि दशा चक्र ।। (उदा.)

दशेश	मकर	धनु	वृ.	तुला	क.	सिंह	कर्क	मि.	वृष	मेष	मीन	कुम्भ
वर्ष	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9
25.1.1956 ई०	25.1.1965	25.1.1974	25.1.1983	25.1.1992	25.1.2001	25.1.2010	25.1.2019	25.1.2028	25.1.2037	25.1.2046	25.1.2055	25.1.2064

चरदशा में लग्न राशि से दशारम्भ व वर्ष प्रत्येक कुण्डली में पृथक् होते हैं। जबकि इस दशा में वर्ष प्रमाण निश्चित हैं। हमारे विचार से चारों केन्द्रो में से बली केन्द्र से दशा शुरू करनी चाहिए। यह द्वितीय विकल्प है।

कारक केन्द्र दशा :–

कारकादपि राशीनां खेटानां चैवमेव हि।
ततः केन्द्रादि संस्थानां राशीनां च बलक्रमात्।। 31।।

इसी तरह कारक केन्द्र दशा भी होती है। आत्मकारक ग्रह जिस राशि में हो तथा उससे सप्तम में जो राशि हो, उन दोनों में जो राशि बली हो, उसी से यह दशा शुरू होगी। तत्पश्चात् बलक्रमानुसार उससे कमजोर केन्द्रगत राशियों की दशा तत्पश्चात् पणफरगत तथा तत्पश्चात् आपोक्लिम

गत राशियों की दशाएँ होंगी । क्रमोत्क्रम का विचार यहाँ भी होगा । इस प्रकार में भी 9-9 वर्ष दशा रहेगी ।

हमारे उदाहरण में आत्मकारक शुक्र कुम्भ में व उससे सप्तम में सिंहस्थ गुरु है । दोनों मित्र क्षेत्री हैं । सिंह पर उसके स्वामी सूर्य की दृष्टि है, ज़बकि कुम्भ पर नहीं है । दोनों स्थिर राशि होने से निसर्गबल समान है । गुरु व शुक्र में स्वाभाविक रूप से शुक्र अधिक अंशों वाला है, अतः कुम्भ की दशा होगी । कुम्भ से केन्द्रगत 2.5.8 राशियों में वृश्चिक राशि सर्वबली, उससे कमजोर सिंह व सबसे दुर्बल वृष है । अतः 11.8.5.2 यह राशि दशा क्रम केन्द्रगत राशियों का हुआ ।

पणफर गत राशियों में 12.3.6.9 में मिथुन ग्रह युक्त है । अतः पाँचवीं दशा मिथुन की, छठी धनु की होगी, क्योंकि धनु के दोनों ओर ग्रह हैं । मीन व कन्या का स्वामी गुरु बुध स्थिर व चर राशि में है अतः सातवीं दशा मीन की तथा आठवीं कन्या की होगी । चर से स्थिर राशि निसर्गबली है ।

आपोक्लिमगत राशियों में मकर राशि ग्रह युक्त है । अतः नवीं दशा मकर की है । तत्पश्चात् स्वक्षेत्री मंगल की राशि मेष की दशा, बाद में मित्रक्षेत्री शुक्र की राशि तुला की व बारहवीं दशा कर्क की रहेगी ।

यदि राशि से बल का निर्णय न हो सके तो राशीश की स्थिति से निर्णय करना चाहिए । यह कारकादि केन्द्र दशा है । इसकी दशा 9-9 वर्षों की होगी ।

। । कारक केन्द्र दशा चक्र । । (उदा.)

दशेश	कु.	वृ.	सिंह	वृष.	मि.	धनु	मीन	क.	म.	मेष	तुला	कर्क
वर्ष	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	9
25.1.1956 ई०	25.1.1965	25.1.1974	25.1.1983	25.1.1992	25.1.2001	25.1.2010	25.1.2019	25.1.2028	25.1.2037	25.1.2046	25.1.2055	25.1.2064

कारक दशा :–

लग्नात्कारकपर्यन्तं सप्तमाद् वा दशां विदुः ।
उभयोरधिका संख्या कारकस्य दशा समाः ।। 32 ।।
आत्मकारकमारभ्य कारकाख्यदशां नयेत् ।
तद्युक्तानां च तत्तुल्यं प्रत्येकं स्युर्दशाक्रमात् ।। 33 ।।
ग्रहाः स्वराशिपर्यन्तं संख्यान्यस्य दशा भवेत् ।
कारकस्तद्युतश्चादौ तत्केन्द्रादि स्थिताः क्रमात् ।
दशा क्रमेण विज्ञेयाः शुभाशुभफलप्रदाः ।। 34 ।।

यह ग्रहों की दशा होती है । पहली दशा आत्मकारक की, दूसरी दशा आत्मकारक के साथ स्थित ग्रह की होगी । लग्न से कारक तक व सप्तम से कारक तक गिनकर जिससे अधिक संख्या मिले, उतने ही वर्ष तक आत्मकारक की दशा होती है । इस तरह यह कारक दशा ग्रहों की होती है ।

आत्मकारक के साथ स्थित ग्रहों के दशा वर्ष आत्मकारक के बराबर ही होते हैं । अन्य ग्रहों की दशा अवधि विचारणीय ग्रह से स्वराशि पर्यन्त गिनकर जाननी चाहिए । इसके बाद आत्मकारक से केन्द्रगत ग्रहों की, तत्पश्चात् पणफर गत ग्रहों की तथा तत्पश्चात् आपोक्लिमगत ग्रहों की दशाएँ रहेंगी ।

हमारे उदाहरण में आत्मकारक शुक्र की पहली दशा है । लग्न से कारक तक उत्क्रम से गिनने से 5 वर्ष व सप्तम से कारक तक उत्क्रम से गिनने पर 11 वर्ष होते हैं । अतः 11 वर्ष की दशा मानी जाएगी । दूसरी दशाएँ केतु, गुरु, मंगल, शनि राहु की रहेंगी । दूसरी दशा सर्वबली मंगल की 12 वर्ष, तीसरी दशा शनि की 3 वर्ष, चौथी राहु की 3 वर्ष, पाँचवीं गुरु की 4 वर्ष, छठी केतु की 6 वर्ष होगी । सब ग्रहों से स्वराशि तक गणना होती है ।

इसके बाद पणफरस्थ ग्रह चन्द्र की 1 वर्ष, आठवीं नवीं दशा आपोक्लिमस्थ सूर्य बुध की होगी। इनमें सूर्य की 5 वर्ष तथा बुध की 4 वर्ष दशा होगी।

।। कारक ग्रह दशा ।।

दशेश	शुक्र	मंगल	शनि	राहु	गुरु	केतु	चन्द्र	सूर्य	बुध
वर्ष	11	12	3	3	4	6	1	5	4
25.1.1956	25.1.1967	25.1.1979	25.1.1982	25.1.1985	25.1.1989	25.1.1995	25.1.1996	25.1.2001	25.1.2005

इसी दशा को कुछ विद्वान् कारक क्रम से मानते हैं। अर्थात् पहली दशा आत्मकारक की, दूसरी अमात्य कारक की, तीसरी भ्रातृकारक की व अन्तिम दशा स्त्री कारक की होती है, ऐसा कहते हैं। इस पद्धति में भी दशा वर्ष पूर्वोक्त प्रकार से ही जाने जाते हैं। यह दूसरी पद्धति विशेष प्रामाणिक नहीं है।

मण्डूक दशा विचार :–

मण्डूकापरपर्याया त्रिकूटाख्यदशा द्विज !।
लग्नसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवान् भवेत्।। 35।।
ततः क्रमेणौजराशौ समे नेया विलोमतः।
त्रिकूटानां च विज्ञेयाः स्थिरवच्च दशा समाः।। 36।।

यह मण्डूक दशा या त्रिकूट दशा कहलाती है। लग्न व सप्तम में से बलवान् राशि से शुरू कर, क्रमोत्क्रम से अर्थात् समराशि में विलोम गणना से तथा विषम राशि में सीधी गणना से राशियों की दशा होती है।

इस दशा में स्थिर दशा की तरह अर्थात् चर में 7 वर्ष, स्थिर में 8 वर्ष व द्विस्वभाव में 9 वर्ष होते हैं।

इसमें चर, स्थिर, द्विस्वभाव भेद से तीन कूटों की दशा होती है तथा क्रमशः दो–दो राशियाँ बीच में छोड़कर दशाएँ चलती हैं। अतः मेंढक की तरह उछलकर चलने के कारण यह मण्डूक या त्रिकूट दशा कहलाती है। हमारे विचार से इस दशा में प्रत्येक दशा 9-9 वर्ष की होनी चाहिए। जैमिनि सूत्रों में 'पुरुषे समाः सामान्यतः' कहकर 9 वर्ष (पुरुष) का ही संकेत है। अर्थात् जहाँ दशा वर्ष अनिर्दिष्ट हों वहाँ 9 वर्ष समझें।

हमारे उदाहरण में सप्तम बलवान् है। वह सम राशि है, अतः विलोम क्रम से गणना होगी। मकर, तुला, कर्क, मेष आदि क्रम रहेगा।

।। मण्डूक दशा चक्र ।। (उदा.)

दशेश	म.	तुला	कर्क	मेष	धनु	क.	मि.	मीन	वृ.	सिंह	वृष	कु.
वर्ष	7	7	7	7	9	9	9	9	8	8	8	8
25.1.1956	25.1.1963	25.1.1970	25.1.1977	25.1.1984	25.1.1993	25.1.2002	25.1.2011	25.1.2020	25.1.2028	25.1.2036	25.1.2044	25.1.2052

शूल दशा विचार :–

निर्याणस्य विचारार्थं कैश्चिच्छूलदशा स्मृता।
लग्नसप्तमयोर्मध्ये यो राशिः बलवान् भवेत्।। 37।।
तदादिर्विषमे विप्र!क्रमादुत्क्रमतःसमे।
दशाब्दाः स्थिरवत्तत्र बलवत्कोणभे मृतिः।। 38।।

मरणदशा विचार के लिए किसी ने शूलदशा बताई है। लग्न व सप्तम में से बलवान् राशि से प्रारम्भ होकर क्रम व उत्क्रम से बारह दशाएँ होती हैं। इस दशा में स्थिर दशा की तरह 7.8.9 दशा वर्ष होते हैं तथा लग्न व सप्तम में से बलवान् राशि से 5.9 राशियों की दशा में मृत्यु होती है।

हमारे उदाहरण में मकर सम राशि सप्तमस्थ बलवान् है। अतः मकर से विलोम क्रमानुसार सारी दशाएँ होंगी।

।। निर्याणशूल दशा चक्र ।। (उदा.)

दशेश	म.	धनु	वृ.	तुला	क.	सिंह	कर्क	मि.	वृष	मेष	मीन	कु.
वर्ष	7	9	8	7	9	8	7	9	8	7	9	8
25.1.1956 ई०	25.1.1963	25.1.1972	25.1.1980	25.1.1987	25.1.1996	25.1.2004	25.1.2011	25.1.2020	25.1.2028	25.1.2035	25.1.2044	25.1.2052

यहाँ मकर से पहली त्रिकोण राशि कन्या शुभ क्षेत्र है तथा दूसरी त्रिकोण वृष में पाप ग्रह है, अतः वृष दशा में मरण सम्भव है। इसी विधि से बलवान् राशि से नवीं राशि की त्रिकोण राशि दशा में पिता की, चतुर्थ राशि की त्रिकोण दशा में माता की, तृतीय राशि त्रिकोण में भाई की, सप्तम राशि त्रिकोण में पत्नी की मृत्यु का भी विचार हो सकता है।

त्रिकोण दशा विचार :–

लग्नत्रिकोणे यो राशिर्बलवानुक्तहेतुभिः।
तदारभ्योन्नये द्धीमान् चर पर्यायवद् दशा ।। 39 ।।
क्रमोत्क्रमाभ्यांगणयेदोजयुग्मेषुराशिषु।
क्रमाद् वृषे वृश्चिके च व्युत्क्रमात्कुम्भसिंहयोः ।।40 ।।
त्रिकोणाख्या दशा प्रोक्ता नाथान्ताश्च समाः स्मृताः।
जन्मकालग्रहस्थित्या गोचरस्थै र्ग्रहैरपि ।।
विचारितैः प्रवक्तव्यं त्रिकोणाख्य दशाफलम् ।। 41 ।।

जन्म लग्न से 1.5.9 राशियों में से सर्वबली राशि से यह दशा प्रारम्भ होती है। जो राशि 'अग्रहात्सग्रहोज्यायान्' आदि कथित नियमों से बलवान् हो, उसी से दशारम्भ होगा। इसमें चर दशा की तरह राशि से स्वामी तक गिनकर नाथान्त वर्ष जानने चाहिए।

सम राशियों में विलोम क्रम व विषम राशियों में सीधे क्रम से गणना होगी । वृष वृश्चिक में सम होने पर भी क्रम गणना एवं कुम्भ सिंह में विषम होते हुए भी विलोम गणना करेंगे । इस दशा का नाम त्रिकोण दशा है । जन्मकालीन ग्रह स्थिति व तात्कालिक ग्रह गोचर का समन्वय करके त्रिकोणदशा में फल विचार करना चाहिए । सभी राशियों की दशा परस्पर त्रिकोण क्रम से होती है, अतः त्रिकोण दशा यह सार्थक नाम है ।

हमारे उदाहरण में लग्न से त्रिकोण राशि 4.8.12 में वृश्चिक राशि ग्रह युक्त होने से बलवान् है । वृश्चिक में क्रमगणना होगी । अतः पहली दशा वृश्चिक की, दूसरी उससे पंचम मीन की व तीसरी कर्क की होगी ।

इसके बाद 5.9.1 त्रिकोण राशियों में से चौथी दशा ग्रह युक्त सिंह की, पाँचवीं दशा द्विस्वभाव होने से निसर्ग बली धनु की, छठी दशा मेष की होगी । 6.10.2 राशियों में से सातवीं ग्रह युक्त मकर की, आठवीं ग्रह युक्त वृष की व नवीं कन्या की होगी ।

7.11.3 राशियों में से दसवीं दशा द्विस्वभावग्रहयुक्त मिथुन की, ग्यारहवीं दशा कुम्भ की व बारहवीं दशा तुला की होगी । दशा वर्ष चरदशा के समान रहेंगे ।

।। त्रिकोणदशा चक्र ।। (उदा.)

दशेश	वृ.	मीन	कर्क	सिं	धनु	मेष	म.	वृष	क.	मि.	कुम्भ	तुला
वर्ष	12	7	1	7	8	7	2	9	8	7	3	4
25.1.1956	25.1.1968	25.1.1975	25.1.1976	25.1.1983	25.1.1991	25.1.1998	25.1.2000	25.1.2009	25.1.2017	25.1.2024	25.1.2027	25.1.2031

उक्त जन्म लग्न में मेष राशि कारक राशि है । इसका स्वामी मंगल वर्गोत्तम नवांश में स्वगृही है । मंगल कारक श्रेष्ठ भी है । मेष राशि

पर राशि दृष्टि से मंगल शनि आदि की दृष्टि भी है। गुरु से भी दृष्ट है। अतः यह वर्तमान दशा विशेष शुभ रहेगी।

दृग्दशा विचार :–

लग्नाद् धर्मस्य तद्दृष्टराशीनां च दशास्ततः।
दशमस्य च तद्दृष्टराशीनां च नयेत् पुनः।। 42।।
एकादशस्थतद्दृष्टराशीनां स्थिरवत्समाः।
प्रवृत्ता दृग्वशाद्यस्माद् दृग्दशेयं ततः स्मृताः।। 43।।
चरे व्युत्क्रमतो ग्राह्या दृग्योग्याः स्थिरभे क्रमात्।
विषमे क्रमतो द्वन्द्वे राशयो व्युत्क्रमात् समे।। 44।।

पहली दशा लग्न से नवम राशि की तथा उसके बाद की दशाएँ नवम राशि से दृष्ट सभी राशियों की होंगी।

पश्चात् दशमस्थ राशि की व उससे दृष्ट राशियों की, तत्पश्चात् एकादशस्थ राशि की व उससे दृष्ट राशियों की दशाएँ होंगी।

दृष्टि के आधार पर चलने के कारण यह 'दृग्दशा' कहलाती है। चर राशियों में सारी गणना विलोम क्रम से, स्थिर राशियों में क्रमानुसार तथा समद्विस्वभाव में विलोम व विषम द्विस्वभाव में क्रम से गणना करें। यह गणना का यहाँ विशेष प्रकार है। इस दशा में स्थिर दशा की तरह वर्ष होते हैं।

हमारे उदाहरण में लग्न से नवम राशि मीन समद्विस्वभाव है, अतः विलोम गणना होगी। मीन से दृष्ट शेष राशियाँ धनु, कन्या, मिथुन विलोम क्रम से हैं। अतः मीन, धनु, कन्या, मिथुन की दशाएँ, पश्चात्, दशमदृष्ट राशियों की विलोम क्रम से कुम्भ, वृश्चिक, सिंह की तथा बाद में ग्यारहवीं राशि वृष की, इसके बाद क्रमानुसार कर्क, तुला, मकर की दशाएँ रहेंगी।

।। दृग्दशा चक्र ।। (उदा.)

दशेश	मीन	धनु	क.	मि.	मेष	कु.	वृ.	सिंह	वृष	कर्क	तुला	म.
वर्ष	9	9	9	9	7	8	8	8	8	7	7	7
25.1.1956 ई०	25.1.1965	25.1.1974	25.1.1983	25.1.1992	25.1.1999	25.1.2007	25.1.2015	25.1.2023	25.1.2031	25.1.2038	25.1.2045	25.1.2052

नक्षत्र लग्नादि दशा :–

ऋक्षे लग्नादिराशीनां दशा राशिदशा स्मृता ।
भयातं रविभिर्निघ्नं भभोगविहृतं फलम् ।। 45 ।।
राश्याद्यं लग्नराश्यादौ योज्यं द्वादशशोषितम् ।
तदाल्पक्रमादोजे दशा ज्ञेयौत्क्रमात् समे ।। 46 ।।

जन्मकालीन नक्षत्र की गत घड़ियों (भयात) को 12 से गुणा कर भभोग का भाग देने से जो राश्यादि मिलें, उसमें जन्मलग्न स्पष्ट जोड़ने से प्राप्त राशि की दशा पहली दशा होती है। उससे प्रारम्भ करके सम राशियों में विलोम क्रम से तथा विषम राशियों में सीधे क्रम से गणना करेंगे।

हमारे उदाहरण में चन्द्र स्पष्ट 2.11°.21′ है। आर्द्रा के द्वितीय चरण में जन्म है। मिथुन राशि में 6.40′ से आर्द्रा का आरम्भ होता है। एक नक्षत्र भभोग 13°.20′ कला का 12 वाँ भाग 1°.7′ है। अतः 6°.40′ से 7°.47′ तक लग्न राशि कर्क दशा, तत्पश्चात् 8°.54′ तक सिंह दशा, 10°.1′ तक कन्या दशा, 11°.8′ तक तुला दशा व 12°.15′ तक वृश्चिक दशा है। यह सम होने से विलोम क्रम से दशाएँ होंगी।

यदि भयात भभोग से ही साधन करना हो तो भभोग 60 घड़ी का द्वादश भाग 5 घड़ी है। भयात 21 घड़ी है। 21 घड़ी को 5 से भाग दिया तो 4 राशि गत हुई। लग्न राशि कर्क में जोड़ने से 8 वीं वृश्चिक राशि की पहली दशा ही हुई।

भयात को 12 से गुणा कर भभोग का भाग दें या भभोग को 12 से भाग देकर भयातानुसार गत द्वादश भागों में लग्न जोड़ने से भी वही फल मिलता है।

।। नक्षत्र लग्नादि दशा चक्र ।। (उदा.)

दशेश	वृ.	तुला	क.	सिंह	कर्क	मि.	वृष	मेष	मीन	कु.	म.	धनु
वर्ष	8	7	9	8	7	9	8	7	9	8	7	9
25.1.1956	25.1.1964	25.1.1971	25.1.1980	25.1.1988	25.1.1995	25.1.2004	25.1.2012	25.1.2019	25.1.2028	25.1.2036	25.1.2043	25.1.2052

दशा वर्षों के सम्बन्ध में कहना है कि जहाँ दशा वर्षों का उल्लेख न हो वहाँ स्थिर दशावत् वर्ष समझें, ऐसा बहुत से विद्वान् मानते हैं। हमारे विचार से ऐसे स्थान पर 9-9 वर्ष दशा माननी चाहिए। यहाँ हमने प्रायः स्थिर दशा वर्षों का ही ग्रहण किया है।

इस दशा में कई प्रतियों में पहली दशा का भुक्त भोग्य जानने का उल्लेख भी है। जैमिनि ने ऐसा नहीं कहा है तथा ये दशाभेद पाराशर जैमिनीय उभय मत में समान हैं, अतः हम उसे अनावश्यक मानते हैं।

पंचस्वरा दशा विचार :–

पंचांकान् प्रथमे दत्त्वा स्वरान्वर्णाश्च विन्यसेत्।
कादिहान्तॉंल्लिखेद् वर्णान् स्वराधोङंअणोज्झितान्।। 47।।
तिर्यक् पंक्ति क्रमेणैव पंच पंच विभागतः।
न प्रोक्ता ङंणावर्णानामादौ सन्ति तेन हि।। 48।।
चेद्भवन्ति तदा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम्।
यत्रस्वरे स्वनामाद्यवर्णः स्यात् तत्स्वरादयः।। 49।।
क्रमात् पंचदशाधीशाः द्वादश द्वादशाब्दकाः।
स्वराणां च क्रमाज्ज्ञेयाः दशास्वन्तर्दशादयः।। 50।।

पहले पड़ी रेखा पर 1.2.3.4.5 अंक लिखें। इनके नीचे क्रमशः अ, इ, उ, ए, ओ इन पाँच स्वरों को लिखें। इनके नीचे क से लेकर ह तक व्यंजन लिखें। लेकिन ङ, ञ न लिखें। इस प्रकार सभी स्वर व्यंजन पाँच कोष्ठकों में बँट जाते हैं।

ङ ञ वर्ण से नाम शुरू नहीं होता। यदि कहीं ऐसा हो तो ङ को ग, ञ को ज तथा ण को ड समझें।

जिस स्वर के नीचे अपने नाम का पहला अक्षर मिले, उसी से शुरू करके पाँचों स्वरों की दशा होती है। प्रत्येक दशा का वर्षमान 12 है। इसी क्रम से पाँचों स्वरों की अन्तर्दशाएँ भी समझ लें।

यह स्वर शास्त्र का विषय है। एतदर्थ पाठकों को 'नरपतिजयचर्या' आदि पुस्तकों को भी देखना चाहिए। हमारे उदाहरण में आर्द्रा का द्वितीय चरण है। अतः नाम का पहला अक्षर 'घ' है।

।।पंचस्वर चक्र ।।

1	2	3	4	5
अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
वर्ष 12	12	12	12	12

नामाद्यक्षर 'घ' चतुर्थ स्वर के नीचे मिला। अतः पहली दशा 'ए' स्वर की होगी। आगे की दशाएँ क्रमशः रहेंगी।

।।पंचस्वरादशा चक्र ।।(उदा.)

दशास्वर	ए	ओ	अ	इ	उ
वर्ष	12	12	12	12	12
25.1.1956	25.1.1968	25.1.1980	25.1.1992	25.1.2004	25.1.2016

सम्पूर्ण दशामान को यदि 5 से भाग दें तो 12 वर्ष ÷ 5 = 2 वर्ष 4 मास 24 दिन की एक अन्तर्दशा रहेगी। पहली अन्तर्दशा महादशास्वर की ही होती है।

योगिनीदशा विचार :–

पूर्वमेव मया प्रोक्ता वर्णदाख्या दशा द्विज !।
इदानीं शम्भुना प्रोक्ता कथ्यते योगिनी दशा ।। 51 ।।

मंगला पिंगला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा ।
उल्का सिद्धा संकटा च योगिन्यष्टौ प्रकीर्तिताः ।। 52 ।।
मंगलातोऽभवत्सूर्यः पिगंलातो निशाकरः ।
धान्यातो देवपूज्योऽभूद् भ्रामरीतोऽभवत्कुजः ।। 53 ।।
भद्रिकातो बुधोजातस्तथोल्कातः शनैश्चरः ।
सिद्धातो भार्गवो जातः सकंटातस्तमोऽभवत् ।। 54 ।।
जन्मर्क्षं च त्रिभिर्युक्तं वसुभिर्भागमाहरेत् ।
एकादि शेषे विज्ञेया योगिन्यो मंगलादितः ।। 55 ।।
एकाद्येकोत्तरा ज्ञेयाः समाश्चासां क्रमादिह ।
विंशोत्तरीवदेवात्र भुक्तं भोग्यं च साधयेत् ।। 56 ।।

हे मैत्रेय ! मैं पहले वर्णद दशा को बता ही चुका हूँ। अब शंकर प्रोक्त योगिनी दशा कहता हूँ। मंगला पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा सकंटा ये 8 योगिनियाँ हैं ।

मंगला से सूर्य, पिंगला से चन्द्रमा, धान्या से गुरु, भ्रामरी से मंगल, भद्रिका से बुध, उल्का से शनि, सिद्धा से शुक्र व संकटा से राहु उत्पन्न हुआ है ।

जन्म नक्षत्र में तीन मिलाकर 8 का भाग दें। शेष संख्या के अनुसार क्रमशः मंगलादि दशाएँ होती हैं ।

विंशोत्तरी दशा की तरह यहाँ भी भयात भभोग (या चन्द्र स्पष्ट) से दशा के भुक्त भोग्य वर्ष जानने चाहिए ।

इनके दशा वर्ष क्रमशः 1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. होते हैं ।

हमारे उदाहरण में जन्म नक्षत्र संख्या $6+3=9\div8$ = शेष 1 होने से मंगला दशा में जन्म है। मंगला दशा का मान 1 वर्ष सारे नक्षत्र के लिए है। अतः गत नक्षत्र कलाओं के आधार पर भुक्त समय जानना सरल ही है ।

पिण्डादि आयुर्दाय विचार :–

येषां यदायुः संसिद्धं पैण्ड्यमंशनिसर्गजम् ।
तत्तत् तेषां दशा ज्ञेया पैण्डी चांशी निसर्गजा ।। 57 ।।

बली लग्नार्कचन्द्राणां यस्तस्य प्रथमा दशा ।
तत्केन्द्रादिगतानां च ज्ञेया बलक्रमात्ततः ।।58।।
अष्टवर्गबलेनैषां फलानि परिचिन्तयेत् ।
अष्टवर्गदशाश्चापि कथिताः पूर्वसत्तमैः ।।59।।

आयुर्दायाध्याय में पहले जिस ग्रह की जितनी पिण्डायु, अंशायु या निसर्गायु सिद्ध हुई हो, उतनी ही उस ग्रह की पिण्डदशा, अंशायुर्दशा या निसर्ग दशा होती है ।

लग्न, चन्द्र व सूर्य में से जो बलवान् हो, उसकी पहली दशा तथा आगे उससे केन्द्रगत, पणफरगत व आपोक्लिमगत ग्रहों की बलानुसार दशा होगी । अर्थात् बलवान् की पहले व निर्बल की बाद में दशा आएगी ।

आगे कहे जाने वाले अष्टक वर्गाध्याय में वक्ष्यमाण अष्टवर्ग बलादि विचार से इन ग्रहों की दशा का फल कहना योग्य है ।

इस विषय में हम बृहज्जातक अभिनव भाष्य व आयुर्निर्णय में सोदाहरण विवेचन कर चुके हैं । यहाँ पिष्टपेषण उचित नहीं है ।

सन्ध्या दशा :–

परायुर्द्वादशोभागस्तस्य सन्ध्या प्रकीर्तिता ।
तन्मिता लग्नभादीनां क्रमात् सन्ध्यादशा स्मृता ।।60।।

परमायु 120 वर्ष का बारहवाँ भाग अर्थात् 10-10 वर्ष की सन्ध्या होती है । इतने वर्षों की लग्न राशि से प्रारम्भ करके क्रमशः सन्ध्या दशा होती है ।

हमारे उदाहरण में कर्क लग्न है । अतः कर्क, सिंह, कन्या आदि राशियों (या भावों) की 10-10 वर्ष की सन्ध्या दशा होगी ।

जिस भाव या राशि में शुभ दृग्योग, बली ग्रह योग, कारक योग या शुभ भाव योग होगा, उसकी दशा अच्छी रहेगी ।

। । सन्ध्या दशा चक्र । । (उदा.)

दशेश	कर्क	सिंह	क.	तुला	वृ.	धनु	म.	कु.	मीन	मेष	वृष	मि.
वर्ष	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10
25.1.1956	1966	1976	1986	1996	2006	2016	2026	2036	2046	2056	2066	2076

वर्तमान में तुला दशा है । तुला राशि चतुर्थ केन्द्र में है । इसका स्वामी मित्र क्षेत्री वर्गोत्तमी शुभ ग्रह व लाभेश है । इस राशि से त्रिकोण में चन्द्र शुक्र हैं । अतः इस दशा में चतुर्थ भाव से सम्बन्धित शुभ फल होंगे ।

सन्ध्यापाचक दशा (अन्तर्दशा) :–

सन्ध्या रसगुणा कार्या चन्द्र वह्निहृता फलम् ।
संस्थाप्यं प्रथमे कोष्ठे तदर्धं त्रिषु विन्यसेत् । । 61 । ।
त्रिभागं वसु कोष्ठेषु विन्यस्य तत्फलं वदेत्
एवं द्वादशभावेषु पाचकानि विकल्पयेत् । । 62 । ।

सन्ध्या दशा के 10 वर्षों को 6 से गुणा कर 31 का भाग दें । लब्धि पहले कोष्ठक में रखें । लब्धि का आधा अगले तीन कोष्ठकों में रखें । लब्धि का तिहाई शेष 8 कोष्ठकों में रखें । तब उसका फल कहें ।

इसी विधि से 12 भावों की अन्तर्दशा (पाचक) लिखकर चक्र बनाएँ ।

हमारे उदाहरण में वर्तमान में तुला राशि या चतुर्थ भाव की दशा है । इसके दशा वर्ष 10×6 = 60÷31 = 1.11.7 वर्षादि पहले कोष्ठक में, इसका आधा 0. 11. 18 अगले तीन में व लब्धि का तिहाई 0.7.22 आगे के आठ कोष्ठकों में रखा ।

घड़ी पल छोड़ देने से यहाँ 15 दिनों का अन्तर पड़ा है, जो नगण्य है । इस दशा में मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कन्या की पाचक या अन्तर्दशाएँ शुभ रहेंगी ।

।। चतुर्थ भाव पाचक दशा ।। (उदा.)

दशेश	तुला	वृ.	धनु	म.	कु.	मीन	मेष	वृष	मि.	कर्क	सिहं	क.
वर्ष	1	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	11	11	11	11	7	7	7	7	7	7	7	7
दिन	7	18	18	18	22	22	22	22	22	22	22	20
25.1.1986	2.1.1988	20.12.1988	8.12.1989	26.11.1990	18.7.1991	10.3.1992	22.10.1992	14.6.1993	6.2.1994	28.9.1994	20.5.1995	10.1.1996

तारादशा विचार :–

विंशोत्तरीदशेवात्र कैश्चित् तारादशा मता ।
आद्यंकुराजीशबुकेश्वादिस्थानेषु तारकाः ।। 63 ।।
जन्मसम्पद विपत क्षेम प्रत्यरिसाधको वधः ।
मैत्रं परममैत्रं च केन्द्रस्थबलिनो ग्रहात् ।। 64 ।।
ज्ञेया तारादशा विप्र ! नामतुल्य फलप्रदा ।
यस्य केन्द्रे स्थितः खेटो दशेयं परिकीर्तिता ।। 65 ।।

विंशोत्तरी दशा की तरह किसी ने तारादशा भी मानी है । सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र को क्रमशः जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र व अतिमैत्र समझकर, केन्द्रगत बली ग्रह से दशारम्भ करना चाहिए । इसके दशा वर्ष विंशोत्तरी दशा की तरह ही होते हैं ।

यह तारादशा नामानुसार फल देने वाली है । जिसके केन्द्र में ग्रह हो उसी को यह तारा फलद होती है ।

हमारे उदाहरण में केन्द्र में सूर्य बुध में से सूर्य बलवान् है । अतः पहली दशा जन्म तारा की होगी ।

।। तारादश चक्र ।। (उदा.)

दशेश	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दशा तारा	जन्म	सम्पत्	विपत्	क्षेम	प्रत्यरि	साधक	वध	मैत्र	अति मैत्र
वर्ष	6	10	7	18	16	19	17	7	20
25.1.1956	25.1.1962	25.1.1972	25.1.1979	25.1.1997	25.1.2013	25.1.2032	25.1.2049	25.1.2056	25.1.2076

इति ते कथिता विप्र ! दशाभेदा अनेकधा ।
एतदन्तर्दशाभेदान् कथयिष्यामि चाग्रतः ।। 66 ।।

इस प्रकार हे मैत्रेय ! मैंने बहुत से दशाभेद आपके समक्ष कहे हैं । इनकी अन्तर्दशाएँ आगे कहूँगा ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां विभिन्नदशाध्यायः सप्तचत्वारिंशः ।। 47 ।।

48

।। अथान्तर्दशाध्यायः ।।

अन्तर्दशा साधन विधि :–

दशाब्दाः स्वस्वमानघ्नाः सर्वायुर्योगभाजिताः ।
पृथगन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तरदशादिकाः ।। 1 ।।

महादशेश के दशा वर्षो व अन्तर्दशेश के दशा वर्षो को आपस में गुणा करें । जिस दशा भेद में अन्तर्दशा जाननी हो, उस दशा प्रकार के सारे दशा वर्ष, जैसे विंशोत्तरी में 120 वर्ष, अष्टोत्तरी में 108 आदि से भाग दें । लब्धि अन्तर्दशा का मान होगी । इसी विधि से अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा का मान भी जान सकते हैं ।

जैसे सूर्य की महादशा विंशोत्तरी में शनि की अन्तर्दशा जाननी है तो सूर्यदशा वर्ष 6× शनि दशा वर्ष 19 = 114 वर्ष को 120 से भाग दिया

तो 10 वर्ष 11 मास 12 दिन शनि की अन्तर्दशा है। विंशोत्तरी में एक सरल प्रकार यह भी है कि गुणनफल 114 में से ईकाई के अंक को तिगुना करके दिन मानें व दहाई आदि अंकों को मास मान लें। अन्तर्दशा हो जाती है।

प्रत्यन्तर बनाना हो तो अन्तर्दशा वर्षमान को दशा वर्ष से गुणा करके सर्व योग से भाग दें।

अन्तर्दशाओं का क्रम :–

आदावन्तर्दशापाकपतेस्तत्क्रमतोऽपराः ।
एवं प्रत्यन्तरादौ च क्रमो ज्ञेयो विचक्षणैः ।।2।।

पहली अन्तर्दशा महादशेश की व तत्पश्चात् महादशा क्रम से ही अन्तर्दशाएँ होती हैं। इसी विधि से प्रत्यन्तरदशाओं में पहली अन्तर्दशेश की व पश्चात् दशाक्रम वाली दशाएँ ही रहेंगी।

यह दशान्तर्दशा की विधि वहीं पर लागू होती है, जहाँ केवल ग्रहों की दशा ही होती है। जो दशाएँ राशि व ग्रह दोनों की होती हैं, उनमें अलग विधि प्रयोज्य है, जो आगे बताई जा रही है।

राशिदशान्तर्दशा ज्ञान :–

कृत्वाऽर्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद्वदेत् ।
एवं दशान्तर्दशादि कृत्वा तेन फलं वदेत् ।।3।।
ओजे क्रमात्समे गण्याः दशा संहारमार्गतः ।
दशाक्रमानुसारेण सर्वत्रैवं क्रमो मतः ।।4।।

राशियों की दशाओं में राशि दशा वर्षों को 12 से भाग देकर लब्धि के बराबर समय तक क्रम या उत्क्रम से अर्थात् जिस क्रम से दशाएँ हों उसी क्रम से अन्तर्दशाएँ आदि भी होती हैं। उसके आधार पर दशाओं व अन्तर्दशाओं के समन्वय से फल कहना चाहिए।

इसका उदाहरण पीछे दशाध्याय में यथा प्रसंग दिखा चुके हैं।

राशि अन्तर्दशा फल का विशेष नियम :–

चर स्थिरद्विस्वभावेषु ओजेषु प्राक् क्रमो मतः ।
तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम् ।।5।।
एवमालिखितो राशि, पाकराशिरुदीर्यते ।
आद्याद् यावतिथः पाकः पर्याये यत्र दृश्यते ।।6।।

तस्मात् तावत्तिथो भोगः पर्याये तत्र गृह्यताम् ।
तदिदं चरपर्यायस्थिरपर्याययोर्द्वयोः ।। 7 ।।
त्रिकोणाख्यदशायां च पाकभोगप्रकल्पनम् ।
पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा ।। 8 ।।

दशा क्रम के अनुसार ही अन्तर्दशा क्रम होता है । सभी चर स्थिर द्विस्वभाव राशियों में विषम राशियों में सीधी गणना एवं सभी सम राशियों में विलोम क्रम से गणना करनी होगी ।

जिस रशि की दशा वर्तमान हो, वही पाक रशि कहलाती है । जैमिनीय सूत्रों में पाकराशि को ही 'दशाश्रयो द्वारम्' कहकर द्वारराशि नाम भी दिया गया है ।

यह दशाश्रय राशि या द्वारराशि या पाक राशि पहली दशा से जितना आगे हो, उससे उतनी ही आगे की राशि भोगराशि या बाह्य राशि कहलाती है । किसी भी वर्तमान राशि दशा का शुभाशुभ फल पाक व भोगराशि से प्रभावित होता है । यह पाक व भोग राशि की कल्पना केवल चर दशा, स्थिर दशा व त्रिकोण दशा में ही करनी चाहिए, सर्वत्र नहीं ।

पाक राशि व भोग राशि यदि एक साथ पापयुक्त हों तो शारीरिक व मानसिक पीड़ा होती है ।

पिण्डायुर्दायादि में अन्तर्दशा :–

पिण्डांशनिसर्गेषु ब्रवीम्यन्तर्दशाविधिम् ।
पूर्णं दशापतिर्दद्यात् तदर्धं तेन संयुतः ।। 9 ।।
त्रिकोणभस्तृतीयांश तुर्यांशं चतुरस्रगः ।
स्मरगः सप्तमं भागं बहुष्वेको बली ग्रहः ।। 10 ।।
एवं सलग्नकाः खेटाः पाचयन्ति मिथः स्थिताः ।
समच्छेदी कृताः प्राप्ता अंशाश्छेदविवर्जिताः ।। 11 ।।
दशाब्दाः पृथगंशघ्ना अंशयोग विभाजिताः ।
अन्तर्दशा भवत्येवं तत्प्रत्यन्तर्दशादिकाः ।। 12 ।।

पिण्डायु, निसर्गायु व अंशायुर्दाय में अन्तर्दशा साधन की विधि कहता हूँ । दशेश पूर्णभाग अर्थात् $\frac{1}{1}$ का, दशेश के साथ स्थित ग्रह $\frac{1}{2}$ भाग का, दशेश से त्रिकोण भावों में स्थित $\frac{1}{3}$ भाग का, चतुर्थ स्थानगत $\frac{1}{4}$ भाग

का, सप्तमस्थ $\frac{1}{7}$ भाग का पाचक या अन्तर्दशा के मान वाला होता है। अन्यत्र स्थित ग्रह की अन्तर्दशा नहीं होती है।

इस प्रकार उक्त स्थानों में पड़ने वाले लग्न व ग्रहों की अन्तर्दशाएँ होती हैं। यदि इन स्थानों में कहीं एक से अधिक ग्रह स्थित हों तो उनमें से एक बलवान् ग्रह की अन्तर्दशा ही होगी।

जिस ग्रह की अन्तर्दशा प्राप्त हो, उसके अंशों को समच्छेद करके छेद को छोड़कर, प्राप्त अंशों से दशा वर्षों को गुणा करके समस्त अंश योग से भाग देने पर लब्धि अन्तर्दशा होती है।

इस विषय की विस्तृत व्याख्या हम अपनी बृहज्जातक अभिनव–व्याख्या में कर चुके हैं। यह विषय यथावत् वराहमिहिर ने पाराशर होरा से लिया है। पुनश्च संक्षेप में एक ग्रह की दशा में अन्तर्दशा साधन करके दिखलाते हैं। समच्छेद करना अर्थात् भिन्न गणित विधि से 'हर' को समान बनाना।

आयुर्दायाध्याय में पीछे सूर्य की पिण्डायु 14. 3. 23. 45 वर्षादि है। सूर्य में सूर्य $\frac{1}{1}$ भाग का पाचक है। सूर्य के साथ बुध $\frac{1}{2}$ भाग का पाचक। अष्टमस्थ बृहस्पति $\frac{1}{4}$ मान का पाचक होगा। इनके भागादि को क्रमशः $\frac{1}{1}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{4}$ को समान हर (समच्छेद) बनाया। $\frac{8}{8}$ $\frac{4}{8}$ $\frac{2}{8}$ में यहाँ 8.4.2 क्रमशः गुणक हुए तथा इनका योग 14 भाजक है। सूर्य दशा 14.3.24×8 (सूर्य गुणक) = 112. 24. 192 वर्षादि को 14 से भाग दिया तो 8.1.35 (स्वल्पान्तरात्) 8 वर्ष 2 मास 5 दिन की सूर्यान्तर्दशा होगी।

इसी दशा मान 14.3..24 को बुध गुणक 4 से गुणा किया तथा 14 से भाग दिया तो 4 वर्ष 1 मास 2 दिन 30 घड़ी बुधान्तर्दशा है। इसी तरह 14.3.24 सूर्य दशा मान को गुरु गुणक 2 से गुणा करके 14 से भाग दिया तो लब्धि 2 वर्ष 16 दिन 15 घड़ी स्वल्पान्तर से गुरु की अन्तर्दशा रहेगी। (8.2.5) + (4.1.2.30) + (2.0.16.15) = 14 वर्ष 3 मास 23 दिन 45 घड़ी कुल दशा योग सिदध होकर गणित उपपन्न हुआ। इसी प्रकार से अन्य ग्रहों की अन्तर्दशाएँ भी जान सकते हैं।

काल चक्र दशा में अन्तर्दशा :–

विंशोत्तरीदशारीत्याकालचक्रदशास्वपि ।
दशादशाहतांकृत्वा भुक्तं भोग्यं च साधयेत् ।। 13 ।।

काल चक्र दशा में राशियों की दशा में अन्तर्दशा साधन करने के लिए दशामान को परस्पर गुणा कर विंशोत्तरीवत् सर्वदशामान 100 वर्ष से भाग देने से अन्तर्दशा होती है ।

उदाहरणार्थ काल चक्र दशा प्रसंग में पीछे मेष राशि में मेषान्तर्दशा का साधन करना है । वहाँ मेष दशा वर्ष 7 को इसी से गुणा किया तो 49 मिले । इसे सर्व दशामान 100 वर्ष से भाग दिया तो $\frac{49}{100}$ = 0 वर्ष, 5 मास 26 दिन 24 घड़ी यह मेष में मेषान्तर्दशा का मान हुआ ।

इसी तरह मेष में वृष दशा वर्ष $16 \times 7 = \frac{112}{100}$ = लब्धि 1 वर्ष 1 मास, 13 दिन 22 घड़ी मिली । यही मेष में वृष की अन्तर्दशा का मान हुआ । इसी विधि से सब अन्तर्दशाएँ सिद्ध हो जाती हैं ।

चन्द्र स्पष्ट द्वारा मुख्य दशान्तर्दशा साधन :– भयात भभोग के स्थान पर चन्द्रमा स्पष्ट द्वारा भुक्त भोग्य साधन करना अधिक विश्वसनीय होता है । अतः यहाँ चन्द्र स्पष्ट द्वारा दशान्तर्दशा साधन का प्रकार बताया जा रहा है । आगे दी गई सारणियों से जन्मकालीन चन्द्र स्पष्ट के राशि व अंशों के सामने से वर्ष मास दिन ले लें । यदि कुछ कलाएँ भी शेष हों तो कलाओं के सामने दिए गए मासों दिनों को पूर्वागत फल में से घटा लें । इस प्रकार दशा भोग्य प्राप्त हो जाएगा ।

हमारे उदाहरण में चन्द्रमा 2.11°.21′ है । विंशोत्तरी दशा सारिणी में मिथुन राशि के नीचे 11°.20′ अंशों पर राहु के 11.8.12 वर्षादि मिले । आनुपातिक कला सारिणी से शेष 1 कला का राहु का फल 8 दिन इसमें से घटाया तो 11.8.4 वर्षादि राहु की दशा विंशोत्तरी मान से भोग्य थी ।

अष्टोत्तरी सारिणी में चन्द्र 2.10°.40′ के सामने सूर्य दशा 5.6.18 वर्ष मिली । शेष 41 कलाओं का फल 1-7 मास इसमें से घटाने पर 5.5.11 वर्षादि भोग्य हुआ ।

इसी विधि से सब दशाओं में भभोग माना जा सकता है ।

।। विशोंत्तरी दशा भोग्य सारिणी ।।

चन्द्र स्पष्ट		मेष सिंह धनु				वृष कन्या मकर				मिथुन तुला कुम्भ				कर्क वृश्चिक मीन			
0	0	केतु	7	0	0	सूर्य	4	6	0	मंगल	3	6	0	गुरु	4	0	0
0	20		6	9	27		4	4	6		3	3	27		3	7	6
0	40		6	7	24		4	2	12		3	1	24		3	2	12
1	0		6	5	21		4	0	18		2	11	21		2	9	18
1	20		6	3	18		3	10	24		2	9	18		2	4	24
1	40		6	1	15		3	9	0		2	7	15		2	0	0
2	0		5	11	12		3	7	6		2	5	12		1	7	6
2	20		5	9	9		3	5	12		2	3	9		1	2	12
2	40		5	7	6		3	3	18		2	1	6		0	9	18
3	0		5	5	3		3	1	24		1	11	3		0	4	24
3	20		5	3	0		3	0	0		1	9	0		19	0	0
3	40		5	0	27		2	10	6		1	6	27		18	6	9
4	0		4	10	24		2	8	12		1	4	24		18	0	18
4	20		4	8	21		2	6	18		1	2	21		17	6	27
4	40		4	6	18		2	4	24		1	0	18	शनि	17	1	6
5	0		4	4	15		2	3	0		0	10	15		16	7	15
5	20		4	2	12		2	1	6		0	8	12		16	1	24
5	40		4	0	9		1	11	12		0	6	9		15	8	3
6	0		3	10	6		1	9	18		0	4	6		15	2	12
6	20		3	8	3		1	7	24		0	2	3		14	8	21
6	40		3	6	0		1	6	0		18	0	0		14	3	0
7	0		3	3	27		1	4	6		17	6	18		13	9	9
7	20		3	1	24		1	2	12		17	1	6		13	3	18
7	40		2	11	21		1	0	18		16	7	24		12	9	27
8	0		2	9	18		0	10	24	राहु	16	2	12		12	4	6
8	20		2	7	15		0	9	0		15	9	0		11	10	15
8	40		2	5	12		0	7	6		15	3	18		11	4	24
9	0		2	3	9		0	5	12		14	10	6		10	11	3
9	20		2	1	6		0	3	18		14	4	24		10	5	12
9	40		1	11	3		0	1	24		13	11	12		9	11	21
10	0		1	9	0		10	0	0		13	6	0		9	6	0
10	20		1	6	27		9	9	0		13	0	18		9	0	9
10	40		1	4	24		9	6	0		12	7	6		8	6	18
11	0		1	2	21		9	3	0		12	1	24		8	9	27
11	20		1	0	18	चन्द्र	9	0	0		11	8	12		7	7	6
11	40		0	10	15		8	9	0		11	3	0		7	1	15
12	0		0	8	12		8	6	0		10	9	18		6	7	24
12	20		0	6	9		8	3	0		10	4	6		6	2	3
12	40		0	4	6		8	0	0		9	10	24		5	8	12
13	0		0	2	3		7	9	0		9	5	12		5	2	21
13	20		20	0	0		7	6	0		9	0	0		4	9	0
13	40		19	6	0		7	3	0		8	6	18		4	3	9
14	0		19	0	0		7	0	0		8	1	6		3	9	18
14	20		18	6	0		6	9	0		7	7	24		3	3	27
14	40	शुक्र	18	0	0		6	6	0		7	2	12		2	10	6
15	0		17	6	0		6	3	0		6	9	0		2	4	15
15	20		17	0	0		6	0	0		6	3	18		1	10	24
15	40		16	6	0		5	9	0		5	10	6		1	5	3
16	0		16	0	0		5	6	0		5	4	24		0	11	12
16	20		15	6	0		5	3	0		4	11	12		0	5	11

शेष अगले पृष्ठ पर

16	40		15	0	0		5	0	0		4	6	0		17	0	0
17	0		14	6	0		4	9	0		4	0	18		16	6	27
17	20		14	0	0		4	6	0		3	7	6		16	1	24
17	40		13	6	0		4	3	0		3	1	24		15	8	21
18	0		13	0	0		4	0	0		2	8	12		15	3	18
18	20		12	6	0		3	9	0		2	3	0	बुध	14	10	15
18	40		12	0	0		3	6	0		1	9	18		14	5	12
19	0		11	6	0		3	3	0		1	4	6		14	0	9
19	20		11	0	0		3	0	0		0	10	24		13	7	6
19	40		10	6	0		2	9	0		0	5	12		13	2	3
20	0		10	0	0		2	6	0		16	0	0		12	9	0
20	20		9	6	0		2	3	0		15	7	6		12	3	27
20	40		9	0	0		2	0	0		15	2	12		11	10	24
21	0		8	6	0		1	9	0		14	9	18		11	5	21
21	20		8	0	0		1	6	0	गुरु	14	4	24		11	0	18
21	40		7	6	0		1	3	0		14	0	0		10	7	15
22	0		7	0	0		1	0	0		13	7	6		10	2	12
22	20		6	6	0		0	9	0		13	2	12		9	9	9
22	40		6	0	0		0	6	0		12	9	18		9	4	6
23	0		5	6	0		0	3	0		12	4	24		8	11	3
23	20		5	0	0		7	0	0		12	0	0		8	6	0
23	40		4	6	0		6	9	27		11	7	6		8	0	27
24	0		4	0	0		6	7	24		11	2	12		7	7	24
24	20		3	6	0		6	5	21		10	9	18		7	2	21
24	40		3	0	0	मंगल	6	3	18		10	4	24		6	9	18
25	0		2	6	0		6	1	15		10	0	0		6	4	15
25	20		2	0	0		5	11	12		9	7	6		5	11	12
25	40		1	6	0		5	9	9		9	2	12		5	6	9
26	0		1	0	0		5	7	6		8	9	18		5	1	6
26	20		0	6	0		5	5	3		8	4	24		4	8	3
26	40		6	0	0		5	3	0		8	0	0		4	3	0
27	0		5	10	6		5	0	27		7	7	6		3	9	27
27	20		5	8	12		4	10	24		7	2	12		3	4	24
27	40		5	6	18		4	8	21		6	9	18		2	11	21
28	0		5	4	24		4	6	18		6	4	24		2	6	18
28	20	सूर्य	5	3	0		4	4	15		6	0	0		2	1	15
28	40		5	1	6		4	2	12		5	7	6		1	8	12
29	0		4	11	12		4	0	9		5	2	12		1	3	9
29	20		4	9	18		3	10	6		4	9	18		0	10	6
29	40		4	7	24		3	8	3		4	4	24		0	5	3
30	0		4	6	0		3	6	0		4	0	0		0	0	0

।। विंशोत्तरी भोग्य मासादि आनुपातिक चक्र ।।

कला	केतु		शुक्र		सूर्य		चन्द्र		मंगल		राहु		गुरु		शनि		बुध		
'																			
1	0	3	0	9	0	3	0	5	0	3	0	8	0	7	0	9	0	8	1
2	0	6	0	18	0	5	0	9	0	6	0	16	0	14	0	17	0	15	2
3	0	9	0	27	0	8	0	14	0	9	0	24	0	22	0	26	0	23	3
4	0	13	1	6	0	11	0	18	0	13	1	2	0	29	1	4	1	1	4
5	0	16	1	15	0	14	0	23	0	16	1	11	1	6	1	13	1	8	5
6	0	19	1	24	0	16	0	27	0	19	1	19	1	13	1	21	1	16	6
7	0	22	2	3	0	19	1	2	0	22	1	27	1	20	2	0	1	24	7
8	0	25	2	12	0	22	1	6	0	25	2	5	1	28	2	8	2	1	8
9	0	28	2	21	0	24	1	11	0	28	2	13	2	5	2	17	2	9	9
10	1	1	3	0	0	27	1	15	1	1	2	21	2	12	2	26	2	17	10

(उपकरण चन्द्रस्पष्ट)

S	°	'	राहु			S	°	'	शुक्र			S	°	'	चन्द्र			S	°	'	मंगल		
0	0	0	6	0	0	2	0	0	3	6	0	4	0	0	15	0	0	6	0	0	5	0	0
	1	20	5	8	12		1	20	2	9	18		1	20	14	6	0		1	20	4	9	18
	2	40	5	4	24		2	40	2	1	6		2	40	14	0	0		2	40	4	7	6
	4	0	5	1	6		4	0	1	4	24		4	0	13	6	0		4	0	4	4	24
	5	20	4	9	19		5	20	0	8	12		5	20	13	0	0		5	20	4	2	12
	6	40	4	6	0		-	-	सूर्य				6	40	12	6	0		6	40	4	0	0
	8	0	4	2	12		6	40	6	0	0		8	0	12	0	0		8	0	3	9	18
	9	20	3	10	24		8	0	5	10	6		9	20	11	6	0		9	20	3	7	6
	10	40	3	7	6		9	20	5	8	12		10	40	11	0	0		10	40	3	4	24
	12	0	3	3	18		10	40	5	6	18		12	0	10	6	0		12	0	3	2	12
	13	20	3	0	0		12	0	5	4	20		13	20	10	0	0		13	20	3	0	0
	14	40	2	8	12		13	20	5	3	0		14	40	9	6	0		14	40	2	9	18
	16	0	2	4	24		14	40	5	1	6		16	0	9	0	0		16	0	2	7	6
	17	20	2	1	6		16	0	4	11	12		17	20	8	6	0		17	20	2	4	24
	18	40	1	9	18		17	20	4	9	18		18	40	8	0	0		18	40	2	2	12
	20	0	1	6	0		18	40	4	7	24		20	0	7	6	0		20	0	2	0	0
	21	20	1	2	12		20	0	4	6	0		21	20	7	0	0		21	20	1	9	18
	22	40	0	10	24		21	20	4	4	6		23	40	6	6	0		22	40	1	7	6
	24	0	0	7	6		22	40	4	2	12		24	0	6	0	0		24	0	1	4	24
	25	20	0	3	18		24	0	4	0	18		25	20	5	6	0		25	20	1	2	12
			शुक्र				25	20	3	10	24		26	40	5	0	0		26	40	1	0	0
	26	40	21	0	0		26	40	3	9	0		28	0	4	6	0		28	0	0	9	18
	28	0	20	3	18		28	0	3	7	6		29	20	4	0	0		29	20	0	7	6
	29	20	19	7	6		29	20	3	5	12	5	0	40	3	6	0	7	0	40	0	4	24
	0	40	18	10	24	3	0	40	3	3	18		2	0	3	0	0		2	0	0	2	12
	2	0	18	2	12		2	0	3	1	24		3	20	2	6	0				बुध		
	3	20	17	6	0		3	20	3	0	0		4	40	2	0	0		3	20	17	0	0
	4	40	16	9	18		4	40	2	10	6		6	0	1	6	0		4	40	16	5	6
	6	0	16	1	6		6	0	2	8	12		7	20	1	0	0		6	0	15	10	12
	7	20	15	4	24		7	20	2	6	19		8	40	0	6	0		7	20	15	3	18
	8	40	14	8	12		8	40	2	4	24				मंगल				8	40	14	8	24
	10	0	14	0	0		10	0	2	3	0		10	0	8	0	0		10	0	14	2	0
	11	20	13	3	18		11	20	2	1	6		11	20	7	9	18		11	20	13	7	6
	12	40	12	7	6		12	40	1	11	12		12	40	7	7	6		12	40	13	0	12
	14	0	11	10	24		14	0	1	9	18		14	0	7	4	24		14	0	12	5	18
	15	20	11	2	12		15	20	1	7	24		15	20	7	2	12		15	20	11	10	24
	16	40	10	6	0		16	40	1	6	0		16	40	7	0	0		16	40	11	4	0
	18	0	9	9	18		18	0	1	4	6		18	0	6	9	18		18	0	10	9	6
	19	20	9	1	6		19	20	1	2	12		19	20	6	7	6		19	20	10	2	12
	20	40	8	4	24		20	40	1	0	18		20	40	6	4	24		20	40	9	7	18
	22	0	7	8	12		22	0	0	10	24		22	0	6	2	12		22	0	9	0	24
	23	20	7	0	0		23	20	0	9	0		23	20	6	0	0		23	20	8	6	0
	24	40	6	3	18		24	40	0	7	6		24	40	5	9	18		24	40	7	11	6
	26	0	5	7	6		26	0	0	5	12		26	0	5	7	6		26	0	7	4	12
	27	20	4	10	24		27	20	0	3	18		27	20	5	4	24		27	20	6	9	18
	28	40	4	2	12		28	40	0	1	24		28	40	5	2	12		28	40	6	2	24

।। अष्टोत्तरी भोग्यकला मासादि ।।

		सूर्य		चन्द्र		मंगल		बुध		शनि		गुरु		राहु		शुक्र		कला	
0																		0	'
	1	0	1	0	2	0	1	0	2	0	2	0	3	0	2	0	2		1
	2	0	2	0	3	0	2	0	4	0	3	0	6	0	4	0	5		2
	3	0	3	0	5	0	4	0	6	0	5	0	9	0	5	0	7		3
	4	0	4	0	7	0	5	0	8	0	6	0	11	0	7	0	9		4
	5	0	5	0	8	0	6	0	10	0	8	0	14	0	9	0	12		5
	6	0	5	0	10	0	7	0	12	0	9	0	17	0	11	0	14		6
	7	0	6	0	12	0	8	0	13	0	11	0	20	0	13	0	17		7
	8	0	7	0	14	0	10	0	15	0	12	0	23	0	14	0	19		8
	9	0	8	0	15	0	11	0	17	0	14	0	26	0	16	0	21		9
	10	0	9	0	17	0	12	0	19	0	15	0	29	0	18	0	24		10
	20	0	18	1	4	0	24	1	8	1	0	1	27	1	6	1	17		20
	30	0	27	1	21	1	6	1	27	1	15	2	26	1	24	2	11		30
	40	1	6	2	8	1	18	2	17	2	0	3	24	2	12	3	5		40
	50	1	15	2	24	2	0	3	6	2	15	4	23	3	0	3	28		50
1		1	24	3	11	2	12	3	25	3	0	5	21	3	18	3	22	1	
1	10	2	3	3	28	2	24	4	14	3	15	6	20	4	6	5	15	1	10
1	20	2	12	4	15	3	6	5	3	4	0	7	18	4	24	6	10	1	20

।। विंशोत्तरी अन्तर्दशा सारिणी ।।

अन्तर्दशा	सूर्य-6		चन्द्र-10		मंगल-7	
	वर्षादि	योग	वर्षादि	योग	वर्षादि	योग
सूर्य	0 3 18	0 3 18	-	-	-	
चन्द्र	0 6 0	0 9 18	0 10 0	0 10 0	-	
मंगल	0 4 6	1 1 24	0 7 0	1 5 0	0 4 27	0 4 27
राहु	0 10 24	2 0 18	1 6 0	2 11 0	1 0 18	1 5 15
गुरु	0 9 18	2 10 6	1 4 0	4 3 0	0 11 6	2 4 21
शनि	0 11 12	3 9 18	1 7 0	5 10 0	1 1 9	3 6 0
बुध	0 10 6	4 7 24	1 5 0	7 3 0	0 11 27	4 5 27
केतु	0 4 6	5 0 0	0 7 0	7 10 0	0 4 27	4 10 24
शुक्र	1 0 0	6 0 0	1 8 0	9 6 0	1 2 0	6 0 24
सूर्य	-	-	0 6 0	10 0 0	0 4 6	6 5 0
चन्द्र	-	-		-	0 7 0	7 0 0

अन्तर्दशा	राहु-18		गुरु-16		शनि-19	
	वर्षादि	योग	वर्षादि	योग	वर्षादि	योग
राहु	2 8 12	2 8 12	-	-	-	-
गुरु	2 4 24	5 1 6	2 1 18	2 1 18	-	-
शनि	2 10 6	7 11 12	2 6 12	4 8 0	3 0 3	3 0 3
बुध	2 6 18	10 6 0	2 3 6	6 11 6	2 8 9	5 8 12
केतु	1 0 18	11 6 18	0 11 6	7 10 12	1 1 9	6 9 21
शुक्र	3 0 0	14 6 18	2 8 0	10 6 12	3 2 0	9 11 21
सूर्य	0 10 24	15 5 12	0 9 18	11 4 0	0 11 12	10 11 3
चन्द्र	1 6 0	16 11 12	1 4 0	12 8 0	1 7 0	12 6 3
मंगल	1 0 18	18 0 0	0 11 6	13 7 6	1 1 9	13 7 12
राहु	-	-	2 4 24	16 0 0	2 10 6	16 5 18
गुरु	-	-	-	-	2 6 12	19 0 0

शेष अगले पृष्ठ पर

पिछले पृष्ठ का शेष

अन्तर्दशा	बुध-17						केतु-7						शुक्र-20					
	वर्षादि			योग			वर्षादि			योग			वर्षादि			योग		
बुध	2	4	27	2	4	27		-			-						-	
केतु	0	11	27	3	4	24	0	4	27	0	4	27		-			-	
शुक्र	2	10	0	6	2	24	1	2	0	1	6	27	3	4	0	3	4	0
सूर्य	0	10	6	7	1	0	0	4	6	1	11	3	1	0	0	4	4	0
चन्द्र	1	5	0	8	6	0	0	7	0	2	6	3	1	8	0	6	0	0
मंगल	0	11	27	9	5	27	0	4	27	2	11	0	1	2	0	7	2	0
राहु	2	6	18	12	0	15	1	0	18	3	11	18	3	0	0	10	2	0
गुरु	2	3	6	14	3	21	0	11	6	4	10	24	2	8	0	12	10	0
शनि	2	8	9	17	0	0	1	1	9	6	0	3	3	2	0	16	0	0
बुध		-			-		0	11	27	7	0	0	2	10	0	18	10	0
केतु		-			-								1	2	0	20	0	0

।। अष्टोत्तरी (कृत्तिकादि) अन्तर्दशाएं ।।

सूर्य-6			
सूर्य	0	4	0
चन्द्र	0	10	0
मंगल	0	5	10
बुध	0	11	10
शनि	0	6	20
गुरु	1	0	20
राहु	0	8	0
शुक्र	1	2	0

चन्द्र-15			
चन्द्र	2	1	0
मंगल	1	1	10
बुध	2	4	10
शनि	1	4	20
गुरु	2	7	20
राहु	1	8	0
शुक्र	2	11	0
सूर्य	0	10	0

मंगल-8				
मंगल	0	7	3	20
बुध	1	3	3	20
शनि	0	8	26	40
गुरु	1	4	26	40
राहु	0	10	20	0
शुक्र	1	6	20	0
सूर्य	0	5	10	0
चन्द्र	1	1	10	0

बुध-17				
बुध	2	8	3	20
शनि	1	6	26	40
गुरु	2	11	26	40
राहु	1	10	20	0
शुक्र	3	3	20	0
सूर्य	0	11	10	0
चन्द्र	2	4	10	0
मंगल	1	3	3	20

शनि-10				
शनि	0	11	3	20
गुरु	1	9	3	20
राहु	1	1	10	0
शुक्र	1	11	10	0
सूर्य	0	6	20	0
चन्द्र	1	4	20	0
मंगल	0	8	26	40
बुध	1	6	26	40

गुरु-19				
गुरु	3	4	3	20
राहु	2	1	10	0
शुक्र	3	8	10	0
सूर्य	1	0	20	0
चन्द्र	2	7	20	0
मंगल	1	4	26	40
बुध	2	11	26	40
शनि	1	9	3	20

राहु-12			
राहु	1	4	0
शुक्र	2	4	0
सूर्य	0	8	0
चन्द्र	1	8	0
मंगल	0	10	20
बुध	1	10	20
शनि	1	1	10
गुरु	2	1	10

शुक्र-21			
शुक्र	4	1	0
सूर्य	1	2	0
चन्द्र	2	11	0
मंगल	1	6	20
बुध	3	3	20
शनि	1	11	10
राहु	3	8	10
गुरु	2	4	0

इसी पद्धति से शताब्दिका, पंचोत्तरी, द्वादशोत्तरी विभिन्न दशाओं की भी भुक्त भोग्य सारिणी बनाई जा सकती है। नक्षत्राधारित दशाओं में चन्द्र स्पष्ट द्वारा ही भुक्तभोग्य निकालना चाहिए तथा सूर्य के गतांश तथा जहाँ तक हो सके शक संवत् या ईस्वी सन् का प्रयोग करके दशा चक्र बनाने चाहिए।

दशा पद्धति का चयन– मारकादि विचार फल विंशोत्तरी दशा से मिलता है, ऐसा देखा गया है। विंशोत्तरी दशा सबसे अधिक प्रचलित है तथा यह सम्पूर्ण दशा है। अष्टोत्तरी आदि दशाओं से मारक विचार नहीं मिल पाता ! लेकिन जीवन के सूक्ष्म घटनाक्रम को रेखांकित करने के लिए पाराशर होरा में कथित अन्य दशा विधियों का भी प्रयोग करना चाहिए। तब परिणाम अधिक विश्वसनीय होते हैं।

अपने उदाहरण में कर्क लग्न है। वर्गोत्तम लग्न होने से शताब्दिका दशा तथा कर्क लग्न होने से पंचोत्तरी दशा का विचार करना योग्य है। जन्म नक्षत्र आर्द्रा तक अनुराधा से गिना तथा 7 से भाग दिया तो शेष 3 है। अतः शनि की पंचोत्तरी दशा 14 वर्षात्मक जन्म समय में थी।

इसी तरह से रेवती से जन्म नक्षत्र तक गिनने से सप्त विभक्त होने पर 0 शेष होने से भी शनि की तीस वर्षात्मक शताब्दिका दशा थी।

विंशोत्तरी दशा की तरह यहाँ भी भुक्त भोग्य साधन करना है। चन्द्र स्पष्ट 2.11°.21′ तथा मृगशिरा 2.6°.40′ तक है। अतः आर्द्रा नक्षत्र का 4°.41′ भाग गत है। इसकी कलाएँ 281′ हैं।

$$\frac{281 \times \text{दशा } 14}{800} = \frac{3934}{800} = 4 \text{ वर्ष } 11 \text{ मास } 0 \text{ दिन } 18 \text{ घड़ी}$$

भुक्त शनि दशा पंचोत्तरी थी।

इसी तरह से $\frac{281 \times 30 \text{ दशा}}{800}$ वर्ष $\frac{8430}{800}$ = 10 वर्ष 6 मास 13 दिन 30 घड़ी भुक्त शनि दशा शताब्दिका है। सम्पूर्ण दशा वर्षों में से घटाने पर 9 वर्ष 1 मास पंचोत्तरी भोग्य व 19 वर्ष 5 मास 17 दिन शताब्दिका भोग्य हुआ।

।। पंचोत्तरी दशा चक्र ।। (उदाहरण)

दशा	शनि	मंगल	शुक्र	चन्द्र	बृहस्पति	सूर्य	बुध
वर्ष	4	15	16	17	18	12	13
मास	11						
दिन	0						
25.1.1956	25.12.1960	25.12.1975	25.12.1991	25.12.2008	25.12.226	25.12.238	25.12.2051

उक्त उदाहरण वाले व्यक्ति का विवाह पंचोत्तरी दशा के अनुसार शुक्र महादशा में गुरु अन्तर में हुआ। विंशोत्तरी मान से तब गुरु महादशा में चन्द्रान्तर था।

प्रथम सन्तानोत्पत्ति के समय विंशोत्तरी मान से गुरु में राहु तथा पंचोत्तरी मान से शुक्र में गुरु ही था।

गुरु शुक्र स्वाभाविक रूप से विवाह कारक हैं तथा लग्नेश का अन्तर भी विवाह करा सकता है। इसी तरह सन्तानोत्पत्ति भी दोनों दशा प्रकारों से प्रमाणित होती है। ये दशापद्धतियाँ अवश्य ही वास्तविक उदाहरणों को लेकर विशेष परीक्षा की अपेक्षा रखती हैं। महर्षि ने विभिन्न दशा भेद कहे हैं, पुनश्च विंशोत्तरी सर्वव्यापक होते हुए भी आवश्यक अन्य दशाभेद भी देखने योग्य हैं।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्याया-
मन्तर्दशाध्यायोऽष्टचत्वारिंशः ।। 48 ।।

49

।। अथ दशाफलाध्यायः ।।

मैत्रेय उवाच–

श्रुताश्च बहुधा भेदा दशानां च मया मुने !।

फलं च कीदृशं तासां कृपया वद विभागशः ।।1।।

पराशर उवाच–

साधारणं विशिष्टं च दशानां द्विविधं फलम् ।

ग्रहाणां च स्वभावेन स्थानस्थितिवशेन च ।। 2 ।।

मैत्रये बोले– हे महामुनि ! आपके द्वारा बताए अनेक दशा भेद मैंने सुने, अब कृपया उनका फल भी अलग–अलग करके बता दीजिए।

पराशर बोले– सारी दशाओं का फल सामान्य व विशेष भेद से दो प्रकार का होता है। ग्रह अपने स्वभावानुसार शुभाशुभ फल देते हैं तथा ग्रहों की भाव राशि आदि स्थिति से भी दशाफल का निर्धारण होता है। अर्थात् निसर्ग शुभ ग्रह भी भाववशात् अशुभ एवं निसर्ग अशुभ भी स्थिति के अनुसार शुभ फलद हो जाया करते हैं। (देखें लघुपाराशरी, विद्याधरी)।

ग्रह वीर्यानुसारेण फलं ज्ञेयं दशासु च ।

आद्यद्रेष्काणगे खेटे दशारम्भे फलं वदेत् ।। 3 ।।

दशामध्येफलं वाच्यं मध्यद्रेष्काणगे खगे ।

अन्ते फलं तृतीयस्थे विपरीतं तु वक्रगे ।। 4 ।।

(i) ग्रह के बलाबल के अनुसार ही दशाओं का फल होता है। अर्थात् बलवान् अशुभ विशेषतया अशुभ फल करेगा और निर्बल शुभ भी साधारण शुभ ही कर सकेगा।

(ii) जो ग्रह राशि के पहले द्रेष्काण में हो, वह दशा के प्रारम्भिक वर्षों में, मध्यद्रेष्काण गत ग्रह दशा मध्य में एवं अन्तिम द्रेष्काण गत ग्रह दशा के अन्त में फल देते हैं।

सारी दशा को तीन भागों में बाँटकर दशावर्षों में ग्रह की जन्म–कालीन स्थिति वशात् द्रेष्काण भेद से फल समझें।

उदाहरणार्थ शनि दशा का सम्पूर्ण मान 19 वर्ष का त्रिभाग 6 वर्ष 4 मास हैं। शनि गतांश 7°.45′ होने से यह पहले द्रेष्काण में है, अतः दशारम्भ के 6 वर्षों में शनि का फल विशेष होगा।

(iii) यदि ग्रह वक्री हो तो द्रेष्काण भेद को विपरीत क्रम से समझना चाहिए। अन्तिम द्रेष्काण गत ग्रह आरम्भ में, मध्यद्रेष्काण गत मध्य में व प्रथम द्रेष्काण गत ग्रह दशान्त में फलद होगा।

यह विषय वराह होरा में भी यथावत् लिया गया है।

दशारम्भ गोचर व दशाफल :–

दशारम्भे दशाधीशे लग्नगे शुभदृग्यते।
स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा शुभं तस्य दशाफलम्।। 5।।
षष्ठाष्टमव्ययगते नीचास्तरिपुभस्थिते।
अशुभं तत्फलं चाथ ब्रुवे सप्तदशाफलम्।। 6।।

(i) जिस समय दशा प्रवेश हो, उस समय महादशेश (अन्तर्दशारम्भ में अन्तर्दशेश भी) केन्द्रत्रिकोण स्थानों में चन्द्रमा या लग्न से गोचर करता हो अथवा उच्चगत, स्वक्षेत्री, मित्रक्षेत्री हो तथा शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो उस दशा का फल शुभ होता है। अर्थात् शुभ फल की प्रधानता या अशुभ फल का स्थगन हो जाता है।

(ii) यदि दशारम्भ में महादशेश चन्द्र या लग्न से 6.8.12 में गोचर करता हो। अथवा उस समय स्वनीचगत, अस्तंगत या शत्रुक्षेत्री हो तो उस दशा में अशुभता की वृद्धि हो जाती है।

अब मैं सामान्यतः सात दशाओं (राहु-केतु रहित) का फल कहता हूँ। विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारा बृहज्जातक, अभिनव भाष्य का दशान्तर्दशाध्याय भी देखें।

सूर्य दशा फल :–

मूलत्रिकोणे स्वक्षेत्रे स्वोच्चे वा परमोच्चगे।
केन्द्रत्रिकोण लाभस्थे भाग्यकर्माधिपैर्युते।। 7।।
सूर्ये बलसमायुक्ते निजवर्गबलैर्युते।
तस्मिन्दाये महत्सौख्यं धनलाभादिकं सुखम्।। 8।।
अत्यन्तं राजसम्मानमश्वान्दोल्यादिकं सुखम्।
सुताधिपसमायुक्ते पुत्रलाभं च विन्दति।। 9।।
धनेशस्य च सम्बन्धे गजान्तैश्वर्यमादिशेत्।
धनेशस्य च सम्बन्धे वाहनत्रय लाभकृत्।। 10।।
नृपालतुष्टिर्वित्ताढ्यः सेनाधीशः सुखी नरः।
बलवाहनलाभश्च दशायां बलिनो रवेः।। 11।।

यदि जन्म समय में सूर्य अपने उच्च, मूलत्रिकोण, परमोच्च, स्वक्षेत्र में हो या केन्द्र त्रिकोण या लाभ स्थान में हो तथा नवमेश या दशमेश से युक्त हो या अन्यथा षड्बली हो या इन्हीं वर्गों में गया हो तो उसकी महादशा में महान् सुख, धनलाभ आदि, राज सम्मान, वाहनों का विशेष सुख होता है।

यदि पंचमेश से युक्त हो तो पुत्र लाभ होता है। धनेश के साथ सम्बन्ध करता हो तो बड़े वाहनों के सुख से युक्त समृद्धि होती है। राजा की प्रसन्नता, धन की वृद्धि, सेनापतित्व, सुख, शक्ति व सामर्थ्य में वृद्धि होती है।

नीचे षडष्टके रिःफे दुर्बले पापसुंयते।
राहुकेतुसमायुक्ते दुःस्थानाधिपसंयुते।। 12।।
तस्मिन्दाये महापीडा धनधान्यविनाशकृत्।
राजकोपः प्रवासश्च राजदण्डात् धनक्षयः।। 13।।
ज्वरपीड़ा यशो हानिर्बन्धुमित्रविरोधकृत्।
पितृक्षयभयं चैव गृहे त्वशुभमेव च।। 14।।
पितृवर्गे मनस्तापं जनद्वेषं च विन्दति।
शुभदृष्टियुते सूर्ये मध्ये तस्मिन् क्वचित् सुखम्।
पापग्रहेण संयुक्ते वदेत् पापफलं बुधः।। 15।।

यदि सूर्य नीचगत, परम नीच में, 6.8.12 में स्थित, दुर्बल, पापयुक्त, राहुकेतु से युक्त हो तथा 6.8.12 भावेश से युक्त हो तो उसकी दशा में महान् दुःख, धन धान्य का विनाश होता है। राजा का क्रोध, प्रवास, राजदण्ड से धनहानि होती है। ज्वर पीड़ा, यशोहानि, बन्धु मित्रों का विरोध होता है। इस दशा में पिता या पितृपक्ष की हानि, घर में अशुभ फल, पितृवर्ग में मनस्ताप, लोगों का विरोध होता है। यदि उक्तसूर्य शुभ ग्रहों की युति या दृष्टि में हो तो दशा के बीच में कभी सुख भी होता है।

पापयुक्त दृष्ट सूर्य की दशा में पापफल ही होता है।

चन्द्रदशा फल :-

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चन्द्रे केन्द्रे लाभत्रिकोणगे।
शुभग्रहेण संयुक्ते पूर्णे चन्द्रे बलैर्युते।। 16।।
कर्मभाग्याधिपैर्युक्ते वाहनेशबलैर्युते।
आद्यन्तैश्वर्यसौभाग्यधनधान्यादिलाभकृत्।। 17।।

गृहे तु शुभकार्याणि वाहनं राजदर्शनम् ।
यत्नकार्यार्थसिद्धिः स्यात् गृहे लक्ष्मी कटाक्षकृत् ।। 18 ।।
मित्रप्रभुवशाद्भाग्यं राज्यलाभं महासुखम् ।
अश्वान्दोल्यादि लाभश्च श्वेतवस्त्रादिकं लभेत् ।। 19 ।।
पुत्र लाभादि सन्तोषं गृहगोधनसंकुलम् ।
धनस्थानगते चन्द्रे तुंगे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ।। 20 ।।
अनेकधनलाभश्च भाग्यवृद्धिः महत्सुखम् ।
निक्षेपराजसन्मानं विद्यालाभं च विन्दति ।। 21 ।।

यदि चन्द्रमा उच्चगत, स्वक्षेत्री हो, केन्द्र त्रिकोण या एकादश भाव में स्थित हो, शुभ ग्रह से युक्त हो, पूर्ण चन्द्रमा हो या षड्बली हो, या 9.10 भावेश से युक्त हो, या बली चतुर्थेश से युक्त हो तो समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति, धन धान्य व सौभाग्य की वृद्धि होती है। घर में शुभ कार्य होते हैं, वाहन का लाभ, राज दर्शन, सभी प्रयत्नों की सफलता, मनोरथों की पूर्ति, घर में लक्ष्मी की कृपा होती है।

मित्रों व स्वामी की कृपा से भाग्यवृद्धि, राज्यप्राप्ति, महान् सुख, विशिष्ट वाहनों की प्राप्ति, सफेद वस्त्रों का लाभ होता है।

इस दशा में पुत्र लाभ, सन्तोष, घर में गोधन, पशुधन की वृद्धि होती है।

यदि चन्द्रमा द्वितीय स्थान में हो तथा स्वोच्च या स्वक्षेत्र में हो तो अनेक प्रकार से धन लाभ, भाग्यवृद्धि, प्रभूत सुख, बचत में वृद्धि, राज सम्मान, विद्या लाभ होता है।

नीचे वा क्षीणचन्द्रे वा धनहानिर्भविष्यति ।
दुश्चिक्ये बलसंयुक्ते क्वचित् सौख्यं क्वचिद्धनम् ।। 22 ।।
दुर्बले पापसंयुक्ते देहजाड्यं मनोरुजम् ।
मृत्युपीडा वित्तहानिर्मातृवर्गजनाद्वधः ।। 23 ।।
षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे दुर्बले पापसंयुते ।
राजद्वेषो मनोदुःखं धनधान्यादिनाशनम् ।। 24 ।।
मातृक्लेशं मनस्तापं देहजाड्यं मनोरुजम् ।
दुःस्थे चन्द्रे बलैर्युक्ते क्वचिल्लाभं क्वचित्सुखम् ।
देहजाड्यं क्वचिच्चैव शान्त्या तत्र शुभं भवेत् ।। 25 ।।

यदि चन्द्रमा नीचगत या क्षीण हो तो धनहानि होती है। यदि चन्द्रमा तृतीय स्थान में हो तो कभी-कभी सुख व धन भी दशा में प्राप्त हो जाता है।

चन्द्रमा निर्बल या पापयुक्त हो तो शरीर में जड़ता, आलस्य, मनोविकार, नौकरों से पीड़ा वित्तहानि, मातृवर्ग से कष्ट होता है।

6.8.12 भाव में चन्द्रमा निर्बल हो तथा पापयुक्त हो तो राजा से शत्रुता, मन में दुःख, धन–धान्य का नाश, माता को कष्ट, मनोविकार, आदि फल होते हैं।

6.8.12 में बली चन्द्र हो तो कभी लाभ व सुख भी होता है तथा शान्ति करवाने से लाभ मिलता है।

मंगलदशा फल :–

स्वभोच्चादि गतस्यैवं नीचशत्रुभगस्य च।
ब्रवीमि भूमिपुत्रस्य शुभाशुभदशाफलम्।। 26।।
स्वर्क्षे केन्द्रत्रिकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा।
परमोच्चगते भौमे स्वोच्चे मूल त्रिकोणगे।। 27।।
सम्पूर्ण बलसंयुक्ते शुभदृष्टे शुभांशके।
राज्यलाभं भूमिलाभं धनधान्यादि लाभकृत्।। 28।।
आधिक्याद् राजसम्मानं वाहनाम्बरभूषणम्।
विदेशे स्थानलाभश्च सोदराणां सुखं लभेत्।। 29।।
केन्द्रे गते सदा भौमे दुश्चिक्ये बलसंयुते।
पराक्रमाद् वित्तलाभो युद्धे शत्रुंजयो भवेत्।। 30।।
कलत्रपुत्रविभवं राजसम्मानमेव च।
दशादौ सुखमाप्नोति दशान्ते कष्टमादिशेत्।। 31।।

यदि मंगल स्वराशि, स्वोच्च या मूलत्रिकोण हो तथा केन्द्र, त्रिकोण, लाभ या धन स्थान में गया हो या परमोच्च, उच्च में हो एवं मंगल बलवान् हो, शुभदृष्ट हो, शुभ ग्रह के नवांश में हो तो राज्यलाभ, भूमिलाभ, धन धान्य का लाभ, राजा से विशेष सम्मान, वाहनों व वस्त्राभूषणों की प्राप्ति, विदेश में मान वृद्धि, पद लाभ भाइयों का सुख होता है।

यदि बलवान् मंगल 1.3.4.7.10 में हो तो अपने परिश्रम से धन लाभ, युद्ध में कभी कष्ट भी हो जाता है।

नीचादि दुष्टभावस्थे भौमे बलविवर्जिते।
पापयुक्ते पापदृष्टे सा दशा नेष्टदायिनी।। 32।।

यदि निर्बल मंगल 6.8.12 भावों में हो, नीचादिगत हो, पापयुक्त, पापदृष्ट हो तो उसकी दशा अशुभ फल देने वाली होती है।

राहु केतु का स्वगृहादि निर्णय :–

एवं राहोश्च केतोश्च कथयामि गृहादिकम् ।
तयोर्दशाफलज्ञप्त्यै तवाग्रे द्विजनन्दन ! ।। 33 ।।
राहोस्तु वृषभं केतोर्वृश्चिकं तुंगसंज्ञकम् ।
मूलत्रिकोणकं ज्ञेयं युग्मं चापं क्रमेण च ।। 34 ।।
कुम्भाली च गृहे प्रोक्ते कन्या मीने च केनचित् ।

राहु व केतु के दशा फल का निश्चय करने के लिए, राहु केतु के स्वगृहादि का निर्णय बताता हूँ।

राहु की वृष राशि व केतु की वृश्चिक राशि उच्च राशि होती है। मिथुन व धनु राशि क्रमशः मूलत्रिकोण राशियाँ हैं। कुम्भ व वृश्चिक क्रमशः राहु केतु के स्वक्षेत्र हैं। कुछ विद्वानों ने कन्या व मीन को राहु का स्वक्षेत्र कहा है।

तद्दाये बहुसौख्यं च धनधान्यादिसम्पदाम् ।। 35 ।।
मित्रप्रभुवशादिष्टं वाहनं पुत्रसम्भवः ।
नवीन गृहनिर्माणं धर्मचिन्ता महोत्सवः ।। 36 ।।
विदेशे राजसम्मानं वस्त्रालंकरणभूषणम् ।
शुभयुक्तै शुभैर्दृष्टे योगकारकसंयुते ।। 37 ।।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये शुभराशिगे ।
महाराजप्रासादेन सर्वसम्पत्सुखावहम् ।
यवनप्रभुसम्मानं गृहे कल्याणसम्भवम् ।। 38 ।।

स्वोच्चादि गत राहु की दशा में बहुत सुख, धनधान्य की वृद्धि होती है। मित्रों व स्वामी जनों की सहायता से मनोरथ सिद्धि, वाहन व पुत्र का लाभ, नए घर का निर्माण, धर्म भावना, बहुत प्रसन्नतापूर्ण उत्सवों का माहौल, विदेशों में राजकीय सम्मान, वस्त्राभूषणों की प्राप्ति होती है। उक्त फल राहु की शुभयुति दृष्टि होने व योग कारक ग्रह के साथ रहने से विशेष होता है। यदि ऐसा राहु केन्द्र त्रिकोण लाभ में हो या तृतीय में शुभ राशि में हो तो सम्राट की प्रसन्नता से सब प्रकार की सुख–सम्पत्तियाँ, यवन देशों की सरकार की ओर से लाभ, घर में सब शुभ कल्याणकारक कार्य होते हैं।

रन्ध्रे वा व्ययगे राहौ तद्दाये कष्टमादिशेत् ।। 39 ।।
पापग्रहेण सम्बन्धे मारकग्रहसंयुते ।
नीचराशिगते वापि स्थानभ्रंशो मनोव्यथा ।। 40 ।।

विनाशो दारपुत्राणां कुत्सितान्नं च भोजनम् ।
दशादौ देशपीडा च धनधान्यपरिच्युतिः ।। 41 ।।
दशामध्ये तु सौख्यं स्यात् स्वदेशे धनलाभकृत् ।
दशान्ते कष्टमाप्नोति स्थानभ्रंशो मनोव्यथा ।। 42 ।।

यदि राहु 8.12 भाव में हो, पापग्रह (पाप फलदायी) से सम्बन्ध करे, भारकेश से युक्त हो या नीच राशि में हो तो इसकी दशा में स्थान हानि, पदावनति, स्थान परिवर्तन, पद हानि, मनोव्यथा, स्त्री पुत्रादि का नाश, खराब अन्न का भोजन, दशारम्भ में देशीय कारणों (सार्वजनिक उपद्रव, दंगा आदि) से कष्ट, धन–धान्य का नाश, दशा के बीच में सुख, स्वदेश में धन लाभ के योग तथा दशा के अन्त में अत्यन्त कष्ट, स्थान नाश व मानसिक पीड़ा होती है ।

गुरुदशा फल :–

यः सर्वेषु नभोगेषु बुधैरतिशुभः स्मृतः ।
तस्य देवेन्द्रपूज्यस्य कथयामि दशाफलम् ।। 43 ।।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे जीवे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
मूलत्रिकोणलाभे वा तुंगांशे स्वांशगेऽपि वा ।। 44 ।।
राज्यलाभं महत्सौख्यं राज्यसन्मानकीर्तनम् ।
गजवाजिसमायुक्तं देवब्राह्मणपूजनम् ।। 45 ।।
दारपुत्रादिसौख्यं च वाहनाम्बरलाभजम् ।
यज्ञादिकर्मसिद्धिः स्याद्वेदान्तश्रवणादिकम् ।। 46 ।।
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ।
आन्दोलिकादिलाभश्च कल्याणं च महत्सुखम् ।। 47 ।।
पुत्रदारादिलाभश्च अन्नदानं महत्प्रियम् ।।

सभी ग्रहों में अत्यन्त शुभ समझे जाने वाले गुरु ग्रह की दशाफल को कहता हूँ । यदि गुरु स्वोच्च, स्वक्षेत्र में या केन्द्र त्रिकोण में, एकादश स्थान में, मूल त्रिकोण राशिगत होकर लाभ स्थान में, या उच्च नवांश या स्वनवांश में हो तो इसकी दशा में राज्य लाभ, प्रभूत सुख, राज्य सम्मान, राजा की ओर से प्रशंसा, हाथी घोड़ों जैसी कीमती सवारियों का लाभ, देवता व ब्राह्मणों का पूजन, स्त्री पुत्रादि का सुख, वाहन, वस्त्र का लाभ, यज्ञादि मांगलिक कार्यों की सफलता, वेदान्त विद्या में रुचि, राजा की कृपा से इष्ट सिद्धि, सुख भोग, पालकी आदि प्रतिष्ठित सवारी की प्राप्ति

(सरकारी वाहन), कल्याण सुख, स्त्री व पुत्रादि का लाभ, अन्नदान की सामर्थ्य व बहुत प्रिय कार्य की सफलता होती है।

नीचास्तपापसंयुते जीवेरिःफाष्टसंयुते ।। 48 ।।
स्थानभ्रंशं मनस्तापं पुत्रपीडामहद्भयम् ।
पश्वादिधनहानिश्च तीर्थयात्रादिकं लभेत् ।। 49 ।।
आदौ कष्टफलं चैव चतुष्पादाज्जीवलाभकृत् ।
मध्यान्ते सुखमाप्नोति राजसम्मान वैभवम् ।। 50 ।।

यदि गुरु नीचगत, अस्तंगत, मारकेशाष्टमेशादि पाप ग्रहों से युक्त हो, अथवा उक्त स्थिति में 8-12 भावों में गया हो तो इसकी दशा में पद व स्थान का नाश, मनस्ताप, पुत्रपीड़ा, भयप्राप्ति, पशु व धन की हानि, तीर्थयात्रा होती है। दशारम्भ में कष्ट, चौपायों से लाभ योग, दशा मध्य व अन्त में सुख, राज सम्मान व वैभव मिलता है।

शनि दशाफल :–

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मन्दे मित्रक्षेत्रेऽथवा यदि ।
मूलत्रिकोणे भाग्ये वा तुंगांशे स्वांशगेऽपि वा ।। 51 ।।
दुश्चिक्ये लाभगे चैव राजसम्मानवैभवम् ।
सत्कीर्तिधनलाभश्च विद्यावादविनोदकृत् ।। 52 ।।
महाराजप्रसादेन गजवाहनभूषणम् ।
राजयोगं प्रकुर्वीत सेनाधीशान्महत्सुखम् ।। 53 ।।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि राज्यलाभं करोति च ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिलाभकृत् ।। 54 ।।

यदि शनि स्वोच्च, स्वराशि, मित्रक्षेत्र मूलत्रिकोण राशि में नवम स्थान अर्थात् त्रिकोण में (5.9) हो अथवा, शनि उच्च नवांश या स्वनवांश में होकर 3.11 भाव में हो तो इसकी दशा राज–सम्मान व वैभव देने वाली होती है। सत्कीर्ति, धन लाभ, विद्या व वाद–विवाद, शास्त्रार्थ आदि में समय यापन, बड़े सम्राट् की कृपा से हाथी घोड़े (वाहन) वस्त्राभूषणों की प्राप्ति, राजयोगदायक होती है। इस शनि की दशा में सेनापति की सहायता से भी सुख प्राप्त होता है।

लक्ष्मी की कृपा, राज्यप्राप्ति, घर में धनधान्य, स्त्री पुत्रादि की वृद्धि होती है।

षष्ठाष्टमव्यये मन्दे नीचे वाऽस्तंगतेऽपि वा ।
विषशस्त्रादिपीडा च स्थानभ्रंशं महद्भयम् ।। 55 ।।

पितृमातृवियोगं च दारपुत्रादिपीडनम् ।

राज्यवैषम्यकार्याणि ह्यनिष्टं बन्धनं तथा ।। 56 ।।

शुभयुक्तेक्षिते मन्दे योगकारकसंयुते ।

केन्द्रत्रिकोणलाभे वा मीनगे कार्मुके शनौ ।। 57 ।।

राज्यलाभं महोत्साहं गजाश्वाम्बरसंकुलम् ।। 58 ।।

यदि शनि 6.8.12 में हो और विशेषतया नीचास्तंगत होकर दुष्ट स्थानों में हो तो विषपीड़ा (साक्षात् विषपान या विष संक्रमण) शस्त्रपीड़ा (आघात या ऑपरेशन) स्थान हानि, भय, पिता–माता से वियोग, स्त्री–पुत्रादि को पीड़ा, राज्य की ओर से कठिनाइयाँ, अनिष्ट, बन्धन होता है। यदि शनि शुभ ग्रह से युक्त दृष्ट हो या योग कारक ग्रह से युक्त हो तथा केन्द्र त्रिकोण लाभ में गया हो या 9.12 राशि में हो तो राज्यप्राप्ति, महान् उत्साह तथा अनेक वाहन, सम्पत्ति व वस्त्राभूषणों की प्राप्ति होती है।

बुध दशा फल :–

अथ सर्वनभोगेषु यः कुमारः प्रकीर्तितः ।

तस्य तारेशपुत्रस्य कथयामि दशाफलम् ।। 59 ।।

सभी ग्रहों में कुमार माने जाने वाले, चन्द्रपुत्र बुध की दशा का फल कहता हूँ।

स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुक्ते केन्द्रलाभत्रिकोणे ।

मित्रक्षेत्रसमायुक्ते सौम्ये दाये महत्सुखम् ।। 60 ।।

धनधान्यादि लाभं च सत्कीर्तिधनसम्पदाम् ।

ज्ञानाधिक्यं नृपप्रीतिं सत्कर्मगुणवर्द्धनम् ।। 61 ।।

पुत्रदारादिसौख्यं च देहारोग्यं महत्सुखम् ।

क्षीरेण भोजनं सौख्यं व्यापाराल्लभते धनम् ।। 62 ।।

शुभदृष्टियुते सौम्ये भाग्यकर्माधिपे दशा ।

आधिपत्ये बलवती सम्पूर्णफलदायिका ।। 63 ।।

यदि बुध स्वोच्चगत, स्वक्षेत्री, केन्द्रत्रिकोण या लाभभावगत, मित्र क्षेत्री हो तो इसकी दशा में बहुत सुख, धनधान्य का लाभ, सत्कीर्ति, धन सम्पत्ति में वृद्धि, ज्ञानवृद्धि, राजा से मित्रता, सत्कार्य करने के अवसर, गुणों में निखार, स्त्री पुत्रादि का सुख, शरीर में नीरोगता, दूध घी का भोजन, व्यापार से धन लाभ होता है।

यदि बुध शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो और दशमेश नवमेश होकर शुभ स्थानों में स्थित हो तो इसकी दशा में उक्त शुभ फल विशेषतया सम्पूर्ण मिलते हैं।

पापग्रहयुते दृष्टे राजद्वेषं मनोरुजम्।
बन्धुजनविरोधं विदेशगमनं लभेत्।। 64।।
परप्रेष्यं च कलहं मूत्रकृच्छान्महद्भयम्।
षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये लाभभोगार्थनाशकम्।। 65।।
वातपीडां धनं चैव पाण्डुरोगं विनिर्दिशेत्।
नृपचौराग्निभीतिं च कृषिगोभूमिविनाशनम्।। 66।।
दशादौ धनधान्यं च विद्यालाभं महत्सुखम्।
पुत्रकल्याणसम्पत्तिः सन्मार्गे धनलाभकृत्।। 67।।
मध्ये नरेन्द्रसन्मानमन्ते दुःखं भविष्यति।। 68।।

पापयुक्त या पापदृष्ट बुध हो तो राजा से द्वेष, मनोविकार, बन्धुओं व मित्रों से वैर, विदेश यात्रा, दूसरे की नौकरी, कलहागम, मूत्र रोग, महान् भय देता है। यदि ऐसा बुध 6.8 में हो तो लाभ व सुख का नाश करता है। वायु विकार, धनहानि पीलिया रोग होता है। राजा से भय, अग्निभय, चौरभय, कृषि, गोधन व भूमि का नाश होता है।

शुभ दशा के आरम्भ में धनधान्य व विद्या का लाभ, सुखप्राप्ति, पुत्रादि कल्याण लाभ, अच्छे मार्ग से धन लाभ, दशामध्य में राज सम्मान तथा अन्त में दुःख होता है।

केतु दशा फल :–

यस्तमोग्रहयोर्मध्ये कबन्धः कथ्यते बुधैः।
तस्य केतोरिदानीं ते कथयामि दशाफलम्।। 69।।

तमो ग्रहों में कबन्ध (धड़) रूप केतु की दशा का फल अब मैं तुम्हें बताता हूँ।

केन्द्रे लाभे त्रिकोणे वा शुभ राशौ शुभेक्षिते।
स्वोच्चे वा शुभवर्गे वा राजप्रीति मनोरथान्।। 70।।
देशग्रामाधिपत्यं च वाहनं पुत्रसम्भवम्।
देशान्तरप्रयाणं च निर्दिशेत् तत्सुखावहम्।। 71।।
पुत्रदारसुखं चैव चतुष्पाज्जीवलाभकृत्।
दुश्चिक्ये षष्ठलाभे वा केतुर्दाये सुखं दिशेत्।। 72।।

राज्यं करोति मित्रांशं गजवाजिसमन्वितम् ।

दशादौ राजयोगाश्च दशामध्ये महद्भयम् ।। 73 ।।

अन्ते दूराटनं चैव देहाविश्रमणं तथा ।

धने रन्ध्रे व्यये केतौ पापदृष्टियुतेक्षिते ।। 74 ।।

निगदं बन्धुनाशं च स्थानभ्रंशं मनोरुजम् ।

शूद्रसंगादिलाभं च कुरुते रोगसुङ्कुलम् ।।75 ।।

शुभ राशि में, शुभ दृष्ट होकर, स्वोच्चगत, शुभ वर्गों में स्थित, केन्द्र, त्रिकोण व लाभ भाव में केतु हो तो राजा से मित्रता, मनोरथों की प्राप्ति, देश या गाँव का अधिकार लाभ, वाहन प्राप्ति, पुत्रयोग, विदेश यात्रा एवं यात्रा का सुख स्त्री पुत्र, चौपाए धन से लाभ की प्राप्ति होती है। 3.6.11 भावों में स्थित केतु का फल सुख होता है। मित्रनवांश गत केतु की दशा में हाथी घोड़ों (वाहन) की प्राप्ति, दशारम्भ में राजयोग, दशामध्य में भय प्राप्ति, अन्त में दूर देशों की यात्राएँ, देहान्त सम्भव होता है।

2.8.12 भावों में केतु पापयुक्त दृष्ट हो तो हथकड़ी आदि का बन्धन, बन्धुओं की हानि, स्थान हानि, मानसिक कष्ट, शूद्रों की संगति से लाभ एवं कई रोगों से कष्ट होता है।

शुक्र दशा फलम् :–

अथ भूतेषु यः शुक्रो मदरूपेण तिष्ठति ।

तस्यदैत्यगुरोर्विप्र ! कथयामि दशाफलम् ।। 76 ।।

प्राणियों में कामदेव रूप से स्थित राक्षसों के गुरु शुक्र ग्रह की दशा का फल कहता हूँ।

परमोच्चगते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।

नृपाऽभिषेक–सम्प्राप्तिर्वाहनाऽम्बरभूषणम् ।।77 ।।

गजाश्वपशुलाभं च नित्यं मिष्ठान्नभोजनम् ।

अखण्डमण्डलाधीश राजसन्मानवैभवम् ।। 78 ।।

मृदङ्गवाद्य घोषं च गृहे लक्ष्मीकटाक्षकृत् ।

त्रिकोणस्थे निजे तस्मिन् राज्यार्थगृहसम्पदः ।। 79 ।।

विवाहोत्सव कार्याणि पुत्रकल्याणवैभवम् ।

सेनाधिपत्यं कुरुते इष्टबन्धुसमागमम् ।। 80 ।।

नष्ट राज्याद्धनप्राप्तिं गृहे गोधनसंग्रहम् ।।

यदि शुक्र परमोच्च में, स्वोच्च में, स्वक्षेत्री, केन्द्रगत हो तो राज्याभिषेक, वाहन वस्त्रादि की प्राप्ति, हाथी घोड़े जैसे कीमती पुशओं की प्राप्ति, सदैव मधुर भोजन का लाभ, समस्त प्रदेश का आधिपत्य, राज सम्मान, वैभव, विभिन्न संगीतादि वाद्यों से स्वागत के अवसर, घर में लक्ष्मी जी की कृपा होती है।

5.9 में स्वक्षेत्री आदि हो तो राज्य, धन, घर मकान आदि का लाभ, विवाहादि उत्सव, पुत्रों की उन्नति, सेनापतित्व, इष्टमित्रों से समागम, नष्ट धन या नष्ट राज्य की प्राप्ति, घर में गोधन की वृद्धि होती है।

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे नीचे वा रिपु राशिगे ।। 81 ।।
आत्मबन्धुजनद्वेषं दारवर्गादिपीडनम् ।
व्यवसायात्फलं नष्टं गोमहिष्यादिहानिकृत् ।। 82 ।।
दारपुत्रादि पीडा वा आत्मबन्धुवियोगकृत् ।

यदि 6.8.12 भावों में नीचगत या शत्रुक्षेत्री शुक्र हो तो उसकी दशा में अपने लोगों से शत्रुता, स्त्री आदि परिवार जनों को कष्ट, परिश्रम के फल की हानि, पशुधन की हानि एवं अपने लोगों से वियोग होता है।

भाग्यकर्माधिपत्येन लग्नवाहन राशिगे ।। 83 ।।
तद्दशायां महत्सौख्यं देशग्रामाधिपालता ।
देवालय–तडागादि–पुण्यकर्मसु संग्रहः ।। 84 ।।
अन्नदाने महत्सौख्यं नित्यं मिष्ठान्नभोजनम् ।
उत्साहो कीर्तिसम्पत्तौ स्त्रीपुत्रधनसम्पदः ।। 85 ।।

यदि शुक्र 9.10 भावेश होकर 1.4 भावों में हो तो उसकी दशा में बहुत सुख, देश व ग्राम का अधिकार, देवालय, तड़ागादि सार्वजनिक स्थानों के निर्माण का पुण्य, अन्नदान, मधुर भोजन, उत्साह, कीर्ति, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, धन धान्य का लाभ होता है।

स्वभुक्तौ फलमेवं स्याद् फलान्यन्यानि भुक्तिषु ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहपीडा भविष्यति ।। 86 ।।
तद्दोषपरिहारार्थं रुद्रं वा त्र्यम्बकं जपेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादारोग्यं च ततो भवेत् ।। 87 ।।

शुक्र का उक्त फल अपनी दशा व अन्य महादशाओं में शुक्र की अन्तर्दशाओं में भी होता है। यदि शुक्र 2.7 भावेश हो तो इसकी दशान्तर्दशा

में देहपीड़ा होती है। इसकी शान्ति के लिए रुद्राभिषेक, त्र्म्बक मन्त्र का जप, सफेद गाय या भैंस का दान करना चाहिए। तब नीरोगता होती है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां दशाफलाध्याय एकोनपंचाशत्तमः।।49।।

50

।। अथ भावेशदशाफलाध्यायः ।।

पराशर उवाच–

स्थानस्थिति वशेनैवं फलं प्रोक्तं पुरातनैः।
मिथो भावेशसम्बन्धात् फलानि कथयाम्यहम्।। 1।।

पराशर बोले–भाव स्थिति के अनुसार ग्रह दशा फल बताया जा चुका है। अब दूसरे भावेशों के साथ महादशेश के सम्बन्ध से होने वाले तारतम्य से युक्त दशाफल कहता हूँ।

लग्नेशस्य दशाकाले सत्कीर्ति देहजं सुखम्।
धनेशस्य दशायां तु क्लेशो वा मृत्युतो भयम्।। 2।।
सहजे दशाकाले ज्ञेयं पापफलं नृणाम्।
सुखाधीशदशायां तु गृहभूमिसुखं भवेत्।। 3।।
पंचमेशस्य पाके च विद्याप्तिः पुत्रजं सुखम्।
रोगेशस्य दशाकाले देहपीडारिपोर्भयम्।। 4।।

लग्नेश की दशा में सत्कीर्ति का लाभ, शरीर का सुख होता है। द्वितीयेश की दशा में क्लेश व मरणभय, तृतीयेश की दशा में पाप व अनिष्ट फलों की प्राप्ति होती है। चतुर्थेश की दशा में घर व अचल सम्पत्ति का लाभ, पंचमेश की दशा में विद्याप्राप्ति व सन्तान से सम्बन्धित सुख होता है।

षष्ठेश की दशा में शरीर कष्ट व शत्रुओं से भय होने के अवसर रहते हैं।

सप्तमेशस्य पाके तु स्त्रीपीड़ा मृत्युतो भयम्।
अष्टमेश दशाकाले मृत्युभीतिर्धनक्षयम्।। 5।।
धर्मेशस्य दशायां च भूरिलाभो, यशः सुखम्।
दशमेशदशाकाले सम्मानं नृपसंसदि।। 6।।
लाभेशस्य दशाकाले लाभे बाधा रुजोभयम्।
व्ययेशस्य दशा नृणां बहुकष्टप्रदा द्विज।। 7।।
दशारम्भे शुभस्थाने स्थितस्यापि शुभफलम्।
अशुभ स्थानगस्यैवं शुभस्यापि न शोभनम्।। 8।।

सप्तमेश की दशा में स्त्री को कष्ट, मृत्युभय। अष्टमेश की दशा में मरण भय व धन नाश। नवमेश की दशा में बहुत लाभ, यशोलाभ व सुख। दशमेश की दशा में लाभ, राजा की सभा में सम्मान। एकादशेश की दशा में लाभ में रुकावट, रोगभय। व्ययेश की दशा में मनुष्यों को बहुत कष्ट होता है।

यदि उक्त भावेश किसी शुभ स्थान में स्थित हो और भावेशानुसार उसका फल अशुभ हो तो भी दशारम्भ में वह शुभ फल ही देता है।

इसी तरह शुभ फलद भावेश यदि अनिष्ट स्थानों में हो तो उसकी दशा में भी प्रारम्भ में शुभ फल नहीं होता है।

भावेश सम्बन्ध से दशाफल :–

पंचमेशेन युक्तस्य कर्मेशस्य दशा शुभा।
नवमेशेन युक्तस्य कर्मेशस्याति शोभना।। 9।।
पंचमेशेन युक्तस्य ग्रहस्यादि दशा शुभा।
तथा धर्मपयुक्तस्य दशा परम शोभना।। 10।।
सुखेश सहितस्यापि धर्मेशस्य दशा शुभा
पंचमस्थानगस्यापि भावेशस्य दशा शुभा।। 11।।
एवं त्रिकोणनाथानां केन्द्रस्थानां दशा शुभाः।
तथा त्रिकोणस्थितानां च केन्द्रेशानां दशा शुभाः।। 12।।
केन्द्रेशः कोणभावस्थः कोणेशः केन्द्रगो यदि।
तयोर्दशां शुभां प्राहुर्ज्योतिःशास्त्रविदो जनाः।। 13।।

(i) पंचमेश से युक्त दशमेश (या दशमेश युक्त पंचमेश) की दशा सदैव शुभ फल देती है।

(ii) नवमेश व दशमेश का योग या सम्बन्ध हो तो इनकी दशाएँ भी बहुत शुभ होती हैं।

(iii) पंचमेश के साथ स्थित सभी ग्रहों की दशाएँ शुभ ही होती हैं। इसी तरह नवमेश के साथ स्थित ग्रहों की दशाएँ बहुत शुभ होती हैं।

(iv) यदि चतुर्थेश नवमेश का योग या सम्बन्ध हो तो इनकी दशाएँ शुभ होती हैं।

(v) पंचमभावगत दशमेश की दशा भी शुभ फल देती है। इसी तरह त्रिकोणेश केन्द्र में हों तो इनकी दशा शुभ होती है।

(vi) किसी भी प्रकार केन्द्रेश त्रिकोणगत हों या त्रिकोण केन्द्रगत हों तो इनकी दशाएँ या इनकी परस्पर दशान्तर्दशाएँ शुभ फल देती हैं, ऐसा ज्योतिष शास्त्रवेत्ताओं का मत है।

षष्ठाष्टव्ययाधीश अपि कोणेशसंयुता।
तेषां दशाऽपि शुभदा कथिता कालकोविदैः।। 14।।
कोणेशः यदि केन्द्रस्थः केन्द्रे शोयदि कोणगः।
ताभ्यां युक्तस्य खेटस्य दृष्टि युक्तस्य चैतयोः।। 15।।

दशा शुभप्रदा प्राहुर्विद्वांसो दैवचिन्तकाः ।
लग्नेशो धर्मभावस्थो धर्मेशो लग्नगो यदि ।। 16 ।।
एतयोस्तु दशाकाले सुख धर्म समुद्भवः ।
कर्मेशो लग्न राशिस्थो लग्नेशः कर्मभावगः ।। 17 ।।
तयोर्दशाविपाके तु राज्यलाभो भवेद् ध्रुवम् ।

(i) 6.8.12 भावेशों का यदि त्रिकोणेशों के साथ योग हो तब भी इनकी दशाएँ विद्वानों ने बहुत शुभ कही हैं ।

(ii) केन्द्रगत त्रिकोणेश या त्रिकोणगत केन्द्रेश से युक्त या दृष्ट ग्रह की दशान्तर्दशा भी बहुत शुभ होती है ।

(iii) नवमेश लग्न में व लग्नेश नवम में हो तो इनकी दशान्तर्दशा में सुखप्राप्ति, धार्मिक कार्यों की सम्पन्नता होती है ।

(iv) इसी तरह लग्नेश व दशमेश परस्पर स्थान परिवर्तन सम्बन्धी हों तो इनकी दशा में राज्यप्राप्ति निश्चय से होती है । राज्य का अर्थ यथावसर पद, प्रतिष्ठा, मान व साक्षात् राज्य आदि समझना चाहिए ।

त्रिषडायगतानां च त्रिषडायाधिपैर्युजाम् ।। 18 ।।

शुभानामपि खेटानां दशा पापफलप्रदा ।

मारकस्थानगानां च मारकेशयुजामपि ।। 19 ।।

रन्ध्रस्थानगतानां च दशाऽनिष्टफलप्रदा ।

एवं भावेश सम्बन्धादूहनीयं दशाफलम् ।। 20 ।।

(i) 3.6.11 भावों में स्थित शुभ ग्रहों एवं इन्हीं भावेशों से युक्त शुभ ग्रहों की दशाएँ भी पापफल देती हैं ।

(ii) 2.7 भावों में स्थित और मारकेश से युक्त ग्रहों की व अष्टम स्थान गत ग्रहों की दशा अनिष्टकारी फल देती है ।

इस तरह भावेशों के परस्पर सम्बन्ध के आधार पर भी दशान्तर्दशा का विशेष अर्थात् गूढ़ फल निश्चय करना चाहिए ।

उक्त फलादेश विंशोत्तरी दशा पद्धति से अधिक घटित होता है । लेकिन नक्षत्राधारित किसी भी दशा पद्धति में यही फल प्रयुक्त होना चाहिए । महर्षि ने यह फल विंशोत्तरी से सम्बन्धित ही कहा हो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है, लेकिन दशा संख्या भावेश सम्बन्धादि व मारकत्व विचारदि से यह बात अप्रत्यक्ष रूप से निकल आती है ।

दशा के सूक्ष्म फल विवेक के लिए हमारी लघुपाराशरी विद्याधरी का सम्पूर्ण अध्ययन बहुत लाभदायक होगा । वहाँ इन दशा नियमों व उपनियमों की विस्तृत सोदाहरण व्याख्या की गई है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां भावेशदशा फलाध्यायः पंचाशत्तमः ।। 50 ।।

आचार्य मीनराज कृत

वृद्ध यवन जातक

(प्रणवाख्या हिन्दी व्याख्या समेतम्)

व्याख्याकारः डॉ॰ सुरेशचन्द्र मिश्र ज्योतिषाचार्य

फलित ज्योतिष की प्राचीन सिद्धान्त धारा की पावन गंगोत्री रूपी रचना, लगभग 1800 वर्ष पहले भारत वर्ष में लिखी गई। जो अलभ्य थी, वह अब सर्वप्रथम प्रकाशित।

प्रमुख आकर्षण जो इसमें आप पायेंगे:

- लगभग 4500 श्लोक हिन्दी अर्थ व्याख्या सहित
- षड्वर्गफल, सम्पूर्ण विस्तृत ग्रहभाव–दृष्टिफल
- अष्टकवर्ग की रेखाओं के अनुसार सम्पूर्ण फल
- राशियों का ज्ञान व सकल फल, दशान्तर्दशा विचार
- ग्रहों के बलाबल का विचार व पृथक जातक फल
- राजयोगों का विशेष निरूपण, प्रामाणिक पाठ (Text)
- विशिष्ट भारतीय ज्योतिष परम्परा, जन्म संबंधी विषय
- संहिता विषय, शकुन, स्वप्न, मृत्यु का विस्तृत विवेचन
- प्राचीन व महान संदर्भ ग्रंथ, भाषा, भाव विषय उत्तम
- यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्

कुछ ऐसे विषय जो इसमें हैं वे कहीं नहीं।

2 खण्डों में सम्पूर्ण — **पृष्ठ एक हजार से अधिक**

मूल्य चार सौ रुपये — **डाक व्यय पृथक**

दक्षिण भारत का अमूल्य ग्रंथ

प्रश्न मार्ग

व्याख्याकार : डॉ॰ शुकदेव चतुर्वेदी

32 अध्यायों का यह सम्पूर्ण मानक ग्रंथ मलयालम लिपि से पहली बार हिन्दी में प्रकाशित किया गया है। मूल संस्कृत श्लोकों का प्रामाणिक पाठ इस पर विस्तृत हिन्दी व्याख्या अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी।

अष्टकूट का शास्त्रीय अध्ययन व कर्मविपाक (अर्थात् पूर्वजन्म के किस पाप या पुण्य के कारण हमें शुभाशुभ फल मिला है) का विचार देकर ग्रंथकार ने सर्वोपयोगी बना दिया है। होरा, प्रश्न, मुहूर्त्त व रोगों का सटीक उपचार आदि विषय पूर्ण सन्तुष्टि प्रदान करता है।

2 भागों में सम्पूर्ण — पृष्ठ 590

विश्व में श्रेष्ठता प्राप्त ज्योतिषग्रन्थ
आचार्य वराहमिहिर की प्रमुख रचनाएं

बृहत् संहिता

व्याख्याकार : डॉ॰ सुरेशचन्द्र मिश्र ज्योतिषाचार्य

ज्योतिष के तीनों स्कन्धों में संहिता शाखा विद्वानों व आचार्यों का परीक्षा स्थान है। संहिता ज्ञान के बिना जातक शाखा में पारंगत हुए भी मनुष्य दैवज्ञ नहीं होता। ***संहिता पारगश्चदैवचिन्तको भवति*** संहिता ज्ञान के बिना ज्योतिष ज्ञान आधा अधूरा व पंगु ही है।

ग्रहचार, उदय, अस्त, विभिन्न ग्रहराशियां उनसे देश, प्रदेश व स्थान विशेष का एवं सम्पूर्ण भूमण्डल का भविष्यकथन, आकाशीय उत्पात, धूमकेतु, उपकेतु, विभिन्न व विचित्रआकाशी तत्त्वों के निरूपण के अतिरिक्त मेदनीय भविष्य, स्वप्न शकुन, नर नारी शरीर लक्षण, तेजी मंदी,रत्न परीक्षा, गाय घोड़ा, हाथी, आदि पालतू पशुओं के लक्षण, वास्तुकला (भवन निर्माण), वृक्ष चिकित्सा, भूकम्प, उल्कापात, आंधी तूफान की सूचना, प्रतिमाविधान का ज्योतिषीय विवेचन, मंदिर आदि अनेक उपयोग विषयों का समावेश होने से आचार्य वराह की इस *बृहत्संहिता का पूरे विश्व में कोई सानी ग्रन्थ नहीं है।* इसका एक एक अध्याय एक एक ग्रंथ की बराबरी करता है।

सम्पूर्ण ग्रंथ दो खण्डों में **पृष्ठ एक हजार से अधिक**

बृहज्जातकम् (होराशास्त्र)

व्याख्याकार : डॉ॰ सुरेशचन्द्र मिश्र ज्योतिषाचार्य

फलित ज्योतिष का शिरोमणि ग्रन्थ जिसमें ज्योतिष के सभी विषय मूल रूप से निहित हैं एवं जिसका एक एक अक्षर अपनी जगह पर उपयुक्त तथा गहरे अर्थों से युक्त है। **विस्तृत एवं विद्वतापूर्ण हिन्दी टीका**

पृष्ठ संख्या 400 **मूल्य 150 रुपये**
विशिष्ट संस्करण 200 रुपये **डाक व्यय अलग**

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002